॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला
166

वासवदत्ता

(विस्तृत भूमिका, मूल, अन्वय, हिन्दी अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या एवं संस्कृत टिप्पणी तथा परिशिष्ट सहित)

अनुवादक एवं सम्पादक :

डॉ. राकेश शास्त्री

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली-110007 (भारत)

॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

166

महाकविसुबन्धुविरचिता

वासवदत्ता

(विस्तृत भूमिका, मूल, पदच्छेद, हिन्दी अनुवाद, 'चन्द्रिका'
हिन्दी व्याख्या एवं विस्तृत टिप्पणी तथा परिशिष्ट सहित)

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ. राकेश शास्त्री

बी.ए. (आनर्स-संस्कृत), साहित्य–पुराणेतिहासाचार्य
(लब्धस्वर्णपदकद्वय), पी-एच.डी. (वेद), डी.लिट् (साहित्य),
सेवानिवृत्त, अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बाँसवाड़ा (राज.)

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली–110007 (भारत)

प्रास्ताविकम्

महाकवि सुबन्धु (सज्जनों के बन्धु) लौकिक संस्कृत गद्यकाव्य के मूर्धाभिषिक्त सम्राट् हैं, क्योंकि सम्पूर्ण काव्य–जगत् को उच्छिष्ट प्रदान करने वाले महाकवि बाण(बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्) तथा लालित्य रचना के लिए प्रसिद्ध दण्डी (दण्डिनः पदलालित्यम्) ये दोनों ही महाकवि वस्तुतः सुबन्धु के अधमर्ण रहे हैं। दूसरे शब्दों में, गद्यकाव्य–त्रयी(वासवदत्ता, कादम्बरी तथा दशकुमार चरित) में सर्वोपरि स्थिति सुबन्धु की वासवदत्ता की ही है, क्योंकि इन्होंने ही प्रत्येक अक्षर श्लेषमय संघटित करके, अद्भुत काव्यसरणि को सर्वप्रथम प्रशस्त किया, जिस पर आगे चलकर महाकवि बाण तथा दण्डी ने भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की और नींव के पत्थर की तरह सुबन्धु कुछ विलोपित से हो गए, यही तो संसार की चिरकालिक परम्परा भी है।

वासवदत्ता वस्तुतः एक उदात्त प्रेमकाव्य है, जिसमें कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता की प्रेमकथा का वर्णन श्लेषमयी, आलंकारिक तथा प्रभावशाली शैली में किया गया है। इस काव्य का सूक्ष्म अध्ययन करने से कवि की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। **प्रथम,** तो वे जीवन में उदात्त, मर्यादित व आदर्श–प्रेम के पक्षधर रहे हैं। **द्वितीय,** उन्हें प्रकृति से अत्यधिक लगाव है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति महाकवि के रोम–रोम में बसी हुई है। इन्हीं दो उद्देश्यों को दृष्टिगत करते हुए उन्होंने इस अद्भुत गद्यकाव्य की संरचना की।

वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, मीमांसा, न्याय, बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि अनेक दर्शनों में पारंगत महाकवि सुबन्धु ने इस काव्य में पद–पद पर अपनी विशेषज्ञता और विदग्धता को प्रमाणित किया है। अनुप्रास, यमक, उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि अनेकानेक अलंकारों का प्रयोग गद्य में करके

कवि ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि– कवित्व की कसौटी तो वस्तुतः पद्य की अपेक्षा गद्य ही है, (गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति) जिसमें छन्दों के अभाव में भी भाषा को आलंकारिक तथा प्रवाहपूर्ण बनाया जा सकता है।

इन्हीं सब विशेषताओं से युक्त 'वासवदत्ता' पर लेखनी चलाना किसी 'उडुप' से समुद्र को पार करने के समान साहसपूर्ण ही कहा जाएगा, किन्तु फिर भी परमपिता परमेश्वर की असीम अनुकम्पा तथा श्रीगुरुचरणों के प्रताप से इस प्रयास में 'मति' ने निश्चय किया और विद्यार्थियों के लिए दुरुह प्रतीत होने वाली यह लघु प्रणय–गद्यकृति सरलरूप में आप सुधीजनों के कर–कमलों में है, जिसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

'मूल' को भाव, भाषा एवं कल्पना आदि अनेकानेक प्रकार से सूक्ष्म–दृष्टि से समझाने के अतिरिक्त इसकी विस्तृत भूमिका में गद्य काव्य के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए, कवि और कृति से सम्बन्धित अनेकानेक जिज्ञासाओं को पूर्ण करने तथा गद्यखण्डों में संख्या का उल्लेख, संदर्भ प्रस्तुत करने व अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से किया गया है। आशा है सुधीजनों को अन्य कृतियों के समान ही यह कृति भी प्रभावित करेगी। संस्कृत–ग्रन्थों के संरक्षक एवं प्रकाशक चौखम्बा ओरियन्टालिया के प्रबन्धक श्रीअजय गुप्त वस्तुतः इसके सुन्दररूप में प्रकाशन के लिए हृदय से धन्यवाद के पात्र हैं।

यद्यपि इसमें शुद्धता का पूरा–पूरा ध्यान रखा गया है तथापि त्रुटि होना मानव का स्वभाव है, इस बात को दृष्टिगत करते हुए आशा है, संस्कृतप्रेमी पाठक–बन्धु इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर अनुगृहीत करेंगे, जिससे उनका निवारण दूसरे संस्करण में किया जा सके। इति शुभम्।

भाद्रपद, पूर्णिमा, 2077

1–जे–38
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
बाँसवाड़ा(राज.) 327001
9460308623

डॉ. राकेश शास्त्री

समर्पण

सरल, सौम्यस्वभावा,
विदुषी,
समर्पणभाव की साक्षात्प्रतिमूर्ति,
मूक–सेवाभावी
सहयोगी भावना से
ओतप्रोत

सहधर्मिणी–

डॉ. प्रतिमा शास्त्री

सेवा–निवृत्त, अध्यक्ष, संस्कृत–विभाग
हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय,
बाँसवाड़ा(राज.)

को

हृदय की गहराइयों से
सप्रेम

राकेश शास्त्री डी.लिट्

विषयानुक्रमणिका

(क) प्रास्ताविकम्	3
(ख) समर्पणम्	5
(ग) विषयानुक्रमणिका	7
(घ) भूमिका	13–88
(i) गद्यकाव्य का स्वरूप एवं भेद	13
(ii) गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास	16
(iii) संस्कृत गद्य के विविध रूपों का परिचय	20
(क) दार्शनिक गद्य	21
(ख) शास्त्रीय गद्य	22
(ग) पौराणिक गद्य	22
(घ) साहित्यिक गद्य	23
(iv) प्रमुख संस्कृत गद्यकार	24
(क) महाकवि सुबन्धु	24
(ख) महाकवि बाण	25
(ग) महाकवि दण्डी	28
(घ) विश्वेश्वर पाण्डेय	30
(ङ) पं. अम्बिकादत्त व्यास	31
(च) पं. हृषीकेश भट्टाचार्य	32
(छ) पण्डिता क्षमाराव	33
(ज) डॉ. रामशरण त्रिपाठी	33
(v) महाकवि सुबन्धु व्यक्तित्व एवं कृतित्व	34
(vi) महाकवि सुबन्धु का काल	37

(vii) महाकवि सुबन्धु एवं दूसरे गद्यकार 40

(क) सुबन्धु एवं बाण 41

(ख) सुबन्धु एवं दण्डी 43

(viii) वासवदत्ता का सारसंक्षेप 44

(ix) महाकवि सुबन्धु की भाषा–शैली 45

(x) वासवदत्ता में अलंकार–योजना 48

(xi) **वासवदत्ता में छन्द–योजना** 49

(क) आर्या (50) (ख)उपजाति (50) (ग)शार्दूलविक्रीडितम्(51) (घ) स्रग्धरा (51) (ङ) शिखरिणी (51)

(xii) **वासवदत्ता में रस–योजना** 52

(क) श्रृंगार रस(52) (ख)हास्य रस(55) (ग) रौद्र रस (56) (घ) वीर रस (56) (ङ) भयानक रस (57) (च)बीभत्स रस (58) (छ) अद्भुत रस (58) (ज) करुण रस (59)

(xiii) महाकवि सुबन्धु का पर्यावरण–प्रेम 59

(xiv) **महाकवि सुबन्धु की वैज्ञानिक–दृष्टि** 60

(क) ऋतु–विज्ञान (60) (ख) भौतिक–विज्ञान (61) (ग) रसायन विज्ञान (61) (घ) प्राणि–विज्ञान (61) (ङ)सौर–विज्ञान (62) (च)ज्योतिष विज्ञान (63) (छ) वनस्पति–विज्ञान (63) (ज) आयुर्वेद–विज्ञान (64) (झ) कोश–विज्ञान (65) चित्रकला–विज्ञान (66) योग–विज्ञान (66) मणि–मन्त्र–ओषधि विज्ञान (66) संगीत–विज्ञान (66)

(xv) वासवदत्ता में प्रतिपादित चरित्र–चित्रण 67

(क) कन्दर्पकेतु 67

(ख) वासवदत्ता 69

(ग) चिन्तामणि 70

(घ) श्रृंगारशेखर 70

(ङ) मकरन्द 71

(च) अनंगवती 71

(छ) कलावती 72

(ज) तमालिका दूती (पक्षीपात्र) 72
(xvi) वासवदत्ता के पौराणिक प्रसंग 73
(xvii) वासवदत्ता के शास्त्रीय प्रसंग 76
(xviii) वासवदत्ता में प्रतिपादित राष्ट्रीय भावना 78
(xix) **वासवदत्ता की संगीतात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता** 79
(xx) वासवदत्ता में उपमानों का चयन 79
(xxi) वासवदत्ता की मौलिकता 80
(xxii) वासवदत्ता की न्यूनता 81
(xxiii) वासवदत्ता में वर्णित सामाजिक चित्रण 82
(xxiv) वासवदत्ता में वर्णित धार्मिक चित्रण 84
(xxv) वासवदत्ता में वर्णित राजनैतिक चित्रण 85
(xxvi) वासवदत्ता में वर्णित साहित्यिक चित्रण 86
(xxvii) **वासवदत्ता का संस्कृत गद्य साहित्य में स्थान** 87

(ङ) वासवदत्ता मूल, हिन्दी अनुवाद, 'दर्शन' टीकानुसारी 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, विशेष आदि। **89–464**

श्लोक(1–4) मंगलाचरण 89
(5) सज्जन–प्रशंसा 96
(6–10) दुर्जन–निन्दा 98
(11–12) सत्कविसूक्तिवैशिष्ट्य 106
(13) ग्रन्थ–प्रणयन का प्रयोजन 109

(कथारम्भः)

(गद्यखण्ड–1) चिन्तामणि वर्णन 111
(2–3) चिन्तामणि शासन–वर्णन 121
(4–6) चिन्तामणि वैशिष्ट्य 127
(7) कन्दर्पकेतु वर्णन 136
(8) कन्दर्पकेतु वैशिष्ट्य वर्णन 142
(9–10) कन्दर्पकेतु सौन्दर्य–वर्णन 144
(11–12) कन्दर्पकेतु की वीरता का वर्णन 148

(13) कन्दर्पकेतु खड्ग–वर्णन 151
(14–15) प्रभातकालिक चन्द्र वर्णन 155
(16–17) प्राभातिक दीप–वर्णन 159
(18) प्रियों द्वारा आलिंगन की गयी कामिनी–वर्णन 163
(19) प्रभातकालीन वायु–वर्णन 167
(20–27) स्वप्न कन्या–वर्णन 168

(कन्या का नखशिख वर्णन)

(20) कन्या जघन–वर्णन 168
(21) कन्या कटि–वर्णन 170
(22) कन्या कुच–वर्णन 173
(23) कन्या अधर–वर्णन 175
(24) कन्या–नेत्र–वर्णन 177
(25) कन्या–नासिका–भ्रूलता–वर्णन 180
(26–27) स्वप्नदृष्टकन्या सौन्दर्य–वर्णन 181
(28) कन्दर्पकेतु विरह–वर्णन 187
(29) मकरन्दोपदेश–वर्णन 190
(29–30) दुर्जन स्वभाव–वर्णन 190
(31–32) साधु स्वभाव वर्णन 200
(33–36) विन्ध्याचल वर्णन 204
(37) रेवा–वर्णन 220
(श्लोक 14–16) सिंहपराक्रम–वर्णन 226
(38) विन्ध्याटवी वर्णन 231
(38) विन्ध्याटवी मार्ग वर्णन 231
(39) जम्बूवृक्ष छाया–वर्णन 234
(40) कन्दर्पकेतुशयन वर्णन 236
(41–43) शुक–सारिका वार्तालाप–वर्णन 238
(44) शुक कथा–वर्णन 240
(45) कुसुमपुर नगरवासी जन–वर्णन 242

(46) नगरवेश्या–वर्णन 246
(47) कात्यायनी–वर्णन 248
(48) गंगा–वर्णन 250
(49) कुसुमपुर उपवन–वर्णन 254
(50) श्रृंगारशेखर–वर्णन 258
(श्लोक–17) श्रृंगारशेखर चारित्रिक विशेषता 261
(श्लोक–18) श्रृंगारशेखर युद्ध–वर्णन 263
(51–53) श्रृंगारशेखर नगर व्यवस्था–वर्णन 265
(54) अनंगवती–वर्णन 271
(55) वासवदत्ता–वर्णन 273
(56–59) वसन्त–वर्णन 276
(60) मलय मारुत–वर्णन 285
(61) स्वयंवर गत मंच–वर्णन 287
(62) राजकुमार–वर्णन 289
(63) वासवदत्ता के स्वप्नगत युवक–वर्णन 293
(64–70) वासवदत्ता विरह–वर्णन 296
(श्लोक–19) वासवदत्ता प्रेमपत्र वर्णन 308
(71) प्रेमपत्र का कन्दर्पकेतु पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव 309
(72) सूर्यास्त–वर्णन 311
(73–74) सन्ध्या–वर्णन 314
(75–77) तिमिर–वर्णन 320
(78–79) रात्रि नक्षत्र–वर्णन 326
(80–82) चन्द्रोदय–वर्णन 332
(83–101) दूतियों का द्व्यर्थक संवाद 340
(102) कन्दर्पकेतु मनःस्थिति वर्णन 363
(103–106) वासवदत्ता निवास भवन–वर्णन 364
(107–111) वासवदत्ता भवन में प्रणय वार्ता–वर्णन 372
(112) कन्दर्पकेतु द्वारा महल की प्रशंसा 380

(113–114) सखी का वासवदत्ता वार्ता–वर्णन 383
(115) नगर निर्गमन–वर्णन 386
(116) श्मशान भूमि–वर्णन 389
(117) विन्ध्याटवी–वर्णन 392
(118–119) प्रातः–वर्णन 398
(120–123) सूर्योदय–वर्णन 402
(124) कन्दर्पकेतु विलाप–वर्णन 410
(125) वनमार्ग–वर्णन 414
(126–127) सागर–वर्णन 419
(128–130) कन्दर्पकेतु मृत्यु–निश्चय–वर्णन 425
(131) आकाशवाणी वर्णन 432
(132) वर्षाकाल–वर्णन 434
(133) इन्द्रधनुष–वर्णन 437
(134) विद्युत्–वर्णन 439
(135) शरद्काल–वर्णन 443
(136) कन्दर्पकेतु वासवदत्ता पुनर्मिलन 447
(137–139) वासवदत्ता वृत्तान्त–वर्णन 448
(140–146) किरातों का युद्ध–वर्णन 451
(147) वासवदत्ता शाप–वर्णन 462
(148) कन्दर्पकेतु का नगर प्रत्यावर्तन 463

(च) परिशिष्ट **465–504**

(i) वासवदत्ता में प्रयुक्त पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष लता, पुष्प, पर्वत, नदी, प्रदेशादि का विवरण 465
(ii) पौराणिक आख्यान व पात्र 471
(iii) सहायक ग्रन्थ सूची 502

•••

।। श्रीः ।।

भूमिका

(i) **गद्यकाव्य का स्वरूप एवं भेद**– संस्कृत काव्यशास्त्र के विद्वान् आचार्यों ने काव्य के प्रथमतः दो भेद किए हैं– **प्रथम,** दृश्य–काव्य, **द्वितीय,** श्रव्यकाव्य।[1] इनमें भी दृश्यकाव्य के अन्तर्गत रूपक तथा उपरूपकों को स्वीकार किया गया है, क्योंकि अभिनय आदि की दृष्टि से ये दोनों ही सहृदयों को आह्लादित करते हैं। नाट्यशास्त्रीय विद्वानों ने रूपकों के दस तथा उपरूपकों के अट्ठारह भेद किए हैं, जिन्हें हम इसप्रकार समझ सकते हैं–
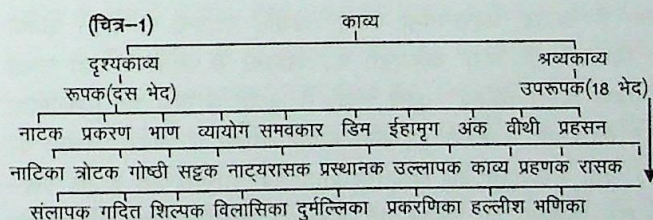
इसके अतिरिक्त श्रव्यकाव्य को इसकी शैलीगत विशेषताओं के आधार पर गद्य, पद्य एवं चम्पू, इन तीन भागों में विभाजित किया गया है, जिसमें पद्यकाव्य छन्दोबद्ध होता है। **जैसे**– रघुवंश, कुमारसम्भवम्। इसके विपरीत गद्यकाव्य में छन्द का कोई बन्धन नहीं होता है, फिर भी इसमें भाषा का आलंकारिक प्रयोग, कल्पनाशीलता तथा रस का पूर्ण परिपाक समुचितरूप से देखा जा सकता है। यही कारण है कि

---

[1]. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। साहित्यदर्पण–6/9 ।

गद्यकाव्य भी सहृदयों को पद्यकाव्य के समान ही आनन्द प्रदान करता है। गद्य तथा पद्य के मिले–जुले रूप को 'चम्पू' कहते हैं।[1]

श्रव्यकाव्य के विस्तार को हम सोदाहरण इसप्रकार समझ सकते हैं।

(चित्र–2)

श्रव्यकाव्य

गद्यकाव्य	पद्यकाव्य	चम्पूकाव्य
(वासवदत्ता, कादम्बरी)	(कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्)	(त्रिविक्रमभट्ट नलचम्पू)
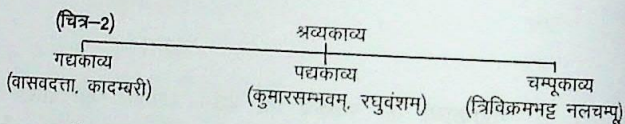
यहाँ हमारा विवेच्य गद्यकाव्य होने से हम आगे इसी विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे। गद्य पद √गद् (व्यक्तायां वाचि) धातु से 'यत्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। √गद्+यत्=गद्य–गद्य, क्योंकि यत् प्रत्यय का 'य' शेष बचता है। 'त्' का 'हलन्त्यम्' सूत्र से 'इत्' संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में गद्यकाव्य का लक्षण इसप्रकार किया है–**'अपादः पदसन्तानो गद्यम्'**[2] अर्थात् पद्यबन्ध से रहित वाक्यों का नियोजन ही 'गद्य' कहलाता है। पद्यबन्ध से अभिप्राय यहाँ छन्दों से ग्रहण करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, काव्य में जहाँ पर गण–मात्रा आदि का ध्यान न रखते हुए सीधे–सपाट वाक्यों में काव्य–संरचना की जाए, वही गद्यकाव्य की श्रेणी में आता है।[3] उल्लेखनीय है कि रस–परिपाक, कल्पना की उड़ान एवं अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग, इस काव्य में भी पद्य के समान ही किया जाता है।

जैसे– बाणभट्ट की कादम्बरी तथा हमारा विवेच्य 'वासवदत्ता' गद्यकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं।

इसके अलावा भाषा तथा शैलीगत आधार पर गद्यकाव्य के विद्वानों ने चार भेद किए हैं– (क) वैदिक गद्य (ख) पौराणिक गद्य (ग)

---

[1]. गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते। साहित्यदर्पण–6/336 ।

[2]. काव्यादर्श– दण्डी, 1/23।

[3]. वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्। साहित्यदर्पण ।

शास्त्रीय गद्य और (घ) साहित्यिक गद्य। इनमें भी साहित्यिक गद्य कथा और आख्यायिका भेद से पुनः दो प्रकार का होता है, जिसे हम संक्षेप में इसप्रकार समझ सकते हैं–
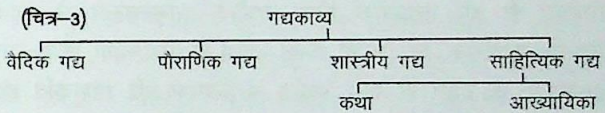
ध्यातव्य है कि गद्यकाव्य के 'कथा' नामक भेद में कवि कल्पना पर आधारित कथावस्तु को ग्रहण करता है। **जैसे–** हमारी विवेच्य वासवदत्ता की कथावस्तु पूर्णतया कवि की कल्पना पर आधारित रही है, जबकि 'आख्यायिका' नामक भेद की कथावस्तु ऐतिहासिक होती है। **जैसे–** बाणभट्ट का हर्षचरित। इसप्रकार इन दोनों का भेदक तत्त्व कल्पना और इतिहास पर आधारित कथावस्तु ही होती हैं, किन्तु इन दोनों ही काव्यों में भाव, भाषा एवं साहित्यिकता समान ही होते हैं।

उल्लेखनीय है कि आचार्य विश्वनाथ ने समास के स्वरूप को आधार बनाकर कथा और आख्यायिका इन दोनों भेदों के फिर से चार चार भेद किए हैं– (क) **मुक्तक**–पूर्णतया समासरहित (ख) **उत्कलिका**–प्रायः दीर्घ समासों के बाहुल्य से युक्त (ग) **चूर्णक**– छोटे समासों से युक्त तथा (घ) **वृत्तसन्धि**– कहीं–कहीं छन्दों की प्रतीति से युक्त काव्य। इस विभाजन को हम संक्षेप में इसप्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–
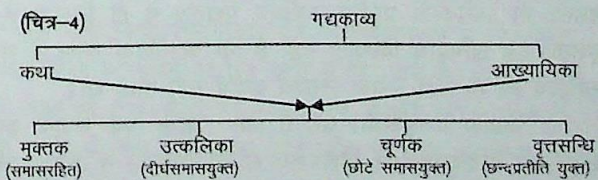
(ii) गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास– यदि गद्यकाव्य के उद्भव एवं विकास पर सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें, तो कहा जा सकता है कि सृष्टि के आरम्भ में जब भी मानव की भाषा का विकास हुआ होगा, तो निश्चय ही वह गद्यात्मक होगा, क्योंकि सामान्यरूप से व्यक्ति का चिन्तन गद्यात्मक रूप में ही देखा जाता है, पद्यात्मक नहीं। संसार में इसप्रकार के बहुत ही कम अर्थात् अंगुलिगण्य ही आशुकवि होंगे, जो पद्यरूप में ही चिन्तन करें तथा उसी रूप में उसकी अभिव्यक्ति भी हो। इसीलिए विद्वानों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि–

'भले ही विश्वसाहित्य का आद्यग्रन्थ ऋग्वेद पद्यबन्ध हो, किन्तु ऋग्वैदिक काल में भी बोलचाल की भाषा गद्य ही रही होगी। यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वान् ओल्डेनवर्ग ने ऋग्वेद के संवादात्मक सूक्तों के मध्य में गद्य की सम्भावना को स्वीकार किया है, जिसे बाद में पद्य रूप में ही परिवर्तित कर दिया गया।

किन्तु इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि विश्व की प्रत्येक भाषा का प्राचीनतम साहित्य प्रायः पद्यरूप में ही उपलब्ध है, जिसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि काव्य की लयात्मकता एवं संगीतात्मकता किसी भी व्यक्ति के लिए उसे स्मरण करने में सहायिका होती है।

इसीलिए प्राचीन समय में जिस भी विषय को स्मरण करने का अनुभव किया गया, उसे पद्यात्मक रूप दे दिया गया, क्योंकि मुद्रणादि के साधनों का उस समय पूर्णतया अभाव था। यही कारण है कि हमारा भी अधिकांश प्राचीन साहित्य पद्यरूप में ही मिलता है, किन्तु इसका यह अभिप्राय बिल्कुल नहीं है कि ऋग्वैदिक काल में गद्यात्मक साहित्य था ही नहीं अथवा उसका प्रयोग नहीं होता था।

जबकि वस्तुस्थिति यह है कि– 'ऋक्' एवं 'यजुष्' इन दोनों शब्दों का वैदिककाल में विशेषरूप से संहिताकाल में क्रमशः पद्य तथा गद्य के लिए ही प्रयोग किया जाता था। यही कारण है कि मीमांसा–कार ने 'पाद' की व्यवस्था से युक्त रचना को 'ऋक्' कहकर ही

परिभाषित किया है।[1] साथ ही, उसी स्थल पर छन्दोविधान से रहित वैदिक मन्त्रों को 'यजुष्' बताया।[2]

यह बात दूसरी है कि वैदिककाल में ऋषि भले ही गद्य में दैनिक व्यवहार को सम्पन्न करते रहे हों, किन्तु प्रामाणिकरूप से वैदिक गद्य का प्राचीनतम रूप हमें शुक्ल तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक और मैत्रायणी संहिताओं में ही मिलता है, जो अधिकांश रूप से गद्यात्मक ही हैं। इसीप्रकार शुक्ल यजुर्वेद का चौबीसवाँ और उनता–लीसवाँ ये दोनों अध्याय तो पूरी तरह गद्यात्मक ही रहे हैं, जबकि अथर्ववेद में भी गद्यांश की ही प्रचुरता देखने को मिलती है।

इसके बाद ब्राह्मण ग्रन्थों में से ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय तथा गोपथ ब्राह्मण, वैदिक गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। पुनः ऐतरेय और तैत्तिरीय आरण्यक तथा बृहदारण्यक, छान्दोग्य, माण्डूक्य, केन, प्रश्न, तैत्तिरीय, ऐतरेय, कौषीतकि, मैत्रायणी एवं मुक्ति–कोपनिषदों में भी पर्याप्त मात्रा में वैदिक गद्य के दर्शन होते हैं।

इसके भी आगे चलने पर सूत्र–ग्रन्थों व प्रातिशाख्य ग्रन्थों में भी हमें वैदिक गद्य की उपलब्धि होती है, किन्तु वह गद्य, लौकिक संस्कृत साहित्य के गद्य के समान आलंकारिक तथा समासयुक्त प्रयुक्त नहीं हुआ है। गद्यकाव्य की उत्पत्ति के विषय में प्रसिद्ध संस्कृत एवं वेद के विद्वान् डॉ. कपिलदेव द्विवेदी के विचार अत्यन्त युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं–

'वास्तविकता यह है कि वैदिककाल से ही जिसप्रकार वैदिक संस्कृत के साथ प्राकृतभाषा समानान्तर एवं अविच्छिन्नरूप में विकसित होती रही और आज भी अपने स्वतन्त्र रूपों में विद्यमान है। उसीप्रकार पद्यशैली के साथ ही गद्य–शैली भी समानान्तर चलती रही। पद्यशैली में जब तथा जिस भी रूप में विकास और परिवर्तन हुए, तदनुरूप ही

---

[1]. तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। पूर्वमीमांसा–2/1/35 ।

[2]. शेषे यजुः शब्दः। पूर्वमीमांसा–2/1/37 ।

गद्य शैली में भी समानान्तर विकास तथा परिवर्तन परिलक्षित हुए। लेखनसामग्री के अभाव में स्मरण–शक्ति को बोझिल न बनाने के लिए एक ओर धार्मिक कृत्यों के लिए पद्यशैली अपनायी गयी, तो दूसरी ओर शास्त्रीय, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विषयों के लिए गद्य शैली को स्वीकार किया गया।इस गद्यशैली में भी सूत्रात्मक शैली को प्राथमिकता प्रदान की गयी।[1]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर गद्यकाव्य का उद्भव वैदिककाल विशेषतः संहिताकाल से ही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। दूसरे शब्दों में, गद्यकाव्य के अस्तित्व को भी यदि पद्य के साथ ही स्वीकार करें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इससे ग्रीक गद्य रचनाओं से भारतीय गद्य की उत्पत्ति विषयक पीटर्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों के मत का खण्डन स्वतः ही हो जाता है।

गद्यकाव्य की उत्पत्ति के प्रसंग में ही हमने वैदिकगद्य के विकास की भी चर्चा की। अब हम वैदिक सूत्रग्रन्थों की परम्परा में ही शास्त्रीय–गद्य के विषय में चिन्तन प्रस्तुत करेंगे। भारतीय दर्शन न्याय, वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा तथा वेदान्त, आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी, आचार्य यास्क विरचित निरुक्त, जयन्त भट्ट की न्याय–मंजरी, शंकराचार्य का शारीरकभाष्य और शबरस्वामी का मीमांसाभाष्य शास्त्रीय गद्य के सुन्दर उदाहरण हैं। सरलता एवं सरसता इस गद्य की प्रमुख विशेषता रही है। यही कारण है कि ये सभी ग्रन्थ अत्यधिक लोकप्रिय हुए।

इसके बाद हमें पुराणों में भी गद्य के दर्शन होते हैं। यद्यपि पुराणों का लेखन मुख्यरूप से पद्यरूप में ही हुआ है, फिर भी महाभारत, भागवत तथा विष्णुपुराण में कुछ स्थलों पर गद्य भी प्रयुक्त हुआ है। सरलता तथा सरसता प्रसादगुण सम्पन्न पौराणिक गद्य की

---

[1]. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक–संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण। पृष्ठ–455।

प्रमुख विशेषता रही है। इसे हम वैदिक तथा लौकिक गद्य के बीच की कड़ी भी कह सकते हैं।

तत्पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत गद्यकाव्य का प्रयोग साहित्यिक गद्य को जन्म देने वाला रहा है, जिसका विकास 'कथा' तथा 'आख्यायिका' इन दो रूपों में हुआ, जिसका हमने पूर्व में उल्लेख किया है।

चतुर्थ शती ई.पू. स्थित वार्तिककार कात्यायन (350 ई.पू.) ने इन दोनों ही भेदों का उल्लेख किया है।[1] इसीप्रकार महर्षि पतंजलि ने भी तीन आख्यायिका ग्रन्थों वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी का कथन किया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य कात्यायन तथा महाभाष्यकार पतंजलि से पूर्व में ही गद्यकाव्य के भेद 'आख्यायिका' का अस्तित्व था।

इसके बाद ग्यारहवीं शती में स्थित भोज ने 'शृङ्गारप्रकाश' में वररुचि के 'चारुमती' नामक आख्यायिका ग्रन्थ से एक श्लोक उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त महाकवि बाण ने गुणाढ्यकृत बृहत्कथा का उल्लेख किया है। गुणाढ्य का समय 78 ई. के लगभग माना जाता है।[2] यहीं पर उन्होंने भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्य की भी प्रशंसा की है।[3]

इसके पश्चात् गिरिनार के शिलालेखों तथा समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में भी परिनिष्ठित संस्कृत गद्य के दर्शन होते हैं। इसमें लम्बे समासों तथा अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग पर्याप्तरूप से किया गया है, जबकि प्रयाग–स्तम्भ पर खोदी गयी हरिषेण–प्रशस्ति में महाकवि बाण भट्ट की ही समस्त शैली अपने पूर्वरूप में स्वीकार की जा सकती है,

---

[1]. आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च। अष्टाध्यायी–4/2/60 वार्तिक।

[2]. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक– संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण। पृष्ठ–460।

[3]. भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते। हर्षचरितम्, बाण, भूमिका, श्लोक–12 ।

क्योंकि यह पैंतीस पंक्तियों के एक ही वाक्य का प्रयोग करते हुए लिखी गयी है।

इसीप्रकार बाद में हमारे विवेच्य महाकवि सुबन्धु की वासवदत्ता, तथा बाण का हर्षचरित तथा कादम्बरी, दण्डी का दशकुमार चरित, संस्कृत गद्यकाव्य जगत् के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं, क्योंकि इन सभी में संस्कृत गद्यकाव्य के अलंकृत, परिष्कृत, श्लेष प्रधान आलंकारिक शैली के दर्शन, साहित्य–रसिकों को सहज ही हो जाते हैं। इनमें भी महाकवि बाणभट्ट की कादम्बरी भाव, भाषा, कल्पना आदि सभी दृष्टियों से सर्वोपरि रही है, जो गद्यकाव्य का 'कथा' नामक भेद है, क्योंकि इसकी कथावस्तु कवि की कल्पना पर आधारित है। महाकवि बाण की काव्य शैली की प्रशंसा विद्वानों ने 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' कहकर मुक्तकण्ठ से की है।

महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट तथा दण्डी के बाद के गद्यकारों में धनपाल की तिलक–मंजरी (1000 ई.), वादीभसिंह की गद्य–चिन्तामणि (1000 ई.), वामनभट्ट का वेमभूपाल–चरित (1500 ई.), अम्बिकादत्त व्यास का शिवराज–विजय, विश्वेश्वर पाण्डेय की मन्दार–मंजरी, हृषीकेश भट्टाचार्य की प्रबन्ध–मंजरी और पं. क्षमाराव की कथा–मुक्तावली, डॉ. रामशरण त्रिपाठी की कौमुदी कथा–कल्लोलिनी आदि प्रमुखरूप से उल्लेखनीय हैं, जिनके विषय में हम आगे किंचिद् विस्तार से चिन्तन प्रस्तुत करेंगे, किन्तु इससे पूर्व गद्यकाव्य के विकासक्रम को दृष्टिगत रखते हुए गद्य के विविधरूपों को सोदाहरण समझना उचित होगा।

(iii) **संस्कृत गद्य के विविध रूपों का परिचय**–जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि संस्कृत गद्य को आरम्भ से लेकर वर्तमान तक प्रमुखरूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–**प्रथम**, वैदिक गद्य तथा **द्वितीय**, लौकिक गद्य। इनमें भी वैदिक गद्य हमें संहिता ग्रन्थों, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग तथा सूत्रसाहित्य

में उपलब्ध होता है, जो प्रायः बोलचाल की भाषा में ही निबद्ध है। इसकी विशेषता च, वा, ह, खलु एवं किल आदि भावबोधक अव्यय पदों अर्थात् निपातों की बहुलता कही जा सकती है। इसमें शैली समास रहित तथा सरल रही है। छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग किया गया है तथा यहाँ आचार्य पाणिनि के नियमों का पूर्णरूप से पालन नहीं हुआ है, जिसे विद्वानों ने 'आर्ष' प्रयोग कहकर उद्धृत किया है। इसी से इस गद्य की प्राचीनता भी सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त इस गद्य की विशेषता यह भी है कि सरलता की दृष्टि से यह उत्तरोत्तर लौकिक संस्कृत गद्य के निकट होता गया है। यही कारण है कि हमें संहिता–ग्रन्थों की अपेक्षा ब्राह्मण–ग्रन्थों एवं ब्राह्मण–ग्रन्थों की अपेक्षा आरण्यकों और इन दोनों की तुलना में उपनिषदों का गद्य अधिक सरल प्रतीत होता है। उल्लेखनीय यह भी है कि इस गद्य में उपमा, रूपक आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी हुआ है। **जैसे–**

'हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजा पुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूव। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ।' (ऐतरेय ब्राह्मण– 30/1)

द्वितीय, लौकिक गद्य को शैली की दृष्टि से हम मुख्यरूप से चार भागों में बाँट सकते हैं–

(क) **दार्शनिक गद्य–** भारतीय छः दर्शनों के सूत्र–ग्रन्थों पर लिखे गए भाष्यों में हमें इस गद्य के दर्शन होते हैं। दार्शनिक गम्भीरता लिए हुए भी यह स्वच्छ तथा स्पष्ट कहा जा सकता है। मीमांसा–सूत्रों पर शबरस्वामी का भाष्य, न्यायसूत्रों पर आचार्य वात्स्यायन का भाष्य, वेदान्तसूत्रों पर शांकरभाष्य एवं योगसूत्रों पर व्यासभाष्य, ये सभी दार्शनिक गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। इन सभी में भी सर्वश्रेष्ठ गद्य शांकरभाष्यों में उपलब्ध होता है, जहाँ विषय की गम्भीरता में भाषा की स्पष्टता भी दृष्टिगोचर होती है। इस गद्य में

वाक्य सारगर्भित, प्रौढ़ तथा प्रांजलरूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा शैली यहाँ विवेचनात्मक और तर्कयुक्त है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'सर्वे वेदा यत्पदं पदनीयं गमनीयमविभागेनामनन्ति प्रतिपादयन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति यत्प्राप्त्यर्थानीत्यर्थः। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं गुरुकुलवासलक्षणमन्यद्वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थं चरन्ति तत्ते तुभ्यं पदं यज्ज्ञातुम् इच्छसि संग्रहेण संक्षेपतो ब्रवीमि।(कठोपनिषद्–शांकरभाष्य–1/2/15)

(ख) **शास्त्रीय गद्य–** इस गद्य का प्रयोग व्याकरण, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, आयुर्वेद आदि मूलग्रन्थों की व्याख्या करते हुए किया गया है। **जैसे–** महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में तथा अलंकार ग्रन्थों में भी हमें इस गद्य के दर्शन होते हैं। यहाँ ग्रन्थकार का ध्यान विशेषरूप से अपने विषय को सरलतम रूप से पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने की ओर रहा है। अलंकारों का प्रयोग यहाँ मुख्य उद्देश्य नहीं है। यही कारण है कि इस गद्य में लालित्य कम तथा भावगाम्भीर्य अधिक दिखायी देता है, किन्तु अभिप्राय को समझाने की दृष्टि से उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग यहाँ सहज ही देख सकते हैं। शैली यहाँ पर संवादात्मक रही है। महाभाष्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

'ये पुनः कार्यभावा निवृत्तो तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह– कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामीति।' (महाभाष्य, पस्पशाह्निक)

(ग) **पौराणिक गद्य–** यद्यपि अधिकांश पुराणों में पद्यों का ही प्रयोग हुआ है, किन्तु विष्णु तथा श्रीमदभागवत महापुराण आदि कुछ पुराणों में हमें गद्य के भी दर्शन होते हैं, जिसे वैदिक तथा लौकिक गद्य का मिश्रितरूप कहा जा सकता है। यह दूसरे वैदिक गद्य की अपेक्षा अधिक सरल तथा प्रसादगुण युक्त और आलंकारिक रहा है। यही कारण है कि इसे लौकिक गद्य के अपेक्षाकृत अधिक निकट कहा

जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इसे हम वस्तुतः वैदिक गद्य तथा लौकिक गद्य के बीच की कड़ी के रूप में देख सकते हैं। **जैसे–**

'एवं विधा नरका यमालये सन्ति, शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभय शेषाभ्यां निविशन्ति।' (श्रीमद्भागवत–5/26/27)

(घ) **साहित्यिक गद्य–** इसका प्रयोग सभी संस्कृत गद्यकाव्यों, नीतिकथाओं, पशुकथाओं, संस्कृत नाटकों तथा चम्पूकाव्यों में हुआ है। यहाँ भी इसके दो रूप देखे जा सकते हैं। **प्रथम,** अलंकृत गद्य। **द्वितीय,** अनलंकृत गद्य।

अलंकारयुक्त गद्य की भाषा जटिल, समासयुक्त प्रयुक्त हुई है। इनमें अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, परिसंख्या आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग प्रयासपूर्वक किया गया है। यद्यपि यहाँ भी इसे अल्पसमास तथा समासरहित भी देखा जा सकता है तथापि इसमें गद्यकार का अधिक झुकाव आलंकारिक भाषा के प्रति ही रहा है। सुबन्धु की वासवदत्ता, बाण की कादम्बरी तथा दण्डी का दशकुमार–चरित इस गद्य के उत्कृष्ट उदाहरणरूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

जबकि **द्वितीय,** अलंकाररहित गद्य में भाषा का स्वरूप सरल, प्रवाहपूर्ण तथा प्रसादगुण युक्त रहा है। इस गद्य में वस्तुतः बोलचाल की साधारण भाषा का प्रयोग हुआ है। यहाँ अलंकारों को प्रयत्नपूर्वक नियोजित न करके उनका सहज तथा स्वाभाविक प्रयोग किया गया है। भावों का सरलतमरूप में संप्रेषण ही इस गद्य की प्रमुख विशेषता है। संस्कृत नाटकों, चम्पूग्रन्थों तथा पशुपक्षियों पर आधारित नीतिग्रन्थों में इसे सहज ही देख सकते हैं। पंचतन्त्र तथा हितोपदेश के गद्य इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं, जबकि महाकवि कालिदास के गद्य में हमें लालित्य के दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृत गद्य का उत्तरोत्तर विकास वस्तुतः कठिनता से सरलता की ओर हुआ है। इस सम्पूर्ण अभिप्राय को हम संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–5)
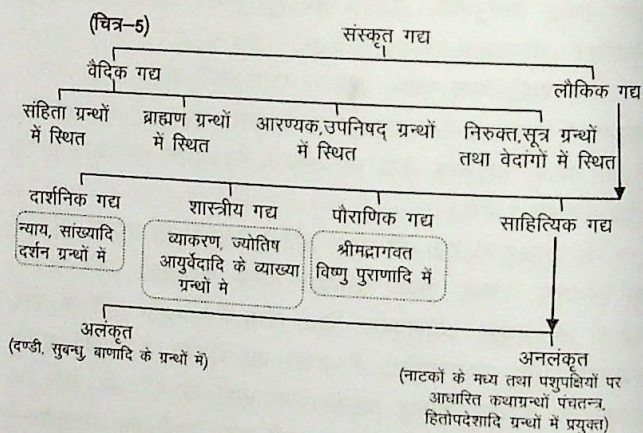
(iv) **प्रमुख संस्कृत गद्यकार–** जैसा कि हम पूर्व में भी उल्लेख कर चुके हैं कि अलंकृत संस्कृत गद्यकाव्य के रचनाकारों में हमारे विवेच्य महाकवि सुबन्धु, बाण एवं दण्डी का स्थान विशेषरूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इन तीनों महाकवियों के ग्रन्थ ही प्रौढ़ गद्य काव्यों के उदाहरणरूप में हमें सर्वप्रथम उपलब्ध होते हैं। इसलिए इन्हें प्राचीन गद्यकारों के रूप में भी माना गया है, इनका संक्षेप में विवरण इसप्रकार है–

(1) **महाकवि सुबन्धु–** हमारे विवेच्य महाकवि सुबन्धु के विषय में हम विस्तार से आगे विचार करेंगे। पुनरपि यहाँ इतना ही कथ्य है कि इनका अवतरण बाण तथा दण्डी दोनों से ही पूर्व 600 ई. के लगभग हुआ, इनके माता, पिता, वंश आदि के सम्बन्ध में कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों ने इनकी शैली के आधार पर

इन्हें काश्मीरी माना है।[1] अन्य कुछ इन्हें मालव निवासी मानते हैं। इनकी एक ही कृति 'वासवदत्ता' मिलती है, जिसमें कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता की प्रेमकथा को निबद्ध किया गया है। कथानक अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी इसमें वर्णित नायक–नायिका के रूप–सौन्दर्य के सूक्ष्म–वर्णन वैशिष्ट्य, अलंकारकौशल तथा चित्रकाव्य संरचना आदि विशेषताओं के लिए संस्कृत साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान रहा है।

ये मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि दर्शनों में पारंगत थे, जो इस काव्य में हमें पद–पद पर परिलक्षित होता है। इन्होंने यहाँ समास प्रधान गौड़ी शैली को स्वीकार किया है, जिसमें अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक तथा विरोधाभास अलंकारों का प्राचुर्य है। यद्यपि इस काव्य में हमें कुछ स्थलों पर वैदर्भी, पांचाली के भी दर्शन होते हैं, जिसके विषय में हम आगे विस्तार से उल्लेख करेंगे।

(2) **महाकवि बाण–** हर्षचरित के आधार पर विद्वानों ने इन्हें सप्तम शती के पूर्वार्द्ध में स्थित माना है। कादम्बरी के आरम्भ में प्रयुक्त कुछ श्लोकों (श्लोक संख्या 10 से 20 तक) में इन्होंने अपना परिचय प्रस्तुत किया है। इसीलिए हम कह सकते हैं कि महाकवि बाण वस्तुतः संस्कृत साहित्य के उन लब्धप्रतिष्ठ कवियों में हैं, जिनका विस्तृत जीवन–परिचय हमें उन्हीं के शब्दों में उपलब्ध है। तदनुसार–

बाण का जन्म वात्स्यायन वंश में कुबेर नामक वैदिक कर्म–काण्ड के प्रकाण्ड पण्डित के घर में हुआ। इनके पूर्वज 'द्रोण' नदी के तट पर स्थित 'प्रीतिकूट' नामक नगर में रहते थे। कुबेर के चार पुत्रों में से सबसे छोटे 'पाशुपत' के पुत्र 'अर्थपति' की ग्यारह सन्तानों में 'चित्रभानु' नामक पुत्र ही बाणभट्ट के पिता थे। इनकी माता का नाम राजदेवी था। बाणभट्ट का एक ही पुत्र था– भूषण भट्ट, कुछ स्थलों पर यही पुलिन्दभट्ट के नाम से भी मिलता है, जबकि कुछ विद्वान् इन्हें भिन्न मानने के पक्षधर रहे हैं।

---

[1] .संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी– पृष्ठ, 482।

बाल्यकाल में ही इनकी माता का देहावसान हो गया। परिणाम स्वरूप पिता की अकूत सम्पत्ति तथा सुयोग्य अभिभावक के अभाव में बाणभट्ट उच्छ्रंखल हो गए और अपनी विशाल मित्रमण्डली के साथ विभिन्न देशों के भ्रमण के लिए निकल पड़े और अपने स्वच्छन्द यौवन के लिए महापुरुषों के उपहास के भाजन भी हुए।

भ्रमण से लौटने पर विवाह के उपरान्त बाणभट्ट हर्षदेव के भाई कृष्णदेव की कृपा से श्रीहर्षवर्धन के सम्पर्क में आए, जिन्होंने इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अपना सभापण्डित नियुक्त किया। इसीलिए इनका अन्तिम समय शान्तिपर्वूक साहित्यिक क्रियाओं में ही व्यतीत हुआ। इसी मध्य इन्होंने हर्षचरित तथा कादम्बरी, इन दो प्रसिद्ध गद्यकाव्यों का प्रणयन किया, किन्तु कादम्बरी के पूर्ण होने से पहले ही इनका स्वर्गवास हो गया और कादम्बरी के अधूरे भाग को इनके पुत्र भूषणभट्ट ने पूर्ण किया।

जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि महाकवि बाणभट्ट की दो रचनाएँ हर्षचरित तथा कादम्बरी सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार की हैं, जिनका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) **हर्षचरित–** यह बाण की प्रथम रचना है। ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित होने से इसे 'आख्यायिका' भेद के अन्तर्गत माना गया है। इसमें कुल आठ उच्छ्वासों का प्रयोग हुआ है, जिसमें आठवाँ उच्छ्वास अधूरा है। पहले दो उच्छ्वासों में कवि ने अपना जीवनवृत्त तथा वंशपरिचय प्रस्तुत किया है तथा अग्रिम छः उच्छ्वासों में सम्राट् हर्षवर्धन के पूर्वजों का वर्णन करते हुए, उनके जन्म से लेकर उनकी बहन राज्यश्री की प्राप्ति तक की कथा का उल्लेख किया गया है।

इसकी भूमिका में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों व्यास, सुबन्धु, भट्टारक हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, गुणाढ्य तथा आढ्यराज आदि का कथन किया है। महाकवि बाण की प्रथम रचना

होने के कारण इसमें कादम्बरी के समान रस–परिपाक, भावाभिव्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती है, फिर भी इसमें कवि की बहुज्ञता, सूक्ष्म–दृष्टि, वर्णन–शक्ति, शास्त्रीय–पाण्डित्य तथा विविध विषयों के तलस्पर्शी ज्ञान के दर्शन पाठक को सहज ही हो जाते हैं।

(ख) **कादम्बरी**– यह महाकवि की सर्वोत्तम तथा प्रौढ़–पाण्डित्य पूर्ण अन्तिम संरचना है। कथावस्तु काल्पनिक होने से इसे गद्यकाव्य का 'कथा' भेद माना गया है। इसमें चन्द्रपीड़, वैशम्पायन एवं कादम्बरी, महाश्वेता के तीन जन्मों की कथा वर्णित है। कथा के अन्त में इन दोनों के मिलन होने से इसे सुखान्त काव्य की श्रेणी में रखा गया है। इसका गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' की कथावस्तु के साथ किंचित् साम्य परिलक्षित होता है। यह काव्य पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो खण्डों में विभाजित किया गया है। इसका उत्तरार्द्ध बाण के पुत्र भूषणभट्ट की रचना माना जाता है।

इसके आरम्भ के बीस श्लोकों में कवि ने देवस्तुति, गुरुवन्दना तथा खलनिन्दा करते हुए अपने वंश का उल्लेख किया है तथा शूद्रक के वर्णन से कथा का आरम्भ होता है। एक चण्डाल कन्या वैशम्पायन नामक तोते को लेकर शूद्रक की राजसभा में आती है, जहाँ तोता मनुष्य की वाणी में अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाता है। तदनुसार– राजा शूद्रक ही पूर्व जन्म में चन्द्रापीड़ था तथा उससे भी पहले जन्म में वही श्वेतकेतु का पुत्र पुण्डरीक था। इसके विपरीत महा–श्वेता तथा कादम्बरी के एक ही जन्म की कथा को यहाँ पर ग्रहण किया गया है।

इसकी प्रधान नायिका कादम्बरी है, जिसके नाम के आधार पर ही इस काव्य का नामकरण किया गया है। इसकी कथा का मुख्य केन्द्र 'सात्त्विक प्रेम' रहा है, जो हमारे विवेच्य काव्य का भी है, जिसके विभिन्न चरणों की यहाँ मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। महाकवि ने इसमें

पद्यों से भी अधिक चमत्कार प्रदर्शन करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

पांचाली रीति में निबद्ध इसे विद्वानों द्वारा भाव, भाषा, कल्पना, रीति तथा अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से सम्पूर्ण संस्कृत गद्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति माना गया है। इसमें अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास आदि अलंकारों की छटा बरबस ही सहृदय के मन को आकर्षित कर लेती है। इसी कृति का अत्यन्त लघु अंश 'शुकनासोपदेश' विद्वानों द्वारा अत्यधिक प्रशंसित तथा चर्चित रहा है।[1]

(ग)**चण्डीशतक–** अधिकांश विद्वान् इस कृति को भी बाण ही रचना मानते हैं। इसमें महिषासुर मर्दिनी दुर्गा की स्तुति में शार्दूलवि-क्रीडित छन्द में एक सौ दो श्लोकों की संरचना की गयी है। मान्यता है कि बाण और मयूर कवि परस्पर सम्बन्धी थे। एक घटना विशेष के कारण दोनों ने एक दूसरे को क्रोध के वशीभूत होकर कोढ़ी होने का शाप दे दिया, जिससे मुक्ति पाने के लिए बाद में मयूर कवि ने सूर्य शतक की तथा बाण ने चण्डीशतक की रचना की।

इसका भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों ही दुर्बल हैं। इसके अलावा मुकुटताडितक, पार्वती–परिणय तथा गद्य–कादम्बरी इन तीन ग्रन्थों को भी कुछ विद्वान् बाण की ही रचना मानते हैं, किन्तु भाषा, भाव एवं कल्पना आदि की दृष्टि से ये उनकी द्वारा लिखी हुई प्रतीत नहीं होती हैं। इसलिए इनके विषय में यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

(3) **महाकवि दण्डी–** ईसा की सप्तम शताब्दी के मध्य के लगभग स्थित दण्डी को विद्वानों ने अवन्तिसुन्दरी कथा के आधार पर

---

1. द्रष्टव्य– लेखककृत, शुकनासोपदेश, प्रकाशकः धर्मनीराजना प्रकाशन, दिल्ली, 1998।

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता 'भारवि' का पौत्र स्वीकार किया है। भारवि का दूसरा नाम 'दामोदर' भी था, उनके पुत्र 'मनोरथ' के चार पुत्रों में सबसे छोटे वीरदत्त के पुत्र ही दण्डी थे। इनकी माता का नाम गौरी था। दशकुमारचरित के वर्णनों के आधार पर इन्हें दाक्षिणात्य तथा विदर्भ देश का निवासी माना गया है।

महाकवि दण्डी की तीन रचनाएँ मानी गयी हैं– **(अ)** काव्यादर्श **(ब)** अवन्तिसुन्दरी कथा **(स)** दशकुमार चरित। इनमें काव्यादर्श उत्कृष्ट कोटि का अलंकार–शास्त्रीय ग्रन्थ है, तो 'दशकुमारचरित' श्रेष्ठ गद्य–काव्य माना गया है। इनमें 'अवन्तिसुन्दरी कथा' को विद्वानों ने गद्य–काव्य के आख्यायिका भेद में स्वीकार किया है।

दशकुमारचरित सम्पूर्ण संस्कृत काव्य की अनूठी कृति है। अपने वैशिष्ट्य के कारण इसे विद्वानों द्वारा 'गद्यकाव्यत्रयी' के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। इसमें कवि ने दस राजकुमारों के देश–देशान्तरों में भ्रमण, उनके विचित्र अनुभव तथा दुःसाहसपूर्ण कार्यों को अत्यधिक सरल भाषा में वर्णन किया है। वर्तमान समय में उपलब्ध दस कुमारचरित तीन भागों में विभाजित है–

(अ) पूर्वपीठिका (आ) दशकुमारचरित (इ) उत्तरपीठिका।

इसमें दशकुमारचरित अंश को ही मूलरूप में दण्डी द्वारा विरचित माना गया है, जो आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। इसमें पुष्पपुरी के नरेश राजहंस के पुत्र तथा मन्त्रियों के पुत्रों की कथा को निबद्ध किया गया है। बड़े होने पर ये सभी देशाटन के लिए प्रस्थान करते हैं तथा किन्हीं कारणों से एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं, जहाँ वे अत्यधिक कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। उसके बाद लौटकर आने पर ये सभी अपनी–अपनी कहानी एक दूसरे को सुनाते हैं। इसी कथा को दशकुमारचरित नाप दिया गया है।

यहाँ छल, कपट, हिंसा, परस्त्री हरण, अवैध प्रेम आदि का निर्बाध चित्रण करते हुए दम्भियों, तपस्वियों, कपटी ब्राह्मणों, धूर्त

कुट्टिनियों, व्यभिचारिणी स्त्रियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। यही कारण है कि इसे धूर्तों का 'रोमांस' भी कहते हैं। महाकवि दण्डी वस्तुतः यथार्थवादी थे, इसीलिए उन्होंने अपने समाज का वास्तविक चित्र इस गद्यकाव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिसमें पात्रों का चयन तथा उनका चरित्र–चित्रण हमें यथार्थवादी शैली में ही दृष्टि–गोचर होता है। यही कारण है कि इस काव्य के पात्र हमें समाज में चलते–फिरते सजीवरूप में प्रतीत होते हैं।

छोटे–छोटे वाक्यों तथा व्यावहारिक, सुस्पष्ट पद–योजना के कारण इन्हें **वैदर्भी शैली का कवि** भी माना गया है। यमक तथा अनुप्रास दण्डी के प्रिय अलंकार रहे हैं, जिनका इन्होंने अत्यन्त ही स्वाभाविक रूप में प्रयोग किया है। **जैसे–**

'अयुग्मशरः शरशयने शाययिष्यति', 'असत्येनास्यं नास्य संसृज्यते'

महाकवि दण्डी वस्तुतः अपने 'पदलालित्य' के कारण विद्वानों में अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इसीकारण **'दण्डिनः पदलालित्यम्'** उक्ति का प्रचलन विद्वानों में आज भी देखा जा सकता है। इसी काव्य–वैशिष्ट्य के कारण विद्वानों ने इनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है। किसी कवि का तो मानना है कि कवि तो केवल दण्डी ही हैं, कवि तो केवल दण्डी ही हैं, अन्य कोई नहीं, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है–

'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।'

(4) **विश्वेश्वर पाण्डेय–** अल्मोड़ा जिले के पाटिया ग्राम के निवासी भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर पाण्डेय था। कहते हैं कि इनका जन्म काशी के विश्वनाथ बाबा की कृपा से हुआ था, इसलिए इनका नाम 'विश्वेश्वर' रखा गया। बाल्यकाल से ही प्रखर बुद्धि इन्होंने व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य विषयक अनेक ग्रन्थों का लेखन किया, जिनमें नौ ग्रन्थ मुद्रित तथा दूसरे अप्रकाशित हैं।

इनके ग्रन्थों में वैयाकरण सिद्धान्त सुधानिधि, अलंकार कौस्तुभ, रसचन्द्रिका, आर्यासप्तशती, अलंकार प्रदीप, अलंकार मुक्तावली, कवीन्द्र करणाभरण, रोमावलीशतक, मन्दार–मंजरी प्रमुख हैं। इनका समय दसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। उक्त ग्रन्थों में हम यहाँ केवल मन्दारमंजरी नामक गद्यकाव्य का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

मन्दारमंजरी– महाकवि बाण के ग्रन्थों के समान ही यह कृति अपूर्णरूप में मिलती है। इसके पूर्वभाग का प्रकाशन 1925 ई. में पर्वतीय प्रकाशन मण्डल, वाराणसी ने किया है। कहते हैं कि इसका उत्तर भाग इनके शिष्य ने पूर्ण किया, जो अभी तक अप्रकाशित है। इसमें पुष्पपुर के राजा राजशेखर तथा मलयवती के पुत्र चित्रभानु तथा विद्याधर चित्रकेतु तथा चन्द्रलेखा की पुत्री मन्दारमंजरी के प्रणय तथा परिणय को निबद्ध किया गया है।

(5) **पं. अम्बिकादत्त व्यास–** आधुनिक संस्कृत गद्यकार के रूप में पं. अम्बिकादत्त व्यास का नाम सहज ही लिया जा सकता है। इनका स्थितिकाल 1858 ई. से लेकर 1900 ई. रहा है। ये मूलतः जयुपर राजस्थान के निवासी थे, किन्तु पितामह काशी जाकर बस गए, जहाँ इन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा ग्रहण की। अपने जीवन के अन्तिम समय में ये 'गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज' पटना में प्रोफ़ेसर पद पर रहे। इन्होंने बिहार में 'संस्कृत संजीवनी समाज' नामक संस्था की स्थापना भी की।

इनकी लेखनी हिन्दी तथा संस्कृत दोनों ही विषयों पर मुखरित हुई, इनके ग्रन्थों की कुल संख्या 78 रही है। संस्कृत गद्यकाव्य की दृष्टि से 'शिवराज विजय' नामक कृति विद्वानों में अत्यधिक लोकप्रिय हुई। शिवाजी के जीवन पर आधारित कुल बारह निःश्वासों में विभक्त यह ऐतिहासिक संस्कृत उपन्यास सर्वप्रथम 1901 में काशी से प्रकाशित हुआ।

प्राचीन एवं आर्वाचीन शैलियों का समन्वय प्रस्तुत करते हुए पं. अम्बिकादत्त व्यास ने इसमें अपनी विशद कल्पना तथा मनोरम शैली

का अत्यधिक हृदयग्राही रूप प्रतिपादित किया है। भाषा की दृष्टि से यह कादम्बरी के निकट प्रतीत होती है। इसमें कहीं प्रसाद गुण है तो कहीं माधुर्य अपना प्रभाव बिखेरता है। इसीप्रकार कहीं पर ओज गुण प्रयुक्त हुआ है तो कहीं समासबहुलता के दर्शन होते हैं। वस्तुतः संस्कृत गद्यकाव्य में नवीन युगधारा का प्रवर्तक, यह संस्कृत उपन्यास वैदर्भी तथा गौड़ी दोनों ही शैलियों के समन्वय का सुन्दर निदर्शन के रूप में देखा जा सकता है। इसकी काव्यगत विशेषताओं के कारण कुछ विद्वानों ने इन्हें आधुनिक बाण की संज्ञा प्रदान की है।

(6) **पं. हृषीकेश भट्टाचार्य–** इनका स्थितिकाल 1850 ई. से 1993 ई. है। इनके पिता का नाम पण्डित मधुसूदन शर्मा था। ये मूलतः पश्चिमी बंगाल के निवासी थे, जो 1872 ई. में पंजाब जाकर बस गए। इनके पितामह का नाम आनन्दचन्द्र शिरोमणि था। इन्होंने लम्बे समय तक 'ऑरियण्टल कॉलेज लाहौर' संस्कृत का अध्यापन किया। लगभग चवालीस वर्षों तक 'विद्योदय' नामक संस्कृत पत्रिका का सम्पादन भी किया, जिसमें इन्होंने समसामयिक समस्याओं पर सरस तथा विनोदपूर्ण शैली में निबन्धों का लेखन किया, जिनकी प्रशंसा जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने भी की।

इनके निबन्धों का संग्रह 'प्रबन्धमंजरी' के नाम से 1930 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें उद्‌भिज्ज परिषद्, महारण्य–पर्यवेक्षणम्, उदर–दर्शिनम्, संस्कृत–भाषायाः वैशिष्ट्यम् आदि विषयों के साथ ग्यारह निबन्ध सम्पादित किए गए हैं। इनकी शैली वैदर्भी है तथा भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण के दर्शन होते हैं। कुछ स्थलों पर लम्बे समासों का प्रयोग भी देखा जा सकता है, किन्तु पदविन्यास अत्यन्त सरल तथा सुबोध रहा है। इन्हें वस्तुतः संस्कृत निबन्ध की नयी विधा के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। ये महाकवि बाण की शैली से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं।

(7) **पण्डिता क्षमाराव**– 4 जुलाई, 1890 में उत्पन्न पण्डिता क्षमाराव के पिता का नाम पण्डित शंकर पाण्डुरंग था। इनका स्वर्गवास सन् 1954 में हुआ। इन्होंने कुल पचास के लगभग पुस्तकों का लेखन किया, जिनमें सात एकांकी नाटक, चार तीन अंकों वाले नाटक, चार जीवन चरित, महात्मा गाँधी का जीवन चरित, पैंतीस लघुकथाएँ और अनेक निबन्ध विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक युग की उच्चकोटि की संस्कृत लेखिका के रूप में प्रसिद्ध पण्डिता क्षमाराव का पहला कथा–संग्रह 'कथापंचक' 1933 ई. में, दूसरा ग्राम–ज्योति 1954 ई. में तथा तीसरा कथा मुक्तावली 1956 ई. में प्रकाशित हुआ। इनकी रचनाओं में प्रसाद तथा माधुर्य गुण प्रचुर मात्रा में परिलक्षित होते हैं तथा प्रकृति–चित्रण अत्यधिक रोचक एवं प्रभावशाली बन पड़े हैं। यद्यपि ये वैदर्भी शैली की कवयित्री हैं तथापि प्रकृति वर्णनों में बाण की सी भाषा शैली के दर्शन किए जा सकते हैं। इन्होंने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। साथ ही, युवतिजनो–चित मृदुलता तथा हृदय की कोमलता की भी अनुभूति इनके काव्य में सहृदय पाठक को सहज ही होती है।

(8) **डॉ. रामशरण त्रिपाठी**– सन् 1905 ई. में बाँदा जिले के 'मरका' ग्राम में उत्पन्न डॉ. रामशरण त्रिपाठी आधुनिक संस्कृत के गद्यकार के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने जौनपुर, लाहौर तथा काशी में शिक्षा ग्रहण की तथा के.जी.के कॉलेज, मुरादाबाद में 1971 से संस्कृत के वरिष्ठ अध्यापक रहे।

इनके कुल पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हुए– (क) रचनानुवाद रत्नाकर (ख) सरल–ज्योतिर्विज्ञान (ग) वेदान्तसार (भावबोधिनी टीका) (घ) ब्रह्म सूत्र प्रमुख भाष्यपंचसमालोचनम् तथा (ङ) कौमुदी कथाकल्लोलिनी।

उक्त सभी ग्रन्थों में भी ग्यारह कल्लोलों में विभक्त 'कौमुदी कथा कल्लोलिनी' गद्य–ग्रन्थ विद्वानों द्वारा विशेषरूप से प्रशंसनीय रहा। इसमें कौशाम्बी के राजा उदयन् के पुत्र नरवाहन दत्त के जन्म

से लेकर गान्धर्व महाभिषेक की कथा निबद्ध की गयी है। भट्टि के गद्यकाव्य के समान इसे नए प्रयोग के रूप में विद्वानों में मान्यता प्राप्त हुई, क्योंकि यहाँ कथा के माध्यम से सिद्धान्त–कौमुदी के सन्धि–प्रकरण से लेकर उत्तर–कृदन्त तक के रूपों के प्रयोगों की शिक्षा प्रदान की गयी है।

इसमें भाषा अत्यन्त रोचक, प्रवाहयुक्त तथा सरलरूप में प्रयुक्त हुई है। बीच–बीच में छोटी–छोटी कथाओं को भी नियोजित किया गया है व कहीं–कहीं व्याकरण के दुरूह शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

यहाँ तक प्रमुख प्राचीन गद्यकारों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने के बाद हम अपने विवेच्य महाकवि सुबन्धु के विषय में विस्तार से विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं–

(v) **महाकवि सुबन्धु व्यक्तित्व एवं कृतित्व–** उल्लेखनीय है कि महाकवि सुबन्धु ने बाण के समान अपने परिचय के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं लिखा है, किन्तु उनकी एकमात्र कृति वासवदत्ता के आधार पर ही उनके व्यक्तित्व के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। तदनुसार–

महाकवि सुबन्धु शुद्ध एवं पवित्र विचारधारा वाले सज्जन व्यक्ति थे, दुर्जनों से वे घृणा करते थे। इसीलिए उन्होंने काव्य के आरम्भ में ही सज्जनों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की मुक्तकण्ठ से निन्दा की है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराण, कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा रघुवंशादि ग्रन्थों, जैन, बौद्ध तथा चार्वाक् दर्शनों, वात्स्यायन के कामसूत्र तथा धर्मशास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया था। यही कारण है कि प्रस्तुत काव्य में पद–पद पर उन्होंने इन ग्रन्थों से उपमानों का प्रयोग किया है।

प्रकृति से उन्हें अत्यधिक अनुराग था, इसके प्रत्येक उपादान में उन्होंने जीवन का अनुभव किया, इसीलिए यहाँ प्रकृति का जीवन्त रूप पद–पद पर परिलक्षित होता है। वन्य तथा पर्वतीय जीवन का भी

उन्हें गहन अनुभव था, जिसका उन्होंने सूक्ष्मता से निरीक्षण किया था। उनके समुद्र वर्णन से प्रतीत होता है कि उन्होंने समुद्र के किनारों पर भी कुछ समय अवश्य व्यतीत किया होगा, क्योंकि समुद्र तथा उसके तटीय प्रदेश में रहने वाले प्रत्येक सूक्ष्म जीव–जन्तु तथा वनस्पतियों का उन्हें गहन ज्ञान था, जिनका उन्होंने यहाँ प्रत्यक्षदर्शी के समान सूक्ष्म एवं जीवन्त वर्णन किया है।

महाकवि का उदात्त तथा पवित्र प्रेम में गहन विश्वास था, उनके मत में शारीरिक सौन्दर्य व्यक्ति को प्रभावित तो कर सकता है, किन्तु विरह की अग्नि में तप कर ही वह खरे सोने के रूप में अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच पाता है। तभी उन्होंने अपने नायक–नायिका को वियोग की अग्नि में तपाने के बाद ही इनका मिलन कराया है।

राजनीति की उन्हें गहन परख थी। दण्डनीति से वे पूर्णरूप से परिचित थे, राजमहलों के सूक्ष्म वर्णनों के आधार पर कहा जा सकता है, कि उन्होंने इनका अत्यन्त निकट से अवलोकन किया था। स्त्री मनोविज्ञान से वे पूर्णतया परिचित थे। उनके नख–शिख वर्णन उनके स्त्री–विशेषज्ञ स्वरूप को भी पाठक के समक्ष उद्घाटित करते हुए प्रतीत होते हैं। इसीप्रकार उन्होंने विशाल हाथी पर केसरी सिंह के आक्रमण को प्रत्यक्षरूप से देखा था, जिसका चित्रात्मक एवं अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन यहाँ प्रमुखता से किया गया है।

वासवदत्ता की एक पाण्डुलिपि के आधार पर सुबन्धु को वररुचि की बहन का पुत्र माना गया है[1] तथा मंगलाचरण में प्रयुक्त तीसरे श्लोक के आधार पर प्रो. आर. जी. हर्षे ने दामोदर को इनका गुरु स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त यहाँ प्रयुक्त विष्णु की स्तुति के उपमान तथा उनके अवतारों नृसिंह, वाराह, राम तथा श्रीकृष्ण के अधिकाधिक प्रयोगों के आधार पर इनके वैष्णव होने की भी पुष्टि होती

---

[1] . प्रो. विल्सन को उद्धृत करते हुए वासवदत्ता की दर्पण टीका के सम्पादक एफ. हॉल ने इन्हें वररुचि की बहन का पुत्र कहा है।

है। यद्यपि इनकी आस्था महादेव, दुर्गा आदि में भी देखी जा सकती है।[1]

जहाँ तक सुबन्धु के निवास स्थान का प्रश्न है, इस विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, क्योंकि प्रो. मनमोहन घोष ने शफर मछलियों के आधार पर इन्हें बंग निवासी कहा है। यह मछली बंगाल में अत्यधिक लोकप्रिय है। इसके अलावा मछली पकड़ने के विशेष यन्त्र 'पलाव' तथा बंगाल में पाए जाने वाले 'सुन्दरी' नामक वृक्ष को आधार बनाकर भी उन्होंने इस मान्यता का प्रतिपादन किया है, 'पलाव' को बंगाली भाषा में 'पलो' कहते हैं, क्योंकि महाकवि ने यहाँ इस पद का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। सुन्दरी वृक्ष के आधार पर बंगाल में सुन्दर वन का नामकरण भी किया गया है।

इसीप्रकार गौड़ी शैली का प्रादुर्भाव बंग नरेशों के दरबार में होने के आधार पर भी उन्होंने इन्हें बंगाल का निवासी कहने में अपनी रुचि प्रदर्शित की है, किन्तु इन्हीं आधारों पर इन्हें बंग निवासी मानना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है।

जबकि कुछ विद्वानों ने पर्याप्त साक्ष्यों के आधार पर इन्हें मध्य भारत का निवासी माना है। इसका आधार यहाँ महाकवि द्वारा सुमेरु, मन्दार, रेवा (क्षिप्रा), यमुना तथा विन्ध्याचल के वर्णनों में विशेष आकर्षण रहा है, जिसे किसी सीमा तक युक्तियुक्त कहा जा सकता है।

जिन शबर सेनाओं के विषय में सुबन्धु ने विस्तार से उल्लेख किया है, वे स्थान विन्ध्य तथा सतपुड़ा क्षेत्र के प्रतीत होते हैं, मधुर जल की खोज में ये सेनाएँ यहाँ पर आयी थीं और इस क्षेत्र में मधुर जल प्राप्त होना अत्यन्त कठिन माना जाता है। इसीप्रकार महाकवि ने यद्यपि अनेक क्षेत्रों की स्त्रियों का वर्णन किया है, किन्तु फिर भी उनकी रुचि विशेष रूप से मालव की स्त्रियों में रही है।

---

[1]. द्रष्टव्य– कात्यायनी वर्णन (गद्यखण्ड–47)।

इसके अतिरिक्त उन्होंने महाराष्ट्र में मिलने वाले 'श्वेत गेहूँ' का उल्लेख भी किया है, जिसके आधार पर विद्वानों ने इन्हें 'मालव' क्षेत्र के निवासी माना है[1], जो उचित तथा न्यायसंगत भी प्रतीत होता है। पं. भोला शंकर व्यास ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।[2]

सुबन्धु की एकमात्र कृति वासवदत्ता ही उपलब्ध है। यद्यपि अभिनवगुप्त एवं रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इनके एक रूपक 'वासवदत्ता नाट्यधारा' का भी उल्लेख किया है, जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। भावप्रकाशन में शारदातनय ने सुबन्धु नाम के नाट्यशास्त्री का भी कथन किया है, किन्तु वे सुबन्धु वासवदत्ताकार ही है, इस विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। पी. वी. काणे ने इन्हें प्रस्तुत सुबन्धु से भिन्न माना है।

(vi) **महाकवि सुबन्धु का काल**– सुबन्धु के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, कुछ विद्वान् इन्हें दण्डी से पूर्व तो दूसरे इन्हें दण्डी के पश्चात् मानते हैं। महाकवि बाण का समय निर्धारित है, इस आधार पर हम इन्हें बाण का पूर्ववर्ती मानने के पक्षधर हैं, क्योंकि **सुबन्धु ही वस्तुतः उपलब्ध आलंकारिक शैली के गद्यकाव्य के आदि प्रणेता** हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इनका समय 600 ई. मानते हुए **सुबन्धु ⟶ बाण ⟶ दण्डी** इस क्रम को अपनी स्वीकृति प्रदान की है,[3] जिससे हम अपनी विनम्र सहमति व्यक्त करते हैं। उनके तर्क इसप्रकार हैं–

---

[1] . वासवदत्ता– डॉ. जमुना पाठक, प्रकाशक– चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2015 भूमिका– पृष्ठ– 42 ।

[2] . संस्कृत कवि दर्शन, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1994, पृष्ठ–359 ।

[3]. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी, दशम संस्करण, पृष्ठ–384–85 ।

(1) सुबन्धु उपलब्ध गद्य–काव्य के लेखकों विशेषरूप से गद्यत्रयी में सर्वप्रथम लेखक हैं तथा महाकवि बाण द्वारा प्रशंसित होने से ये बाण के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। सम्राट् हर्षवर्धन (606–648 ई.)का सभापण्डित होने के कारण बाणभट्ट का समय 630–640 ई. तक माना गया है।

(2) इन्होंने न्यायवार्तिक के रचयिता प्रसिद्ध नैयायिक उद्योतकर का स्पष्टरूप से उल्लेख किया है[1] तथा उनका समय षष्ठ शताब्दी का अन्त और सप्तम का आरम्भ माना गया है। इसलिए सुबन्धु का समय उनके बाद ही मानना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

(3) इसीप्रकार बाण से पूर्ववर्ती होने के कारण सुबन्धु को 600 ई. के आसपास या किंचिद् पश्चाद्वर्ती तथा दण्डी को बाण के बाद अर्थात् 650 के बाद मानना उचित प्रतीत होता है।

(4) सुबन्धु ने जिस विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने की बात कही है।[2] अधिकांश विद्वान् 'यशोवर्मा' से अभिप्राय ग्रहण करते हैं, जिसने बालादित्य के सहयोग से हूणों के पराक्रमी राजा मिहिरकुल को पराजित किया था, जिनका समय षष्ठी शती का मध्य (550 ई.)भाग माना गया है। इसलिए सुबन्धु का काल इसके बाद अर्थात् 600 ई. मानना संगत प्रतीत होता है।

(5) ध्यातव्य है कि सुबन्धु ने महाकवि कालिदास तथा काम–शास्त्र के प्रणेता आचार्य वात्स्यायन[3] दोनों का उल्लेख किया है, क्योंकि शकुन्तला द्वारा दुर्वासा के शाप के अनुभव का कथन, सुबन्धु को शाकुन्तलम् से पूर्णतया परिचित सिद्ध कर रहा है,[4] वस्तुतः

---

1. न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपम्।
2. वासवदत्ता–10 ।
3. कामसूत्रविन्यास इव मल्लनागघटितकान्तारामोदः ।
4. विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला ।

महाभारत में इस शाप विषयक घटना का उल्लेख ही नहीं किया गया है।[1]

(6) वाक्पतिराज ने अपने प्राकृतकाव्य 'गउडवहो' में सुबन्धु का उल्लेख किया है,[2] (रचनाकाल–736 ई.) किन्तु बाण का यहाँ कथन नहीं किया गया है। कुछ विद्वानों का इस सम्बन्ध में मानना है कि तब तक बाण, सुबन्धु के समान प्रसिद्ध नहीं हुए थे, जिससे उनकी बाण से पूर्ववर्तिता की पुष्टि होती है।

(7) इसीप्रकार जिनभद्र द्वारा विरचित 'विशेषावश्यकभाष्य' (608 ई.) में वासवदत्ता का उल्लेख मिलने के कारण भी सुबन्धु का काल 600ई. के लगभग मानना उचित प्रतीत होता है।

(8) इसके अतिरिक्त सुबन्धु की प्रशंसा 'राघवपाण्डवीय' (1/40) में कविराज (1200 ई.) ने तथा श्री कण्ठचरित (2/53) में मंख (1150 ई.) ने भी की है। इन दोनों ही स्थलों पर सुबन्धु को बाण से पूर्व में ही रखा गया है।

(9) सुबन्धु पर शोधकार्य निष्पादित करने वाले वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. मानसिंह ने 'चन्द्रगुप्ततनयः' से चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र 'कुमारगुप्त प्रथम' से अभिप्राय ग्रहण करते हुए सुबन्धु को उनकी सभा में मन्त्री रूप में स्थित माना है। तदनुसार– इनका समय 400 ई. से 465 ई. के मध्य में कहीं पर स्वीकार किया जा सकता है। कुमारगुप्त की मृत्यु 455 ई. के लगभग हुई।

किन्तु हमारे मत में इस सिद्धान्त का महत्त्व सुबन्धु की पूर्वसीमा के रूप में ही अधिक कहा जा सकता है, क्योंकि सुबन्धु, बाण, दण्डी में वस्तुतः काल का अधिक अन्तर न होने से इस मत को अधिक उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है, यद्यपि वासवदत्ता के

---

[1]. महाभारत, आदिपर्व, शकुन्तलोपाख्यान, अध्याय–67–74 ।

[2]. सौबन्धवे अबन्धम्मि हारिअन्दे अ आणन्दो।

व्याख्याकार डॉ. जमुना पाठक ने इसी मत को मान्य किया है,[1] जबकि वासवदत्ता के ही दूसरे व्याख्याकार डॉ. वेदप्रकाश डिंडोरिया ने सुबन्धु की पूर्वसीमा पाँचवी शती का उत्तरार्द्ध तथा अपर सीमा छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानी है,[2] जो हमारे विचार के अधिक निकट प्रतीत होती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर सुनिश्चितरूप से कहा जा सकता है कि महाकवि सुबन्धु का समय कालिदास तथा वात्स्यायन का पश्चाद्वर्ती तथा बाण से पूर्ववर्ती मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है। महाकवि कालिदास को विद्वानों ने प्रथम शती से लेकर चतुर्थ शती के मध्य[3] तथा वात्स्यायन[4] को तृतीय शती में स्थित माना है। डॉ. कीथ, डॉ. एस. के. डे, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी[5], डॉ. उमाशंकर ऋषि[6], डॉ. मानसिंह तथा डॉ. काणे आदि अनेक विद्वान् सुबन्धु को बाण का पूर्ववर्ती ही मानते हैं।

इस प्रसंग में यह तथ्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि गद्यत्रयी के ये तीनों लेखक निश्चय ही 550 ई. से 650 ई. के मध्य अत्यन्त थोड़े अन्तर से प्रायः समसामयिक ही रहे हैं।[7]

(vii) **महाकवि सुबन्धु एवं दूसरे गद्यकार–** जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि गद्यकाव्य अत्यन्त प्राचीनकाल से लिखे

---

[1]. वासवदत्ता, व्याख्याकार, डॉ. जमुना पाठक, प्रकाशक, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2015 , भूमिका–पृष्ठ 45।

[2]. वासवदत्ता, व्याख्याकार, डॉ. वेद प्रकाश डिंडोरिया, प्रकाशक, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018 , भूमिका–पृष्ठ 22।

[3]. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ–138–144।

[4]. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ.उमाशंकर ऋषि, पृष्ठ–600 ।

[5]. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ–484।

[6]. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ.उमाशंकर ऋषि, पृष्ठ–391 ।

[7]. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी–पृष्ठ, 483।

जाते रहे हैं, उनमें कुछ कालक्रम से विलुप्त हो गए, किन्तु जो उपलब्ध होते हैं, उनमें उक्त तीनों गद्यत्रयी ही प्रमुख हैं। महाकवि दण्डी के बाद गद्य की यह आलंकारिक विधा लुप्तप्राय हो गयी, जो लिखे गए उनके विषय में हम पूर्व में कथन कर चुके हैं। इसलिए हम यहाँ इन गद्यत्रयी के विद्वान् कवियों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) **सुबन्धु एवं बाण–** पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि सुबन्धु के बाद बाण का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु इस अन्तराल में सुबन्धु की वासवदत्ता विद्वानों में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी थी। यही कारण है कि बाण ने इसे कवियों के दर्प का नाश करने वाली कहा है।[1] इस आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महाकवि बाण सुबन्ध की काव्यकला से पर्याप्तरूप में प्रभावित हुए, जिसका हम निम्न बिन्दुओं में विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं–

- सर्वप्रथम तो बाण ने गद्यकाव्य के भेद 'कथा' को आधार बनाकर ही अपनी द्वितीय कृति कादम्बरी की संरचना की तथा इसे वासवदत्ता के ही आरम्भिक वाक्य से प्रारम्भ भी किया[2], जिसे बाण पर सुबन्धु के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

- इसीप्रकार वासवदत्ता में कन्दर्पकेतु को मित्र मकरन्द द्वारा उसकी विरह–विक्लव स्थिति के लिए समझाना तथा कादम्बरी में महाश्वेता के प्रति आसक्त पुण्डरीक को उसके मित्र कपिंजल द्वारा उपदेश दोनों में पर्याप्त साम्य देखा जा सकता है। यहाँ तक कि दोनों

---

[1]. कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्ता...। हर्षचरितम्–1/11 ।

[2]. अभूदभूतपूर्वः...राजा चिन्तामणिर्नाम। (वासवदत्ता–गद्यखण्ड–1)
आसीदशेषनरपति..... राजा शूद्रको नाम। (कादम्बरी)

ही स्थलों पर क्रमशः कन्दर्पकेतु तथा पुण्डरीक के उत्तर भी समान ही प्रतीत होते हैं।[1]

• इसके अतिरिक्त वर्ण्यविषय की दीर्घसमासयुक्त शैली के विषय में भी पर्याप्त साम्य देखा जा सकता है। जैसे–

कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातंगकुम्भस्थल–रुधिरच्छरितचारुकेसरभारभासुरकेसरिकदम्बेन....। (वासवदत्ता)

कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमतमातंगोत्तमाङ्ग–मदच्छटाच्छरितचारुकेसरभारणिस्वरमुखे केसरिणि....। (हर्षचरित)

इसीप्रकार सुबन्धु तथा बाण में शब्दविषयक साम्य भी देखा जा सकता है। इस विषय में कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

वासवदत्ता	कादम्बरी
हर इव महासेनानुगतो	पशुपतिरिव महासेनानुगतः
दुःशासनदर्शनं भारते	महाभारते दुःशासनापराधाकर्षणम्
रणितनूपुरमणीनां रमणीनाम्	रणितमणीनां मणिनूपुराणां
रोमराजिलतातवालवलयेन	रोमराजिलतालवालकेन मेखलादाम्ना
मेखलादाम्ना परिकलितजघनस्थलाम्	मेखलादाम्ना परिगतजघनस्थलाम्
पच्यन्त इव मेंऽगानि	पच्यन्त इव मेंऽगानि

इतना ही नहीं, महाकवि बाण ने कादम्बरी तथा हर्षचरित में कुछ पात्रों के नामों को भी सुबन्धु से ही ग्रहण किया है। **जैसे–** तरलिका, तमालिका, पल्लविका, मृणालिका, विलासवती और कान्तिमती आदि।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर महाकवि बाण का सुबन्धु से प्रभावित होना स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रसंग में यह तथ्य भी

---

1. नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेंऽगानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृतिः। अधुना तदलमनया कथया। (वासवदत्ता–गद्यखण्ड–32)

तद्गत इदमुपदेशकालः। ..... पच्यन्त इव मेंऽगानि, उत्क्वथ्यत इव हृदयम्, प्लुष्यत इव दृष्टिः, ज्वलतीव शरीरम्.....। (कादम्बरी)

उल्लेखनीय है कि सुबन्धु से प्रेरणा प्राप्त करके अपने काव्य में उन्होंने सम्पूर्ण काव्य अपेक्षाकृत परिष्कृत तथा परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया है, जिसका विद्वानों में प्रभाव अधिक होने से सुबन्धु किसी भवन की नींव के समान उनकी अपेक्षा गौण हो गए और 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' जैसी उक्ति प्रचलन में आ गयी।

(ख) **सुबन्धु एवं दण्डी–** बाण के बाद दण्डी का आविर्भाव होता है। यहाँ दोनों में कालक्रम में अपेक्षाकृत अधिक अन्तर होने तथा बाण की शैली अधिक उत्कृष्ट होने से दण्डी, सुबन्धु की अपेक्षा बाण से अधिक प्रभावित हुए, क्योंकि उनके समय में बाण की कीर्ति ही दिग्दिगन्त में फैली हुई थी, जिसमें सुबन्धु धूमिल से हो गए या यों कहें कि विद्वानों ने बाण के सामने उन्हें विस्मृत कर दिया।

यही कारण है कि दण्डी ने बाण का तो उल्लेख अपने काव्य में किया है, किन्तु सुबन्धु का कथन यहाँ नहीं किया गया है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने इन्हें सुबन्धु से पूर्व तथा बाण से परवर्ती स्वीकार किया है, किन्तु फिर भी जाने–अन्जाने ही सही, सुबन्धु की शैली से वे कहीं–कहीं प्रभावित अवश्य प्रतीत होते हैं।

जैसे–

वासवदत्ता	अवन्तिसुन्दरी कथा
लावण्यपुंजाभ्यामिव	सौन्दर्यपुंजाभ्यामिव
मेखला मेखला न भवति	समुद्रमेखला खलेव च
पश्य मे दैवदुर्विलसितम्	नियतिविलासविस्मितेन
गुरुतरनितम्बबिम्बकुचकुम्भनिरुद्धोभय	राजकुम्भकठोरपीवरकुचातिभारसाधम्य
अष्टादशवर्षदेशीया कन्यापश्यत्स्वप्ने	अष्टादशवर्षदेशीयां युवतिमद्राक्षम्
क्षीणतामुपगतेन मध्यभागेन	ध्रुवम् भंगुरा बिभ्रती मध्ययष्टिम्

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि दण्डी वस्तुतः सुबन्धु से कालक्रम के अधिक अन्तर होने के कारण उनकी अपेक्षा महाकवि बाण की शैली से अधिक प्रभावित रहे।

(viii) **वासवदत्ता का सारसंक्षेप–** जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि वासवदत्ता में सुबन्धु ने अत्यन्त छोटी कथावस्तु को अपनी कुशाग्र बुद्धि से इसे अत्यधिक विस्तार दिया है, जो इसप्रकार है– राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु ने एक बार रात्रि के तीसरे प्रहर में स्वप्न के अन्तर्गत एक अनुपम सुन्दरी को देखा तथा उसके विरह में व्याकुल होकर अपने मित्र मकरन्द के साथ उसकी खोज में निकल पड़ा, स्वप्न में ही इसके नामादि का भी परिचय हो गया।

दूसरी ओर इसी राजकुमारी वासवदत्ता ने भी अपने स्वप्न में कन्दर्पकेतु का दर्शन किया और उसने अपनी प्रिय सखी तमालिका सारिका को नायक के मनोभावों की परीक्षा करने के लिए पत्र देकर भेजा, जिसका पता कन्दर्पकेतु को विन्ध्याटवी में एक जामुन के पेड़ के नीचे विश्राम करते हुए रात्रि में शुक–सारिका के वार्तालाप से लगता है, किन्तु जब तमालिका से कन्दर्पकेतु को पता चलता है कि वासवदत्ता के पिता, उसका विवाह एक विद्याधर राजकुमार पुष्पकेतु से करना चाहते हैं, तो वह मकरन्द तथा तमालिका के साथ रात्रि में ही कुसुमपुर पहुँच जाता है।

परिणामस्वरूप वह वासवदत्ता को लेकर जादू के वायु के समान वेग वाले घोड़े पर बैठकर कुसुमपुर से भागकर विन्ध्याटवी में चला जाता है और मकरन्द समाचार जानने के लिए वहीं रह जाता है। वन में वासवदत्ता तथा कन्दर्पकेतु दोनों थक कर सो जाते हैं, किन्तु वासवदत्ता पहले जगकर अपने प्रियतम के खाने के लिए फल–मूल खोजने हेतु वन में निकल जाती है। जहाँ पर दो किरात–समूहों में उसे प्राप्त करन के लिए परस्पर युद्ध होता है और वासवदत्ता के वहीं पर स्थित आश्रम में छिपने से योगी ऋषि का आश्रम विनष्ट हो जाता है।

इसके बाद ऋषि अपने योगबल से आश्रम के उस विनाश का कारण वासवदत्ता को मानकर उसे पत्थर की मूर्ति बनने का शाप दे

देते हैं। उधर कन्दर्पकेतु वासवदत्ता को पास में न पाकर बैचेन हो जाता है तथा लम्बे समय तक वन में वासवदत्ता को ढूँढने के लिए भटकता है। अन्त में समुद्र के किनारे पहुँच जाता है, तो निराश होकर स्वयं को समुद्र में डूबोकर मारने के लिए उद्यत होता है, किन्तु तभी आकाशवाणी उन दोनों के भविष्य में मिलने का आश्वासन देते हुए, उसे ऐसा करने से रोकती है, जिससे वह स्वयं को मारने से विरत हो जाता है।

इसके बाद वासवदत्ता की खोज करते-करते एक दिन वह उस स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ वासवदत्ता पत्थर की मूर्ति बनी हुई थी, विस्मृति तथा विस्मय से परिपूरित कन्दर्पकेतु अन्जाने में ही उस मूर्ति का स्पर्श कर लेता है, तब उसका हाथ लगते ही वह मूर्ति सजीव वासवदत्ता बन जाती है। इसप्रकार दोनों का मिलन फिर से हो जाता है। इसी समय मकरन्द भी वहाँ आ जाता है और कन्दर्पकेतु अपनी प्रियतमा तथा मित्र के साथ राजधानी वापस चला जाता है, जहाँ वह आनन्द से लम्बे समय तक जीवन व्यतीत करता है। इसप्रकार इस काव्य का सुखान्त हो जाता है।

(ix) **महाकवि सुबन्धु की भाषा-शैली-** उल्लेखनीय है कि महाकवि सुबन्धु आलंकारिक संस्कृत गद्यकारों में उत्कृष्ट स्थान रखते हैं, वे अपनी कल्पना-कुशलता तथा प्रखर-पाण्डित्य के लिए विख्यात हैं। उनकी एकमात्र कृति वासवदत्ता को उनके प्रौढ़ पाण्डित्य की कसौटी के रूप में देखा जा सकता है। यही कारण है कि विद्वानों ने उनकी कृति को संस्कृत गद्य की 'वृहत्त्रयी' के प्रथम काव्य के रूप में स्वीकार किया है।

विद्वानों की दृष्टि में महाकवि सुबन्धु वस्तुतः गौड़ी रीति के कवि हैं, किन्तु हमारे विचार से तो वे वैदर्भी, पांचाली के साथ-साथ गौड़ी रीति के भी कवि हैं, क्योंकि इनकी भाषा में हमें जहाँ पद-पद पर ओज, समास-बाहुल्य, कठोर पद-विन्यास, पाण्डित्य प्रदर्शन तथा

श्रमसाध्य अलंकार योजना के दर्शन होते हैं।[1] वहीं यहाँ हमें सरल, भावबोध गम्य भाषा भी दृष्टिगोचर होती है।[2] अत्यन्त छोटे कथानक को लेकर गद्यकाव्य की निर्मिति उनकी अद्भुत प्रतिभा का ही निदर्शन कहा जा सकता है। इस काव्य में कवि ने विस्तृत सूर्योदय, सूर्यास्त, अन्धकार, चन्द्रोदय आदि प्रकृति–चित्रण, स्त्री का नखशिख सौन्दर्य वर्णन तथा नगर, समुद्र, वन, पर्वत, यहाँ स्थित पुष्प, वृक्ष, लता, जीव, जन्तु आदि वर्णनों से ग्रन्थ को विस्तार प्रदान किया है।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि इन लम्बे वर्णनों के कारण कवि का कलापक्ष अवश्य प्रदर्शित हुआ, किन्तु भावपक्ष की दृष्टि से इसे विद्वानों ने दुर्बल ही कहा है, जिसे लेकर विद्वानों द्वारा सुबन्धु की आलोचना भी की गयी है। प्रत्यक्षर श्लेषमय बनाने की स्वयं की प्रतिज्ञा,[3] उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास और परिसंख्या आदि अलंकारों के आवश्यकता से अधिक मोह के कारण समालोचकों द्वारा बाण और दण्डी की अपेक्षा इन्हें निम्न बताने का प्रयास किया गया है।

---

[1]. ततोऽनेकनल्वशतमध्वानं गत्वा तेनागस्त्यवचनसंहृतब्रह्माण्डखण्डगतशिखरसहस्रः, कन्दरान्तराललतागृहसुप्तप्रबुद्धविद्याधरमिथुनगीताकर्णनसुखितचमरीगणमारणोत्सुक–शबरकुलसम्बाधकच्छतटः, कटकतटगतकरिकराकृष्टभग्नहरिचन्दनस्यन्दमानरसामोद हरगन्धवाहशिशिरितशिलातलः,सुदूरपतनभग्नतालफलरसार्द्रकरतलास्वादनोत्सुकशाखा –मृगकदम्बकः, प्रलम्बमाननिर्झरापान्तापविष्टजीवंजीवकमिथुनलेलिह्यमानविविधफल–रसामोदसुरभितपरिसरःसरभसकेसरिसहस्रखरनखरधाराविदारितमत्तमातङ्गकुम्भस्थल–विगलितस्थूलमुक्ताफलशबलशिखरतया शिखरावलग्नं तारागणमिवोद्वहन्....।

(विन्ध्याचलवर्णनम्–33)

[2] वयस्य! दितिरिव शतमन्युसमाकुला भवत्यस्मादृशजनचित्तवृत्तिः। नायमुपदेश कालः। पच्यन्त इव मेऽगानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निस्सर–न्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृतिः। अधुना तदलमनया कथया। यदि त्वं सहपांसुक्रीडासमदुःखसुखोऽसि तन्मया सममागम्यतामित्युक्त्वा परिजना–लक्षित एव तेन सह पुरान्निर्जगाम। (गद्यखण्ड–32)

[3]. प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्धनिधिर्निबन्धम्। वासवदत्ता–श्लोक–13।

किन्तु हमारी दृष्टि से सुबन्धु की यह आलोचना समीचीन प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि आलंकारिक गद्यकाव्य के आद्य प्रणेता तथा काव्य के आरम्भ में ही की गयी उनकी प्रतिज्ञा के परिप्रेक्ष्य में जब हम उनका मूल्यांकन करते हैं तो ये सभी बातें उनके लिए प्रशंसा का ही कारण हो जाती हैं।

इसे हम इस दृष्टि से विचार करें कि– सर्वप्रथम तो एक छोटे से काल्पनिक कथानक को लेकर प्रबन्ध का प्रणयन करना ही स्वयं में प्रशंसनीय है, जिसमें विदग्ध जनों के लिए कथा–वर्णनों एवं अलंकार प्रयोग का होना तो अनिवार्य ही था। इसलिए कवि की आलोचना से पूर्व इन सभी स्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा, हमारे विचार से विद्वान् समालोचकों ने सुबन्धु के साथ इस दृष्टि से न्याय नहीं किया है, उनकी चहुँमुखी प्रतिभा के विषय में हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे, किन्तु यहाँ केवल इतना ही कथ्य है कि–

प्रस्तुत कृति में विरोधाभास, परिसंख्या तथा उपमा, उत्प्रेक्षा के सभी प्रयोग कवि की अद्भुत सूझबूझ व सूक्ष्मदृष्टि को द्योतित करते हैं। इसमें पद–पद पर हमें संगीतात्मकता, लयात्मकता तथा नादसौन्दर्य की अनुभूति होती है। इतना ही नहीं, यहाँ हमें एक ओर यदि क्लिष्ट पदावली उपलब्ध होती है, तो वहीं दूसरी ओर कोमलकान्त पदावली के भी दर्शन होते हैं, विषय के अनुसार भाषा का चयन सुबन्धु की बड़ी विशेषता कही जा सकती है।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने प्रत्यक्षर श्लेषमय बनाने का श्रमसाध्य प्रयास किया है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है, किन्तु अनेक स्थलों पर उनकी उपमाओं, स्वभावोक्तियों एवं उत्प्रेक्षाओं की भी तो उपेक्षा करना उचित नहीं है, जो सहृदय को आह्लादित करने में पूर्णतया सक्षम हैं। चित्रात्मकता उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। हाथी के ऊपर आक्रमण करने वाले वनराज सिंह का चित्र उन्होंने अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है, उनका शब्दकोष इतना अधिक समृद्ध है कि वे एक ही अर्थ के लिए सात–आठ शब्दों तक का सहजरूप में ही प्रयोग कर देते हैं, जिसे कुछ विद्वानों ने अक्षराडम्बर की संज्ञा प्रदान की है, वह तो उस काल के पण्डित समाज को गद्‌गद करने के लिए अनिवार्य तथा आवश्यक था, जिसका संकेत महाकवि सुबन्धु ने प्रस्तुत काव्य के आरम्भिक श्लोकों में किया ही है।

(x) **वासवदत्ता में अलंकार–योजना–** सुबन्धु की वासवदत्ता को यदि आलंकारिक प्रयोगों की दृष्टि से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण काव्य ही अलंकृत शैली में निबद्ध है। यहाँ हमें श्लेष[1], अनुप्रास[2], यमक[3], उपमा[4], उत्प्रेक्षा[5], रूपक[6], अतिशयोक्ति, भ्रान्तिमान्, संदेह, विशेषोक्ति, विभावना, अपह्नुति, परिसंख्या, समासोक्ति, काव्यलिंग, व्यतिरेक तथा अर्थान्तरन्यास अलंकारों का प्रयोग इनके भेदोपभेदों के साथ उपलब्ध होता है, जिसका विस्तृत विवेचन डॉ. जमुना पाठक ने अपनी वासवदत्ता कृति के परिशिष्ट में विस्तार से किया है। यहाँ हम इसके विषय में संकेतमात्र कर रहे हैं–

वासवदत्ता के पिता शृंगारशेखर की प्रशंसाप्रसंग में परिसंख्या अलंकार का सौन्दर्य द्रष्टव्य है–

---

[1]. विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।6।।

[2]. कटकतटगतकरिकराकृष्टभग्नहरिचन्दनस्यन्दमानरसामोद हरगन्धवाहशिशिरित–शिलातलः।

[3]. राघवः परिहरन्नपि जनकभुवं जनकभुवा सह वनं विवेश।

[4]. हस्त इव भूतिमलिनो यथा यथा लंघयति खलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायाम्।। (दुर्जन निन्दा–9)

[5]. पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। (गद्यखण्ड– 32)

[6]. नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव। (सज्जन प्रशंसा–4)

यत्र राजनि..... शशिनः कन्यातुलारोहम्, दानच्छेदः करिकपोलेषु, उत्प्रेक्षाक्षेपः काव्यालंकारेषु, क्विपां सर्वविनाशः, न जनेषु, जातिविहीनता मालासु न कुलेषु, मलिनाम्बरत्वं निशासु न जनेषु........।

इसीप्रकार कन्दर्पकेतु के वर्णन में मालादीपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है–

यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरै–ररिशिरः, अरिशिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेन..... नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्या च सप्तसागराः.......... आसादितम्।

इसीप्रकार यमक अलंकार की माला को भी हम अनेक स्थलों पर देख सकते हैं–

राजसेन राजसे नरहितो रहितो ध्रुवम्। क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि, भूलता भूलता च वचसि। साहसेन सा हसेन कमला कमलालया यया जिता।

ध्यातव्य है कि सुबन्धु सरल, सरस तथा मधुर पदावली[1] के प्रयोग में भी आलंकारिक तथा समासबहुल भाषा के समान ही पूर्णतया दक्ष हैं, जिसकी पुष्टि उनके प्रस्तुत विवेच्य काव्य का सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन करने से हो जाती है।

(xi) **वासवदत्ता में छन्द–योजना–** उल्लेखनीय है कि मुख्य रूप से गद्यकाव्य होने से प्रस्तुत कृति में छन्दों के प्रयोग तथा उनकी विविधता आदि की अधिक सम्भावनाएँ नहीं थीं, किन्तु फिर भी कवि ने यहाँ ग्रन्थ के आरम्भ में ही प्रयुक्त बारह श्लोकों में आर्या तथा अन्तिम तेरहवें श्लोक में उपजाति छन्द का सुन्दर प्रयोग किया है।

इसके अतिरिक्त एक–एक स्थल पर क्रमशः शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी एवं स्रग्धरा छन्दों का भी प्रभावी प्रयोग हुआ है। साथ ही, इन छन्दों के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य के अन्तर्गत उन्होंने कुसुमविचित्र,

---

[1] . अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला।।11।।

वंशस्थपतिता, पुष्पिताग्रा, सुकुमारा, प्रहर्षिणी, तनुमध्या[1] आदि छन्दों का भी उपमानरूप में नामोल्लेख किया है, जिससे महाकवि के छन्द विषयक गहन ज्ञान की पुष्टि होती है। इनके विषय में हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) **आर्या–** इस छन्द का प्रयोग कवि ने मंगलाचरण के अन्तर्गत माँ सरस्वती की प्रशंसा में किया है। इस छन्द के पहले और तीसरे चरण में बारह एवं दूसरे और चौथे चरण में क्रमशः अट्ठारह और 15 मात्राओं का प्रयोग किया जाता है।[2] **जैसे–**

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी।।1।।

(ख) **उपजाति–** इस छन्द का प्रयोग कवि ने मंगलाचरण के अनन्तर ग्रन्थ के उपोद्घात में किया है। इस छन्द में इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा ये दोनों छन्द परस्पर मिले होते हैं। इन्द्रवज्रा के पहले पाद में दो तगण, जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं,[3] जबकि उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, तगण, जगण तथा अन्त में दो गुरुओं का प्रयोग किया जाता है।[4] वृत्तरत्नाकरकार ने इसका लक्षण इसप्रकार किया है–

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।[5]

जगण तगण जगण दो गुरु तगण तगण जगण दो गुरु
|S| SS| |S| S S S S S S | S |S S
सरस्व तीदत्त वरप्र साद श्चक्रेसु बन्धुःसु जनैक बन्धुः।

---

1. द्रष्टव्य परिशिष्ट।
2. यस्याः प्रथमे पादे द्वादश, मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।। श्रुतबोध–4
3. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। वृत्तरत्नाकर–3/30।
4. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। वही–3/29।
5. वृत्तरत्नाकर–3/30।

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्।।13।।

(ग) **शार्दूलविक्रीडित**–इस छन्द का प्रयोग कवि ने सिंह द्वारा हाथी को आक्रान्त करने के प्रसंग में किया है। इसके अन्तर्गत मगण, सगण, जगण, सगण, तगण तगण तथा अन्त में एक गुरु का प्रयोग होता है एवं अन्त में बारह और सात वर्णों पर यति होती है। **जैसे**–

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरु
SSS ।।S ।S। ।।S SS। SS। S

पश्योदं चदवां चदंचि तवपुः पूर्वार्ध पश्चार्ध भाक्।
स्तब्धोत्तानितपृष्ठनिष्ठितमनाग्भुग्नाग्रलाङ्गूलभृत्।।
दंष्ट्राकोटिविशंकटास्यकुहरः कुर्वन् सटामुत्कटा–
मुत्कर्णः कुरुते क्रमं करिपतौ क्रूराकृतिः केसरी।।15।।

(घ) **स्रग्धरा**– इस छन्द का प्रयोग कवि ने श्रृंगारशेखर के युद्ध वर्णन में किया है। इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और अन्त में तीन यगण का प्रयोग किया जाता है एवं प्रत्येक सात वर्ण के बाद यति होती है[1]–

मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण
SSS S।S S।। ।।। ।SS ।SS ।SS

जीवाकृ ष्टिंचच क्रेमृध भुविध नुषःश त्रुरासी दगतासु।
र्लक्षाप्तिर्मार्गणानामभवदरिबले तद्यशस्तेन लब्धम्।
मुक्ता तेन क्षमेति त्वरितमरिबलैरुत्तमाङ्गैः प्रतिष्ठा
पंचत्वं द्वेषिसैन्यैर्गतमवनिपतिर्नाप सङ्ख्यान्तरं सः।।18।।

(ङ) **शिखरिणी**– यह छन्द भी श्रृंगारशेखर के वर्णन में ही प्रयुक्त हुआ है। इसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और अन्त में लघु और गुरु का प्रयोग होता है।[2] जैसे–

यगण मगण नगण सगण भगण लघु गुरु
।SS SSS ।।। ।।S S।। ।S

---

[1] म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्। वृत्तरत्नाकर–3/102।

[2]. रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी। वही–3/90।

सुराणां पाताऽसौ सपुन रतिपुण यैकहृ दयो
ग्रहस्तस्यास्थाने गुरुरुचितमार्गे स निरतः।
करस्तस्यात्यर्थं वहति शतकोटिप्रणयितां
स सर्वस्वं दाता तृणमिव सुरेन्द्रं विजयते।।17।।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि सुबन्धु न केवल उत्कृष्ट गद्यकाव्य के प्रणयन में समर्थ थे, अपितु पद्यकाव्य की निर्मिति में भी उन्हें निपुणता प्राप्त थी।

(xii) **वासवदत्ता में रस–योजना–** उल्लेखनीय है कि महाकवि सुबन्धु केवल वर्णन प्रधान आलंकारिक–काव्य के निर्माण में ही सिद्ध हस्त नहीं हैं, अपितु वे रसयोजना में भी निपुण प्रतीत होते हैं, क्योंकि हमारे विवेच्य वासवदत्ता का अंगीरस ही रसराज शृंगार रहा है, जिसके दो पक्षों का यहाँ तलस्पर्शी प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त यहाँ वीर, अद्भुत, हास्य, रौद्र, भयानक और बीभत्स आदि रस अंगरूप में भी प्रयुक्त हुए हैं।

मुख्यता शृंगार रस की होने के कारण कवि ने इसके विप्रलम्भ और संभोग दोनों ही शृंगार भेदों का नियोजन किया है। विप्रलम्भ शृंगार में भी पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण विप्रलम्भ की अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण अनेक स्थलों पर हुआ है, जिसके विषय में हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) **शृंगार रस–** काम का उद्रेक ही 'शृंग' कहा गया है, जिसके आविर्भाव होने पर पुरुष एवं स्त्री दोनों को ही शृंगार–रस की अनुभूति होती है। इसमें नायक के लिए नायिका तथा नायिका के लिए नायक आलम्बन विभाव होते हैं, जबकि वहाँ का प्राकृतिक वातावरण सुगन्धित वायु का प्रसरण, कोयल की कूक, चन्द्रमा आदि प्राकृतिक उपादान उद्दीपन विभाव के रूप में शृंगारिक भावों को उद्दिप्त करने में सहायक होते हैं। हस्तसंचालन, परस्पर प्रेक्षण, स्पर्शन, कटाक्ष, भ्रू–विक्षेपादि यहाँ अनुभाव हैं, जिनके माध्यम से नायक, नायिका अपने मन

के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप व्यक्ति के मन में ही स्थित 'रति' स्थायीभाव श्रृंगार–रस के रूप में परिवर्तित होकर उन्हें आनन्द की अनुभूति कराता है। इसके दो भेद हैं– संयोग तथा विप्रलम्भ श्रृंगार। इनमें भी विप्रलम्भ श्रृंगार के साहित्य शास्त्रियों ने पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुणा रूप से चार भेद किए हैं।[1]

जहाँ तक वासवदत्ता में श्रृंगार रस का प्रश्न है, यहाँ हमें श्रृंगार के दोनों ही स्वरूप देखने को मिलते हैं, क्योंकि इस काव्य की रचना ही कवि ने नायक कन्दर्पकेतु तथा नायिका वासवदत्ता के परस्पर प्रेम को आधार बनाकर की है। सर्वप्रथम ये दोनों ही स्वप्न में एक दूसरे को देखते हैं तथा परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। इसलिए कुसुमपुर में प्रथम मिलन से पहले की नायक–नायिका की सभी श्रृंगारिक चेष्टाएँ **पूर्वराग** के रूप में प्रयुक्त हुई हैं, जिनका कवि ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है–

अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा विबन्निव जनितर्ष्ययेव निद्रया चिरसेवितया स मुमुचे। अथ प्रबुद्धस्तु विषसर– सीव दुर्जनवचसीव निमग्नमात्मानमवधारयितुं न शशाक।......

'एह्येहि प्रियतमे! मा गच्छ, मा गच्छे' ति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव चक्षुषि, निखातामिव हृदये प्रियतमा– माजुहाव। ततस्तत्रैव शय्यातले निलीनो निषिद्धाशेषपरिजनो दत्तकपाटः, परिहृतताम्बूलादि सकलोपभोगस्तं दिवसमनयत्। तथैव निशामपि स्वप्नसमागमेच्छया कथमप्यनैषीत्।

कुछ इसीप्रकार की स्थिति नायिका वासवदत्ता की भी देखी जा सकती है–

इति बहुविध चिन्तयन्ती, विरहमुर्मुरमध्यमधिरूढेव, मदनदावा– ग्निशिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्निगृहीतेव, दक्षिणमारुतरुद्र पावक–

---

[1]. साहित्यदर्पण– विश्वनाथ, 3/183–186।

ग्रस्तेव, उन्मादपातालगृहं प्रविष्टेव, शून्यकरणग्रामेव वर्तमानाः, हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलितमिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपंजरप्रविष्टमिव, मर्मान्तरस्थितमिव, मज्जार–सशवलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पललसंविभक्तमिव, कन्दर्पकेतुं मन्यमाना, उन्मत्तेव, अन्धेव, बहिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छागृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव, यौवनसागरतरलतरङ्गपरम्परापरिगतेव, रागरज्जुभिः परिवारितेव, कन्दर्प कुसुमबाणैः कीलितेव, शृङ्गारभावनाविषरसघूर्णितेव, रूपपरिभावनशल्य कीर्तितेव, मलयानिलापहृतजीवितेव भवन्ती, 'हा प्रिये, सख्यनङ्गलेखे! वितर हृदये मे पाणिपद्मम्, दुःसहो विरहसन्तापः। (गद्यखण्ड–65)

शृंगार की दूसरी अवस्था 'मान' का कोई उदाहरण यहाँ प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु शाप के कारण नायिका के पत्थर की मूर्ति बन जाने[1] से नायक का वियोग इसके तीसरे भेद 'प्रवास' के रूप में अवश्य चित्रित किया गया है–

कन्दर्पकेतुः प्रबुद्धः, प्रियया विना कृतं लतागृहमवलोक्य उत्थाय च तत इतो दत्तदृष्टिः, क्षणं विटपिषु, क्षणं लतान्तरेषु, क्षणमधः कूपेषु, क्षणमूर्ध्वं तरुशिखरेषु, क्षणं शुष्कपर्णराशिषु, क्षणमाकाशतले, क्षणं दिक्षु, क्षणं विदिक्षु च भ्रमन्ननवरतविरहानलदह्यमानहृदयो विललाप। हा प्रिये! वासवदत्ते! देहि मे दर्शनम्। (गद्यखण्ड–124)

उल्लेखनीय है कि इस प्रवास में भय भी कारण बना है, जिसकी ओर कवि ने नायक–नायिका दोनों के मिलन के अवसर पर वासवदत्ता के कथन द्वारा संकेत भी किया है–

---

[1]. ततश्च यस्याश्रमः, तेन मुनिना पुष्पादिकमादायागतेन योगदृशा प्रतिपन्नवृत्तान्तेन 'त्वत्कृते ममायमाश्रमो भग्न' इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ता–ऽस्म्यहम्। (गद्यखण्ड– 147)

चिन्तितं मया यद्यहमार्यपुत्राय कथयामि तदा स एकाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ च कथयामि तदेभिरहं घातनीयेति चिन्ताक्षण एव एका– मिषलुब्धयोरिव गृध्रयोः तयोर्युद्धमासीत्। (गद्यखण्ड–139)

इसके अतिरिक्त नायिका का शाप के कारण पाषाणमूर्ति बनना तथा जिसके परिणाम स्वरूप नायक का वियोग, तदनन्तर उसका वासवदत्ता के वियोग में ढूँढते हुए वन में खाक छानना अनेक प्रकार से विलाप करना आदि प्रसंग करुण–विप्रलम्भ के उदाहरणरूप में देखे जा सकते हैं। जहाँ तक संभोग–शृंगार का प्रश्न है, कवि ने नायक–नायिका में मिलन के क्षणों को यहाँ अत्यल्प ही वर्णित किया है, क्योंकि प्रथम बार यहाँ इन दोनों का मिलन वासवदत्ता के महल में क्षणभर के लिए ही होता है, जहाँ ये एक दूसरे को देखकर मूर्छित हो जाते हैं।[1] उसके बाद वायु के समान वेग वाले जादू के घोड़े पर बैठ कर विन्ध्याटवी पहुँचने पर ही दोनों निद्रा के आगोश में समा जाते हैं।

इस अवसर पर कवि के पास संभोग–शृंगार के प्रभावी अवसर के होते हुए भी इनके विरह को ही चित्रित करना अधिक उचित समझा है। उसके बाद इन दोनों का कथा के अन्त में ही मिलन होता है, तभी मकरन्द का आगमन होने से यहाँ भी सम्भोग–शृंगार का चित्रण नहीं किया जा सका है। इसलिए प्रतीत होता है कि कवि शृंगार के उदात्त तथा मर्यादितरूप का ही पक्षधर रहा है। हाँ कन्यारूप में वासवदत्ता के शृंगारिक चित्रण इसका अवलोकन अवश्य ही पर्याप्त कर सकते हैं।

जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि शृंगार–रस के अतिरिक्त महाकवि ने यहाँ अवसर प्राप्त होने पर हास्य, रौद्र, वीर,

---

[1]. अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबतः कन्दर्पकेतोर्जहार चेतनां मूर्च्छा। तमपि पश्यन्ती वासवदत्ता मुमूर्च्छ। (गद्यखण्ड– 113)

भयानक, अद्भुत तथा बीभत्स रसों का अंग रूप में प्रयोग किया है, जिसके विषय में हम यहाँ केवल संकेतमात्र ही कर रहे हैं–

(ख) **हास्यरस–** यद्यपि सम्पूर्ण कृति में इस रस के चित्रण का कवि को अवसर ही नहीं था, किन्तु फिर भी आरम्भिक पद्यों में से केवल एक स्थल पर ही हास्यरस की प्रतीति हो रही है, जो यहाँ कृष्णविषयक रतिभाव[1] के अंग रूप में ही प्रयुक्त हुआ है–

खिन्नोऽसि मुंच शैलं बिभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुजः
भरभुग्नविततबाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति।।2।।

प्रस्तुत श्लोक में ग्वाले आलम्बन विभाव, उनकी विविध प्रकार की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव तथा झुकी हुई भुजाएँ अनुभाव एवं श्रम, लज्जा, चापल्य आदि संचारीभावों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे परिपुष्ट हुआ सहृदय का हास नामक स्थायीभाव हास्यरस के रूप में परिणत हुआ है।

(ग) **रौद्ररस–** प्रस्तुत विवेच्य कृति में हाथी के ऊपर सिंह द्वारा किए गए आक्रमण के प्रसंग में इस रस का चित्रण हुआ है, जहाँ पर चिंघाड़ता हुआ हाथी आलम्बन, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव के रूप में वर्णित हैं तथा सिंह का रौद्ररूप अंगों को सिकोड़ना आदि अनुभाव एवं उसके मस्तक को विदीर्ण करना, उग्रता, क्रूरतापूर्वक देखना आदि संचारीभावों के रूप में चित्रित किए गए हैं, जिनसे परिपुष्ट होकर सहृदय के हृदय में स्थित स्थायीभाव क्रोध रौद्ररस रूप में परिणत हो गया है–

उत्कण्ठोऽयमकाण्डचण्डिमपटुः स्फारस्फुरत्केसरः,
क्रूराकारकरालवक्त्रकुहरः स्तब्धोर्ध्वलाङ्गूलभृत्,
चित्रे चापि न शक्यतेऽभि(वि)लिखितुं सर्वांगसंकोचभाक्,
फीटकुर्वद् गिरिकुंजकुंजरबृहत्कुम्भस्थलस्थो हरिः।।18।।

---

[1]. रतिर्देवादिविषया भावः प्रोक्तः। मम्मट– काव्यप्रकाश।

(घ) **वीररस–** प्रस्तुत विवेच्य कृति में इस रस के केवल तीन प्रसंग ही प्रयुक्त हुए हैं–

(क) चिन्तामणि वर्णन (ख) कन्दर्पकेतु वर्णन (ग) तथा किरात सेनाओं का युद्धवर्णन। इनमें भी युद्धवर्णन में वीररस का अपेक्षाकृत अधिक परिपाक देखा जा सकता है–

ततः प्रवृत्तशरासारदुर्दिनस्थगितदिकरकिरणे, रणकर्मविशारद द्विरदकरदूरोत्क्षिप्तखड्गधरसुभटाश्लिष्यमाणविद्याधरविभ्रमे, समरदर्शन संचरदनेकनभश्चरचारणरचितचक्रवाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विप–पदसमाप्तपिशाचिकाकर्णोलूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशीकभीरूणि, प्रस्कन्नक्लीवजने, रणोद्यतजितकाशिनि रणखले, शृङ्गालिकाशृगालप्रार्थनीयेष्वामिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टेष्विव, विश्वत्र दुर्भगेष्विव, शरीरेष्वनास्थां कलयन्तः, समं द्विषतां धनुषांच जीवाकर्षणं योधाश्चक्रुः। (गद्यखण्ड–140)

उक्त स्थल पर सभी प्रतिद्वन्द्वी किरात सैनिकों का समूह आलम्बन, एक दूसरे प्राणों का हरण करने का प्रयास उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए युद्ध क्षेत्र का वर्णन होने से वीररस का परिपाक हुआ है।

(ङ) **भयानक रस–** इसी क्रम में किरात सेनाओं के बीच में युद्ध के भयानक दृश्य के वर्णन में हमें भयानक रस की प्रतीति हो रही है–

नारायण इव कश्चिन्नरकच्छेदमकार्षीत्। कश्चिद् बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवचनदर्शनोऽभवत्। कश्चित् क्षपणक इव कटावृत–विग्रहोऽभवत्। कश्चिदाशंकितो रुभंगः सुयोधन इव पयसि विवेशः। कश्चित्सुरापद्विज इव पपात। कश्चित् शरतल्पगतो भीष्म इव गतांयु–श्चिरं श्वसन्नासीत्। कश्चित् कर्ण इव विक्लवीकृतसर्वांगः शक्तिमोक्ष–मकरोत्। कश्चिद्राघव इव रावणवधमकरोत्। (गद्यखण्ड–145)

यहाँ किरात सैनिक आलम्बन, उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन तथा प्रतिपक्षी सैनिक आश्रय, उनके सिरों का कटना, भय से शवों के बीच में छिपना आदि अनुभाव और जुगुप्सा, संत्रास, दीनता, शंका आदि संचारीरूप में प्रयुक्त होने से भयानक रस का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

(च) **बीभत्स रस–** यहाँ प्रयुक्त श्मशान वर्णन में बीभत्स रस के दर्शन किए जा सकते हैं, जहाँ पर दुर्गन्ध, रुधिर, मेदा, मांस आदि बिखरे पड़े हैं–

ततः क्रमेण गव्यूतिमात्रमध्वानं गत्वा, नरजांगलकवल–नाभिलाषमिलितनिःशंककंककुलसंकुलेन,अर्धदग्धसचिताचक्रसिमसिमाय–मानवसाविस्रविकटकटतृष्णाचटुलकटपूतनोत्तालवेतालरवभीषणेन, शूल–शिखरारोपितशंकितवर्णकर्णनासिकच्छेदरुधिरपटलपतितझंकारिकरकोटिक पूरकरालकौणपनृत्ततुमुलेन, भस्मरालीकेलिसम्भारभरितभूमिभागबीभत्सेन, कटाग्निदह्यमानपटुचटचटन्नृकरोटिकंकारभैरवेण,विवृतोल्कामुखीमुखज्वल –ज्ज्वलनज्वालाजटिलेन,आन्त्रतन्तुप्रोतकपालकलितकुचप्रालम्बडामर–डाकिनीगणकृतकुणपविभागकोलाहलेन, आर्द्रसिरारचितविवाहमंगल–प्रतिसरपिशाचमिथुनप्रदक्षिणीक्रियमाणचितानलेन, शूलपाणिनेव कपाला–वलिशिवाबहुभूतिभुजगराजावरुद्धदेहेन, पुरुषातिशयेनेव अनेकमण्डल–कृतसेवेन, दण्डकारण्येनेव कबन्धाधिष्ठितेन, चक्रवर्तिनेव अनेकनरेन्द्र–परिवृतेन...। (गद्यखण्ड–116)

(छ) **अद्भुत रस–** प्रस्तुत काव्य के अन्त में प्रयुक्त आकाशवाणी में हमें अद्भुतरस के दर्शन होते हैं–

कृतस्नानादिसकलकृत्यो जलनिधिजलमवतरितुमारेभे, शरीर–त्यागाय। अथ सानुग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयंकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिंशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत्–

'आर्य कन्दर्पकेतो! पुनरपि तव प्रियया संगतिर्भविष्यत्यचिरेण तद्विरम मरणव्यवसायात्।' (गद्यखण्ड–131)

यहाँ आकाशवाणी का सुनना आलम्बन इनके गुणों की महिमा का कथन उद्दीपन, स्वेद, संभ्रम रोमांच आदि अनुभाव और वितर्क, आवेग, हर्ष आदि संचारीरूप में प्रयुक्त हुए हैं। इन सबसे परिपुष्ट हुआ 'आश्चर्य' नामक स्थायीभाव रस रूप में परिणत हुआ है।

(ज) **करुण रस**– इसीप्रकार यहाँ काव्य के नायक कन्दर्पकेतु के विलाप में हमें करुणरस के दर्शन होते हैं–

प्रियया विनाकृतं लतागृहमवलोक्य उत्थाय च तत इतो दत्तदृष्टिः, क्षणं विटपिषु, क्षणं लतान्तरेषु, क्षणमधः कूपेषु, क्षणमूर्ध्वं तरुशिखरेषु, क्षणं शुष्कपर्णराशिषु, क्षणमाकाशतले, क्षणं दिक्षु, क्षणं विदिक्षु च भ्रमन्ननवरतविरहानलदह्यमानहृदयो विललाप। हा प्रिये! मकरन्द! पश्य मे दैवदुर्विलसितम्। किं पूर्वं मया कृतमनवदातं कर्म। अहो, दुर्विपाका नियतिः। अहो, दूरतिक्रमा कालगतिः। (गद्यखण्ड–124)

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि वासवदत्ता में अंगीरूप में शृंगाररस के दोनों पक्षों संयोग तथा वियोग का परिपाक होते हुए भी अंगीरूप में भयानक, बीभत्स, वीर, करुण, हास्य, रौद्र एवं अद्भुत रसों के हमें पर्याप्तरूप से दर्शन होते हैं।

(xiii) **महाकवि सुबन्धु का पर्यावरण–प्रेम**– इसी प्रसंग में विशेषरूप से उल्लेखनीय यह भी है कि महाकवि सुबन्धु का प्रस्तुत गद्यकाव्य में पर्यावरण के प्रति विशेष प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। इतना ही नहीं, एक बार तो यह भी प्रतीत होता है कि उन्होंने इस काव्य की संरचना ही अपने पर्यावरण विषयक प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए की है, क्योंकि यहाँ आरम्भ से लेकर अन्त तक कवि ने कुछ क्षणों के लिए भी प्रकृति के उपादानों को विस्मृत नहीं किया है।

जैसे–प्रभात वर्णन, प्रभातकालीन वायु वर्णन, विन्ध्याचल वर्णन, रेवा वर्णन, जम्बू वृक्ष छाया वर्णन, कात्यायनी वर्णन, गंगा वर्णन, कुसुमपुर पादप वर्णन, वसन्त वर्णन, मलय मारुत वर्णन, सूर्यास्त वर्णन,

सन्ध्या वर्णन, तिमिर वर्णन, रात्रि नक्षत्र वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन, श्मशान भूमि वर्णन, विन्ध्याटवी वर्णन, प्रातः वर्णन, सूर्योदय वर्णन, सागर वर्णन, वर्षाकाल वर्णन, इन्द्रधनुष वर्णन, विद्युत् वर्णन एवं शरद्काल आदि के विस्तृत तथा गम्भीर वर्णनों में कवि का प्रकृति तथा उसके उपादानों के प्रति गहरा लगाव अभिव्यक्त हुआ है।

प्रकृति के प्रत्येक उपादान के प्रति कवि की गहन दृष्टि तथा प्रेम दोनों को ही सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है, जिससे प्रतीत होता है कि महाकवि सुबन्धु ने प्रकृति का अत्यधिक निकट से अवलोकन किया था, यह उनके रोम–रोम में बसी हुई है। यही कारण है कि ये सभी वर्णन अत्यधिक सजीव हो उठे हैं। सागर–वर्णन का उदाहरण दर्शनीय है, जहाँ कवि ने समुद्र के जीवों का अत्यन्त सुन्दर तथा चित्ताकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है–

...ज्योत्स्नासहोदरीभिरिव, शशांकमण्डलपरिशेषपरमाणुसन्तति–भिरिव, लक्ष्मीलीलातर्पणधाराभिरिव, जलदेवताचन्दनविच्छि– त्तिभिरिव, फेनराजिभिरुपान्तरमणीयम्,अपरमिव गगनतलमवनितलमवतीर्णम्, अच्छ–जलादुच्छलच्छीकरनिकरेण नभश्चारान् मुक्ताफलैरिव विलोभयन्तम्, अभयाभ्यर्थनागतानेकसपक्षक्षितिधरभरितकुक्षिभागम्, सगरसुतविसरस–मुत्खातम्, वडवामुखगतवारिजातम्, सुरपत्युपात्तपारिजातम्, अभिजात–मणिरत्नाकरम्, करिमकरकुलसंकुलम्, शकुलकुलकवलनाभिलाष–संचरन्नक्रचक्रम्, स्तिमिततिमिंगिलकुलम्....। (गद्यखण्ड–126)

ध्यातव्य है कि इन वर्णनों में कवि का शास्त्रीय तथा पौराणिक वैदुष्य भी अभिव्यक्त हुआ है।

(xiv) **महाकवि सुबन्धु की वैज्ञानिक दृष्टि–** महाकवि की वासवदत्ता का सूक्ष्म–दृष्टि से अध्ययन करने पर हमें उनके अनेक प्रकार के वैदुष्य तथा वैज्ञानिक दृष्टि की प्रतीति स्वतः ही हो जाती है, जिसमें ऋतु–विज्ञान, भौतिक–विज्ञान, जीव–विज्ञान, सौर–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान तथा ज्योतिष–विज्ञान प्रमुख रहे हैं, जिनका हम यहाँ क्रमशः अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) **ऋतु–विज्ञान**– ध्यातव्य है कि कवि ने प्रस्तुत विवेच्य काव्य में वसन्त, शरद् तथा वर्षा प्रमुखरूप से इन तीन ऋतुओं का अत्यन्त स्वाभाविक रूप से वर्णन किया है। ये सभी वर्णन सत्य के अत्यधिक निकट रहे हैं, क्योंकि कवि इस बात से पूर्णरूप से परिचित हैं कि किस ऋतु में क्या–क्या घटनाएँ होती हैं? कौन सी वनस्पति, फल, फूल की उपलब्धि होती है, साथ ही उस ऋतु में विकसित व उपलब्ध होने वाले पुष्पों व फलों की विशेषताओं से भी वे पूर्णतया अवगत हैं। इससे उनके ऋतुज्ञान विषयक वैशिष्ट्य की स्वाभाविक रूप से प्रतीति हो रही है।

(ख) **भौतिक–विज्ञान**– प्रस्तुत कृति से कवि के भौतिक–विज्ञान विषयक ज्ञान की भी पुष्टि होती है, क्योंकि यहाँ उन्होंने प्रकाश के प्रभाव, जल का ऊपर से नीचे की ओर आना तथा चुम्बक[1] आदि के गुणों का उल्लेख किया है, जो विषय भौतिक–विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं।

चन्द्रमा द्वारा समुद्र के जलों में वृद्धि का कथन करने से महाकवि का भौतिक–विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि पूर्ण चन्द्रमा अर्थात् पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आने का कारण चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति होती है।

इसीप्रकार नदी के जलप्रवाह को रोककर ऊपर लाने का उल्लेख उनके भौतिक–विज्ञान विषयक ज्ञान को अभिव्यक्ति प्रदान करता है–

नीचदेशनद्येव न्यग्रोधोचितया ।[2]

---

[1]. प्रस्तर इव क्रूरोऽसि न चाकर्षकचुम्बकद्रावकेष्वेकोऽसि......।

द्वयर्थक दूतीसंवाद प्रसंग।(85)

[2]. विन्ध्याटवी वर्णन (38)

(ग) **रसायन–विज्ञान**– जलीय पदार्थों, पारे, गर्म करने पर पिघले हुए 'अभ्रक' आदि के उल्लेख करने के प्रसंग में कवि ने अपने रसायन–विज्ञान से सुपरिचित होने को भी परिपुष्ट किया है।[1]

(घ) **प्राणि–विज्ञान**– हम देखते हैं कि कवि ने प्रस्तुत कृति में अनेक स्थलों पर पशु, पक्षी, जीव, कीट, पतंग आदि के विषय में उनके रंग, व्यवहार आदि के सम्बन्ध में सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किए हैं, जो उनके प्राणि–विज्ञान विषयक ज्ञान की पुष्टि करते हैं। **जैसे**– उन्होंने इस काव्य में सर्प, अजगर, राजिल नामक सर्प विशेष, भ्रमर, सारिका, तोता, दीपक पर उड़ने वाले छोटे–छोटे पतंगे, हाथी तथा उनके बड़े–बड़े मुक्ताफल, केसरी सिंह, अनेक प्रकार की मछली, मक्खी, शव के मांस से प्रेम करने वाला गीदड(सियार), जीवंजीवक पक्षी विशेष, भालू, नीलगाय, शरभ, कुमुद, पनस नामक वानर, मोर, मगरमच्छ, केकड़े, कलहंस, सारस, बगुले, कौए, कोयल, कुक्कुट, खंजन पक्षी, दार्वाघाट नामक पक्षी विशेष आदि विभिन्न प्रकार के असंख्य प्राणियों का विस्तार से उल्लेख किया है, जो उनके प्राणि–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान की पुष्टि करता प्रतीत होता है। (द्रष्टव्य परिशिष्ट)

ध्यातव्य है कि 'चक्रवाक' नामक पक्षी कवि को अत्यधिक प्रिय रहा है, उपमानरूप में तथा स्वतन्त्र दोनों ही दृष्टियों से इसका यहाँ अनेकशः वर्णन किया गया है।[2]

(ङ) **सौर–विज्ञान**– उल्लेखनीय है कि कवि ने यहाँ आकाश में ग्रह–नक्षत्रों की गति तथा स्थित का भी अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है, जिससे उनके सौर–विज्ञान विषयक उनके सूक्ष्म ज्ञान की पुष्टि होती है। जैसे–

कवि ने यहाँ चिन्तामणि को दक्षिण दिशा को सुशोभित करने वाले तथा चतुरों की इच्छाओं को पूरा करने वाले 'अगस्त्य' के समान

---

[1]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

[2]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

बताया है,[1] जो उनके सौर–विज्ञान विषयक सूक्ष्म ज्ञान को परिपुष्ट करता प्रतीत होता है, क्योंकि अगस्त्य वस्तुतः भाद्रपद माह में सिंह राशि के सूर्य पर उदित होने वाला प्रसिद्ध तारा है, जो केवल दक्षिण में ही दिखायी देता है, उत्तर में नहीं। साथ ही, इसके उदित होने के बाद वर्षा ऋतु का अन्त भी माना गया है।

(च) **ज्योतिष–विज्ञान–** इसी प्रसंग में विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि सुबन्धु ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों से भी भलीप्रकार परिचित थे, यही कारण है कि हमें यहाँ ज्योतिष से जुड़ी अनेक बातों का उल्लेख सहज ही मिल जाता है। **जैसे–**

- विन्ध्याचल वर्णन में उसकी विशेषताओं का कथन करने के लिए ज्योतिष शास्त्र में प्रयुक्त होने वाली मीन, मकर, कर्म, मिथुन आदि राशियों[2] तथा शकुनि, नाग, भद्र, बालव आदि करणों से युक्त सरोवर की चर्चा श्लेष के माध्यम से की है, क्योंकि यहाँ उस सरोवर को मछलियों, मगरमच्छ तथा केकड़ों के युगलों की उपस्थिति के साथ अनेक प्रकार के पक्षी (शकुनि), सर्प, नागर मोथा एवं बालव कुल से युक्त होने वाला कहा है। (द्रष्टव्य परिशिष्ट)
- कन्या–वर्णन प्रसंग में कन्या, तुला तथा वृश्चिक राशियों तथा सूर्य, चन्द्रादि सभी नव ग्रहों के उल्लेख कवि के ज्योतिष विज्ञान विषयक गहनज्ञान की पुष्टि करता है–

भास्वताऽलंकारेण, श्वेतरोचिषा स्मितेन, लोहितेनाधरेण, सौम्येन दर्शनेन, गुरुणा नितम्बबिम्बेन, सितेन हारेण, शनैश्चरेण पादेन, तमसा केशपाशेन, विकचेन लोचनोत्पलेन, ग्रहमयीमिव....। (गद्यखण्ड–27)

यहाँ प्रयुक्त भास्वत–सूर्य, श्वेतरोचिष–चन्द्रमा, लोहित–मंगल, सौम्य–बुध, गुरु–बृहस्पति, सित–शुक्र, शनैः–शनि, तमस–राहु, विकच–केतु आदि पद ज्योतिष शास्त्र के नौ ग्रहों के लिए प्रयुक्त हुए हैं, इनमें

---

[1]. अगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधको।

[2]. मेषो वृषोऽथ मिथुनं कर्कटः सिंहकन्यके। बृहदवकहडाचक्रम्–3/1।

श्लेष के माध्यम से कवि ने वासवदत्ता के सौन्दर्य की प्रशंसा अत्यन्त प्रभावी शैली में की है, जिससे सहृदय सामाजिक अनायास ही गद्‌गद हो उठता है।[1]

(छ) **वनस्पति–विज्ञान**– वासवदत्ता के गहन अध्ययन से कवि के वनस्पति–विज्ञान विषयक गहनज्ञान की भी पुष्टि होती है, क्योंकि विशेष रूप से वन, पर्वत वर्णन प्रसंग में उन्होंने ऐसी अनेकानेक वनस्पतियों का नामोल्लेख किया है, जिन्हें वर्तमान समय में कोई जानता भी नहीं है। ध्यातव्य है कि वे इन वनस्पतियों के रंग, रूप, गुण तथा प्रभावादि से भी भलीभाँति परिचित रहे हैं, जिसके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य की संरचना करने से पूर्व महाकवि का अधिकांश जीवन वन तथा पर्वतों के भ्रमण में व्यतीत हुआ होगा, जहाँ उन्होंने वन्य–जीवों के स्वभाव तथा वृक्ष–वनस्पतियों, पुष्पों के गुण, रंग उनके विशिष्ट ऋतु में उत्पन्न होने आदि का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन किया होगा। उसी के परिणामस्वरूप उन्होंने यहाँ इन सभी का अत्यधिक सजीव वर्णन किया है। ध्यातव्य है कि कुमुद का पुष्प कवि को अत्यधिक प्रिय रहा है, उपमानरूप में तथा स्वतन्त्र दोनों ही दृष्टियों से इसका यहाँ अनेकशः उल्लेख किया गया है।

उदाहरण के लिए– यहाँ पर आम्र, उसकी मंजरी, कुमुद पुष्प उसके पल्लव, चम्पा, केतकी, नीलकमल, कुमुदिनी आदि अनेकानेक पुष्पों तथा विष–वृक्ष, कटहल, सप्तपर्ण, तिनिश नामक विशेष वृक्ष, नल नामक तृण विशेष, केले का वन, शणपुष्पी नामक घास, जामुन आदि अनेकानेक वृक्षों और अनेक प्रकार की लताओं के उल्लेखों के आधार पर महाकवि के वनस्पति–विज्ञान विषयक गहनज्ञान की भी प्रतीति सहृदय पाठक को सहज ही हो जाती है।[2]

---

[1]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

[2]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(ज) **आयुर्वेद–विज्ञान**– उल्लेखनीय है कि महाकवि सुबन्धु आयुर्वेद के व्यावहारिक ज्ञान से भी भलीभाँति परिचित रहे हैं, क्योंकि उन्होंने अनेक स्थलों पर अपने इस ज्ञान को भी प्रदर्शित किया है।

जैसे– वर्षाकालीन विद्युत्–वर्णन में काले बादलों से भरे हुए आकाश में उड़ते हुए बगुलों की उपमा उन्होंने बादलों द्वारा शंख सहित समुद्र का जल पीने के बाद वमन करने से दी है[1], क्योंकि आयुर्वेद का सर्वमान्य सिद्धान्त है, कि यदि कुछ अखाद्य पदार्थ विष आदि खा लिया जाए, तो उससे मुक्ति पाने के लिए वमन–क्रिया की जाती है, इसी विरेचन–क्रिया से व्यक्ति उस विषादि से मुक्त हो पाता है।[2]

(झ) **कोश–विज्ञान**– उल्लेखनीय है कि कवि के पास शब्दों का अथाह कोश विद्यमान है, जिसके लिए सम्भवतः उन्होंने अनेक शब्द कोशों का गहन अध्ययन किया होगा। यही कारण है कि उन्होंने किसी भी एक उपादान के लिए अनेक बार सात से दस तक अलग–अलग शब्दों का प्रयोग किया है। **जैसे**–

अपने आराध्य भगवान् विष्णु के पर्यायवाची शब्दों में उन्होंने श्री कृष्ण, चक्रधर, अच्युत, जनार्दन, पीताम्बर, नारायण, महावराह इत्यादि का प्रयोग किया है, जो उनके शब्दकोश के पर्याप्त समृद्ध होने को पुष्ट करता है। इसीप्रकार महादेव के विशेषणों के अन्तर्गत महाकवि ने नीलकण्ठ, रुद्र, शंकर, महेश्वर, पशुपति, धूर्जटि, गंगाधर तथा अष्टमूर्ति आदि पद प्रयुक्त किए हैं।

इसी प्रसंग में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि कवि को कामदेव अत्यधिक प्रिय रहा है, उपमानरूप में उन्होंने इसका अनेकानेक स्थलों पर प्रयोग किया है। इसके भी दस से अधिक

---

[1]. अतितृष्णावेगपीतजलनिधिजलशंखमानां बलाकाच्छलादुद्वमान्निवादृश्यत जलधर–निकरः। (गद्यखण्ड–134)

[2] . द्रष्टव्य परिशिष्ट।

पर्यायवाची शब्द यहाँ प्रयुक्त किए गए हैं।[1] इसके अलावा चन्द्रमा, कुमुद, सर्प, इन्द्र आदि के लिए भी अनेक पर्यायवाची पदों का उल्लेख उनके कोश–विज्ञान की समृद्धि की पुष्टि करता प्रतीत होता है।

(ञ) **चित्रकारिता–विज्ञान–** इसीप्रकार कन्या–वर्णन प्रसंग में रंगशाला की दीवार पर अंकित चित्रलेखा का कथन उन्हें चित्रकारिता की कला से भी जोड़ता प्रतीत होता है, वैसे भी प्रस्तुत काव्य में अनेकानेक चित्रात्मक–वर्णन इस कला के गहनज्ञान तथा निपुणता को अभिव्यक्ति प्रदान करते प्रतीत होते हैं।

(ट) **योग–विज्ञान–** कन्या–सौन्दर्य वर्णन प्रसंग में 'महायोगी की रसायन समृद्धि' आदि उल्लेख कवि को योग–विज्ञान से गहनरूप से संयुक्त करते हैं।

(ठ) **मणि–मन्त्र–ओषधि–विज्ञान–**इसीप्रकार कन्या–वर्णन प्रसंग में ही नेत्रों का बन्धन करने वाली महौषधि तथा मन को आकर्षित करने वाली मन्त्र–सिद्धि विषयक उल्लेख महाकवि का 'मणि–मन्त्र–ओषधि' विषयक गम्भीर ज्ञान से अवगत होना सिद्ध करते हैं।

(ठ) **संगीत–विज्ञान–** इसके अतिरिक्त महाकवि सुबन्धु को संगीत शास्त्र का भी गहन ज्ञान था, क्योंकि उन्होंने यहाँ पर संगीत के रागों में गान्धार[2] नामक स्वर विशेष तथा गीतों में मूर्च्छा स्वर के आरोह एवं अवरोह के प्रयोग होने की बात का उल्लेख किया है।[3]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि सुबन्धु का आधुनिक विज्ञानों की दृष्टि से भी ज्ञान अत्यधिक गहन था, जिसमें उनके प्राणि–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, ज्योतिष–विज्ञान, संगीत–विज्ञान आदि के तो पद–पद पर अनेकानेक उदाहरण

---

[1]. मन्मथ, कुसुमायुध, मदन, मकरध्वज, स्मर, अज, अनंग, कुसुमशर, मकरकेतु, कुसुमकेतु आदि। (द्रष्टव्य परिशिष्ट)

[2]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

[3]. गान्धारविच्छेदो रागेषु न पौरववनितासु, मूर्च्छाधिगमो गानेषु न प्रजासु... ।(51)

देखे ही जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनका समुद्र–विषयक ज्ञान भी अत्यधिक गम्भीर था, जिससे लगता है कि उन्हें समुद्र का अत्यन्त समीप से सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ था। यही कारण है कि उन्होंने समुद्र के अन्दर उत्पन्न होने वाले जीवों, वनस्पतियों, उसके किनारे उत्पन्न होने वाले वृक्षों, लताओं तथा प्राणियों की प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म गतिविधियों की जानकारी इस काव्य में सहृदय पाठक को पद–पद पर प्रदान की है। साथ ही, गणित–विज्ञान[1], इन्द्रजाल विद्या (खण्ड–26), चौरशास्त्र[2] (62) से भी वे भलीभाँति सुपरिचित थे, जिसकी ओर हमने यथास्थान संकेत किए हैं।

(xv) **वासवदत्ता में प्रतिपादित चरित्र–चित्रण**– वासवदत्ता गद्य काव्य में कवि ने अत्यल्प संख्या में पात्रों का प्रयोग किया है। इस काव्य का नायक कन्दर्पकेतु तथा नायिका वासवदत्ता रही है। इसके अतिरिक्त कन्दर्पकेतु के पिता चिन्तामणि उसका मित्र मकरन्द इसीप्रकार वासवदत्ता के पिता श्रृंगारशेखर और माता अनंगवती तथा वासवदत्ता की प्राणों से भी प्रिय सखी कलावती आदि दूसरे महत्त्वपूर्ण पात्र कहे जा सकते है। यद्यपि सारिका तमालिका तथा तोते मैना का भी कवि ने पक्षी पात्रों के रूप में ही प्रयोग किया है, जिन्होंने नायक–नायिका के मिलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह की है। इसलिए यहाँ हम प्रमुख पात्रों का क्रमशः संक्षेप में चरित्र–चित्रण प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) **कन्दर्पकेतु**– वासवदत्ता की कथा का नायक कन्दर्पकेतु धीरललित[3] श्रेणी का नायक है। यही कारण है कि इसमें शास्त्रकारों द्वारा बताए हुए वे सभी गुण विद्यमान हैं, जो इसे धीरललित की कोटि पर खरा सिद्ध करते हैं। **जैसे**–

---

[1]. विन्ध्याचल वर्णन में दूरीवाचक 'नल्व' पद का प्रयोग।

[2]. स्वयंवर में आए राजकुमारों के वर्णन–प्रसंग में चौर (स्तेय) शास्त्र के प्रवर्तक (मूलदेव) का उल्लेख किया गया है–'केचित् कलांकुरा इव विदितनगरमण्डनाः'(62)

[3]. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता।। साहित्यदर्पण– 3/30।

स्वप्न में अपनी प्रिया को देखने के बाद अपने मित्र मकरन्द द्वारा मना करने पर भी यह, राज्य का परित्याग करके वन में निकल जाता है और अन्ततः अपनी प्रिया वासवदत्ता के साथ ही काव्य के अन्त में वापस घर आता है, इसे उसकी **त्यागमयी प्रवृत्ति** का ही परिचायक कहा जा सकता है।

इसके अलावा कन्दर्पकेतु के व्यवहार में हमें कृतज्ञता का गुण भी दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि वासवदत्ता द्वारा प्रेषित सखी तमालिका से उसके सम्पूर्ण वृतान्त को जानकर, वह अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर आनन्दातिरेक से उसका आलिंगन करके अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है। इसीप्रकार काव्य के अन्त में वासवदत्ता के वियोग में मृत्यु का निश्चय करने के बाद, समुद्र के दिखायी देने पर उसके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उसे अपना उपकार करने वाला बताता है।

इसीप्रकार वह श्रेष्ठकुल में उत्पन्न हुआ है, इसके पिता चिन्तामणि एक पराक्रमी राजा हैं। यही कारण है कि वह कुछ भी कार्य करने से पहले उसके शास्त्रीय–पक्ष तथा परम्परा पर विचार करता है, तभी तो वह यह विचारकर ही अपने शरीर त्याग के निश्चय पर पहुँचता है कि इस शास्त्र द्वारा निषिद्ध कार्य को वह सर्वप्रथम नहीं कर रहा है, अपितु इससे पूर्व भी इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा ऐसा किया गया है।

लक्ष्मी तो इसे वंश–परम्परा से ही प्राप्त हुई है किन्तु अपनी प्रिया को प्राप्त करने के लिए वह उसका सहज ही त्याग कर देता है। कवि ने यहाँ इसे राज्यसुखों का भोग करने वाला, श्रेष्ठ राजाओं में उत्कृष्ट बताया है। लक्ष्मी और सरस्वती मानो इसके शरीर में निवास करने के लिए परस्पर स्पर्धा करती हैं।

सौन्दर्य में यह कामदेव के समान है, जिसका काव्यकार ने विस्तार से उल्लेख किया है, इसी का परिणाम है कि वासवदत्ता स्वप्न में देखकर ही इसे पाने के लिए मानो पागल सी हो जाती है। इसके

अतिरिक्त भी इसमें युवावस्था, उत्साह सम्पन्नता, सभी कार्यों को तत्परता से करना, प्रजा के प्रति अनुरक्त भाव, तेजस्विता, चातुर्य, मृदुलता तथा सदाचार आदि अनेक गुण दृष्टिगोचर होते हैं, जो इसे प्रस्तुत काव्य के आदर्श नायक के रूप में प्रस्थापित करते हैं।

(ख) **वासवदत्ता**– प्रस्तुत कथा में वासवदत्ता का नायिका रूप में नियोजन किया गया है। अनिन्द्य सुन्दरी यह वस्तुतः सभीप्रकार की स्त्रियोचित विशेषताओं से युक्त है। कवि का मानना है कि विधाता ने स्वयं इसका निर्माण अपने हाथों से अत्यन्त सावधानी के साथ किया है। यही कारण है कि इसके नख–शिख वर्णन में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कवित्व मेधा का भरपूर उपयोग किया है, जिसमें मेखला–वर्णन, कटि प्रदेश–वर्णन, कुच–वर्णन, अधर–वर्णन, नेत्र–वर्णन, नासिका व भ्रूलता वर्णन करते हुए सहस्रों युवकों के नेत्रों को आनन्दित करने वाली बताया है। इसके अद्भुत सौन्दर्य का ही परिणाम है कि नायक साक्षात् रूप से प्रथम मिलन के अवसर पर इसे देखते ही मूर्च्छित हो जाता है तथा किरात के दो समूह इसे पाने के लिए आपस में ही लड़ते हुए अपने प्राणों को ही गँवा बैठते हैं। कवि ने इसके सौन्दर्य के अनेक चित्र यहाँ प्रस्तुत किए है, जिनमें एक उदाहरण प्रस्तुत है–

सुन्दररूप वाली, विकसित पुतलियों से युक्त, छिद्ररहित दाँतों की पंक्ति से विभूषित, माला एवं सुन्दर केशों से युक्त, अपने वंश को आनन्दविभोर करने वाली, काम से सुशोभित, लावण्य से युक्त, युवकों के मन को हरण करने वाली परिणाम को प्राप्त यौवन से युक्त होते हुए भी वह अपने विवाह के प्रति पराङ्मुख थी।[1]

इसके अतिरिक्त सच्चा प्रेम करने वाली, दूर–दृष्टि सम्पन्न तथा दयालु स्वभाव आदि गुण भी हमें इसमें देखने को मिलते हैं,

---

[1] . अथ सा रावणभुजवन इव उल्लसिगोत्रे, विन्ध्याचल इव मदनालङ्कृते, पारावार इव संजातलावण्ये, नन्दनवन इव सदाकल्पतरुणाभिनन्दिते, पवन इव सुमनोहरे, परिणाममुपयात्यपि यौवने परिणयपराङ्मुखी तस्थौ। (गद्यखण्ड– 55)

क्योंकि यह एकमात्र कन्दर्पकेतु को ही प्रेम करती है, जिसे वह प्रत्येक क्षण निभाती है। किरातों की सेनाओं से घिर जाने पर वह अपने प्रियतम के पास नहीं जाती है, क्योंकि अकेला होने से उसके मारे जाने का भय है, जो उसकी दूरदर्शिता को ही सिद्ध करते हैं। इसीप्रकार पहले सोकर उठने पर वह कन्दर्पकेतु के भूखा होने की सम्भावना से उसके लिए फल–मूल लेने के लिए वन में जाती है, जो इसके दयालु स्वभाव को ही पुष्ट करता है।

(ग) **चिन्तामणि**– कथा के नायक कन्दर्पकेतु के पिता का नाम ही चिन्तामणि है। इनका चित्रण कवि ने काव्य के आरम्भ में ही किया है। तदनुसार– ये एक पराक्रमी राजा हैं। अपने पराक्रम से ही इन्होंने पृथ्वीमण्डल के सभी राजाओं को अनायास ही जीत लिया है। इसीलिए इन्हें यहाँ सार्वभौम, दानी, प्रजावत्सल, धार्मिक, कुशल प्रशासक, अद्भुत सौन्दर्य सम्पन्न तथा विद्वान् राजा के रूप में चित्रित किया गया है। इनकी अनेक पत्नियाँ हैं, जिन्हें यह असीम रतिसुख प्रदान करने में सक्षम है।

अट्ठारह विद्याओं में निपुण यह न केवल स्वयं विद्वान् है, किन्तु अपने राज्य के सभी विद्वानों तथा कवियों को भी आश्रय प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त इनके चरित्र की अनेक विशेषताओं में यहाँ कवि ने इन्हें गम्भीर, मर्यादित आचरण करने वाला, चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव सम्पन्न तथा कुशल विद्वानों को उत्तम दक्षिणा देने वाला कहा है।

(घ) **श्रृंगारशेखर**– नायिका वासवदत्ता के पिता तथा कुसुमपुर के राजारूप में चित्रित श्रृंगारशेखर का चरित्र–चित्रण भी कवि ने कवित्व मेधा के भरपूर उपयोग द्वारा किया है, जो एक पुत्री का पिता होने के नाते उसे योग्य वर को प्रदान करने के इच्छुक हैं, इसके लिए ये स्वयंवर का आयोजन भी करते हैं, फिर भी जब वासवदत्ता विवाह के लिए उद्यत नहीं हुई, तो ये हठपूर्वक विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा

विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु के साथ इसका विवाह करने का निर्णय कर लेते हैं। यद्यपि वासवदत्ता फिर भी अपने अभिलषित वर कन्दर्पकेतु के साथ ही जादू के घोड़े पर बैठकर उनसे कहीं दूर चली जाती है, किन्तु फिर भी श्रृंगारशेखर यहाँ एक आदर्श पिता के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

इसके अतिरिक्त कवि ने इनके चरित्र में शत्रुओं का विनाश करने वाला, पवित्र कार्यों को करने वाला, सुखी, धर्मात्मा, उत्कृष्ट मन से युक्त, सज्जनों का अनुसरण करने वाला, दानी तथा कल्याणों को देने वाला आदि अनेकानेक विशेषताओं का उल्लेख किया है।

(ङ) **मकरन्द**– एक सच्चे, निःस्वार्थी मित्र के रूप में कवि ने इस पात्र का चित्रण किया है, जो सहृदय पाठक को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। भर्तृहरि द्वारा नीतिशतकम् में बताए गए सभी गुण इसमें विद्यमान है।[1] यद्यपि वह काम सन्तप्त कन्दर्पकेतु द्वारा अपनाए गए मार्ग से रोकता है, किन्तु उसके न मानने पर वह एक श्रेष्ठ मित्र के समान वन में भी उसके साथ चला जाता है, जहाँ वह उसके साथ वन के दुःखों को भी भोगता है। इस प्रसंग में कन्दर्प को दिया गया उपदेश सहृदयों को बाण के शुकनासोपदेश की याद दिलाता है, जो उन्होंने सम्भवतः इसी उपदेश से प्रभावित होकर दिलाया है।

इस उपदेश में दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा की गयी है, जो वस्तुतः प्रत्येक संस्कृत प्रेमी के लिए अवलोकनीय है, क्योंकि इसे वस्तुतः इस काव्य का हृदय कहा जा सकता है। कुल मिलाकर मकरन्द का चरित्र भी यहाँ कवि ने एक आदर्श मित्र के रूप में चित्रित किया है, जो प्रत्येक मित्र के लिए अनुकरणीय है।

---

[1] पापान् निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं च निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।।78।।
(नीतिशतकम्)

(च) **अनंगवती**– राजा श्रृंगारशेखर की महारानी तथा नायिका वासवदत्ता की माता के रूप में इस पात्र का चित्रण कवि ने अधिक विस्तार से नहीं किया है, किन्तु फिर भी यहाँ इसे सखियों के समूह को आह्लादित करने वाली, सुकुमार, नयी–नयी माला के समान, चन्द्रलेखा नामक दन्तक्षत विशेष से अलंकृत अर्थात् पति की प्यारी, घने सुन्दर केशों से युक्त और मधुर स्वर सम्पन्न बताया है।

(छ) **कलावती**– कवि ने इसे वासवदत्ता की अत्यधिक निकट तथा प्रियसखी के रूप में चित्रित किया है। कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता के प्रथम मिलन के अवसर पर दोनों के मूर्च्छित होने के बाद, अपनी सखी वासवदत्ता की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति से और इसकी पारिवारिक स्थिति से नायक को अवगत कराने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, क्योंकि कम समय में भी अधिकाधिक भावों को अभिव्यक्त करके अपनी सखी वासवदत्ता को उसके प्रियतम के अपेक्षाकृत अधिक निकट लाने तथा भावी–योजना को तैयार करने में इस पात्र का अभूतपूर्व योगदान कहा जा सकता है, इसी के परिणाम स्वरूप नायक कन्दर्पकेतु, वासवदत्ता को वायु के समान गति वाले घोड़े पर बैठा कर वहाँ से बहुत दूर ले जाता है। इसप्रकार नायक–नायिका को मिलाने में आदर्श सखी के रूप में इस पात्र की भूमिका को महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

(ज) **तमालिका दूती** (पक्षीपात्र)– जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं। महाकवि ने इस काव्य में तोता, मैना तथा एक दूती के रूप में तमालिका नामक सारिका का भी पात्र रूप में ही प्रयोग किया है, ये तीनों पक्षी–पात्र हैं, जो मनुष्य की वाणी में बोलते हैं, इन तीनों का ही नायक–नायिका के परस्पर मिलन में अभूतपूर्व योगदान रहा है, क्योंकि जामुन के वृक्ष पर रहने वाले तोता–मैना के परस्पर वार्तालाप से नायक को नायिका वासवदत्ता के कन्दर्पकेतु के प्रति प्रेम का पता चलता है, जो कथा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहण करता है,

तो तमालिका सारिका तो वासवदत्ता का प्रेम–पत्र ही नायक को लाकर देती है तथा अपने दूती तथा प्रिय सखी विषयक दोनों ही कर्तव्यों का उत्कृष्टता से निर्वाह करती है। एक श्रेष्ठ दूती के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य के पात्रों के चरित्र–चित्रण में कवि ने सर्वथा आदर्शवादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है, यहाँ नायक आदर्श प्रेमी, पुत्र, मित्र है, तो नायिका भी अपने प्रेमी के प्रति प्राणपन से समर्पित चित्रित की गयी है। पिता चिन्तामणि पुत्र कन्दर्पकेतु को अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने से नहीं रोकते हैं तो वासवदत्ता के पिता शृंगारशेखर अपनी पुत्री को योग्य वर के साथ विधिवत् पाणिग्रहण संस्कार के लिए ही चिन्तित रहते हैं। इन सभी में मित्र मकरन्द तो मित्रता के आदर्श की पराकाष्ठा को ही पा लेते हैं, जिससे स्वयं कवि की आदर्शवादी भावना का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

(xvi) **वासवदत्ता के पौराणिक प्रसंग**[1]– जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि महाकवि सुबन्धु अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे, विशेषरूप से काव्यसृजन से पूर्व उन्होंने रामायण, महाभारत तथा पुराणों का गहन अध्ययन किया था, इसीलिए यहाँ पर उपमानों के प्रयोग में उन्होंने अनेकानेक पौराणिक प्रसंगों का भी सुन्दर उपयोग किया है, जिनका विस्तार से उल्लेख हमने परिशिष्ट में किया है, किन्तु यहाँ अत्यन्त संक्षेप में इनका कथन कर रहे हैं। **जैसे–**

- **आनकदुन्दुभिरिव कृतकाव्यादरः**– यहाँ 'आनकदुन्दुभि' पद का प्रयोग वस्तुतः वसुदेव के उपमानरूप में किया है। विष्णु तथा वायुपुराण में इस विषय में उल्लेख मिलता है, क्योंकि 'श्रीकृष्ण के पिता तथा 'अनु' के पुत्र वसुदेव के जन्म के अवसर पर देवताओं

---

[1]. विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

द्वारा नगाड़े बजाए गए थे,' इसलिए इनका नाम आनकदुन्दुभि पड़ा,[1] आनकदुन्दुभि वस्तुतः विशाल नगाड़े को कहा जाता है।

• **उषामिव अनिरुद्धदर्शनमुखाम्–** राजा बलि के पुत्र बाणासुर की पुत्री का नाम उषा था, जिसने रुक्मवती के पुत्र तथा कृष्ण के पौत्र कामदेव के मानो अवतार 'प्रद्युम्न' को स्वप्न में देखा, जिससे प्रेम होने के कारण उसकी सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को महल में लेकर आयी, जिसे बाणासुर ने बन्दी बना लिया। बाद में पता चलने पर श्रीकृष्ण तथा बाणासुर का भयंकर युद्ध हुआ और बाणासुर मारा गया तथा अनिरुद्ध और उषा का विवाह हो गया।[2]

• **कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पंचत्वमयासीत्–** जमदग्नि ऋषि के पास अद्भुत गाय थी, जिसके द्वारा वे अपनी दैनिक क्रियाओं की वस्तुओं को प्राप्त कर लेते थे। एक बार कार्तवीर्य ऋषि के आश्रम में गया। ऋषि ने गाय की कृपा से उसका भव्य स्वागत किया। कार्तवीर्य ने अहंकारवश जमदग्नि से उस गाय की माँग की, जिसे उन्होंने देने से मना कर दिया।

परिणामस्वरूप कार्तवीर्य ने सेना के साथ ऋषि के आश्रम पर आक्रमण कर दिया। एक बार परास्त होने के बाद उसने फिर से आक्रमण किया, जिसमें ऋषि जमदग्नि की मृत्यु हो गयी। बाद में जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अपनी माता से सम्पूर्ण समाचार को जानकर पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित करने की प्रतिज्ञा की तथा भयंकर युद्ध करके कार्तवीर्य को मार डाला।[3]

---

[1]. प्राचीन चरित्र कोष–सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्र कोष मण्डल, पूना पृष्ठ–59।

[2]. प्राचीन चरित्र कोष– सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्र कोष मण्डल, पूना– पृष्ठ, 93 ।

[3]. वही– पृष्ठ–135 ।

• **कुम्भीनसीकुक्षिमिव लवणोत्पत्तिस्थानम्–** रावण की माता की बहन का नाम कुम्भीनसी था, जिसका अपहरण मधु नामक राक्षस ने रावण की अनुपस्थिति में कर लिया, जिससे बाद में लवणासुर की उत्पत्ति हुई। यहाँ उक्त उपमान के माध्यम से कवि ने इसी पौराणिक घटना की ओर संकेत किया है।[1]

• **तार्क्ष्य इव विनताऽऽनन्दकरः–** महर्षि कश्यप का ही दूसरा नाम तार्क्ष्य था, जिसका विवाह दक्ष की चार पुत्रियों विनता, कद्रू, पतंगी तथा यामिनी से हुआ था। कवि ने उक्त उपमान द्वारा इसी ओर संकेत किया है।[2]

• **तेनागस्त्यवचनसंहृतब्रह्माण्डखण्डगतशिखरसहस्रः**–महर्षि अगस्त्य की उत्पत्ति उर्वशी को देखकर कामपीडित मित्रावरुण के वीर्यपात से हुई। इसीलिए उनका दूसरा नाम 'मैत्रावरुणि' भी है। वे अत्यधिक प्रभावशाली थे। पुराणों के अनुसार अगस्त्य ऋषि के कहने पर विन्ध्याचल ने अपने हजारों शिखरों को सिकोड़ लिया था।[3]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि सुबन्धु ने अपने पौराणिक ज्ञान का उपयोग प्रस्तुत कृति में भावाभिव्यक्ति को प्रभाव–शाली बनने के लिए उपमानों के चयन में किया है। उक्त उद्धरणों के अतिरिक्त भी अनेक उपमानों[4] को कवि ने रामायण, महाभारत तथा

---

[1]. प्राचीन चरित्र कोष– सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोष मण्डल, पूना, पृष्ठ–151।

[2]. वही, पृष्ठ–244 ।

[3]. वही– पृष्ठ 3।

[4].नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः (प्रा.च.कोष–पृष्ठ–366), नृसिंह इव दर्शितहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः (प्रा.च.कोष–पृष्ठ–375), नलस्य दमयन्त्या मिलितस्यापि पुनर्भूपरिग्रहो जातः (प्रा.च.कोष–पृष्ठ–350), पृथुरपि गोत्रसमुत्सारण–विस्तारितभूमण्डलः (प्रा.च.कोष–पृष्ठ–448–450), राहुरिव मित्रमण्डलग्रहणविवद्धित रुचिः (प्रा.च.कोष–पृष्ठ–749), वामनलीलामिव दर्शितवलिविभंगाम्(प्रा.च.पृष्ठ–825)

पुराण–कथाओं से ग्रहण किया है, किन्तु यहाँ हम इनका विस्तार भय से कथन नहीं कर रहे हैं। अन्त में प्रदत्त परिशिष्ट में हमने इनका अपेक्षाकृत विस्तार से कथन किया है।

(xvii) **वासवदत्ता के शास्त्रीय प्रसंग–** इसीप्रकार वासवदत्ता कृति का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि सुबन्धु का न्याय दर्शन, मीमांसा–दर्शन, बौद्ध–दर्शन तथा धर्मशास्त्र आदि का ज्ञान भी अत्यधिक गहन था, जिसका उपयोग उन्होंने प्रस्तुत काव्य में अपनी प्रभावशाली भावाभिव्यक्ति के लिए किया है। कुछ ही उदाहरण इस कथ्य की पुष्टि में पर्याप्त हैं।

जैसे– नायक के पिता चिन्तामणि की शासन–व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है कि छल और निग्रह का प्रयोग केवल न्याय–दर्शन के सिद्धान्तों में देखा जाता था, चिन्तामणि के शासन में कोई भी व्यक्ति छल तथा निग्रह (बन्धन) आदि का प्रयोग नहीं करता था।[1] इसी प्रकार उनके शासन में सम्पूर्ण प्रजा ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करती थी, इसलिए नास्तिकता शब्द केवल चार्वाक–दर्शन में ही मिलता था, अन्यत्र नहीं।

वस्तुतः न्यायदर्शन द्वारा प्रतिपादित 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनादि सोलह पदार्थों' में 'छल' तथा 'निग्रह–स्थान' दोनों की ही गणना की गयी है,[2] जबकि व्यवहार में भी छल–छद्म पदों का प्रयोग अपने स्वार्थ को पूरा करने तथा दूसरों को नुकसान पहुँचाने के लिए धूर्तता पूर्ण कार्यों के अर्थ में किया जाता है तथा व्यवहार में विपरीत या निन्दित ज्ञान ही निग्रहस्थान है, जिसे विप्रतिपत्ति भी कहते हैं। इसीप्रकार चार्वाक–दर्शन वेद तथा परमात्मा को मान्यता प्रदान नहीं करता है, इसीलिए उसकी गणना नास्तिक दर्शनों में की गयी है।

---

1. 'छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु। (गद्यखण्ड–2)
2. न्यायसूत्र–1/1/1।

इसके अतिरिक्त विन्ध्याचल वर्णन प्रसंग में कवि ने विन्ध्याचल की प्रशंसा में उसे मीमांसा तथा न्यायदर्शन के समान दिगम्बर रहते हुए जैन–दर्शन को पराजित करने वाला कहा है।[1] यहाँ कवि ने विन्ध्याचल की ऊँचाई तथा विशालता का उल्लेख करने के लिए उक्त तीनों दर्शनों को उपमानरूप में प्रयुक्त किया है, क्योंकि इस बात से सभी अवगत हैं कि दिगम्बर रहने का समर्थक जैन–दर्शन वस्तुतः नास्तिक दर्शन है, मीमांसा तथा न्यायदर्शन द्वारा इसके सिद्धान्तों का प्रबल युक्तियों से खण्डन किया गया है। इसीप्रकार दूसरे उदाहरणों में भी देखा जा सकता है।[2] इसके अलावा हम यह भी देखते हैं कि सुबन्धु ने धर्मशास्त्र का भी गहन अध्ययन किया था, क्योंकि यहाँ पद–पद पर उन्होंने धर्मशास्त्र में प्रतिपादित सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

जैसे– ग्रन्थ के आरम्भ में चिन्तामणि वर्णन प्रसंग में विद्याधर होते हुए भी चिन्तामणि को 'सुमना' कहा गया है।[3] वस्तुतः सुमना से अभिप्राय यहाँ धर्मशास्त्र में प्रतिपादित तीन प्रकार के पापों से रहित बताने से रहा है, क्योंकि आचार्य मनु ने दूसरे के धन को अन्यायपूर्वक लेने की इच्छा, मन से भी किसी का अनिष्ट चिन्तन तथा परलोक में अविश्वास, इन तीन प्रकार के मिथ्या–आग्रहों को मानस–पापों की श्रेणी में रखा है।[4] चिन्तामणि इन तीनों से रहित सुन्दर मन वाले थे।

इसी क्रम में चिन्तामणि को धृष्टराष्ट्र होते हुए भी गुण प्रिय बताया गया है, इस विरोध का परिहार करने के लिए हमें गुण का अभिप्राय मनुस्मृति में बताए गए राजनीति के 'सन्धि, विग्रह' आदि छः

---

1. मीमांसान्याय इव पिहितदिगम्बरदर्शनः।

2. (क)वासवदत्ता स्वयंवरप्रसंग–केचिज्जैमिनिमतानुसारिणा इव तथागतमत ध्वंसिनः।
(ख) अन्धकार वर्णन– बौद्धदर्शनमिव प्रत्यक्षद्रव्यमपह्नुवानं तिमिरमुद जृम्भत।

3. विद्याधरोऽपि सुमना। (गद्यखण्ड–1)

4. परद्रव्येष्वभिधानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं मानसं स्मृतम्। मनु–12/5।

गुणों[1] से ग्रहण करना होगा अर्थात् चिन्तामणि राष्ट्र को धारण करते हुए भी धर्मशास्त्र में बताए गए सन्धि, विग्रह आदि राजनीति के छः गुणों से युक्त थे। धृतराष्ट्र के विषय में प्रसिद्ध है कि वे अपने पुत्रमोह तथा पाण्डवों के गुणों के कारण उनसे द्वेष करते थे।

(xviii) **वासवदत्ता में प्रतिपादित राष्ट्रीय भावना–** इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि हमारे विवेच्य गद्यकाव्य वासवदत्ता में कवि की राष्ट्रीय भावनाओं को भी पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है, क्योंकि कृतिकार ने यहाँ पर्वतों, नदियों, जनपदों, जातियों, जनजातियों आदि का विस्तार से कथन किया है, जो महाकवि के राष्ट्र प्रेम के साथ ही उनके उत्कृष्ट भौगोलिक ज्ञान को भी प्रदर्शित करते हैं। यहाँ भारत में होने वाली छः ऋतुओं में से प्रमुख तीन वसन्त, शरद् तथा वर्षा ऋतुओं तथा इसके समुद्र एवं वनों का विस्तार से वर्णन किया गया है, ये सभी वर्णन वस्तुतः उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। विन्ध्याटवी वर्णन आदि में वनों में पाए जाने वाले वृक्षों, पशु, पक्षियों, पुष्पों आदि के सूक्ष्मदृष्टि से किए गए उल्लेख महाकवि की राष्ट्रीय–भावना को ही अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

इसीप्रकार दूसरे भी अनेक बिन्दुओं जैसे– भारतीय–संस्कृति का उदात्तरूप वर्णाश्रम–धर्म, आदर्श माता, पिता, मित्र, एकपत्नी तथा एक–पतिव्रत, गार्हस्थ्य–धर्म, उदात्त–प्रेम, भारत में प्रचलित विविध कलाओं, नृत्य, संगीत आदि ललित–कलाओं का चिन्तन, सज्जन प्रशंसा, दुर्जन–निन्दा, सत्यवादिता तथा अहिंसा की भावना आदि के उल्लेखों से कवि की राष्ट्रीय–भावना ही अभिव्यक्त हुई है, इनमें से अधिकांश बिन्दुओं का हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं।

---

1. सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।। मनु.– 7 / 160।

(xix) **वासवदत्ता की संगीतात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता**– महाकवि सुबन्धु की भाषागत विशेषता के अन्तर्गत इसकी संगीतात्मकता तथा ध्वन्यात्मकता की चर्चा हमने एक पंक्ति में की है। वस्तुतः यहाँ उनकी भाषा में अनेकानेक स्थलों पर हमें भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए मधुर संगीतमय नाद की अनुभूति कराता है। इन वर्णनों में समुद्र तट वर्णन, सिप्रा नदी वर्णन, वसन्त वर्णन, मलय मारुत् वर्णन, मार्ग वर्णन आदि प्रसंग विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

जैसे–

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकधम्मिल्लभारबकुलकुसुपरिमलमेलनसमृद्धमधुरिमगुणः...........।[1]

ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से यहाँ प्रयुक्त उन शब्दों का कथन किया जा सकता है, जहाँ कवि ने शब्दों के विशिष्ट ध्वनि वाले शब्दों का उल्लेख किया है। **जैसे**– सीत्कार, कुहकुह, चटचट आदि। इनके सटीक प्रयोग से वर्ण्यविषय में हमें प्रस्तुत काव्य में ध्वन्यात्मकता के दर्शन सहज ही हो जाते हैं।

(xx) **वासवदत्ता में उपमानों का चयन**– इसीप्रकार हम देखते हैं कि महाकवि सुबन्धु के पास अद्भुत कल्पनाशक्ति के कारण उपमानों का अथाह भण्डार है, जिसके लिए स्वतन्त्ररूप से प्रबन्ध की रचना की जा सकती है, यहाँ हम केवल संकेतमात्र कर रहे हैं। स्वयंवर में आए हुए राजकुमारों के वर्णन में दी गयी उपमाओं के विषय में कवि की इस प्रतिभा को सहज ही देखा जा सकता है, क्योंकि यहाँ उन्होंने स्तेयशास्त्र (चौरशास्त्र) के प्रवर्तक मूलदेव, पाण्डव, शरद्कालीन दिन, व्याध, कुमुद, खंजन पक्षी, सुमेरु पर्वत, प्रहार करने के लिए उद्यत व्यक्ति, जैमिनि मतानुयायी, धृतराष्ट्र के पुत्र आदि अनेकानेक उपमानों का प्रयोग किया है, उनकी इस विशेषता को इस काव्य में पद–पद पर अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि समुद्र, पृथ्वी तथा आकाश में

---

[1] . वासवदत्ता–मलयमारुत्वर्णनम् । (गद्यखण्ड–60)

स्थित प्रकृति एवं समाज का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है, जहाँ से कवि ने उपमानों को ग्रहण न किया हो। इनमें भी अनेक उपमान तो उनकी अपनी कल्पना से प्रसूत ही प्रयुक्त किए गए हैं।

जैसे–

महादेव के सिर पर स्थित चन्द्रकला की उपमा के लिए कवि से चाँदी के सीप की कल्पना की है, जिसे उनकी कल्पना उर्वरा के सुन्दर उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है–

स जयति हिमकरलेखा चकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता।
नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव।।4।।

(xxi) **वासवदत्ता की मौलिकता–** सर्वप्रथम तो कवि की मौलिकता इसी विषय में कही जा सकती है कि उन्होंने महाकवि बाण तथा दण्डी से भी पहले एक अत्यन्त लघु कथानक को लेकर श्लेषमय, चित्रात्मक, आलंकारिक शैली के प्रवर्तक रूप में वासवदत्ता जैसे उत्कृष्ट काव्य का प्रणयन किया, जिससे प्रेरणा प्राप्त करके महाकवि बाण जैसे महाकवियों ने भी उनकी उत्कृष्टता को स्वीकार करते हुए, अपने काव्य का सृजन किया।

दूसरी महत्त्वपूर्ण मौलिकता के रूप में हम प्रकृति के मानवी करण तथा उसकी जीवन्तता को भी देख सकते हैं, क्योंकि प्रकृति से अगाध प्रेम करने वाले महाकवि ने ऐसा एक भी अवसर नहीं छोड़ा है जहाँ उन्होंने प्रकृति के जीवन्त चित्र प्रस्तुत न किए हों, उदात्त–प्रेम युक्त काव्य होने के कारण यहाँ प्रकृति का कोमल–पक्ष ही अधिक उभरकर आया है। मानव के भावों के अनुसार उसकी सहयोगिनी के रूप में भी इसकी भूमिका का होना बहुत बड़ी विशेषता रही है, तभी तो नायक द्वारा आत्महत्या के उद्देश्य से समुद्र में उतरने पर वहाँ स्थित हिंसक समुद्रीय जन्तु भी अपने हिंसाभाव का परित्याग कर देते

हैं।[1] इसीप्रकार इस विषय में दूसरे बिन्दुओं पर भी विचार किया जा सकता है।

जैसे– अथाह शास्त्रीय ज्ञान, उपमानों की विविधता, एक मात्र सज्जनता एवं सत्यता का पक्षधर होना आदि–आदि।

(xxii) **वासवदत्ता की न्यूनता**– उल्लेखनीय है कि अनेक विद्वानों ने सुबन्धु पर क्लिष्ट काव्य संरचना विषयक दोष लगाते हुए अपने वैदुष्य को प्रदर्शित करते समय सहृदय पाठकों की भावनाओं का विशेष ध्यान न रखने की बात कही है, क्योंकि यहाँ पर सहृदय सामाजिक वस्तुतः महाकवि द्वारा बुने गए श्लेष के भयावह जाल में ही फँसकर रह जाता है, उसे काव्य का स्वाभाविक आनन्द प्राप्त नहीं हो पाता है। उनके अनुसार– 'यहाँ तो महाकवि श्लेषमय वर्णन करने की अपनी धुन में इतना अधिक खो जाते हैं कि वे कथा के लिए अत्यन्त आवश्यक तथ्यों की जानकारी भी पाठक को नहीं देते हैं।'

जैसे– नायक के पिता चिन्तामणि के परिचय प्रसंग में उनकी राजधानी सम्बन्धी जानकारी, अपने मित्र के साथ घर छोड़कर चले जाने पर उसके माता–पिता की प्रतिक्रिया, नायिका को खोजने का उपाय तथा उसके मार्ग आदि का उल्लेख भी यहाँ नहीं किया गया है, जिसके विषय में पाठक की जिज्ञासा निरन्तर बनी ही रहती है।

इसके अतिरिक्त इस काव्य की सबसे बड़ी न्यूनता **'संयोग'** को भी कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ पर सभी कुछ संयोगवश ही घटित होता है, उसके पीछे कोई तर्क भी पाठक को दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसीलिए वह कवि की असाधरण कल्पना–शक्ति को ही इसका कारण मान लेता है।

---

[1] . अथ सानुग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयंकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिंशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत्.....(131)

जैसे– नायक–नायिका का स्वप्नदर्शन में परस्पर प्रेम होना, वंशादि का परिचय भी हो जाना, उचित दिशा तथा स्थान आदि की जानकारी न होते हुए भी ऐसे वृक्ष के नीचे विश्राम करना, जहाँ तोता–मैना, उसका मिलन कराने में सहायक होते हैं। भागने के लिए मनोजव घोड़े का प्राप्त होना, वन में भटकते हुए नायक का अकस्मात् ही नायिका की मूर्ति वाले स्थान पर पहुँच जाना आदि–आदि।

(xxiii) **वासवदत्ता में वर्णित सामाजिक चित्रण–** इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि– कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त कल्पित कथा को ग्रहण करते हुए भी प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर अपने समय के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक चित्रों को प्रस्तुत किया है, जिससे पाठक को तात्कालिक सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक स्थितियों का सहज ही ज्ञान हो जाता है, जो महाकवि के सामाजिक वातावरण को समझने में सहयोगी होता है, जिसका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

जहाँ तक इस काव्य में महाकवि के समय की सामाजिक स्थिति के चित्रण का प्रश्न है, यहाँ हमें तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं।

जैसे– यह समाज रसिक प्रवृत्ति का ऐश्वर्य सम्पन्न था, क्योंकि यहाँ नर्तकी, वेश्या तथा गणिकाओं तथा पालतू तोतों के भी सोने के पिंजरों का उल्लेख हुआ है। वर्णमाला कथन के आधार पर इस समय लिपि–विशेष का भी प्रयोग होता था। पति की मृत्यु पर विधवा स्त्रियों द्वारा अपने दोनों हाथों से छाती को पीटकर शोक व्यक्त करने की प्रथा थी, जो वर्तमान के समाज में भी देखी जा सकती है। बन्दीजनों की जेल के चारों ओर गोलाकार खायी का निर्माण किया जाता था, जिससे वे वहाँ से भाग न सकें।

स्त्रियों के सौन्दर्य के अन्तर्गत उन्नत पयोधर, विशाल नितम्ब, माथे पर सिन्दूर, श्यामल चूचुक, रोमावलि, कान तक फैले हुए विशाल नेत्र, मनोहर ग्रीवा, रक्तवर्ण अधर, मधुर स्मित, लम्बे–काले केशपाश, नाभि का गहरा होना आदि विशेषरूप से आता था। स्त्रियाँ पैरों में नूपुर, कानों में स्वर्णाभूषण, कमर में करधनी बाँधती थीं, कुन्दादि पुष्प तथा अनेक प्रकार से सुगन्धित पदार्थों तथा अंगराग आदि पदार्थों का शरीर पर प्रयोग करती थीं।

स्त्रियाँ भी मद्यपान करती थीं, क्योंकि एक स्थल पर मदमाती स्त्रियों के लखखड़ा कर चलने की बात का कथन किया गया है। पुरुष का पर–स्त्री के पास जाना अच्छा नहीं माना जाता था। प्रेमी द्वारा किए गए नखक्षत तथा दन्तक्षत से स्त्री स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती थीं, रतिक्रिया में इसका प्रमुख स्थान था।

महाकवि के समाज में दुर्जनों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा होती थी। इसीलिए कवि ने काव्य के आरम्भ में ही विस्तार से इस विषय में उल्लेख किया है। कथा सुनने तथा सुनाने की भी प्रथा थी, वृद्ध–पुरुष व स्त्रियाँ नदी के बालुकामय तटों पर बालकों को कथा सुनाती थीं। भूमि खोदने के लिए कुदाल का प्रयोग करते थे। कौओं, कुत्तों तथा यक्षों को बलि दी जाती थी। दूध, दही तथा मक्खन और घी का प्रयोग किया जाता था। एक स्थल पर दही मथन वाले मन्थन–दण्ड का उल्लेख किया गया है। (गद्यखण्ड–29)

बच्चों का पालन–पोषण करने के लिए धनाढ्य लोग 'धाय' रखते थे, जो उनकी सभी प्रकार से देखभाल करती थी। पर्वतों पर गेरु रंग की मिट्टी प्रायः मिलती थी, जिसका प्रयोग लोग घरों में रंगने आदि के लिए करते थे। कर्पूर, अगरु, अंगराग आदि का प्रयोग सुगन्धित पदार्थों के रूप में किया जाता था। कवि ने यहाँ 'गुल्म' तथा

'कोढ़' जैसे रोगों का उल्लेख किया है। वैद्य लोग विष–चिकित्सा में पारंगत थे।

इसके अतिरिक्त समाज में मधुपान गोष्ठियों के धूर्त, विट आदि मद्यपान करते तथा जुआ खेलते थे, जिसे सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। वेद की शाकल शाखा का विशेषरूप से प्रचलन था। मछुआरों द्वारा सुरसुन्दरी नामक मछली को पकड़ने के लिए विशेषरूप से होड़ लगती थी, जिसके लिए प्रतिस्पर्धा के रूप में वे जोर–जोर से शोर भी मचाते थे।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकवि सुबन्धु ने अत्यन्त संक्षिप्त कथानक का प्रयोग करते हुए भी अपने समय के समाज का अत्यन्त सुन्दर चित्रण, उपमान आदि के माध्यम से किया है। कुल मिलाकर महाकवि का अवतरण एक समृद्ध तथा विशेष परम्पराओं वाले समाज में हुआ था।

(xxiv) **वासवदत्ता में वर्णित धार्मिक चित्रण**–जहाँ तक धार्मिक चित्रण का प्रश्न है, विद्या की देवी सरस्वती, कृष्ण, शिव, कात्यायनी, विष्णु, लक्ष्मी, इन्द्र, कामदेव, शिवपुत्र कार्तिकेय, गणेश, राम आदि देवों को समाज में धार्मिक दृष्टि से मान्यता थी। महाकवि ने काव्य के मंगलाचरण में सरस्वती, श्रीकृष्ण तथा महादेव को स्मरण किया है। कुसुमपुर नगर के वर्णन के अवसर पर कवि ने माता कात्यायनी दुर्गा का विशेषरूप से वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त विद्याधर तथा गन्धर्वों को देवयोनियों के रूप में देखा जाता था। इस कथा का नायक कन्दर्पकेतु स्वयं एक विद्याधर था। इन्द्र के नन्दन वन, विष्णु के क्षीरसागर का उल्लेख भी यहाँ किया गया है। विष्णु के अनेक अवतारों जैसे– नृसिंह, कच्छप, वाराह आदि को भी समाज में स्वीकार किया गया था। दिखायी न देने वाले भूत, प्रेत एवं पिशाच आदि का भी कवि ने यहाँ उल्लेख किया है।

इसीप्रकार सूर्य के सात घोड़े तथा सारथि अरुण की कल्पना भी यहाँ की गयी है, जो तात्कालिक धार्मिक समाज का चित्र प्रस्तुत करती है। इसीप्रकार दैत्यों में सुबाहु, बकासुर, हिरण्यकशिपु तथा कुम्भकर्ण आदि का भी उल्लेख हुआ है, जिन्हें मारने के लिए विशेषरूप से भगवाान् विष्णु ने अवतार ग्रहण किया था ।

स्वर्ग प्राप्ति के लिए विशाल–यज्ञों का अयोजन किया जाता था। बौद्ध, जैन तथा वैदिक तीन प्रकार के धर्म प्रमुखता से प्रचलित थे, किन्तु वैदिक धर्मज्ञ बौद्ध, जैन धर्म को हेय दृष्टि से देखते थे तथा उसके सिद्धान्तों का समय–समय पर खण्डन भी करते थे। परमात्मा, वेद, लोक, परलोक आदि में विश्वास न करने वाला चार्वाक के रूप में एक वर्ग भी था, जिसे राजा भी पसन्द नहीं करता था। ज्योतिष शास्त्र में लोगों की अगाध श्रद्धा थी, स्वयं महाकवि सुबन्धु स्वयं इस शास्त्र के उत्कृष्ट वेत्ता थे।

(XXV) **वासवदत्ता में वर्णित राजनैतिक चित्रण**– उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत काव्य में पाठक को नायक के पिता चिन्तामणि तथा नायिका के पिता श्रृंगारशेखर की शासन–व्यवस्था से तात्कालिक राजनैतिक स्थिति का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है, जिसका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

राजनैतिक दृष्टि से इसे लोककल्याणकारी शासन की संज्ञा प्रदान की जा सकती है, क्योंकि राजा के सुशासन तथा प्रभावशाली नीतियों के कारण ही चिन्तामणि के राज्य में अपराधों का सर्वथा अभाव था, जिसके कारण प्रजाओं में किसी को भी काँटे, भाले आदि चुभाना, हाथ काटना, आँखें निकाल लेना, अग्नि में प्रवेश, आरे से शरीर को चीरना या शूली पर चढ़ाना आदि दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत होते हुए भी नहीं दिए जाते थे। राजा का सार्वभौम रूप मान्य था, जिसके कारण दूसरे सभी राजा उसकी अधीनता को स्वीकार कर लेते थे, इसी

को 'चक्रवर्ती' राजा की संज्ञा दी जाती थी, नायक के पिता चिन्तामणि इसीप्रकार के 'चक्रवर्ती' राजा हैं, जिसके चरणों में सभी राजा आकर अपना मस्तक झुकाते हैं।

पैदल, घोड़े, रथ तथा हाथियों की चतुरंगिनी सेना का उल्लेख भी यहाँ किया गया है। इनमें हाथी की सेना का अधिक महत्त्व था। सेना में उत्कृष्ट कोटि के हाथियों को रखा जाता था, जिनके गण्ड-स्थलों से मद बहता रहता था। यहाँ कवि ने श्रेष्ठ राजा के गुणों में युद्ध में कुशलता, स्वाभिमानी होना, शत्रुओं को झुकाने में समर्थ होना, अहंकाररहित होना, प्रजाओं का बन्धु, विद्वानों का सम्मान करने वाला, बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजक, क्रोध न करने वाला, मर्यादा का पालन करने वाला तथा दुष्टों की संगति न करने वाला, याचकों को स्वर्ण, अन्न, धन, वस्त्र तथा भूमि आदि दान देकर उन्हें प्रसन्न करना[1], 'कर' को अत्यल्प रूप में ग्रहण करना, सज्जनों का निर्वाह करने वाला, सभी प्रकार के दुर्भिक्षों को रोकने वाला, विद्वानों में अनुरक्त एवं पृथ्वी की रक्षा करने वाला आदि कहे हैं।

(xxvi) **वासवदत्ता में वर्णित साहित्यिक चित्रण–** ध्यातव्य है कि काव्य के आरम्भ में ही कवि ने पृथिवी पर विक्रमादित्य रूपी सरोवर के कीर्तिशेष रहने पर रसिकता के विनष्ट होने का उल्लेख किया है, जिससे नए-नए कवि चमकने लगे हैं। उनका यह कथन वस्तुतः महाकवि के समाज में साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभीप्रकार की स्थिति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता प्रतीत होता है, जिसे महाकवि की अन्तर्वेदना के रूप में भी देखा जा सकता है। फिर भी उन्होंने अपनी साहित्यिक मान्यता को भी सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है–

---

[1] .चिन्तामणि वर्णनम्। (गद्यखण्ड–1)

अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला।।11।।

अर्थात् माधुर्यादि गुणों के ज्ञान के अभाव में भी श्रेष्ठ कवियों की सूक्तियाँ, कानों में मधुरता के प्रवाह उडेलती है, क्योंकि जिसकी सुगन्ध भी हमारे पास नहीं पहुँची है, ऐसी मालतीमाला केवल देखने मात्र से ही दृष्टि को आकर्षित कर लेती है।

वस्तुतः कवि के उक्त दोनों कथनों से तात्कालिक समाज का साहित्यिक चित्र पाठक के समक्ष सहज ही साकार हो उठता है, क्योंकि उनके समय में साहित्य के ऐसे स्वरूप को उत्कृष्ट माना जाता था, जिसमें गद्यकाव्य में भी अलंकारों का भरपूर प्रयोग किया गया हो, श्लेष का पद–पद पर चमत्कार देखने को मिलता हो, जिसे उन्होंने अपने काव्य में अत्यन्त गर्वपूर्वक स्वीकार भी किया है। इससे पूर्व उद्योतकर[1] जैसे न्यायविदों की स्थिति के भी यहाँ संकेत दिए गए हैं।

(xxvii) **वासवदत्ता का संस्कृत गद्य साहित्य में स्थान–** एकमात्र कृति वासवदत्ता के कारण आलंकारिक संस्कृत गद्यकाव्य जगत् में सुबन्धु का उत्कृष्ट स्थान है, क्योंकि सर्वप्रथम तो प्रत्यक्षर श्लेषमय वाले संस्कृत गद्यकाव्यों की बृहत्त्रयी में इस ग्रन्थ का प्रथम स्थान है। इसके बाद ही बाण की कादम्बरी तथा दण्डी के दशकुमार चरित का आविर्भाव काव्य जगत् में हुआ। इस दृष्टि से इन दोनों कवियों के लिए एक सरणि को प्रस्तुत करने का श्रेय सुबन्धु तथा उनकी वासवदत्ता को ही जाता है।

इसके अतिरिक्त जिस उदात्तप्रेम तथा भारतीय सामाजिक सिद्धान्तों की प्रस्तुति प्रस्तुत गद्यकाव्य में की गयी है, वैसी अन्यत्र न होने से सुबन्धु तथा उनके काव्य दोनों को ही श्रेष्ठ कह सकते हैं,

---

[1]. उपनिषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्तीम्।......(112)

जिससे उनका गद्यकाव्य जगत् में प्रमुख स्थान स्वतः ही निर्धारित हो जाता है। यह बात दूसरी है कि सुबन्धु के बाद अवतरित महाकवि बाण ने सुबन्धु से भी उत्कृष्ट काव्य कादम्बरी की रचना की, किन्तु उसके परिप्रेक्ष्य में सुबन्धु का महत्त्व लेशमात्र भी कम नहीं हो जाता है।

इसीप्रकार प्रकृति के प्रायः सभी उपादानों का सूक्ष्म और गहन ज्ञान तथा प्रकृति प्रेम उन्हें संस्कृत गद्यकाव्य जगत् में उत्कृष्ट स्थान प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम हैं। साथ ही, सुबन्धु का अन्य शास्त्रों जैसे– न्याय–दर्शन, मीमांसा–दर्शन, चार्वाक–दर्शन, ज्योतिष–शास्त्र, आयुर्वेद–शास्त्र, अश्व–शास्त्र, हस्ति–शास्त्र, छन्दःशास्त्र, योग–शास्त्र, राजनीति–शास्त्र, संगीत–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, प्राणि–विज्ञान, सौर–विज्ञान, ऋतु–विज्ञान, भौतिक–विज्ञान, रसायन–विज्ञान, मणि–मन्त्र–ओषधि विज्ञान तथा धर्मशास्त्र का गम्भीर ज्ञान भी उन्हें संस्कृत गद्यकाव्य जगत् में श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय स्थान प्रदान करते हैं।

वस्तुतः महाकवि सुबन्धु की शैलीगत विशेषताओं के कारण ही इनके गुणों पर मुग्ध होकर महाकवि बाण[1] तथा कविराज[2] आदि कवियों ने इनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है, जिससे महाकवि सुबन्धु का संस्कृत गद्यकाव्य जगत् में सर्वोत्कृष्ट स्थान स्वतः ही निर्धारित हो जाता है।

•••

[1]. कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।। हर्षचरित–11।

[2]. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा। राघव. कविराज. 1/41।

।।श्रीः।।

वासवदत्ता

(मंगलाचरणम्)

अवतरणिका– ग्रन्थ के आरम्भ में महाकवि सुबन्धु ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए माता सरस्वती को स्मरण करते हुए कहते हैं कि–

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी।।1।।

अन्वय–यत् प्रसादतः सूक्ष्ममतयः कवयः अखिलम् भुवनतलम् कर–बदर–सदृशम् पश्यन्ति, सा सरस्वती देवी जयति।।1।।

अनुवाद– जिसकी कृपा से तीक्ष्ण–बुद्धि वाले कवि लोग सम्पूर्ण संसार को हाथ पर स्थित बेर के समान देखते हैं, वह देवी सरस्वती सर्वोत्कृष्ट हैं।

'चन्द्रिका'– जिन माँ सरस्वती की कृपा से कुशाग्र बुद्धि वाले कवि लोग सम्पूर्ण जड़ तथा चेतन संसार को अपने हाथ पर रखे हुए बेर के समान प्रत्यक्षरूप से देखते हैं, वे विद्या की अधिष्ठातृ देवी माँ सरस्वती ही वस्तुतः सभी देवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। अभिप्राय यही है कि माँ सरस्वती की कृपा से तीव्र–बुद्धि कवि तो सम्पूर्ण जगत् की सूक्ष्माति–सूक्ष्म वस्तु को हस्तामलकवत् जान ही लेता है, किन्तु उनकी कृपा से तो मन्दबुद्धि भी ज्ञानवान् हो जाता है।

अन्य अर्थ– जिस सरस्वती नदी की निर्मलता के कारण मन्दबुद्धि जल में विचरण करने वाले पक्षीगण जल के तले में विद्यमान

वस्तु को भी हाथ पर स्थित बेर के समान देख लेते हैं, वह सरस्वती नामक नदी सर्वोत्कृष्ट है।

विशेष–(i) यहाँ 'कवयः' पद में श्लेष का प्रयोग हुआ है। तदनुसार– **प्रथम** अर्थ काव्य का सृजन करने वाले कवि लोग अर्थ होगा तथा **द्वितीय** अर्थ 'क' अर्थात् जल, उसके पक्षी अर्थात् जलचर पक्षी अर्थ करना होगा। इसीप्रकार 'भुवनतलम्' और 'सरस्वती' पदों में भी श्लेष का प्रयोग हुआ है।

(ii) दूसरे अर्थ में सरस्वती द्वारा निर्मलता का कथन किया गया है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त श्लोक संख्या–12 तक आर्या छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसका लक्षण इसप्रकार है–

यस्याः प्रथमे पादे द्वादश, मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।[1]

इस छन्द के प्रथम तथा तृतीय चरण में 12 मात्राएँ, दूसरे चरण में 18 और चतुर्थ चरण में 15 मात्राएँ होती हैं।

(iv) इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति महाकवि दण्डी ने भी काव्यादर्श में इसप्रकार की है–

तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्त्तिमप्सुभिः।
कृशे कवित्वेऽपि जनाः कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्त्तुमीशते।[2]

(v) ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आरम्भ में मंगलाचरण की भारतीय परम्परा रही है। प्रस्तुत श्लोक को वासवदत्ता गद्यकाव्य के आरम्भ में प्रयुक्त करके कवि ने इसी परम्परा का निर्वहण किया है। मंगलाचरण के तीन प्रकारों[3] में यह नमस्कारात्मक मंगलाचरण की कोटि में आता है।

---

[1]. श्रुतबोध–4
[2]. काव्यादर्श–1/105।
[3]. नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण।

संस्कृत–व्याख्या– महाकविः सुबन्धुः स्वगद्यकाव्यरचनायाः वासवदत्तायाः निर्विघ्नसमाप्त्यर्थम् सरस्वत्याः जयकाररूपेण मंगलमाचरति– यस्याः सरस्वत्याः अनुग्रहेण सूक्ष्माः तीव्रा मतयः कवयः अल्पधियः वा काव्यकर्तारः सम्पूर्णम् चराचरजगत् हस्ते विद्यमानम् बदरीफलम् इव विलोकयन्ति। अत्यन्तसरलतया सम्पूर्णम् जगत् यथार्थेण परिजानन्ति। एतादृशी महिमाशालिनी सा प्रसिद्धा सरस्वती वागधिष्ठातृदेवी सरस्वती सर्वोत्कृष्टा विद्यते।

पक्षान्तरे– **यस्याः नद्याः निर्मलतया जलपक्षिणोऽपि सम्पूर्णं जलतलम् हस्ते विद्यमानम् बदरीफलम् इव द्रष्टुम् समर्थाः भवन्ति, एतादृशी सा निर्मलजला सरस्वती नाम प्रसन्नजला नदी वस्तुतः सर्वोत्कृष्टा वर्तते। अत्र सरस्वत्याः नद्याः मातुः सरस्वत्या देव्याश्च गुणकीर्तनेन मंगलाचरणम् आचरितम् कविना सुबन्धुना। आर्यावृत्तम्। लक्षणमुक्तम्।**

अवतरणिका– ग्रन्थ के आरम्भ में सरस्वती वन्दना करने के बाद ग्रन्थकार अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण की महिमा का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

खिन्नोऽसि मुंच शैलं बिभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुजः
भरभुग्नविततबाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति।।2।।

अन्वय– खिन्नः[1] असि, शैलम् मुंच, वयम् विभृमः इति, वदत्सु भर– भुग्न–वितत–बाहुषु गोपेषु शिथिल–भुजः हसन् हरिः जयति।।2।।

---

[1]. ध्यातव्य है कि प्रस्तुत वासवदत्ता ग्रन्थ को भलीप्रकार समझने के लिए हमें सन्धिविच्छेद करके यहाँ प्रयुक्त पदों को समझना होगा। इसलिए हम यहाँ पर सन्धियों के विच्छेद के नियमों का उल्लेख करते हुए उनके विच्छेद को समझा रहे हैं।

ह्रस्व 'अ' के बाद **'अतो रोरप्लुतादप्लुते'** सूत्र से यहाँ 'रु' को 'उ' होकर **'आदगुणः'** सूत्र से 'ओ' गुणादेश हो जाता है, और बाद में प्रयुक्त 'अ' को **'एङः पदान्तादति'** सूत्र से पूर्व सन्धि होकर रूप बनेगा– खिन्नोऽसि। यह विसर्ग मूल

पक्षान्तरे– खिन्नः असि, (अस्मान्) मुंच, वयम् शैलम् विभ्रमः, इति भर–भुग्न–वितत–बाहुषु गोपेषु वदत्सु शिथिल–भुजः हसन् हरिः जयति।

अनुवाद– हे कृष्ण! आप तो थक गए हैं, इसलिए पर्वत को छोड़ दो, इसे हम सम्भाले हुए हैं। इसप्रकार ग्वालों के कहने पर भार से झुकी हुई भुजाओं के होने पर लम्बी भुजाओं वाले, हँसते हुए श्रीकृष्ण सर्वोत्कृष्ट हैं।

पक्षान्तर– गोवर्धन पूजा से दुःखी हे इन्द्र! हम लोगों को अब छोड़ दो। हम तो अब पर्वत की ही पूजा करेंगे, गोपों के इसप्रकार कहने पर उनके दृढ़ निश्चय को देखकर हविर्भोजी पर हँसते हुए श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं।

'चन्द्रिका'– गोवर्धन की पूजा से कुपित इन्द्र द्वारा गोकुल को जलमग्न करने की प्रतिज्ञा के फलस्वरूप ग्वालों को बचाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कनिष्ठिका पर गोवर्धन को धारण कर लिया था, उसी प्रसंग में कवि ने इस श्लोक की रचना की है।

गोकुल के ग्वाले श्रीकृष्ण से कहते हैं कि– हे कृष्ण! तुमने इस गोवर्धन को बहुत देर से धारण किया हुआ है, अब तो तुम्हारे हाथ भी थक गए होंगे। इसलिए तुम थोड़ी देर के लिए सुस्ता लो, हम सबने मिलकर इस पर्वत को अपने हाथों पर उठाया हुआ है, तो उनके कहने पर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ को थोड़ा ही ढीला ही किया कि ग्वालों की भुजाएँ भार से अत्यधिक झुक गयीं, तो उन ग्वालों की ऐसी स्थिति को देखकर श्रीकृष्ण हँसने लगे। इस सम्पूर्ण प्रकरण का चित्र प्रस्तुत करने के बाद कवि इसप्रकार के हँसमुख स्वभाव वाले अपने आराध्यदेव की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हुए उसकी सर्वदा विजय की कामना करते हैं।

रूप से वस्तुतः **'ससजुषो रुः'** सूत्र से होने वाला है। इसलिए यह नियम लागू हुआ है।

पक्षान्तर– कृष्ण के कहने से गोकुल में सभी ग्वालों ने इन्द्र को छोड़कर गोवर्धन पर्वत की पूजा करना आरम्भ कर दिया तो इन्द्र अत्यन्त दुःखी हुए, तब एक दिन सभी ग्वाले इन्द्र को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

हे इन्द्र! हमारे द्वारा गोवर्धन की पूजा से तुम खिन्न हो गए हो, इसलिए अब हम लोगों को छोड़ दो, क्योंकि हम तो गोवर्धन पर्वत की पूजा इसीप्रकार करते रहेंगे, उससे विरत नहीं होंगे। इसलिए तुम तो कहीं अन्यत्र जाकर अपने साम्राज्य को स्थापित करो। ग्वालों के इसप्रकार के दृढ़ निश्चय को देखकर हवि को ग्रहण करने वाले इन्द्र पर व्यंग्य से मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण अर्थात् हरि ही सर्वदा विजयशील हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं।

विशेष– (i) पूर्व पद्य के समान ही यहाँ भी 'जयति' पद से श्रीकृष्ण की सर्वोत्कृष्टता तथा उन्हीं की आराध्यता अभिव्यंजित हो रही है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'भरभुग्नविततबाहुषु' तथा 'शिथिलभुजः' में कवि ने श्लेष का प्रयोग किया है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त हास्यरस देवविषयक रतिभाव का अंग होकर प्रयुक्त हुआ है। अतः इसमें 'रसवद्' अलंकार का सौन्दर्य भी विद्यमान है, क्योंकि किसी रस के, दूसरे रस या भाव का अंग होने पर 'रसवद्' अलंकार होता है।[1]

(iv) यहाँ प्रथम अर्थ में ग्वालों पर हँसते हुए तथा पक्षान्तर में इन्द्र पर हँसते हुए कृष्ण की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित की गयी है।

(v) 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' पाणिनि सूत्र से 'गोपेषु' पद में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

---

[1]. रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा।गुणीभूतत्वमायान्ति यदालंकृतयस्तदा।। रसवत्प्रेय ऊर्जस्वि समाहितमिति क्रमात्। साहित्यदर्पण– 10/95–96।

संस्कृत–व्याख्या– हे कृष्ण! सम्प्रति भवान् खिन्नो जातः, अत एव गोवर्धनम् किंचित् क्षणम् मुंच, वयम् धारयामः, गोपेषु इति वदत्सु, श्लथबाहुः गिरिभारेण किंचित् कुटिला बाहुः येषाम् तेषु गोपेषु हसन् हरिः श्रीकृष्णः विजयी भवेत्।

अवतरणिका– अपने आराध्य श्रीकृष्ण की अन्य लीला का उल्लेख करते हुए कवि सुबन्धु कहते हैं कि–

कठिनतरदामवेष्टनलेखासन्देहदायिनो यस्य।
राजन्ति बलिविभंगाः स पातु दामोदरो भवतः।।3।।

अन्वय– कठिनतर–दाम–वेष्टन–लेखा–सन्देह–दायिनः[1] यस्य बलि–विभंगाः राजन्ति, सः दामोदरः भवतः पातु।।3।।

अनुवाद– अत्यधिक कठोर रस्सी द्वारा बाँधे जाने पर, बाँधने के स्थान पर निर्मित रेखाओं का संदेह उत्पन्न करती हुई, जिनकी त्रिवलियाँ सुशोभित हो रही हैं, वे 'दामोदर' श्री कृष्ण आप सभी की रक्षा करें।।3।।

'चन्द्रिका'– यह सर्वविदित है कि श्रीकृष्ण बाल्यकाल में अत्यधिक शरारती थे। उनकी शरारतों से परेशान होकर माता यशोदा ने एक बार उन्हें कमर में रस्सी से बाँध दिया था, जिसके कारण उनके शरीर पर रस्सी के चिह्न बन गए थे। कवि ने उसी घटना को ध्यान में रखकर प्रस्तुत पद्य की संरचना की है, जिसमें रस्सी के निशानों में तीन वलियों की कल्पना करके उनसे श्रीकृष्ण के और भी अधिक सुन्दर प्रतीत होने तथा काव्य का अध्ययन करने वाले सभी सहृदयों सामाजिकों की रक्षा करने की बात का कथन किया गया है।

---

[1]. ह्रस्व 'अ' के बाद में 'हश्' प्रत्याहार के वर्ण (वर्ग के 3,4,5 अक्षर, ह एवं अन्तस्थ) होने पर **'हशि च'** सूत्र से 'रु' को 'उ' आदेश हो जाता है। उसके बाद अ+उ मिलकर ओ' गुणादेश **'आद्गुणः'** सूत्र से ही होगा। दूसरे शब्दों में यदि शब्द के अन्त में विसर्गों का प्रयोग हुआ हो और बाद में 'हश्' प्रत्याहार का वर्ण हो तो विसर्ग को हो जाएगा।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने श्रीकृष्ण के 'दामोदर' दाम अर्थात् रस्सी के उदर पर अंकित चिह्न वाले नाम की सार्थकता प्रतिपादित की है।

(ii) महाकवि का पुराण विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) राजन्ति, पद में 'राजदीप्तौकान्तौ' धातु से √राज्–झि+ लट्लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, परस्मैपद का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत–व्याख्या–यस्य कृष्णस्य अतीवकठोररज्वा बन्धनम् वेष्टनम् वा करणेन शरीरे अंकितानाम् तस्य बन्धनस्य रेखाणाम् दातुम् शीलम् येषाम् ते त्रिवलयः शरीरे सुशोभन्ते, एतादृशः सः कृष्णः युष्मान् सर्वान् रक्षतु, रक्षाम् करोतु, इत्यर्थः।

अवतरणिका– इसप्रकार अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने के बाद, कवि महादेव की प्रशंसा में काव्य निर्मिति करते हुए कहते हैं कि–

स जयति हिमकरलेखा चकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता।
नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव।।4।।

अन्वय– उत्सुकात् यस्य हिमकर–रेखा उमया नयन–प्रदीप–कज्जल–जिघृक्षया निहिता रजत–शुक्तिः इव चकास्ति, सः जयति।।4।

अनुवाद– **जिसके मस्तक पर स्थित चन्द्रलेखा** (हिमकररेखा), **उत्सुकता के कारण पार्वती द्वारा शिव के तीसरे नेत्ररूपी दीपक पर काजल बनाने की इच्छा से रखी हुई चाँदी की सीप के समान सुभोभित हो रही है, वे शिव सदा ही सर्वोत्कृष्ट हैं।।4।।**

'चन्द्रिका'– कवि ने अपने आराध्य देव शिव के सिर पर स्वाभाविक रूप से विराजमान चन्द्रलेखा में उनके मस्तक पर स्थित तीसरे नेत्ररूपी दीपक की लौ पर रखी गयी चाँदी की सीप की सम्भावना (उत्प्रेक्षा) करते हुए अभिप्राय अभिव्यक्त किया है अर्थात् महादेव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की रेखा वस्तुतः उसीप्रकार सुशोभित हो रही है, जिसप्रकार उनके तृतीय नेत्ररूपी प्रज्वलित दीपक

पर पार्वती द्वारा काजल बनाने की इच्छा से चाँदी द्वारा निर्मित सीप रख दी गयी हो। इसप्रकार के भगवान् शिव वस्तुतः सभी देवों में सर्वोत्कृष्ट हैं। वे अपने द्वेषियों तथा अपने भक्तों के शत्रुओं पर सदा ही विजय प्राप्त करते हैं।

विशेष–(i)उपर्युक्त सभी आर्या छन्द में निबद्ध पद्यों से कवि का श्रीकृष्ण तथा शिवभक्त होना अभिव्यंजित हो रहा है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने सरसों के तेल के दीपक के ऊपर कोई पात्रादि रखकर उससे काजल बनाने की ग्रामीण शैली की ओर संकेत किया है, जिसे आज भी भारतीय गाँवों में अनेकशः देखा जा सकता है।

(iii)प्रस्तुत श्लोक में कवि द्वारा सुन्दर एवं मौलिक परिकल्पना प्रस्तुत की गयी है तथा शिव के प्रति रतिभाव की अभिव्यक्ति होने से भावध्वनि का उदाहरण है– **'रतिर्देवादिविषया भावः प्रोक्तः।'**

(iv) शिव का 'त्रिनेत्र' होना पुराणों में वर्णित है, जिससे कवि का गहन पौराणिक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(v) शिव के तृतीय नेत्र में प्रज्वलित दीपक की तथा चन्द्रलेखा में चाँदी की सीप की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

लक्षण– सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।

संस्कृत–व्याख्या– शिवस्य महादेवस्य यत् भालनेत्रम् तदेव वस्तुतः प्रज्वलितः दीपो वर्तते, तस्योपरि कज्जलग्रहणस्य इच्छया शैलसुतया पार्वत्या रजतनिर्मिता शुक्तिः स्थापिता, एतादृशी एषा चन्द्ररेखा सुशोभते, एतादृशः शिवः वस्तुतः सर्वोत्कृष्टत्वम् भजते, इति।

(सज्जन प्रशंसा)

अवतरणिका– इसप्रकार अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण तथा शिव को स्मरण करने के बाद कवि आलंकारिक भाषा में सज्जनों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि–

भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य।
वहति विकाशितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्द्योतः।।5।।

अन्वय–विस्तारित–पर–गुणस्य सुजनस्य सुभगत्वम्[1] अधिकम् भवति। विकाशित–कुमुदः हिमकरः उद्योतः द्विगुण–रुचिम् वहति।।5।।

अनुवाद– दूसरे के गुणों का विस्तार करने वाले, सज्जन व्यक्ति की सौभाग्यशालिता अधिक होती है, क्योंकि कुमुदनियों को खिलाने वाला चन्द्रमा का प्रकाश दुगनी कान्ति को धारण करता है।।5।।

'चन्द्रिका'– सज्जनों का स्वभाव है कि वे दूसरों के गुणों का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से कथन करते हैं, ऐसा करने से उनकी महिमा कुछ कम नहीं होती है, अपितु उसमें ठीक उसीप्रकार वृद्धि होती है, **जैसे**– कुमुदनियों को खिलाने वाले चन्द्रमा का प्रकाश जब उन पर पड़ता है, तो वह पहले की अपेक्षा अधिक शोभा को धारण करता है।

विशेष–(i) 'चन्द्रमा' के लिए कवि ने यहाँ दूसरी बार 'हिमकर' विशेषण का प्रयोग किया है, दूसरे कवियों ने इसका प्रायः प्रयोग नहीं किया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में सज्जनों के स्वभाव की प्रशंसा से दुर्जनों को भी परोपकार करने की प्रेरणा की अभिव्यंजना हो रही है।

(iii) यहाँ पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त सामान्य कथन का उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त विशेष कथन द्वारा समर्थन किए जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।[2]

---

[1] . संस्कृत व्याकरण का सिद्धान्त है– 'अज्झीनं परे संयोज्यम्' अर्थात् अच्–स्वर से रहित व्यंजन में आगे आने वाला स्वर जोड़ देते हैं। इसलिए यहाँ 'सुभगत्वम्' के अन्त में प्रयुक्त 'म्' में बाद में आने वाला 'अ' जोड़ने पर 'सुभगत्वमधिकं' बनेगा।

[2] . सामान्यं वा विशेषो वा यदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा। काव्यप्रकाश–10 / 164।

(iv) प्रस्तुत वासवदत्ता काव्य में सभी पात्र सज्जन व्यक्ति के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, उसी ओर प्रस्तुत श्लोक संकेत करता प्रतीत होता है। साथ ही, कवि के व्यक्तित्व अर्थात् स्वभाव का भी इससे पता लगता है।

(v) कवि को कुमुद पुष्प अत्यन्त प्रिय रहा है। प्रस्तुत सम्पूर्ण काव्य में उन्होंने इसका उपमानरूप में भी अनेकशः प्रयोग किया है।

संस्कृत–व्याख्या– सज्जनप्रशंसायाम् कविः कथयति यत्– सर्वेषाम् जनानाम् समक्षम् प्रकटीकृता प्रदर्शिताः येषाम् अन्येषाम् गुणाः शीलादयः ईदृशानाम् सज्जनानाम् सौभाग्यत्वम् तु वस्तुतः अनेन पूर्वापेक्षया वृद्धित्वम् आयाति द्विगुणत्वम् भवति, इति अभिप्रायः। विषयेऽस्मिन् उदाहरणम् प्रस्तौति– यथा चन्द्रमा कुमुदानाम् विकासम् करोति, अनेन तु तस्य प्रकाशः पूर्वाभ्यधिकाम् रुचिम् शोभाम् वै धारयति, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि विद्यते, इति।

(दुर्जननिन्दा)

अवतरणिका– इसप्रकार सज्जन की प्रशंसा करके कवि दुर्जन व्यक्ति की निन्दा करते हुए उसे सर्प से भी भयंकर हानि करने वाला बताते हुए कहते हैं कि–

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।6।।

अन्वय–खलः विषधरतः अपि[1] अति–विषमः (भवति), इति विद्वांसः मृषा न वदन्ति। यत् अयम् नकुल–द्वेषी, पिशुनः पुनः सकुलद्वेषी (भवति)।।6।।

---

[1]. यहाँ प्रयुक्त 'अपि' के अन्त में प्रयुक्त 'इ' को 'य्' यण् आदेश 'इकोयणचि' सूत्र से हुआ है, क्योंकि इस सूत्र के अनुसार 'इक्' प्रत्याहार के वर्ण के बाद 'अच्' प्रत्याहार का वर्ण आने पर 'इक्' को 'यण्' आदेश हो जाता है अर्थात् इ को य्, उ को व्, ऋ को र् तथा लृ को ल्। यहाँ पर इ को य् हो गया है।

अनुवाद– **दुर्जन व्यक्ति सर्प से भी अधिक भयानक** (विषम) **होता है, ऐसा विद्वान् लोग असत्य नहीं कहते हैं, क्योंकि यह सर्प तो केवल नकुल** (जीव विशेष–नेवला) **से द्वेष करने वाला होता है, जबकि दुर्जन व्यक्ति तो सम्पूर्ण कुल से ही द्वेष करता है।**

'चन्द्रिका'– अभिप्राय है कि दुर्जन व्यक्ति तो सर्प से भी अधिक भयंकर और क्रूर होता है, क्योंकि सर्प तो केवल नेवले से ही शत्रुता रखता है, अपने कुल के दूसरे सर्पों के साथ उसका विरोधीभाव नहीं होता है, किन्तु इसके ठीक विपरीत दुर्जन व्यक्ति तो अपने शत्रु के साथ–साथ अपने ही वंश वाले लोगों से यहाँ तक कि मित्रों से भी शत्रुता का भाव रखता है।

विशेष–(i) कवि के प्राणि–विज्ञान विषयक ज्ञान की अभि–व्यंजना हुई है, क्योंकि सर्प का स्वभाव होता है कि वह अपने या अपने प्रियजन को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति से बदला लेकर ही दम लेता है, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(ii) नेवले तथा सर्प की परस्पर शत्रुता प्रसिद्ध है, जिसका यहाँ कवि ने सुन्दर शैली द्वारा कथन किया है।

(iii) नकुलद्वेषी में सभंग श्लेष का प्रयोग हुआ है, जिसका एक अर्थ नेवले (नकुल) से द्वेष करने वाला (सर्प) तथा दूसरा अर्थ अपने कुल से द्वेष करने वाला(दुर्जन) करना होगा।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में विद्वानों के नाम का उल्लेख कवि ने अपने कथन की प्रामाणिकता को प्रदर्शित करने के लिए किया है।

(v) सर्प के विशेष अर्थ से दुर्जनों के सामान्य कथनरूप अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

संस्कृत–व्याख्या– महाकविः दुर्जनस्य स्वभावम् क्रूरत्वम् वा वर्णयति– यत् दुर्जनस्तु सर्पाद् अपि क्रूरतमो भवति, इति अनेके विद्वांसः वदन्ति, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते। यतोहि, सर्पस्तु नकुल–वंशविरोधी भवति, शत्रुत्वमाचरति, इति, किन्तु दुर्जनस्तु स्ववंशस्य

कुलस्य वा अपि विरोधीभावम् आवहति, द्वेष्टिः वा, अनेनैव सः तस्य सदैव अहितम् खलु करोति, नैव हितमित्यर्थः।

अवतरणिका– इसी क्रम में कवि दुर्जनों के सम्बन्ध में ही उनकी अन्य विशेषता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अतिमलिने कर्त्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते चक्षुः।।7।।

अन्वय– खलानाम् धीः अति–मलिने कर्तव्ये अतीव निपुणा भवति, हि कौशिकानाम् चक्षुः तिमिरे रूपम् प्रतिपद्यते।।7।।

अनुवाद– दुष्ट लोगों की बुद्धि अत्यधिक निन्दित कामों में ही अत्यन्त निपुण होती है, क्योंकि उल्लुओं के नेत्र अन्धकार में ही वस्तु के स्वरूप को देखने में समर्थ होते हैं।।7।।

'चन्द्रिका'–दुर्जन लोगों का स्वभाव है कि वे सज्जनों के कामों में दोषों को ही देखते हैं, उनके गुणों की ओर उनका लेशमात्र भी ध्यान नहीं जाता है, अपने कथ्य की पुष्टि में कवि उल्लू का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि– ठीक उसीप्रकार जैसे उल्लू को दिन के प्रकाश में कुछ भी दिखायी नहीं देता है, क्योंकि वे तो अन्धकार में ही वस्तुओं को देखने में समर्थ हो पाते हैं।

विशेष–(i) उल्लू की विशेषता है कि वह केवल रात्रि में ही देख सकता है, दिन में उसे दिखायी नहीं देता है, इसका उल्लेख करके कवि का प्राणि–विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि सुबन्धु को अपने जीवनकाल में दुर्जनों से अत्यधिक पीड़ा प्राप्त हुई थी, इसीलिए उन्हें लक्ष्य करके उन्होंने उनकी इस प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए उक्त श्लोक की संरचना की है।

(iii) श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त दुर्जनों से जुड़े सामान्य कथन की उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त उल्लूरूप विशेष अर्थ से पुष्टि करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) निकृष्ट कार्यों में दुष्टों की बुद्धि की निपुणता को उल्लू द्वारा अन्धकार में देखने रूप उदाहरण से समझाने के कारण दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग हुआ है।

लक्षण– दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

संस्कृत–व्याख्या– दुर्जनानाम् बुद्धिः अतीवनिन्दितेषु कार्येषु खलु परिचलति, यतोहि सा तस्मिन् वै निपुणतरा भवति। तथैव यथा कौशिकानाम् दृष्टिः अन्धकारे वै वस्तूनाम् स्वरूपम् द्रष्टुम् समर्था भवति नैव दिवसे।

अवतरणिका– दुर्जनों की निन्दा के ही क्रम में कवि फिर से कहते हैं कि–

विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम्।
अन्तरितशशिरुचामपि सलिलमुचां मलिनिमाऽभ्यधिकः।।8

अन्वय– विध्वस्त–पर–गुणानाम् खलानाम् मलिनत्वम् अतीव भवति। अन्तरित–शशि–रुचाम्, सलिल–मुचाम् मलिनिमा अभ्यधिकः (भवति)।।8।।

अनुवाद– दूसरे के गुणों को तिरस्कृत करने वाले, दुर्जनों की कलुषता उसीप्रकार अत्यधिक हो जाती है, जिसप्रकार चन्द्रमा की कान्ति को छिपा देने वाले मेघों की मलिनता अत्यन्त बढ़ जाती है।

'चन्द्रिका'– सज्जनों के सामने अपने उत्कर्ष तथा प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए दुर्जन लोग अपने में गुणों का आधान करने की अपेक्षा सज्जनों के ही गुणों को, दोषरूप में प्रख्यापित करने में अपनी शक्ति का प्रयोग करते रहते हैं। यद्यपि उनके ऐसा करने से सज्जनों की कोई हानि नहीं होती है, अपितु दुर्जनों की प्रवृत्ति से सुपरिचित लोग उनके दुष्प्रयोजन को समझकर उन्हीं की निन्दा करते हैं, जिससे उन्हीं की अपकीर्ति संसार में प्रसारित होती है।

उक्त कथ्य की पुष्टि में कवि चन्द्रमा तथा वर्षाकालीन काले मेघ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, **जैसे**– वर्षा ऋतु में कृष्णवर्ण मेघ

चन्द्रमा की किरणों को अपने में छिपाते हैं, जिससे चन्द्रमा की छवि पर तो कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है, अपितु इससे मेघों की कालिमा में ही वृद्धि होती है।

विशेष–(i) दुर्जनों का स्वभाव है कि वे सज्जनों के गुणों को भी दोषरूप में ही देखते हैं, ऐसा करते समय उनके हृदय की कलुषता में ही वृद्धि की बात का यहाँ उदाहरण द्वारा कथन किया गया है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि दुर्जनों के इस कृत्य से सज्जनों का कुछ नहीं बिगड़ता है, अपितु दुर्जनों के मनोमालिन्य की अधिकता से ही लोग परिचित होते है, जिससे उन्हीं का अपयश होता है।

(iii) यह शाश्वत सत्य है कि यदि किसी कृष्णवर्ण व्यक्ति को गौरवर्ण लोगों के बीच में बैठा दिया जाए, तो वह उनके समक्ष पहले की अपेक्षा अधिक काला प्रतीत होता है, इसी भाव को कृष्णवर्ण मेघ तथा चन्द्रमा की किरणों के माध्यम से महाकवि ने समझाने का सफल एवं सुन्दर प्रयास किया है।

(iv) श्लोक में प्रयुक्त 'सलिलमुचाम्' विशेषण के साभिप्राय प्रयुक्त होने से 'परिकर अलंकार' का प्रयोग दर्शनीय है।[1]

(v) इसीप्रकार पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त दुर्जनों के सामान्य कथन का उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त चन्द्रमा तथा मेघ के विशेष वाक्य द्वारा समर्थन किए जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य अभिनन्दनीय है।

संस्कृत–व्याख्या– संसारे ये पिशुनाः सन्ति, तेषाम् बुद्धिः सदैव सज्जनानाम् विषये अतीव मलिनताम् आवहति, ते सदा तेषाम् गुणानाम् अपि दोषरूपेण दृष्ट्वा आलोचनाम् कुर्वन्ति, यद्यपि अनेन ते स्व खलु अपकीर्तिम् प्रसारयन्ति यथा वर्षाकालिका मेघाः कृष्णवर्णा भवन्ति, ते चन्द्रमसम् आच्छाद्य तस्य कान्तिम् अपहरन्ति, किन्तु अनेन नैव चन्द्रमसः काऽपि हानिः भवति, अपितु मेघानाम् वै कृष्णत्वम् अभिवर्धते, वृद्धिम् आप्नोति, इत्यर्थः।

1. विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। काव्यप्रकाश–10 / 182।

अवतरणिका– दुर्जनों के स्वभाव के विषय में ही कवि पुनः कहते हैं कि–

हस्त इव भूतिमलिनो यथा तथा लंघयति खलः सुजनम्
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायाम्।।9।।

अन्वय– भूति–मलिनः हस्तः इव खलः यथा–यथा दर्पणम् इव सुजनम् लंघयति, तथा–तथा (सः) तम् (सुजनम्) निर्मल–छायाम्[1] कुरुते।

अनुवाद– **राख** (भूति) **से गन्दे हाथ के समान दुर्जन व्यक्ति जैसे–जैसे दर्पण के समान सज्जन व्यक्ति को रगड़ता है, वैसे–वैसे वह दुर्जन, सज्जन व्यक्ति की निर्मल छवि को ही प्रसारित करता है।।9।।**

'चन्द्रिका'– दुर्जन व्यक्ति वस्तुतः इसप्रकार के हाथों के समान होता है, जो राख से सने हुए हैं, क्योंकि उसमें हमेशा ही कलुषित विचार रहते हैं, दूसरा का अहित चिन्तन करता रहता है। इसीप्रकार सज्जन व्यक्ति दर्पण के समान स्वच्छ और निर्मल विचारों वाला होता है। इसप्रकार की विशेषता वाला वह दुर्जन ज्यों–ज्यों सज्जन व्यक्ति को हानि पहुँचाने का प्रयास करता है, उसे अपमानित करता है, दर्पणरूप वह सज्जन पहले की अपेक्षा और भी अधिक चमक जाता है, क्योंकि यह वैज्ञानिक तथ्य है कि दर्पण को यदि साफ करना हो तो उसपर सूखी राख रगड़कर उसे पौंछ देना चाहिए, इससे उसकी गन्दगी दूर हो जाएगी और वह पूर्णरूप से स्वच्छ हो जाएगा।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में कवि का रसायन–विज्ञान विषयक ज्ञान प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि दर्पण को साफ करने के लिए

---

[1]. निर्मल+छायाम्– 'च्' का आगम **'छे च'** सूत्र से हुआ है, क्योंकि ह्रस्व स्वर के बाद यदि 'छ्' का प्रयोग हो तो बीच में 'त्' का आगम हो जाता है, जिसे बाद में **'स्तो श्चुना श्चुः'** सूत्र से 'च्' आदेश हो जाएगा।

कुछ लोग 'कण्डे' (गोबर का सूखारूप–उपले) की राख का भी प्रयोग करते हैं।

(ii) पूर्णोपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है, क्योंकि यहाँ पर 'भूतिमलिनहस्त' तथा 'दर्पण' उपमानरूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा क्रमशः खल और सज्जन उपमेय हैं। इसीप्रकार उपमावाचक 'इव' पद का प्रयोग हुआ है, जबकि 'निर्मलच्छायां करोति' यहाँ साधारण धर्म है।

(iii) दुर्जन व्यक्ति की उपमा भस्म या राख से युक्त 'हाथ' से तथा सज्जन की उपमा 'दर्पण' से दी गयी है, जो अत्यधिक प्रभावी बन पड़ी है। दर्पण को कलुषित करने के लिए राख से भरा हुआ हाथ जैसे–जैसे प्रयत्न करता है, वैसे–वैसे दर्पण पहले की अपेक्षा निर्मल होता जाता है, इसी सार्वभौमिक सत्य को प्रतिपादित किया गया है।

(iv) अभिप्राय यही है कि दुर्जन लोगों द्वारा अपमानित किए जाने पर सज्जनों की तो हानि न होकर उनकी कीर्ति में वृद्धि ही होती रहती है।

(v) दुर्जन तथा सज्जन लोगों के मनोविज्ञान से कवि की बहुज्ञता प्रदर्शित हुई है।

संस्कृत–व्याख्या– अनन्तरम् कविः दुर्जनस्य विषये कथयति यत्– यथा भस्मना मलिनेन कलुषीकृतेन हस्तेन दर्पणम् स्वच्छीभवति नैव मलिनताम् आवहति। तथैव दुर्जनः यथा–यथा सज्जनस्य तिरस्कारम् करोति, अपमानितम् करोति वा तथा–तथा तस्य सज्जनस्य छविः स्वच्छीभवति निर्मलीभवति वा। अनेन वस्तुतः सज्जनस्य नैव काऽपि हानिः भवति, अपितु तस्य कीर्तिः खलु पूर्वापेक्षया अधिकरूपेण प्रसरति।

अवतरणिका– इसके बाद कवि अपने समय में विक्रमादित्य के दिवंगत होने की सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कंकः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।10।।

अन्वय– भुवि विक्रमादित्ये कीर्ति–शेषम् गतवति, सरसि इव[1] सा रसवत्ता विहता, नवकाः विलसन्ति, कंकः न चरति।

अनुवाद– पृथिवी पर विक्रमादित्यरूपी सरोवर के कीर्तिशेष रहने पर वह रसिकता विनष्ट हो गयी है, नए–नए कवि चमकने लगे हैं। कौन किसे पीड़ित नहीं कर रहा है?।।10।।

'चन्द्रिका'– जिसप्रकार किसी सरोवर के सूख जाने पर उसमें सारस तथा बगुले आदि सभी जीव–जन्तु विनष्ट हो जाते हैं या अन्यत्र चले जाते हैं तथा बचे हुए जीवों को खाने के लिए 'कंक' नामक पक्षी विचरण करने लगते हैं, वैसे ही विक्रमादित्य के परलोक सुधारने पर लोगों तथा कवियों में विद्यमान सरसता, सहृदयता आदि सभी गुण विनष्ट हो गए हैं, एकप्रकार से सब ओर अराजकता का साम्राज्य फैल गया है, दुर्जन लोग सज्जनों को पीड़ित करने में लगे हुए हैं।

विशेष–(i) काव्य के पारखी तथा सामाजिक व्यवस्थाओं और मर्यादाओं को बनाए रखने वाले विक्रमादित्य के दिवंगत होने के बाद होने वाली सामाजिक अव्यवस्थाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है, जिससे कवि स्वयं भी पीड़ित प्रतीत होता है।

(ii) विक्रमादित्य के रहते हुए कवियों तथा विद्वानों का सम्मान होता था, किन्तु उनके चले जाने पर तो सभी लोग मनमानी करने लगे हैं। दूसरे शब्दों में, चारो ओर दुष्टों का ही साम्राज्य हो गया है।

(iii) विक्रमादित्य की उपमा सरोवर से दी गयी है तथा दुष्टों को यहाँ 'कंक' नामक पक्षी बताया है, जो छोटे–छोटे जीवों को खाता है। इस पक्षी का उल्लेख आगे भी अनेक स्थलों पर किया गया है।

---

[1]. सरसि+ इव– में सरसि के अन्त में प्रयुक्त ह्रस्व 'इ' के बाद 'इव' के आरम्भ में प्रयुक्त होने वाला 'इ' आने के कारण 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घादेश होकर बना सरसीव। दीर्घ सन्धि।

(iv) यहाँ सारस से अभिप्राय विद्वानों से तथा बगुलों से अभिप्राय नए–नए कवियों से ग्रहण करना चाहिए, जिनके काव्यों में रसवत्ता लेशमात्र भी विद्यमान नहीं है।

संस्कृत–व्याख्या– सरोवरे इव विक्रमादित्ये राजनि यशःशेषे जाते सति, स्वर्गं गते सति इत्यर्थः। समाजे नूतनाः कवयः राजानः वा जाताः, पक्षे अत्र तु बकाः, कपोतापि न दृश्यन्ते, कंकनाम पक्षीविशेषः सर्वत्र विचरन्ति, सर्वान् जीवान् पीडयति। कंकः अर्थात् कम् पण्डितम्? कः पण्डितः? इति नैव प्रतीयते। कोऽपि ज्ञातुं न समर्थः दुर्जनाः प्रभाव–शालितामावहन्ति, सज्जनास्तु मलिनतां भजन्त इत्यभिप्रायः।

(सत्कविसूक्तिवैशिष्ट्यम्)

अवतरणिका– इसप्रकार दुर्जन–निन्दा करने तथा विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने की स्थिति का उल्लेख करने के बाद कवि श्रेष्ठ कवियों की सूक्तियों की प्रशंसा करते हुए कवि कहते हैं कि–

अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला।।11।।

अन्वय– अविदित–गुणा–अपि सत् कवि–भणितिः कर्णेषु मधु–धाराम् वमति, अनधिगत–परिमला–अपि मालती–माला दृशम्[1] हरति हि।

अनुवाद– (माधुर्यादि) गुणों के ज्ञान के अभाव में भी श्रेष्ठ कवियों की सूक्तियाँ, कानों में मधुरता के प्रवाह को भरती ही हैं, क्योंकि जिसकी सुगन्ध भी हमारे पास नहीं पहुँची है, ऐसी मालतीमाला केवल देखने मात्र से ही दृष्टि को आकर्षित कर लेती है।।11।।

'चन्द्रिका'– जो उत्कृष्ट कोटि के कवियों द्वारा विरचित श्रेष्ठ काव्य हैं, उनका आनन्द लेने के लिए उसमें विद्यमान माधुर्य आदि गुणों आदि का ज्ञान होना व्यक्ति के लिए अनिवार्य नहीं है, अपितु उस

---

[1]. शब्द के अन्त में प्रयुक्त 'म्' को बाद में व्यंजन वर्ण होने पर अनुस्वार रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

काव्य का आनन्द तो व्यक्ति सुनने मात्र से ही ठीक उसीप्रकार कर लेता है। **जैसे–** मालती के पुष्प की माला की सुगन्ध नासिका तक पहुँचने के अभाव में भी वह व्यक्ति की दृष्टि को अपने अद्भुत सौन्दर्य से प्रभावित कर ही लेती है।

विशेष–(i) श्रेष्ठ कवियों के काव्य की विशेषता का उल्लेख किया गया है तथा उसकी उपमा मालतीमाला से दी गयी है, जो देखने मात्र से ही व्यक्ति को आनन्द प्रदान करती है, भले ही उसकी सुगन्धी उस तक न पहुँची हो।

(ii) उत्कृष्ट काव्य का आनन्द तो उसके सुनने मात्र से ही हो जाता है, उसके लिए शास्त्रीय दृष्टि से काव्य के तत्त्वों का ज्ञान होना आवश्यक नहीं है, उन तत्त्वों के ज्ञान की आवश्यकता तो समालोचना आदि के लिए होती है।

(iii) कवि ने गुण, ध्वनि आदि काव्य के तत्त्वों के ज्ञान के अभाव में भी सुनने मात्र से आनन्द प्रदान करने को उत्कृष्ट काव्य की कसौटी माना है, जो श्रेष्ठ कवियों की सूक्तियों में सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

(iv) यहाँ पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त सामान्य कथन का उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त विशेष अर्थ से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

संस्कृत–व्याख्या–ये उत्कृष्टकोटिकाः कवयः सन्ति, तेषाम् काव्ये अज्ञातमाधुर्यादिकाः गुणाः जना अपि श्रवणमात्रेण आनन्दमनुभवन्ति नैव तस्य कृते माधुर्यादिगुणानां ज्ञानं तथैवावश्यं यथा मालतीमालायाः सुगन्धिं घ्राणाभावेऽपि जनः तस्या दर्शनमात्रेणानन्दमावहति।

अवतरणिका– इसके पश्चात् कवि अपने द्वारा विरचित गद्य काव्य 'वासवदत्ता' के विषय में अप्रत्यक्षरूप से कहते हैं कि–

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव सम्भवति।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्ण्योर्मुकुरतले जायते यस्मात्।।12।।

अन्वय–गुणिनाम् अपि निज–रूप–प्रतिपत्तिः परतः एव सम्भवति, यस्मात् अक्ष्णोः स्व–महिम–दर्शनम् मुकुर–तले जायते।।12।।

अनुवाद– गुणवान् लोगों को भी अपने स्वरूप का ज्ञान (प्रतिपत्तिः) दूसरों से ही हो पाता है, क्योंकि नेत्रों को अपने महत्त्व का दर्शन दर्पणतल में ही होता है।।12।।

'चन्द्रिका'– महाकवि का अभिप्राय है कि– मैं जिस काव्य की रचना करने जा रहा हूँ, उसके गुणावगुण को स्वयं मैं जानने में समर्थ नहीं हूँ, अपितु इसका ज्ञान तो समालोचकों के माध्यम से ही हो सकेगा, क्योंकि दैनिक जीवन में भी व्यक्ति को अपने रूप–सौन्दर्य का ज्ञान स्वयं नहीं हो पाता है, अपितु उसमें तो दर्पण ही उसे सहयोग प्रदान करता है। इसलिए प्रस्तुत काव्य के गुण तथा अवगुणों के विषय में सहृदय सामाजिक तथा समालोचक ही कुछ बताने में समर्थ हैं, मैं इस सम्बन्ध में कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हूँ।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्द्ध में प्रयोग किए गए, दर्पणरूप विशेष अर्थ से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार हुआ।

(ii) कवि ने यहाँ तक प्रयुक्त सभी श्लोकों में आर्या छन्द का प्रयोग किया है।

(iii) व्यक्ति के गुणावगुणों को जानने के लिए दूसरे लोगों की अनिवार्यता प्रतिपादित की गयी है तथा इस तथ्य की पुष्टि के लिए 'दर्पण' का सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

(iv) उक्त श्लोक में शाश्वत तथ्य का उल्लेख किया गया है।

संस्कृत–व्याख्या– संसारेऽस्मिन् ये गुणसम्पन्नाः जनाः सन्ति, तेऽपि स्व रूपस्य महत्त्वं तथैव ज्ञातुं समर्थाः न भवन्ति, यथा नेत्रे स्व महिमानं स्वयमेव द्रष्टुं न पारयन्ति, तदर्थं खलु दर्पणस्य आवश्यकता भवत्येव, दर्पणपटले वै ते नेत्रे स्वस्य सौन्दर्यं द्रष्टुं समर्थौ भवतः।

(ग्रन्थप्रणयनोपोद्घातः)

अवतरणिका– इसके अनन्तर महाकवि सुबन्धु अपने द्वारा विरचित 'वासवदत्ता' गद्यकाव्य के वैशिष्ट्य के विषय में कहते हुए अपनी प्रतिज्ञा को उद्धृत करते हैं–

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ।13

अन्वय– सरस्वती–दत्त–वर–प्रसादः सुजन–एक–बन्धुः, प्रति–अक्षर–श्लेषमय–प्रबन्ध–विन्यास–वैदग्ध्य–निधिः निबन्धम् चक्रे।।13।।

अनुवाद– सरस्वती ने वर प्रदान करके जिसपर कृपा की है, उस सज्जनों के एकमात्र बन्धु, सुबन्धु ने प्रत्येक अक्षर में श्लेषयुक्त प्रबन्ध के विन्यास से नैपुण्य की निधिरूप इस निबन्ध (गद्यकाव्य) **की संरचना की है।।13।।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने प्रमुखरूप से तीन बातों का कथन किया है–

(क) कवि को माँ सरस्वती से उत्कृष्ट काव्य की रचना का वरदान प्राप्त हुआ है, जिससे इस काव्य की श्रेष्ठता में लेशमात्र भी संदेह नहीं है। ऐसा कहकर काव्य का सम्पूर्ण श्रेय उन्होंने अपनी आराध्यदेवी माँ सरस्वती को प्रदान किया है।

(ख) सुबन्धु की सदा सज्जनों के साथ ही मित्रता रहती है, वह दुर्जनों से हमेशा दूर रहने वाला है।

(ग) प्रस्तुत रचना 'वासवदत्ता' की विशेषता है कि इसमें प्रत्येक अक्षर श्लेषमय है, जिसे उत्कृष्ट काव्य के रूप में विद्वानों द्वारा देखा जा सकता है, क्योंकि इससे पूर्व इसप्रकार की रचना अन्य किसी कवि द्वारा नहीं की गयी है।

विशेष–(i)यहाँ कवि ने इसे गद्यविधा में लिखा होने से 'निबन्ध' संज्ञा प्रदान की है तथा उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता 'प्रत्येक अक्षर का श्लेषयुक्त होने' का कथन किया है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि प्रस्तुत निबन्ध (प्रबन्ध) जिसका प्रत्येक अक्षर श्लेषयुक्त है, माता सरस्वती की अनुकम्पा का ही परिणाम है, उसके अभाव में यह लेशमात्र भी सम्भव नहीं था। इससे कवि के विनम्र स्वभाव की भी अभिव्यक्ति हो रही है।

(iii) कवि ने स्वयं के नाम की सार्थकता बताते हुए 'सज्जनों का बन्धु' होने का भी उल्लेख किया है, जिससे कवि के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश पड़ा है, क्योंकि वे स्वयं तो सज्जन स्वभाव के थे ही, अपितु सज्जनों से प्रेम भी करते थे।

(iv)कवि ने प्रस्तुत काव्य की रचना अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही की है, क्योंकि वासवदत्ता का प्रत्येक अक्षर श्लेषयुक्त प्रयुक्त हुआ है, जिसमें कुछ स्थलों पर तो विद्वान् व्यक्ति भी अर्थ समझने में स्वयं को असमर्थ पाता है, इसके लिए उसे कोषादि का सहयोग लेना ही पड़ता है।

(v) उपर्युक्त श्लोक में 'उपजाति' छन्द का प्रयोग हुआ है, जो इन्द्रवज्रा[1] तथा उपेन्द्रवज्रा[2] दो छन्दों के प्रयोग से मिलकर बनता है। इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में तगण, जगण तथा दो गुरु वर्णों का प्रयोग होता है, जबकि उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में जगण, तगण और जगण एवं अन्त में दो गुरु वर्णों का प्रयोग किया जाता है।

लक्षण– अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।[3]

संस्कृत–व्याख्या– महाकविः सुबन्धुः कथयति यत्–प्रबन्धेऽस्मिन् वासवदत्ते सरस्वत्याः प्रसादादेव प्रतिवर्णं श्लेषमयं वर्तते।

---

1. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। वृत्तरत्नाकर– 3/28।
2. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। वृत्तरत्नाकर– 3/29।
3. वृत्तरत्नाकर– 3/30 ।

विशिष्टेन पदविन्यासेनात्र काव्यवैदग्ध्यं प्रदर्शितम्। कवेः विनम्रतायाः भावनापि प्रदर्शिता।

(चिन्तामणिवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार मंगलाचरण में अपने आराध्यदेव माँ सरस्वती, महादेव तथा श्रीकृष्ण को स्मरण करने, सज्जन–प्रशंसा, दुर्जन–निन्दा और काव्य के प्रयोजन का कथन करने के बाद, महाकवि वासवदत्ता गद्यकाव्य की कथा का आरम्भ करते हुए नायक कन्दर्पकेतु के पिता महाराज चिन्तामणि का परिचय प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(1)अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणी–शाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिंह इव दर्शित–हिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः, कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो, नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः,कंसारातिरिव जनितयशोदानन्दसमृद्धिरानकदुन्दुभिरिव कृतकाव्यादरः, सागरशायीवानन्तभोगिचूडामणिमरीचिरंजितपद्मो,वरुण इवाशान्तरक्षणोऽगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधको जलनिधिरिव वाहिनीशतनायकः समकरप्रचारश्च, हर इव महासेनानुगतो निवर्तितमारश्च, मेरुरिव विबुधालयो विश्वकर्माश्रयश्च, रविरिव क्षणदानप्रियश्छायासन्तापहरश्च, कुसुमकेतुरिव जनितानिरुद्धसम्पद्रतिसुखप्रदश्च.....

विद्याधरोऽपि सुमना, धृतराष्ट्रोऽपि गुणप्रियः, क्षमा–नुगतोऽपि सुधर्माश्रितो, बृहन्नलानुभावोऽप्यन्तः सरलो, महिममहिषीसम्भवोऽपि वृषोत्पादी, अतरलोऽपि महानायको, राजा चिन्तामणि र्नाम।

पदच्छेद–अभूत्[1] अभूतपूर्वः सर्व–ऊर्वीपति–चक्र–चारु–चूडा–मणि–श्रेणी–शाणकोण–कषण–निर्मली–कृत–चरण–नख–मणिः नृसिंहः

[1]. 'त्' को 'द्' वर्ग का तृतीय वर्ण **'झलां जशोऽन्ते'** सूत्र से।

इव दर्शित–हिरण्यकशिपु–क्षेत्र–दान–विस्मयः,कृष्ण इव कृत–वसुदेव-तर्पणो, नारायण इव सौकर्य–समासादित–धरणि–मण्डलः, कंस–आरातिः इव जनित–यशोदा–आनन्द–समृद्धि–आनक–दुन्दुभिः इव कृत–काव्य-आदरः, सागर–शायि इव अनन्त–भोगि–चूडामणि–मरीचि–रंजित-पद्मः, वरुणः इव अशान्त–रक्षणः, अगस्त्यः इव दक्षिण–आशा–प्रसाधकः, जलनिधिः इव वाहिनी–शत–नायकः सम–कर–प्रचारः च, हरः इव महासेना–अनुगतः निवर्तित–मारः च, मेरुः इव विबुध–आलयः विश्व-कर्मा–आश्रयः च, रविः इव क्षण–दान–प्रियः, छाया–सन्ताप–हरः च, कुसुम–केतुः इव जनित–अनिरुद्ध–सम्पद् रति–सुख–प्रदः च,

विद्याधरः अपि सुमना, धृतराष्ट्रः अपि गुण–प्रियः, क्षमा–अनुगतः अपि सुधर्म–आश्रितः, बृहन्नला–अनुभावः अपि अन्तः सरलः, महिम-महिषी–सम्भवः अपि वृष–उत्पादी, अतरलः अपि महा–नायकः, राजा चिन्तामणिः नाम[1]।

अनुवाद– चिन्तामणि नाम वाला अभूतपूर्व राजा हुआ, जिसके चरणों की नखरूपी मणियाँ, सभी राजाओं के सुन्दर चूड़ामणियों की पंक्तिरूपी कसौटी के कोनों से घिसने की कारण निर्मल हो गयीं थीं। हिरण्यकशिपु नामक दैत्य के शरीर को विदीर्ण करने से विस्मित कर देने वाले नृसिंह के समान जो स्वर्ण, अन्न, वस्त्र तथा भूमि को दान करने से सभी को आश्चर्यचकित कर देने वाला था। वासुदेव को प्रसन्न (तर्पण) करने वाले कृष्ण के समान, जिसने आठ वसुओं और देवों को तृप्त किया था। वाराह अवतार द्वारा पृथ्वी का उद्धार करने वाले भगवान् विष्णु के समान, जिसने अत्यन्त सरलता से सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल को अपने वश में कर लिया था।

---

1. 'मणिर्नाम' में विसर्ग को 'र्' 'ससजुषो रुः' सूत्र से। मणिस्+नाम, इस विसर्ग का 'अतो रोरप्लु तादप्लुते, हशि च, भो भगो. इत्यादि सूत्रों से उ को य् होता है, जबकि जहाँ यह उ या य् नहीं होगा, वहाँ पर 'र्' शेष रहता है। दूसरे शब्दों में जहाँ पर उ को य् नहीं होता है, वहाँ पर र् शेष रहता है।

यशोदा एवं नन्द की समृद्धि को बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण के समान, जिसने कीर्ति, दान और आनन्द को सम्पादित किया था। पूतना से भयभीत होने वाले वासुदेव के समान, जो कवियों का आदर करने वाला था। अनन्त नामक शेषनाग के सिर पर विद्यमान मणि की प्रभा से रंजित चरण–कमल वाले, समुद्र में शयन करने वाले, विष्णु के समान, जिसके चरण–कमल असंख्य राजाओं की चूड़ामणियों की कान्ति से लाल कर दिए गए थे।

दिक्पर्यन्त रक्षा करने वाले वरुण देव के समान, जो चारों दिशाओं की शान्तिपूर्वक रक्षा करता था। दक्षिण दिशा को सुशोभित करने वाले 'अगस्त्य' के समान, जो दक्षिण (चतुर) लोगों की इच्छाओं को पूरा करने वाला था। सैंकड़ों नदियों के नायक तथा मगरमच्छ आदि जलीय जन्तुओं के गमन से युक्त समुद्र के समान, जो सैंकड़ों सेनाओं का नायक था एवं जो समान कर (टैक्स) व्यवस्था को क्रियान्वित करने वाला था। कार्तिकेय के अनुगमन से युक्त एवं कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान् शिव के समान, जिसके पीछे विशाल सेना चलती थी और जिसने अपने सौन्दर्य से कामदेव को भी पराजित कर दिया था।

देवों एवं विश्वकर्मा के निवास स्थान मेरुपर्वत के समान, जो विद्वानों का आश्रय और संसार के रक्षारूप कार्य का आश्रय था, जो पूजा आदि धार्मिक कार्यों को समय देने वाले और अपनी पत्नी छाया के सन्ताप का हरण करने वाले, सूर्य के समान उत्सवों में दान देने वाला एवं अपनी कान्ति से प्रजा के दुःखों को हरने वाला था। अनिरुद्धरूप पुत्र–सम्पत्ति को उत्पन्न करने वाले और अपनी पत्नी रति को आनन्द प्रदान करने वाले, कामदेव (प्रद्युम्न) के समान जो हमेशा स्थिर रहने वाली सम्पत्तियों को उत्पन्न करने वाला तथा अपनी पत्नियों को रतिसुख देने वाला था।

जो विद्याधर नामक देवयोनि विशेष का होते हुए भी सुमन (देव) था, (विरोध) जो विद्याओं को धारण करने वाला होते हुए भी उदारहृदय (सुमना) था (परिहार)। धृतराष्ट्र होते हुए भी जो गुण (भीम) से प्रेम करने वाला था (विरोध), जो राष्ट्र को धारण करने वाला शासक होते हुए भी गुणों से प्रेम करता था(परिहार)। पृथ्वी (क्षमा) पर रहते हुए भी जो देवों (सुधर्मा) की सभा में निवास करता था, (विरोध) जो क्षमा का अनुसरण करते हुए भी श्रेष्ठ राजधर्म का पालन करने वाला था(परिहार)।

बड़े कमल विशेष (बृहन्नला) से उत्पन्न होते हुए भी अन्दर से सरल नामक वृक्ष था(विरोध), अर्जुन के समान प्रभाव वाला होते हुए भी उदार अन्तःकरण से युक्त था(परिहार)। बड़ी भैंस (महिमहिषी) से उत्पन्न होते हुए भी बैल को उत्पन्न करने वाला (वृषोत्पादी) था (विरोध), कृताभिषेका रानी से उत्पन्न होकर जो धर्म (वृष) को उत्पन्न करने वाला था (परिहार)। अतरल (मध्यमणि न) होते हुए भी मध्यमणि था, (विरोध) गम्भीर होते हुए भी जो महानायक था(परिहार)।

'चन्द्रिका'– प्राचीनकाल में चिन्तामणि नामक राजा हुआ, जो अपने गुणों तथा कार्यों के कारण अद्भुत ही था, क्योंकि ऐसा राजा इससे पहले कभी नहीं हुआ। दूसरे सभी राजा उसके दर्शनों के लिए आकर चरणों में प्रणाम करते थे, जिसके कारण चूड़ामणि की नखरूपी मणियाँ अधीन राजाओं से मुकुटों में लगी हुई मणियों की पंक्तियों रूपी कसौटी के कोने की बार–बार रगड़ से मानो अत्यधिक निर्मल हो गयीं थी।

उस राजा ने याचकों को स्वर्ण (हिरण्य), अन्न, वस्त्र (कशिपु) तथा भूमि (क्षेत्र) आदि का अत्यधिक दान देते हुए वैसे ही सभी को आश्चर्यचकित कर दिया था, जैसे– विष्णु के चतुर्थ अवतार नृसिंह भगवान् ने हिरण्यकशिपु नाम दैत्य के शरीर को फाड़कर (दान) विस्मित कर दिया था।

इसके अतिरिक्त उसने यज्ञादि क्रियाओं द्वारा आठों वसुओं तथा सभी देवों को भी ठीक उसीप्रकार प्रसन्न किया था,जैसे– भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पिता वासुदेव को अपनी अठखेलियों से प्रसन्न किया था। इसीप्रकार उन्होंने अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को उसी प्रकार अत्यन्त सरलतापूर्वक जीत लिया था, जैसे– वाराह अवतार को ग्रहण करने वाले भगवान् नारायण ने समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी को उखाड़कर, जल से बाहर निकालकर उसपर विजय प्राप्त की थी।

जिसने अपने आचरण तथा नीतियों के माध्यम से चारों ओर अपने यश का विस्तार करते हुए सभी प्रजाजनों को वैसे ही आनन्दित किया था, जैसे– यशोदा एवं नन्द को समृद्धि प्रदान करने वाले कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण ने यश, आनन्द तथा दूसरे सभीप्रकारों से समृद्धि प्रदान की थी, उसकी प्रजा में सभी लोग पर्याप्तरूप से समृद्ध थे।

उसने पूतना (काव्या) नामक राक्षसी से भयभीत (भय) होने वाले वासुदेव (कृष्ण के पिता) के समान अपने राज्य में स्थित काव्यों का निर्माण करने वाले, सभी विद्वानों तथा कवियों को पर्याप्त आदर (काव्य–आदरः) प्रदान किया था।

'अनन्त' नामक शेषनाग के मस्तक में स्थित मणियों से निकलने वाली किरणों से सुशोभित, उसपर शयन करने वाले भगवान् विष्णु के समान, जिस राजा के चरणरूपी कमल अनेकानेक राजाओं के मुकुट में स्थित मणियों से निकलने वाली किरणों से शोभायमान थे अर्थात् अनेक राजा उसकी अधीनता को स्वीकार करके नित्यप्रति उन्हें प्रणाम करते थे।

जिसप्रकार वरुण देव चारों दिशाओं की रक्षा करते हैं, वैसे ही वह राजा भी चारों दिशाओं में स्थित अपनी प्रजा की तन्मयभाव से रक्षा करता था। इसके अतिरिक्त जिसप्रकार दक्षिण दिशा (आशा) में स्थित 'अगस्त्य' नामक तारा उसे सुशोभित करता है, (प्रसाधक) ठीक वैसे ही

वह राजा भी चतुर तथा अनुकूल (दक्षिण) लोगों की इच्छाओं (आशा) को पूरा करता था (प्रसाधक)।

सैंकड़ों नदियों (वाहिनी) के नायक तथा मगरमच्छ आदि जल में रहने वाले प्राणियों (स–मकर–प्रचार) के गमनागमन से युक्त समुद्र के समान उस राजा ने सैंकड़ों की संख्या वाली सेनाओं (वाहिनी) का नायक अर्थात् स्वामी था तथा जो अपने राज्य में समानरूप से कर अर्थात् टैक्स की व्यवस्था (सम–कर–प्रचार) को करने वाला था अर्थात् राजा चिन्तामणि ने प्रजा से टैक्स लेने की समान व्यवस्था को लागू किया था।

भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेय (महासेन) द्वारा जिनका हमेशा ही अनुकरण किया जाता है और जो कामदेव को भस्म करने वाले (निवर्तित) हैं, ऐसे शंकर के समान, जो राजा महान् अर्थात् विशाल सेना का स्वामी (महासेन) था तथा प्रजा के सभी प्रकार के विघ्नों को दूर करने में समर्थ अथवा सौन्दर्य में कामदेव पर भी विजय प्राप्त करने वाला (निवर्तित–विजय प्राप्त करना) था।

इसीप्रकार देवताओं (विबुध)के निवास स्थान एवं देवों के शिल्पी विश्वकर्मा के आश्रयस्थल सुमेरु पर्वत के समान, जो राजा अपने राज्य में विद्वानों (विबुध) को आश्रय देने वाला तथा प्रजाजनों में शिल्पादि उत्कृष्ट कार्यों को (विश्व–कर्मा) प्रोत्साहित करने वाला था।

जिसे रात्रि प्रिय नहीं है (क्षणदा–न–प्रिय) तथा जो अपनी प्रियतमा छाया (सूर्य की पत्नी का नाम) के कष्टों को दूर करने में पूर्णरूप से समर्थ हैं, ऐसे सूर्य के समान जो राजा चूड़ामणि राज्य में समय–समय पर आयोजित किए जाने वाले यज्ञादि उत्सवों में मुक्त–हस्त से दान देता था (क्षण–दान–प्रिय) तथा अपने प्रभाव (छाया–कान्ति) से प्रजाओं के सभी सन्तापों अर्थात् कष्टों को दूर करता था।

अनिरुद्ध नाम की पुत्ररूपी सम्पत्ति को उत्पन्न करने वाले एवं अपनी 'रति' नामक पत्नी को सुख देने वाले, कामदेव के समान, जो

राजा हमेशा ही सम्पत्तियों को उत्पन्न करने वाला तथा अपने एकाधिक पत्नियों को रतिसुख प्रदान करने वाला था, जो राजा विद्याधर देवयोनि विशेष में उत्पन्न होते हुए भी देवता था अर्थात् सभी अट्ठारह प्रकार की विद्याओं को जानने वाला, तीन प्रकार के मानस पापों[1] से सर्वथा रहित अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों प्रकार के पापों से सदा दूर रहने वाला था।

(यहाँ तक कवि ने श्लेष तथा उपमा के माध्यम से चिन्तामणि राजा का वर्णन किया। अब आगे विरोधाभास अलंकार के माध्यम से वर्णन करते हैं)

जो धृतराष्ट्र होते हुए भी पाण्डुपुत्र भीम से प्रेम करने वाला था, धृतराष्ट्र हमेशा भीम से प्रेम नहीं, अपितु उसके अत्यधिक शक्तिशाली होने तथा अपने पुत्रों कौरवों को हानि होने के भय से द्वेष करते थे। अतः विरोध हुआ, किन्तु इसका परिहार धृत–राष्ट्र अर्थात् राष्ट्र को धारण करने वाले सुयोग्य शासक होते हुए भी वह, भीम अर्थात् गुण– सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव आदि राजनीति के सभी छः गुणों[2] से प्रेम करता था। पृथ्वी (क्षमा) पर निवास करते हुए भी देवों की सभा (सुधर्मा) में रहने वाला था अर्थात् क्षमाभाव का अनुकरण करने तथा श्रेष्ठ राजधर्म (सु–धर्मा) का पालन करने वाला था।

'विशाल' नामक कमलविशेष से उत्पन्न होते हुए भी अन्तःकरण से सरल वृक्ष था। विशाल भैंस से उत्पन्न होते हुए भी बैल को उत्पन्न करने वाला था अर्थात् जिसका अभिषेक किया गया है, ऐसी रानी से उत्पन्न होकर धर्म को उत्पन्न करने वाला था। आभूषण के मध्य में

---

[1]. परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं मानसं स्मृतम्। मनुस्मृति– 12/5 ।

[2]. सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।। मनुस्मृति– 7/160 ।

स्थित स्थिर मणिरूप होते हुए भी महानायक अर्थात् गतिशील चंचल था।

विशेष–(i) यहाँ कवि का मुख्य कथ्य 'चिन्तामणि नाम का राजा हुआ' यही है, शेष सभी पद राजा के विशेषणों के रूप में प्रयोग किए गए हैं।

(ii) उपर्युक्त अंश में अनुप्रास, उपमा, रूपक, विरोधाभास और श्लेष अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(iii) 'प्रद्युम्न' को पुराणों में महादेव द्वारा भस्म किए जाने के बाद, पुनर्जन्म के रूप में कामदेव का अवतार माना गया है।

(iv) स्वरों का भेद होने पर भी व्यंजनों का सादृश्य होने पर अनुप्रास अलंकार माना गया है। इसके भेदों में छेकानुप्रास, वृत्त्यानुप्रास आदि माने गए हैं।[1] यहाँ पर 'अभूदभूतपूर्वःसर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणि–श्रेणीशाणकोणकषण', इत्यादि अंश में भकार, वकार, पकार, चकार, णकार की एकाधिक बार आवृत्ति होने से **वृत्त्यानुप्रास** का सौन्दर्य विद्यमान है।

(v) इसीप्रकार 'पादपद्मो' तथा 'रविरिव' में क्रमशः पकार, दकार, एवं रकार, वकार की एक ही पद में एक बार आवृत्ति होने से **छेकानुप्रास** अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(vi) इसके अलावा अनन्त, भोगि तथा दक्षिण आदि अनेकानेक पदों में एक ही पद से दो अर्थों की अभिव्यक्ति के कारण श्लेष अलंकार देखा जा सकता है।

(vii) 'चरणनखमणि' इत्यादि अनेक पदों मे रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है, इसका भी सम्पूर्ण काव्य में अनेकानेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। उपमान तथा उपमेय में अभेद की स्थापना ही

---

1. वर्णसाम्यमनुप्रासः छेकवृत्तिगतो द्विधा।
सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः एकस्याप्यसकृत्परः।। काव्यप्रकाश–9 / 79।

रूपक अलंकार होता है[1], यहाँ चरणनख उपमेय तथा मणि उपमानरूप में प्रयुक्त करने के बाद, इन दोनों में अभेद की स्थापना की गयी है।

(viii) इसीप्रकार जिन स्थलों पर उपमेयरूप राजा चिन्तामणि की अपेक्षाकृत उत्कृष्ट गुण सम्पन्न उपमानों से समानधर्मों के कारण तुलना की गयी है,[2] उन सभी स्थलों पर 'उपमालंकार' का सौन्दर्य विद्यमान है। **जैसे–** 'नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः' इत्यादि में 'इव' उपमावाचक शब्द है। कवि ने यहाँ उपमेय, उपमान, वाचक शब्द तथा समानधर्म आदि सभी का उल्लेख किया है, अतः पूर्णोपमालंकार का प्रयोग हुआ है।

(ix) इसके अतिरिक्त 'विद्याधरोऽपि सुमना... महानायकः' इत्यादि अंश में विरोध न होते हुए भी विरोध की प्रतीति होने से विरोधालंकार प्रयुक्त हुआ है।[3]

(x) अनुप्रास, उपमा, रूपक, श्लेष, विरोध आदि इन अलंकारों का प्रयोग सम्पूर्ण काव्य में पद–पद पर देखा जा सकता है, अतः पुनरावृत्ति भय से इनका हम आगे बार बार उल्लेख नहीं करेंगे।

(xi) उपुर्यक्त गद्य के पूर्वार्द्ध की भाषा में समासों का अत्यधिक प्रयोग होने के कारण ओज गुण, गौड़ी रीति[4] को भी देखा जा सकता है,[5] जबकि उत्तरार्द्ध में माधुर्यव्यंजक वर्णों के साथ समासों का प्रयोग न होने या अल्प समास होने से वैदर्भी रीति[6] का सौन्दर्य भी दर्शनीय है, इसीप्रकार आगे भी सम्पूर्ण काव्य में समझना चाहिए।

---

1 . तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। वही– 10/93 ।

2 . साधर्म्यमुपमा भेदे। वही– 10/87 ।

3 . विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः। काव्यप्रकाश– 10/110।

4 . समासबहुला गौड़ी। साहित्यदर्पण– 9/4 ।

5 . योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि।। काव्यप्रकाश– 8/75 ।

6 . आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। साहित्यदर्पण–9/3।

(xii) उपर्युक्त अंश में प्रयुक्त दो अर्थ वाले पदों के अर्थ इस प्रकार करते हुए अर्थ करना होगा–**हिरण्यकशिपु**–दैत्य विशेष, **हिरण्य**–स्वर्ण, **कशिपु**–वस्त्र। **क्षेत्र**– शरीर, भूमि। **दान**– विदीर्ण करना, प्रदान करना। **वसुदेव**– कृष्ण के पिता, **वसु**– आठ वसुदेवता, **देव**– देवता। **सौकर्येण**– सूअर के अनुसार, सहज भाव से। **समासादित**– उखाड़ लिया, विजित कर लिया। **यशोदानन्दसमृद्धि**– यशोदा तथा नन्द को आनन्द प्रदान करने वाला, यश देने वाले आनन्द तथा समृद्धि को देने वाला। **काव्यादरः**– काव्य एवं कवियों के प्रति आदरभाव, **काव्या**–पूतना, **दरः**–भय। **अनन्त**–शेषनाग, जिसका अन्त न हो। **भोगि**–सर्प, राजा। **दक्षिण**– दक्षिण दिशा, अनुकूल, निपुण। **प्रसाधकः**– पूर्ण करने वाला, सजावट करने वाला। **वाहिनी**–सेना, नदी। **समकरप्रचारः**– एक जैसी टैक्स व्यवस्था, अत्यधिक मकर आदि जन्तुओं से युक्त, (स–मकर–प्र–चारः)। **महासेना**–शिव पुत्र कार्तिकेय, विशाल सेना। **निवर्तित**– जला डालना, विजित करना। **मार**–कामदेव, विघ्न। **विबुध**–देव, विद्वान्। **विश्वकर्मा**–देवों के शिल्पी, शिल्पादि कार्य। **क्षणदानप्रियः**–जिसे रात्रि प्रिय नहीं थी, जिसे यज्ञों में दान देना प्रिय था। **छाया**–सूर्य की दूसरी पत्नी, तेज। **अनिरुद्ध**–कामदेव पुत्र, बिना किसी बाधा के। **रति**–कामदेव की प्रिया, रतिक्रिया।

(xiii) इसीप्रकार गद्य में प्रयुक्त विरोध के परिहार के लिए इसप्रकार अर्थ करते हुए इसका परिहार करना होगा–

विद्याधर– देवयोनि, अट्ठारह विद्याओं को धारण करने वाला। **धृतराष्ट्र**– महाभारत का पात्र, राष्ट्र को धारण करने वाला। **सुमना**–देव, तीन प्रकार के पापों से रहित। **क्षमा**–पृथिवी, माफ करना। **गुण**–पाण्डुपुत्र भीम, विग्रह आदि छः गुण। **सुधर्मा**– देवों की सभा, अच्छे धर्म। **वृष**– बैल, धर्म। **बृहन्नला**–बड़ी नाल वाला कमल विशेष, अर्जुन। **सरल**– वृक्ष विशेष, सीधा। **अतरल**–मध्य में जटित मणि, स्थिर। **महा**

नायक– मध्य मणि, महान् नेता। **महामहिषी–** भैंस, बड़ी रानी, जिसका राजा के साथ ही अभिषेक किया गया हो।

(xiv) प्रस्तुत अंश में विष्णु के चतुर्थ अवतार 'नृसिंह', वासुदेव का अन्य नाम 'आनकदुन्दुभिः' तथा 'अगस्त्य तारा' आदि पौराणिक प्रसंगों से सम्बन्धित हैं, जिनका उल्लेख हमने परिशिष्ट में किया है।

(चिन्तामणिशासनवर्णनम्)

अवतरणिका– यहाँ तक चिन्तामणि राजा की विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद, सुबन्धु उनके **सुशासन वैशिष्ट्य** के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

(2) यत्र च शासति धरणिमण्डलं छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु,नास्तिकता चार्वाकेषु, कण्टकयोगो नियोगेषु, परीवादो वीणासु, खलसंयोगः शालिषु, द्विजिह्वसङ्गृहीतिराहि–तुण्डिकेषु, करच्छेदः क्लृप्तकरग्रहणेषु, नेत्रोत्पाटनं मुनीनां, द्विजराजविरुद्धता पंकजानां, सार्वभौमयोगो दिग्गजस्याग्नि–तुलाशुद्धिः सुवर्णानां, सूचीभेदो मणीनां, शूलभंगो युवतिप्रसवे दुःशासनदर्शनं भारते, करपत्रदारणं जलजानाम्....।

पदच्छेद– यत्र च शासति धरणि–मण्डलम् छल–निग्रह–प्रयोगः वादेषु, नास्तिकता[1] चार्वाकेषु, कण्टक–योगः नियोगेषु, परीवादः[2] वीणासु, खल[3]–संयोगः शालिषु, द्वि–जिह्व–सङ्गृहीतिः आहितुण्डिकेषु[4], कर–छेदः क्लृप्त–कर[5]–ग्रहणेषु,नेत्र–उत्पाटनम्[6] मुनीनाम्, द्विजराज–विरुद्धता पंकजानाम्, सार्वभौम–योगः दिग्गजस्य, अग्नि–तुला–शुद्धिः सुवर्णानाम्,

---

[1]. मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकतेत्यमरः।

[2]. परिवादोऽपवादे स्याद्वीणावादनवस्तुनि। इति मेदिनी।

[3]. पिशुनो दुर्जनः खल इत्यमरः।

[4]. व्यालग्राह्याहितुण्डिक इत्यमरः।

[5]. वलिहस्तांशवः करा इत्यमरः।

[6]. नेत्र+उत्पाटनम्–नेत्रोत्पाटनम् में गुण सन्धि आदगुणः सूत्र से।

सूची–भेदः मणीनाम्, शूलभंगः युवति–प्रसवे, दुःशासन–दर्शनम् भारते, करपत्र–दारणम् जलजानाम्,.... ।

अनुवाद– जिस चिन्तामणि राजा के पृथ्वीमण्डल पर शासन करते हुए, न्यायशास्त्र के सिद्धान्तों (वाद) में ही 'छल' तथा 'निग्रह' का प्रयोग किया जाता था। चार्वाकों में ही नास्तिकता विद्यमान थी। संयोग में ही रोमांच होता था। वीणाओं में ही पूरी तरह बजाना होता था। व्रीहि आदि को कूटने के लिए ही ओखली का संयोग होता था। सपेरों में ही सर्पों (द्विजिह्वी) का संग्रह देखा जाता था। राजा द्वारा निर्धारित 'कर' (टैक्स) को वसूलने में ही न्यूनता की जाती थी। 'मुनि' नामक वृक्ष से ही वल्कल उतारने का कार्य होता था।[1] कमलों में ही चन्द्रमा से विरोध था। दिग्गजों में ही 'सार्वभौम' का सम्बन्ध था। स्वर्ण में ही अग्नि तथा तुला द्वारा शुद्धि की जाती थी। मणियों में ही सूचीच्छेद होता था। युवतियों के प्रसव के समय ही 'शूल' होता था। महाभारत में ही दुःशासन का दर्शन होता था। कमलों में ही सूर्य की किरणों से कोमल पत्तों का विकास होता था।

'चन्द्रिका'– चिन्तामणि नामक उस राजा के इस पृथिवी मण्डल पर शासन करते हुए सम्पूर्ण शासन व्यवस्था अत्यन्त सुचारूरूप से चल रही थी, क्योंकि 'छल' तथा 'निग्रह' इन शब्दों का प्रयोग केवल न्यायविषयक सिद्धान्तों में ही किया जाता था, छल–छद्म एवं बन्दी आदि बनाने का कार्य प्रजाओं में नहीं होता था।

इसीप्रकार नास्तिकता की भावना केवल चार्वाक–दर्शन में ही विद्यमान थी, प्रजाओं में कोई भी व्यक्ति नास्तिकता में विश्वास करने वाला नहीं था, सभी लोग वेद, ईश्वर, लोक–परलोकादि में पूर्णतया आस्थावान् थे। रोमांच की स्थिति स्त्री–पुरुषों के संयोगों में ही होती

---

[1]. महाकवि का वनस्पति विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। मुनि लोगों को वल्कल वस्त्र 'मुनि' नामक वृक्ष से प्राप्त होते थे, क्योंकि इसकी छाल का प्रयोग वस्त्रों के रूप में किया जाता था।

थी, अन्यत्र कहीं भी भय की स्थिति नहीं थी। दूसरे शब्दों में, प्रजाओं के अपराधरहित होने के कारण उन्हें कभी शूल चुभोने जैसा दण्ड नहीं दिया जाता था।

इसके अतिरिक्त वीणाओं में ही बजाने (दण्ड) का प्रयोग किया जाता था, प्रजाओं में कोई भी किसी की निन्दा नहीं करता था। धान कूटने के लिए ही ओखली का साथ अपेक्षित था, किन्तु प्रजाओं का नीच लोगों के साथ संसर्ग नहीं होता था। सपेरे लोग ही केवल सर्पों को पकड़ते थे, प्रजाओं में कोई भी एक दूसरे की 'चुगली' नहीं करता था। राजा द्वारा ग्रहण करने योग्य भाग 'कर' को वसूल करने में ही वर्ण आदि की दृष्टि से टैक्स को कम किया जाता था, प्रजाओं में कभी भी निरपराध के हाथ काटने का दण्ड नहीं था।

'मुनि' नाम के वृक्षों से ही छाल के रूप में वल्कल वस्त्र उतारने का कार्य होता था, प्रजाओं में किसी को भी नेत्र निकालने जैसा कठोर दण्ड नहीं दिया जाता था। कमलों में ही चन्द्रमा के प्रति विरोध की भावना विद्यमान थी, प्रजाओं में उस चिन्तामणि राजा के साथ विरोध की लेशमात्र भी स्थिति नहीं थी। इसीप्रकार दिग्गजों में ही 'सार्वभौम' नाम का दिशाओं की रक्षा करने वाला दिग्गज था, किन्तु उस राजा के अतिरिक्त दूसरा कोई भी राजा सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती नहीं था।

स्वर्ण की स्वच्छता अर्थात् निर्दोषता आंकने के लिए ही उसका अग्नि के साथ संयोग कराया जाता था, प्रजाओं में किसी को भी अग्निसात् नहीं किया जाता था। इसीप्रकार स्वर्ण में ही मात्रात्मक शुद्धता को जानने के लिए उसे तराजू पर चढ़ाया जाता था, प्रजाओं में किसी को भी निरपराध होने के कारण 'शूली'(फाँसी) पर चढ़ाने का दण्ड नहीं दिया जाता था।

मणियों में ही माला बनाने के लिए सूई से छिद्र किया जाता था, प्रजाओं में किसी को भी शूल (भाला) चुभाने का दण्ड नहीं दिया

जाता था। प्रसवकाल के अवसर पर युवतियों में दर्द या वेदना को देखा जाता था[1], प्रजाओं में किसी को भी शूली पर चढ़ाने की वेदना का अनुभव नहीं होता था। महाभारत की कथा में ही 'दु:शासन' शब्द का दर्शन होता था, किन्तु प्रजाओं में कहीं भी बुरे शासन की स्थिति को नहीं देखा जाता था। सूर्य की किरणों के माध्यम से कमलों में ही विकास होता था, किन्तु प्रजाओं में कहीं भी 'आरे' से शरीर को काटने का दण्ड नहीं दिया जाता था।

विशेष–(i) कवि के न्यायदर्शन तथा चार्वाक दर्शन की बहुज्ञता की अभिव्यक्ति हो रही है, क्योंकि छल और निग्रहस्थान दोनों ही न्याय के पदार्थ सिद्धान्त तथा नास्तिकता चार्वाक सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं।

(ii) पौराणिक मान्यता के अनुसार दिशाओं को धारण करने वाले हाथियों (दिग्गजों) में से एक हाथी का नाम 'सार्वभौम' माना गया है।

(iii) चिन्तामणि राजा के शासन की सुव्यवस्था के साथ–साथ प्रजाओं के सुख तथा तात्कालिक दण्ड–व्यवस्था का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

(iv) अभिप्राय यही है कि शासन की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के अपराध किए जाने पर दण्ड की व्यवस्था थी, जिनमें शूली पर चढ़ाना, शूल, भाले आदि चुभाना, आरे से काटना, अग्नि में बैठाकर सत्यता (शुद्धि) की परीक्षा किया जाना प्रमुख थे, किन्तु इनमें से किसी के भी प्रयोग की आवश्यकता प्रजाजनों में कभी नहीं पड़ती थी।

(v) शिलष्ट अर्थ वाले पदों का इसप्रकार अर्थ करके उपर्युक्त व्याख्या को समझना होगा– **छल**– न्यायदर्शन के 16 पदार्थों में एक,

---

1. महाकवि के प्रसूति–विज्ञान विषयक ज्ञान की पुष्टि होती है।

छल–कपट। **निग्रह**– न्यायदर्शन के 16 पदार्थों में एक, बन्दी बनाना। **कण्टकयोग**–रोमांच, शूल का योग। **परीवाद**– पूरी तरह बजाना, निन्दा करना। **खलसंयोग**– ओखली के साथ, दुष्टों का साथ(खल–संयोग)। **द्विजिह्व**– चुगलखोर, सर्प। **कर**– हाथ, टैक्स। **नेत्र**–आँख, वल्कल वस्त्र। **द्विजराज**–ब्राह्मण, चन्द्रमा। **सार्वभौम**–चक्रवर्ती राजा, दिशाओं का एक हाथी। **सूचीभेद**– सूई में धागा डालना, सूई चुभाना। **शूलभंग**– पेट का दर्द, फाँसी पर चढाना। **दुःशासन**– बुरा शासन, धृष्टराष्ट्र का पुत्र। **कर–पत्र–दारण**– आरे से विदीर्ण करना, सूर्य की किरणों से पत्तों का विकास होना।

अवतरणिका–इसी क्रम में महाकवि विरोधाभास के माध्यम से राजा चिन्तामणि की श्रेष्ठ शासन व्यवस्था के विषय में कहते हैं कि–

(3)महावराहो गोत्रोद्धरणप्रवृत्तोऽपि गोत्राद्दलन–मकरोत्। राघवः परिहरन्नपि जनकभुवं जनकभुवा सह वनं विवेश। भरतो रामे दर्शितभक्तिरपि राज्ये विराममकरोत्। नलस्य दमयन्त्या मिलितस्यापि पुनर्भूपरिग्रहो जातः। पृथुरपि गोत्रसमुत्सारणविस्तारितभूमण्डलः। इत्थं नास्ति वागवसरः पूर्वतरराजसु।

पदच्छेद– महावराहः गोत्र–उद्धरण–प्रवृत्तः अपि गोत्रात् दलनम् अकरोत्। राघवः परिहरन् अपि[1] जनक–भुवम् जनक–भुवा सह वनम् विवेश। भरतः रामे दर्शित–भक्तिः अपि राज्ये विरामम् अकरोत्। नलस्य दमयन्त्या मिलितस्य अपि पुनः भू–परिग्रहः जातः। पृथुः अपि गोत्र–समुत्सारण–विस्तारित–भूमण्डलः। इत्थम् न अस्ति वाग् अवसरः पूर्व–तर–राजसु।

अनुवाद– (जिनके राज्य में) **वाराह अवतार विष्णु ने ही पृथिवी के उद्धार के लिए पृथ्वी के पर्वतों** (गोत्र) **का दलन किया। पिता के**

---

[1] . **परिहरन्नपि**– परिहरन्+ अपि में एक न् का अतिरिक्त आगम 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्' सूत्र से। इस नियम का यहाँ अत्यधिक प्रयोग हुआ है।

राज्य का परित्याग करते हुए राम ने ही सीता के साथ वन में प्रवेश किया। राम के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने वाले भरत ने ही राज्य में विरक्ति को धारण किया। दमयन्ती का साथ मिलने पर ही नल को फिर से राज्य की प्राप्ति हुई। महाराज पृथु ने ही पर्वतों को समतल करके उनका विनाश किया। इसप्रकार पूर्ववर्ती राजाओं के सम्बन्ध में तो कहने का कोई अवसर ही नहीं है।

'चन्द्रिका'– जलमग्न हुई पृथ्वी का उद्धार(दलन) करने के लिए ही प्रलयकाल में महावाराह का रूप धारण करके, भगवान् विष्णु ने गोत्र अर्थात् पृथ्वी का विनाश किया था(विरोध) , स्वयं भगवान् विष्णु ने गोत्र नामक पर्वत का विनाश किया था(परिहार)।

राम ने जनकभू का परित्याग करके जनकभू के साथ वन में प्रवेश किया (विरोध), राम ने अपनी जन्मभूमि का परित्याग करके, राजा जनक की पुत्री सीता के साथ वन में प्रवेश किया (परिहार)।

भरत के द्वारा राम में भक्ति का प्रदर्शन करते हुए भी राम को राज्य से रहित कर दिया(विरोध), जहाँ भरत ने अपने बड़े भाई राम में भक्तिभाव को प्रदर्शित करते हुए, अयोध्या के राज्य में विरक्ति प्रदर्शित की (परिहार)।

राजा नल ने दमयन्ती के साथ मिलन होने के बाद भी विधवा स्त्री के साथ विवाह किया(विरोध), राजा नल ने दमयन्ती के साथ मिलन होने के बाद भी फिर से अपने राज्य को प्राप्त कर लिया (परिहार)। राजा पृथु ने अपने वंशजों का विनाश करके सम्पूर्ण भूमण्डल का विनाश किया (विरोध), राजा पृथु ने पर्वतों को समतल करने के बाद, सम्पूर्ण भूमण्डल का विस्तार किया (परिहार)।

इसलिए पूर्वकाल के राजाओं के पराक्रम के विषय में कहने का तो यहाँ अवसर ही नहीं है।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यांश से कवि के महाभारत तथा रामायण का गहन अध्ययन तथा ज्ञान की सुन्दर अभिव्यंजना हो रही है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'गोत्र' शब्द में श्लेष के कारण एक अर्थ 'पृथ्वी' तथा दूसरा अर्थ 'पर्वत' करना होगा, क्योंकि वाराह अवतार धारण करके विष्णु ने पृथ्वी की रक्षा की तथा 'गोत्र' नाम के पर्वत का विनाश किया था।

(iii) इसीप्रकार 'विराम' तथा 'पुनर्भू' पद भी श्लेषयुक्त प्रयुक्त हुए हैं, जिनके क्रमशः 'राम से रहित' तथा 'शान्त एवं विधवा', फिर से राज्य की प्राप्ति रूप अर्थ करने होंगे।

(iv) उपर्युक्त गद्यखण्ड में श्लेष, विरोधाभास तथा यमक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(v) नल–दमयन्ती एवं राजा पृथु के आख्यान के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(चिन्तामणिवैशिष्ट्यवर्णनम्)

अवतरणिका– यहाँ तक कवि ने चिन्तामणि राजा के शासन विषयक वैशिष्ट्य का रामायण तथा महाभारत की कुछ घटनाओं की ओर संकेत करते हुए श्लिष्ट शैली में वर्णन किया। पुनः चिन्तामणि राजा की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(4) स पुनरन्य एव देवो न्यक्कृतसर्वोर्वीपतिचरितः। तथाहि स पर्वतः कटकसंचारिणो गन्धर्वान् दर्शित–शृङ्गोन्नतिः सुखयन् न विरराम। स हि मालयो नावश्यायोच्छलितो नो मायाजन्मने हितश्च। स हि मानी गिरिस्थितो वृषध्वजः। असौ सदागतिरवधूताखिलकान्तारः पावकाग्रेसरी नभोगोत्सुकः सुमनोहरश्च।

पदच्छेद– सः[1] पुनः अन्यः एव देवः न्यक्कृत–सर्व–ऊर्वी–पति–चरितः। तथाहि सः पर्वतः कटक–संचारिणः गन्धर्वान् दर्शित–

[1] . सः के विसर्गों का लोप, बाद में व्यंजन वर्ण होने पर 'सः' एवं 'एषः' के विसर्गों का लोप हो जाता है **'एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि'** सूत्र से।

शृङ्ग–उन्नतिः सुखयन् न विरराम। सः हिमालयः न अवश्याय[1]-उच्छलितः नः माया–जन्मने हितः च। सः हि मानी गिरि–स्थितः वृष-ध्वजः। असौ सदा–गतिः अवधूत–अखिल–कान्तारः पावक–अग्रेसरी न-भोग–उत्सुकः सु–मनोहरः च।

अनुवाद– वह चिन्तामणि अपने चरित्र से दूसरे सभी राजाओं को तिरस्कृत करने वाला था, क्योंकि ऊँची चोटियों वाले, मध्य भाग में विचरण करने वाले, गन्धर्वों को आनन्द प्रदान करने से विरत न होने वाले, पर्वत के समान उत्सव करने वाला, ऊँची ध्वजा को प्रदर्शित करने वाला, सेना के मध्य में विचरण करने वाला वह, सेना के घोड़ों को आनन्दित करने से विराम नहीं लेता था।

अहंकार के कारण मर्यादा से विचलित न होने वाला (अनुच्छलित) वह हिम से उच्छलित उमा के जन्म के लिए अहितकर हिमालय के समान लक्ष्मी का निवास स्थान था। स्वाभिमानी वह निश्चय ही वाणी पर दृढ़ रहने वाला, सज्जनों का निर्वाह करने वाला, सभीप्रकार के दुर्भिक्षों को रोकने वाला, सम्पूर्ण वन को प्रकृष्टरूप से कंपाने वाला, पवित्र लोगों में अग्रणी, भोगों में आसक्त न रहने वाला तथा विद्वानों को आकृष्ट करने वाला था।

'चन्द्रिका'– वह चिन्तामणि वस्तुतः कुछ अन्य ही प्रकार का राजा था, क्योंकि उसने अपने अद्भुत कार्यों से दूसरे सभी राजाओं को तिरस्कृत कर दिया था, उदाहरण के लिए ऊँचे शिखरों को प्रदर्शित करते हुए पर्वतों के मध्य भाग में विचरण करने वाले गन्धर्वों को सुख प्रदान करने वाले पर्वतों के समान, विशाल यज्ञरूपी उत्सवों में संलग्न रहने वाले उसने युद्धभूमि में सेना के बीच में विचरण करते हुए, अपनी ऊँची ध्वजा को प्रदर्शित करते हुए, सेना के अश्वों को सुख प्रदान करने के लिए कभी विश्राम ही नहीं किया, अपितु प्रतिक्षण राज्य विस्तार में संलग्न रहता था।

---

[1]. अवश्यायो हिमे गर्व इति धरणिः।

इसके अतिरिक्त बर्फ से ढ़की हुई चोटियों वाले, पार्वती के जन्म के लिए हितकारी हिमालय पर्वत के समान, वह राजा वस्तुतः लक्ष्मी का स्थान था, जो कभी भी गर्व से उच्छ्रंखल नहीं होता था, साथ ही वह छल–छद्म करने वाले प्रपंची लोगों के लिए भी कभी हित करने वाला नहीं था। हिमालय पर्वत पर निवास करने वाले, बैल पर आरोहण करने वाले, भगवान् शंकर के समान जो निश्चय ही, अपने स्वाभिमान तथा वाणी पर स्थिर रहने वाला, धार्मिक कार्यों में अग्रणी रहता था।

इसीप्रकार सम्पूर्ण वनप्रदेश को प्रकम्पित करने वाले, अग्निदेव का हमेशा ही सहयोग करने वाले, सदा आकाश की ओर प्रस्थान करने के इच्छुक, पुष्पों की सुगन्धि का हरण करने वाले वायु के समान, वह राजा सदा ही सज्जन लोगों को आश्रय प्रदान करने वाला, सभी प्रकार के दुर्भिक्षों को विनष्ट करने वाला, पवित्र आचरण करने वालों में सदा आगे रहने वाला, सांसारिक भोगों के प्रति विरत रहने वाला एवं विद्वानों को अपनी ओर प्रभावित करने वाला था।

विशेष–(i) राजा चूड़ामणि की उपमा हिमालय, शिव, वायु आदि से प्रदान करते हुए उसकी चारित्रिक उत्कृष्टता प्रतिपादित की गयी है।

(ii) प्रस्तुत गद्यांश में दो अर्थों वाले पदों का इसप्रकार अर्थ करते हुए अर्थ करना होगा। **पर्वतः**– उत्सव करने वाला, पर्वत, **कटक**– पर्वत, सेना, **शृंग**– ध्वजा, चोटी, **हिमालयः**– निश्चय ही लक्ष्मी का निवास, पर्वत विशेष, **अवश्याय**– अहंकार, बर्फ, **नोमाया** (न–उमाया)– न तो उमा के, न ही कपट द्वारा, **हिमानी**– हिमालय, निश्चय ही स्वाभिमानी, **गिरि**– पर्वत, वाणी, **वृषभ–ध्वजः**– बैल पर आरोहण करने वाले, धर्म की ध्वजा वाले, **सदागति**– वायु, सज्जनों के आश्रय, अवधूत– प्रकम्पित, नष्ट करना, **कान्तारः**– वन, अकाल, **पावक–अग्रेसरी**, अग्नि का सहयोगी, पवित्र आचरण वाले लोगों में अग्रणी,

नभोगोत्सुकः– नभ की ओर जाने का उत्सुक, भोगों में अनुत्सुक, **सुमनोहरः–** पुष्पों की सुगन्धि का हरण करने वाला, विद्वानों को प्रभावित करने वाला।

(iii) उपर्युक्त अंश में सभी द्व्यर्थक पदों में श्लेष तथा राजा चिन्तामणि का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करने से अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

अवतरणिका– इसी क्रम में चिन्तामणि राजा की प्रशंसा करते हुए महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(5) स रत्नाकरोऽनहिमयः कथमगाधः समर्यादो नोद्रोकोऽप्यस्य विस्मयाः सदा हिमकराश्रयोऽमृतमयः सपोतस्तस्याचलो न क्रोधो महानदीनः समुद्रः। स चन्द्र इव क्षणदानन्दकरः कुमुदवनबन्धुः सकलकलाकुलगृहं नतारातिबलः। मित्रोदयहेतुः कांचनशोभां बिभ्रदचलाधिकलक्ष्मीः सुमेरुरिव।

पदच्छेद– सः रत्नाकरः[1], अन्–अहि–मयः (अनहिमयः) कथम् अगाधः समर्यादः[2] न–उद्रोकः–अपि अस्य विस्मयाः सदा हिमकर–आश्रयः अमृतमयः सपोतः[3] तस्य–अचलः न क्रोधः महा–नदीनः समुद्रः। सः चन्द्रः इव क्षणद–आनन्दकरः कुमुद–वन–बन्धुः सकल–कला–कुल–गृहम् न–तारा–अति–बलः। मित्र–उदय–हेतुः कांचन–शोभाम् बिभ्रद् अचला–अधिक–लक्ष्मीः सुमेरुः इव[4]।

अनुवाद– वह चिन्तामणि राजा रत्नों की खान, दुष्टों के संसर्ग से रहित, गम्भीर, मर्यादा का पालन करने वाला, अवधान (उद्रोक) से रहित (सावधान), अपने कार्यों से लोगों को विस्मित करने वाला,

---

1. रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपीत्यमरः।
2. समर्याद उचितानतिक्रमणशीलः। दर्पण
3. पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः। इत्यमरः।
4. 'सुमेरुः' के अन्त में प्रयुक्त विसर्गों को 'र्' होकर बाद में प्रयुक्त इव में **'अज्झीनं परे संयोज्यम्'** सिद्धान्त से जोड़कर 'सुमेरुरिव' बना।

चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव से युक्त, अमृत के समान आनन्द प्रदान करने वाला, योग्य लोगों से युक्त, स्थायी क्रोध से रहित, महान् और धन–धान्य से युक्त समुद्र था।

वह चिन्तामणि रात्रि को आनन्द प्रदान करने वाले, कुमुदों के वन के बन्धु, सभी कलाओं के समूह के आश्रय और सभी नक्षत्रों में श्रेष्ठ चन्द्र के समान, उत्सवों में दान द्वारा आनन्द देने वाला, पृथिवी वासिया को आनन्द प्रदान करने वाला, उनकी रक्षा करने वाला, सभी प्रजाओं का बन्धु, शिल्पादि सभी कलाओं के समुदाय का आश्रय था।

उसके बल के समक्ष शत्रुओं की सेनाएँ झुकी हुईं थीं। मित्रों के उदय का हेतु, स्वर्ण की शोभा को धारण करने वाले सुमेरु पर्वत से भी अधिक विशाल ऐश्वर्य से युक्त वह स्थिर एवं अत्यन्त शोभा से सम्पन्न था।

'चन्द्रिका'– उस राजा चिन्तामणि में समुद्र के सभी गुण विद्यमान थे, **जैसे**– समुद्र के समान रत्नों का तो वह जैसे खजाना ही था, क्योंकि उसके भण्डार रत्नो स पूरी तरह भरे हुए थे, दुष्ट प्रकृति के लोगों के सान्निध्य से सदा ही वह दूर रहता था, गम्भीर स्वभाव वाला वह सदा ही सागर के समान सामाजिक मर्यादाओं का पालन करता था, प्रत्येक पल सावधान रहते हुए, अपने उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ कार्यों से लोगों को आश्चर्यचकित कर देने वाला था।

इसके अतिरिक्त वह चन्द्रमा के समान शान्त स्वभाव वाला था। अमृत के समान सुख प्रदान करने वाले, योग्य तथा विद्वान् लोगों के युक्त रहता था। इसीप्रकार स्थिर चित्त, कभी भी क्रोध न करने वाला, वह महान् गुणों से युक्त, दीन–हीन भाव से सर्वथा रहित था।

विशेष–(i) उक्त गद्यखण्ड में राजा चिन्तामणि के लोकप्रिय तथा उत्कृष्ट राजाओं के गुणों का उल्लेख किया गया है।

(ii) राजा चिन्तामणि की उपमा समुद्र, अमृत, चन्द्रमा आदि से दी गयी है, जो इसकी चारित्रिक उत्कृष्टताओं की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए हैं।

(iii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में द्व्यर्थक पदों का इसप्रकार अर्थ करते हुए अर्थ करना होगा। **अनहिमयः**–(अन्–अहि–मयः) सर्पों से रहित, दुष्ट लोगों से रहित। **अगाधः**– गम्भीर, गहरा। **समर्यादः**– सीमा का पालन करने वाला समुद्र, मर्यादित आचरण करने वाला राजा। **नोद्रोकः**– नौकाओं के आने जाने से रहित, सावधान राजा। **हिम-कराश्रयः**– मगरमच्छ तथा सर्पों का आश्रय समुद्र, चन्द्रमा के समान शीतल शान्त स्वभाव वाला राजा, **सपोतः**– तटों से युक्त समुद्र, श्रेष्ठ योग्य लोगों से युक्त,

(iv) 'सुमेरुरिव' आदि पदों में उपमालंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

अवतरणिका–महाकवि इसी क्रम में फिर से विरोधाभास, उपमा तथा श्लेष अलंकारों के सहयोग से चिन्तामणि राजा की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(6)यस्य च रिपुवर्गः सदा पार्थोऽपि न महाभारत-रणयोग्यः, भीष्मोऽप्यशान्तनवेहितः, सानुचरोऽपि न गोत्र-भूषितः। अपि च त्रिशंकुरिव नक्षत्रपक्षस्खलितः, शंकरोऽपि न विषादी, पावकोऽपि न कृष्णवर्त्मा, आश्रयाशोऽपि न दहनः, नान्तक इवाकस्मादपहृतजीवनः, न राहुरिव मित्रमण्डल-ग्रहणविवर्द्धितरुचिः, न नल इव कलिविघटितः, न चक्रीव-शृगालवधस्तुतिसमुल्लसितः, नन्दगोप इव यशोदयाऽऽश्रितः, जरासन्ध इव घटितसन्धिविग्रहः, भार्गव इव सदानभोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः, सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणानुरक्तो रक्षितगुश्च, राम इव जनितकुशलवयोरु-पोच्छ्रायः...।

पदच्छेद– यस्य च रिपु–वर्गः, सदा पार्थः अपि न महा–भारत–रण–योग्यः, भीष्मः[1] अपि अशान्तनु–इहितः, स–अनुचरः अपि न गोत्र–भूषितः। अपि च त्रिशंकुः इव नक्षत्र–पक्ष–स्खलितः, शंकरः अपि न विषादी, पावकः अपि न कृष्ण–वर्त्मा, आश्रयाशः अपि न दहनः, न अन्तकः इव अकस्माद् अपहृत–जीवनः, न राहुः इव मित्र–मण्डल–ग्रहण–विवर्द्धित–रुचिः, न नलः इव कलि–विघटितः, न चक्री–इव शृगाल–वध–स्तुति–समुल्लसितः, नन्द–गोपः इव यशोदया आश्रितः, जरासन्धः इव घटित–सन्धि–विग्रहः, भार्गवः इव सदा–नभोगः, दशरथः इव सुमित्रा–उपेतः[2], सुमन्त्र–अधिष्ठितः च, दिलीपः इव सुदक्षिण–अनुरक्तः रक्षित–गुः च, रामः इव जनित–कुशलवयोः उप–उच्छ्रायः...।

अनुवाद– जिस चिन्तामणि का शत्रुवर्ग, राजा होते हुए भी हमेशा ही किसी बड़े काम को करने में असमर्थ था। भयानक होते हुए भी क्रुद्ध चिन्तामणि को स्तुतियों के माध्यम से प्रसन्न करने की चेष्टा करता था।

सेवकों के साथ रहते हुए भी वह 'गोत्र' के नाम से विभूषित नहीं था तथा त्रिशंकु के समान क्षत्रियों के मार्ग से भ्रष्ट नहीं था। कल्याणकारी होते हुए भी विषादयुक्त नहीं था। पवित्र होते हुए भी अग्नि नहीं था। आश्रित लोगों की आशाओं को पूरा करने वाला होते हुए भी सन्तप्त करने वाला नहीं था।

इसीप्रकार यमराज के समान अकस्मात् ही जीवन को हरण करने वाला होते हुए भी अचानक ही किसी की जीविका को हरने वाला नहीं था। सूर्यमण्डल के ग्रहण से बढ़ी हुई रुचि वाले राहु के समान होता हुआ भी मित्रसमूह के राज्यों को हड़पने की रुचि वाला

---

1 . दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकमित्यमरः।

2 . 'सुमित्रोपेतः' में आद्‌गुणः सूत्र से गुण सन्धि सुमित्रा+उपेतः, आ+उ–ओ गुणादेश।

नहीं था। कलि से आक्रान्त नल के समान होता हुआ भी छल से प्रभावित नहीं था।

श्रृगाल नामक राक्षस के वध के पश्चात् स्तुति से प्रसन्न होते हुए भगवान् विष्णु के समान होते हुए भी भयभीत लोगों की स्तुति से प्रसन्न होने वाला नहीं था। इसके अतिरिक्त यशोदा से युक्त नन्दगोप के समान यश तथा दया से युक्त था। 'जरा' नामक पिशाची द्वारा जोड़ी गयी सन्धियों वाले जरासन्ध के समान, सन्धि तथा विग्रह करने वाला था। आकाश में गमन करने वाले शुक्राचार्य के समान दान तथा भोग करने वाला था।

पत्नी सुमित्रा एवं सारथि सुमन्त्र से युक्त दशरथ के समान श्रेष्ठ मित्रों एवं उत्तम मन्त्रणा से युक्त था। पत्नी सुदक्षिणा में अनुराग रखने वाले और गाय की रक्षा करने वाले राजा दिलीप के समान कुशल, विद्वानों में अनुरक्त एवं पृथ्वी की रक्षा करने वाला था। कुश तथा लव से सम्बन्धित अत्यधिक महिमाशाली राम के समान कुशल, यौवन और सौन्दर्य की महिमा से सम्पन्न था।

'चन्द्रिका'– (विरोध) उस राजा चिन्तामणि का सम्पूर्ण शत्रुवर्ग हमेशा ही **अर्जुन (पार्थ, राजा)** होते हुए भी **महाभारत (युद्ध, बड़े–बड़े महान् कार्य)** के युद्ध के योग्य नहीं था। (परिहार) उस राजा का सम्पूर्ण शत्रुवर्ग यद्यपि राजा तो था, किन्तु वह कभी भी महिमायुक्त बड़े–बड़े कार्यों को करने में समर्थ नहीं था।

(विरोध) **भीष्म (शान्तनु पुत्र भीष्म, भयंकर)** होते हुए भी शान्तनु का शुभाकांक्षी नहीं (अशान्तनवेहितः) था। (परिहार) स्वभाव से भयंकर होते हुए भी वह शत्रुवर्ग, कभी किसी कारणवश अशान्त हुए चिन्तामणि को स्तुति आदि से प्रसन्न करने के प्रयासों वाला था।

(विरोध)पर्वत के शिखर (सानु–चर) पर भ्रमण करने वाला होते हुए भी पर्वत भूमि (गोत्रभू) को सुशोभित(भूषित) नहीं करता था। (विरोध

परिहार) सेवकों द्वारा अनुकरण (स–अनुचर) किया जाता हुआ भी, अपने गोत्र के नाम से प्रख्यात (भूषित) नहीं था।

(विरोध) नक्षत्रों के मार्ग(नक्षत्रपक्ष) अर्थात् आकाश से गिरते हुए त्रिशंकु के समान होते हुए भी (विरोध परिहार) वह क्षत्रियों के मार्ग से (न–क्षत्रपक्ष) कभी भी विचलित नहीं हुआ।

(विरोध) शंकर होते हुए भी विष को खाने वाला (विष–आदी) नहीं था (विरोध परिहार) कल्याणों को करने वाला(शम्–करः) होते हुए भी कभी दुःखी (विषादी) होने वाला नहीं था।

(विरोध) अग्नि (पावकः) होते हुए भी कृष्ण मार्ग वाला नहीं था। (विरोध परिहार) पवित्र आचरण वाला (पावकः) होते हुए भी वह कलुषित मार्ग पर चलने वाला (कृष्ण–मार्गः) नहीं था।

(विरोध) अग्नि (आश्रयाशः) होते हुए भी वह अग्नि (दहनः) नहीं था, (विरोध परिहार) आश्रित लोगों की आशा को पूरा करने वाला होते हुए भी वह उनके निवास स्थानों को जला डालने वाला या लोगों को संतप्त (दहनः) करने वाला नहीं था।

(विरोध) यमराज होते हुए भी अकस्मात् जीवन का हरण करने वाला (अपहृतजीवनः) नहीं था। (विरोध परिहार) यमराज के समान न्यायप्रिय होते हुए वह किसी की आजीविका को छीनने वाला नहीं था।

विशेष– (i) श्लेष के माध्यम ने राजा चिन्तामणि की उपमा के लिए अर्जुन, भीष्म, त्रिशंकु, शंकर, अग्नि, यमराज, राहु, नल, विष्णु, नन्दगोप, जरासन्ध, शुक्राचार्य, दिलीप तथा राम का उपमानरूप में सुन्दर प्रयोग किया गया है, इन्हीं पदों से अन्य अर्थों की भी अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) **द्वयर्थक** पद– **पार्थ**–अर्जुन, राजा। **महाभारतरणयोग्य**–महाभारत के युद्ध के योग्य, बड़ा दायित्व वहन करने में समर्थ। **भीष्म**–शान्तनु पुत्र, भयंकर। **अशान्तनवेहित**–शान्तनु का जो शुभेच्छु नहीं है,

वह, अशान्त को स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करने वाला। **सानुचर**–पर्वत, सेना में विचरण करने वाला या सेवकों से युक्त। **गोत्र**–पर्वत, वंश। **नक्षत्रपक्ष**–आकाश मार्ग, जो क्षत्रिय पक्ष से न हो, (न–क्षत्र–पक्ष)। **शंकर**–महादेव, कल्याणकारी। **विषादी**–विष भक्षण करने वाला, (विष–आदी), दुःखी। **पावक**– अग्नि, पवित्र। **कृष्णवर्त्मा**–अग्नि, कुमार्गगामी। **आश्रयाशः**– अग्नि, आश्रितों की इच्छा को पूरा करने वाला। **दहनः**-जलाने वाला, पीड़ित करने वाला। **अपहृतजीवनः**–जीवन छीनने वाला, जीविका हरण करने वाला। **मित्रमण्डल**–सूर्यमण्डल, मित्रों का समूह। **कलि**–कलियुग, कलह। **शृगाल**–राक्षस विशेष, भयभीत।

(iii) यहाँ प्रयुक्त त्रिशंकु, राहु, भीष्म तथा शृगाल के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(कन्दर्पकेतुवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार प्रस्तुत काव्य के नायक के पिता चिन्तामणि का विस्तार से वर्णन करने के बाद, महाकवि नायक कन्दर्पकेतु के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

(7) **तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दनः, हिमालय इव जनितशिवः, मन्दर इव भोगिभोगाङ्कितः, कैलास इव महेश्वरोपभुक्तकोटिः, मधुरिव नाना रामानन्दकरः, क्षीरोद–मथनोद्यतमन्दर इव मुखरितभुवनः, रागरज्जुरिवोल्लासित–रतिः, ईशानभूतिसंचय इव सन्ध्योच्छलितः, शरन्मेघ इवाव–दातहृदयो विष्णुपदावलम्बी च, पार्थ इव समरसाहसोचितः, कंस इव कुवलयापीडभूषितः, तार्क्ष्य इव विनताऽऽनन्दकरः, सुमुखनन्दनश्च, विष्णुरिव क्रोड़ीकृतसुतनुः, शान्तनव इव स्ववशस्थापितकालधर्मः, कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठितः जलधरसमय इव विमलतरवारिधारात्रासितराजमण्डलः, सुबाहुरपि रामानन्दी, समदृष्टिरपि महेश्वरः, मुक्तामयो**

ऽप्यतरलमध्यः, वंशप्रदीपोऽप्यक्षतदशस्तनयोऽभूत्कन्दर्पकेतु–र्नाम।

पदच्छेद–तस्य च पारिजातः इव आश्रित–नन्दनः, हिमालयः इव जनित–शिवः, मन्दरः इव भोगि–भोग–अङ्कितः, कैलासः इव महेश्वर–उपभुक्त–कोटिः, मधुः इव नाना रामा–आनन्दकरः,क्षीरोद–मथन–उद्यत–मन्दरः इव मुखरित–भुवनः, राग–रज्जुः इव उल्लासित–रतिः, ईशान–भूति–संचयः इव सन्ध्या–उच्छलितः, शरत् मेघः इव अवदात–हृदयः विष्णु–पद–अवलम्बी च, पार्थः इव समर–साहस–उचितः, कंसः इव कुवलया–पीड–भूषितः, तार्क्ष्यः इव विनता–आनन्दकरः, सुमुख–नन्दनः च, विष्णुः इव क्रोड़ीकृत–सुतनुः, शान्तनवः इव स्व–वश–स्थापित–काल–धर्मः, कौरवव्यूहः इव सुशर्मा–अधिष्ठितः जलधर–समयः इव विमल–तर–वारि–धारा–त्रासित–राजमण्डलः, सुबाहुः अपि रामानन्दी, सम–दृष्टिः अपि महेश्वरः, मुक्तामयः अपि अतरल–मध्यः, वंश–प्रदीपः अपि अक्षत–दशः तनयः अभूत् कन्दर्पकेतुः नाम।

अनुवाद– उस राजा चिन्तामणि का नन्दन–वन में स्थित पारिजात के समान, आश्रित लोगों को आनन्दित करने वाला, पार्वती को उत्पन्न करने वाले हिमालय के समान, लोगों का कल्याण करने वाला, सर्पराज वासुकि के शरीर से चिह्नित मन्दराचल के समान, राज सुखों को भोगने वाला, शंकर द्वारा भोगी गयी चोटियों वाले कैलाश के समान, महाराजाओं द्वारा अनुभव की गयी उत्कृष्टता वाला, अनेक उपवनों को आनन्दित करने वाले वसन्त के समान, अनेक युवतियों को आनन्दित करने वाला, जलों को शब्दयुक्त करने वाले क्षीरसागर का मन्थन करने के लिए उद्यत मन्दराचल के समान, सम्पूर्ण संसार को मुखरित करने वाला, रति को आनन्दित करने वाले कामदेव के समान अनुराग को बढ़ाने वाला, सन्ध्याकाल में व्याप्त भगवान् शंकर के भस्म पुँज के समान श्रेष्ठ बुद्धि वाले लोगों द्वारा कार्य करने वाला, आकाश मार्ग में स्थित श्वेत मध्यभाग युक्त शरदकालीन मेघ के समान शुद्ध

हृदय एवं विष्णु के चरणों में आश्रय ग्रहण करने वाला, अर्जुन के समान युद्ध में साहसपूर्ण कार्य करने वाला, कुवलापीड़ नामक हाथी से युक्त कंस के समान कमलों से निर्मित आभूषणों को धारण करने वाला, माता विनता को आनन्दित करने वाले 'सुमुख' नामक पुत्र से युक्त गरुड़ के समान, विनीत एवं सज्जनों को आनन्दित करने वाला, सूकर रूप में सुन्दररूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु के समान युवतियों को गोद में बिठाकर आनन्दित करने वाला, मृत्यु को अपने वश में रखने वाले भीष्म के समान काल एवं धर्म को वश में रखने वाला, सुशर्मा नामक राजा से युक्त कौरवों के चक्रव्यूह के समान, श्रेष्ठ सुखों से युक्त, अत्यधिक निर्मल जल की धाराओं से राजहंसों को भयभीत करने वाले वर्षाकाल के समान, राजाओं के समूह को भयभीत करने वाला था।

सुबाहु नामक दैत्य होते हुए भी राम को आनन्दित करने वाला, विशाल भुजाओं वाला होते हुए भी सुन्दरियों को आनन्दित करने वाला, समान दृष्टि वाला होते हुए भी तीन आँखों वाला (शंकर), मोतियों से युक्त होते हुए भी मणियों से विहीन मध्यभाग वाला, निरोगी होते हुए भी स्थिर अन्तःकरण वाला, बाँस में प्रज्वलित दीपक होते हुए भी बत्ती को जलाने वाला, कन्दर्पकेतु नामक पुत्र हुआ।

'चन्द्रिका'– उस चिन्तामणि नामक राजा का कन्दर्पकेतु नाम का एक पुत्र था, वह जिसप्रकार इन्द्र के नन्दन वन में स्थित पारिजात वृक्ष सभी लोगों की इच्छाओं को पूरा करके उन्हें आनन्दित करता है, वैसे ही वह भी अपने सभी आश्रित लोगों की इच्छाओं को पूरा करके आनन्द प्रदान करने वाला था। जिसप्रकार हिमालय ने अपनी पुत्री के रूप में पार्वती को उत्पन्न किया, वैसे ही वह अपनी प्रजाओं के लिए कल्याणों को उत्पन्न करता था। जिसप्रकार मन्दराचल, वासुकि आदि सर्पों के विलास से सुशोभित हैं, वैसे ही वह राजा अनेक प्रकार के राजसुखों को भोगने वाला था।

जिसप्रकार महादेव कैलाश पर्वत के अनेक शिखरों पर विश्राम करते हुए उनका उपभोग करते हैं, वैसे ही अनेक उत्कृष्ट राजाओं ने उस राजा के श्रेष्ठ गुणों को अनुभव किया था। जिसप्रकार वसन्त अनेकानेक उपवनों को हरियाली तथा पुष्पादि प्रदान करके आनन्दित करता है, वैसे ही वह अपनी क्रियाओं द्वारा युवतियों को आनन्द प्रदान करता था। जिसप्रकार क्षीरसागर का मन्थन करने वाले मन्दर पर्वत ने समुद्र के जल को मुखरित करके प्रशंसनीय कार्य किया, वैसे ही वह राजा भी अपने श्रेष्ठ कार्यों द्वारा संसार में प्रशंसा प्राप्त करने वाला था।

जिसप्रकार कामदेव अपनी प्रिया रति को प्रसन्न करता है, वैसे ही वह राजा अपने श्रेष्ठ कार्यों से प्रजाओं के अनुराग को बढ़ाता था। जिसप्रकार महादेव सन्ध्या के समय भस्म को अपने शरीर पर लगाकर सुशोभित होते हैं, वैसे ही वह सम्यक् बुद्धि से ही चिन्तनपूर्वक कार्यों को सम्पादित करता था। इसके अतिरिक्त जिसप्रकार शरद्काल में आकाशमार्ग के मध्यभाग वाला मेघ सुशोभित होता है, उसीप्रकार शुद्ध हृदय को धारण करने वाला वह भगवान् विष्णु के श्रीचरणों में भक्ति भाव से युक्त था।

इसीप्रकार जैसे अर्जुन युद्ध के नियमों का पालन करते हुए साहसिक कार्यों का प्रदर्शन करता है, वैसे ही वह राजा अपनी प्रजा के सभी लोगों में समान प्रेम करने वाला तथा मित्रों के साथ अनेक प्रकार से क्रीड़ाओं को करने वाला था। अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित कंस के 'कुवलयापीड़' नामक हाथी के समान वह कुवलय अर्थात् कमलों से निर्मित आभूषणों को धारण करता था अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी के उत्कृष्ट स्थानों को सुशोभित करने वाला था।

जिसप्रकार गरुड़ अपने सुमुख नामक पुत्र सहित अपनी माता विनता को आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही वह राजा अपने विनम्र व्यवहार से सज्जनों को आनन्दित करता था। जिसप्रकार भगवान् विष्णु

ने सूकर का सुन्दर शरीर धारण करके पृथ्वी का उद्धार करते हुए उसे आनन्द प्रदान किया, वैसे ही वह राजा अपनी गोद में सुन्दरियों को बैठाकर उन्हें आनन्द प्रदान करता था। जिसप्रकार शान्तनु पुत्र भीष्म ने मृत्यु को अपने वश में कर रखा था, वैसे ही उस राजा ने भी 'काल' तथा 'धर्म' को अपने वश में कर लिया था अर्थात् धार्मिक कार्यों में संलग्न उसकी दिनचर्या सुनिश्चित थी।

जिसप्रकार कौरवों की सेना में स्थित 'सुशर्मा' नामक योद्धा ने श्रेष्ठ व्यूहरचना करके उन्हें उत्तम सुख प्रदान किया था, वैसे ही वह सुन्दर सुखों से सम्पन्न था। इसीप्रकार वह अत्यधिक निर्मल जल की धारा से युक्त राजहंसों को भयभीत करने वाले वर्षाकाल के समान अपनी तेज तलवार की धार से पृथ्वी पर स्थित सम्पूर्ण राजाओं के समूह को भयभीत करने वाला था।

(यहाँ तक कवि ने उपमा के माध्यम से तथा इसके बाद विरोधाभास के माध्यम से कन्दर्पकेतु का सुन्दर वर्णन किया है)

(विरोध) वह सुबाहु नामक दैत्य होते हुए भी राम को आनन्द प्रदान करने वाला था, (विरोध परिहार) विशाल भुजाओं वाला होते हुए भी वह सुन्दरियों (रामा–आनन्दी) को आनन्दित करने वाला था। (विरोध) समदृष्टि अर्थात् दो आँखों वाला होते हुए भी तीन आँखों वाला शंकर था,(विरोध परिहार) वह सभी के साथ समान व्यवहार करने वाला तथा कल्याणकारी कार्यों को सम्पन्न करने वाला था। (विरोध) मोतियों से युक्त होते हुए भी मणियों से रहित मध्य भाग वाला था,(विरोध परिहार) पूर्णतया निरोगी (मुक्त–आमयः) रहते हुए स्थिर अन्तःकरण (अतरल–मध्यः) वाला था। (विरोध) बाँस में जलता हुए दीपक होते हुए भी अपनी बत्ती को जलाने वाला नहीं था, (विरोध परिहार) अपने कुल (वंश) का दीपक अर्थात् अपने कुल का नाम रोशन करने वाला होते हुए भी श्रेष्ठ दशा से सम्पन्न था।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यांश में मुख्य वाक्य 'उस चिन्तामणि का कन्दर्पकेतु नामक पुत्र हुआ', यही है, किन्तु उक्त सभी विशेषण यहाँ कन्दर्पकेतु के लिए प्रयोग किए गए हैं।

(ii) उपमा, श्लेष तथा विरोधाभास अलंकारों के माध्यम से कन्दर्पकेतु की विशेषताओं का कथन किया गया है।

(iii) 'तार्क्ष्य' महर्षि कश्यप का ही अन्य नाम है, इनका विवाह दक्ष की चार कन्याओं विनता, कद्रू, यामिनी और पतंगी से हुआ था।[1]

(iv) प्रस्तुत गद्यखण्ड में द्व्यर्थक पदों का इसप्रकार अर्थ करते हुए अर्थ करना होगा। **आश्रितनन्दनः**– नन्दन वन में स्थित, आश्रित लोगों को आनन्द देने वाला। **जनितशिवः**– पार्वती को उत्पन्न करने वाला हिमालय, कल्याणों को पैदा करने वाला। **भोगिभोगांकितः**– सर्पों के भोगों से अंकित, राज्य सुखों का भोग करने वाला। **महेश्वरोपभुक्त–कोटिः**– शिव द्वारा भोगी गयी चोटियों वाला, श्रेष्ठ राजाओं को अपनी उत्कृष्टता से अनुभव करने वाला। **नानारामानन्दकरः**–अनेक उपवनों (आराम[2]) को आनन्दित करने वाला, अनेक सुन्दरियों (रामा) को आनन्दित करने वाला। **मुखरितभुवनः**– जल को शब्दायमान करने वाला, अपनी प्रशस्तियों से संसार को मुखरित करने वाला। **उल्लासितरतिः**– अपनी प्रिया रति को प्रसन्न करने वाला, रतिक्रीड़ा द्वारा प्रसन्न करने वाला। **सन्ध्योच्छलितः**– सन्ध्या के समय सुशोभित, (उच्छलित) सम्+धी+उच्छलित, सम्यक् बुद्धि से सुशोभित। **अवदात–हृदयः**– शुभ्र मध्यभाग वाला, शुद्ध हृदय वाला। **विष्णुपदावलम्बी**–(विष्णु पद) आकाश मार्ग पर चलने वाला, विष्णु के चरणों (पद) में भक्तिभाव युक्त। **समरसाहसोचितः**–युद्ध में उचित साहस प्रदर्शित करने वाला, समान प्रेम रखने वालों के साथ खेलने(हास) वाला(सम+रस+आहस+

---

[1]. द्रष्टव्य–परिशिष्ट।

[2]. आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्, इत्यमरः।
पक्षे– सुन्दरी रमणी रामेत्यमरः।

उचित:) **कुवलय**–पृथ्वी, कमल विशेष, कंस के हाथी का नाम। **विनता**–गरुड़ की माता, विनम्र लोग। **सुमुख**– इस नाम वाला पुत्र, सज्जन। **सुशर्म**–सुशर्मा नामक योद्धा, श्रेष्ठ सुख। **राजमण्डल**–राजहंस, राजाओं का समूह। **वंश**–बाँस, कुल।

(v) कंस के अत्यन्त शक्तिशाली हाथी का नाम कुवलयापीड़ था, जिसे हमेशा विविध प्रकार के आभूषणों से सजाकर रखा जाता था।

(कन्दर्पकेतुवैशिष्ट्यवर्णनम्)

अवतरणिका– राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करने के पश्चात् महाकवि पुनः उन्हीं के दूसरे वैशिष्ट्यों का कथन करते हैं–

(8) येन च चन्द्रेणेव सकलकलाकुलगृहेण, शर्वरीतिहारिणा, दलितकैरवेण, प्रसाधिताशेन विलोकिताः, जलधय इव समुल्लसितगोत्राः, सुदूरविवर्द्धितजीवनाः, प्रसन्नसत्त्वाः सन्तः परामृद्धिमवापुः।

पदच्छेद–येन च चन्द्रेण इव सकल–कला–कुल–गृहेण, शर्वरी–ईति–हारिणा, दलित–कैरवेण, प्रसाधित–आशेन विलोकिताः, जलधयः इव समुल्लसित–गोत्राः, सुदूर–विवर्द्धित–जीवनाः, प्रसन्न–सत्त्वाः सन्तः पराम् ऋद्धिम् अवापुः।

अनुवाद– जिसप्रकार सभी कलाओं के समूह के आश्रय, रात्रि के अन्धकार का हरण करने वाले, कुमुदिनियों को विकसित करने वाले एवं सभी दिशाओं को सुशोभित करने वाले चन्द्रमा द्वारा, पर्वतों पर आघात करने वाले, अत्यधिक फैले हुए जलों वाले, जल के प्राणियों को प्रसन्न करने वाले समुद्र अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार नृत्यगीतादि सभी चौसठ कलाओं के आश्रयरूप, महादेव के स्वभाव का हरण करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, लोगों की कामनाओं को पूरा करने वाले, उसके दृष्टिपथ में आने पर वृद्धि को

प्राप्त होने वाले कुलों से युक्त, बढ़ी हुई जीविका सम्पन्न, निर्मल मन वाले सज्जन लोग अत्यन्त समृद्धि को प्राप्त हो गए।

'चन्द्रिका'–उपर्युक्त अंश में कवि का मात्र इतना ही कथ्य है कि– जिसप्रकार समुद्रों के जल निर्मल तथा पूर्ण चन्द्रमा के कारण वृद्धि को प्राप्त करते हैं, वैसे ही कन्दर्पकेतु की दृष्टि में आने वाले सज्जन लोग भी उनके प्रभाव से समृद्धि को प्राप्त हो गए।

जिसप्रकार चन्द्रमा सभी चौदह कलाओं का आश्रय है, वैसे ही कन्दर्पकेतु नृत्यगीतादि सभी चौसठ कलाओं का आश्रय थे। जिसप्रकार चन्द्रमा रात्रि (शर्वरी) के सम्पूर्ण अन्धकार (ईति) का हरण कर लेता है, वैसे ही इस राजा ने महादेव (सर्व) के कल्याणकारी स्वभाव (रीति) को ग्रहण कर लिया था। जिसप्रकार चन्द्रमा कुमुदिनियों (कैरव) को खिलाता है, वैसे ही इसने अपने सभी शत्रुओं (कैरव) को विनष्ट (दलित) कर दिया था। जिसप्रकार चन्द्रमा अपने प्रकाश से सभी दसों दिशाओं को सुशोभित (प्रसाधित) करता है, वैसे ही इस राजा ने अपने यश से सभी दिशाओं को सुशोभित किया था।

पुनः समुद्र की विशेषताओं को कहते हैं– जिसप्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा के प्रभाव से अत्यधिक बढ़ी हुई तरंगों वाला समुद्र पर्वत के ऊँचे–ऊँचे शिखरों पर आघात करता है, वैसे ही कन्दर्पकेतु द्वारा अपने शत्रुओं पर आघात किया गया तथा उनकी कृपा प्राप्त करके, पृथ्वी पर स्थित अनेक सज्जन राजाओं का समूह समृद्धि को प्राप्त हुआ।

जिसप्रकार अनेक जीव–जन्तुओं को प्रसन्न करने वाला, दूर तक बढ़े हुए जलों वाला समुद्र, चन्द्रमा को देखकर वृद्धि को प्राप्त करता है, वैसे ही कन्दर्पकेतु को देखकर उत्तम आजीविका (जीवन) के प्राप्त होने से प्रसन्न मन वाले सज्जन लोग भी अत्यधिक (सुदूर) वृद्धि को प्राप्त हुए।

विशेष–(i) चन्द्रमा द्वारा समुद्र के जलों में वृद्धि का कथन करने से महाकवि का भौतिक–विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है,

क्योंकि पूर्ण चन्द्रमा अर्थात् पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आने का कारण चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति होती है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में द्व्यर्थक पदों का इसप्रकार अर्थ करना होगा– **शर्व**–शिव, **शर्वरी**–रात्रि, **रीति**–शील, प्रकार, **हारि**–हरण करने वाला, अनुकरण करने वाला। **कैरव**–शत्रु, कुमुद, **दलित**–मर्दित, **चूर्णीकृत**– विनाशित, प्रफुल्लित, विकसित। **आशा**– दिशा, आकांक्षा। **प्रसाधित**– अपने वश में किया गया, पूर्ण, सुशोभित। **गोत्र**–कुल, पर्वत। **जीवन**– जल, जीविका। **सुदूर**–दूर तक बढ़े हुए, अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त। **प्रसन्न**– आनन्दित, निर्मल। **सत्त्व**–प्राणी, अन्तःकरण।

(iii) 'दलितकैरव' आदि अनेकानेक पदों में श्लेष तथा 'चन्द्रेणेव' में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(कन्दर्पकेतुसौन्दर्यवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार सज्जनों की समृद्धि करने वाले कन्दर्पकेतु की प्रशंसा विस्तार से करने के बाद, महाकवि इसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(9) यस्य च जनितानिरुद्धलीलस्य, रतिप्रियस्य, कुसुमशरासनस्य मकरकेतोरिव दर्शनेन, वनिताजनस्य हृदयमुल्ललास।

पदच्छेद– यस्य च जनित–अनिरुद्ध–लीलस्य, रति–प्रियस्य, कुसुम–शरासनस्य मकरकेतोः इव दर्शनेन, वनिता–जनस्य हृदयम् उल्ललास।

अनुवाद– जिसप्रकार अनिरुद्ध की बाललीलाओं को उत्पन्न करने वाले, रति के प्रिय, पुष्पों के धनुष को धारण करने वाले, कामदेव के दर्शन से युवतियों का हृदय आनन्दित हो उठता है, उसीप्रकार निरन्तर विलासों को उत्पन्न करने वाले, रतिक्रीड़ा से प्रेम करने वाले, कामदेव को भी तिरस्कृत करने वाले, कन्दर्पकेतु को देखने मात्र से ही युवतियों का हृदय उल्लसित हो जाता था।

'चन्द्रिका'– कन्दर्पकेतु वस्तुतः कामदेव से भी अधिक सुन्दर तथा आकर्षक था। यही कारण है कि जिसप्रकार कामदेव की पत्नी रति अपने पुत्र अनिरुद्ध में अनेक प्रकार की बाल–लीलाओं को उत्पन्न करके आनन्दित होती थी तथा पुष्पों के धनुष को धारण करने वाले कामदेव को देखने मात्र से ही रमणियों का हृदय आनन्दित हो जाता है। ठीक उसीप्रकार अपने सौन्दर्य से कामदेव को भी तिरस्कृत करने वाला, यह कन्दर्पकेतु हमेशा ही अनेक प्रकार की विलासपूर्ण चेष्टाएँ करता रहता था एवं विविधप्रकार की रतिक्रीड़ाओं में भी उसकी विशेष रुचि रहती थी, जिसके कारण रमणियों का अन्तःकरण काम–क्रीड़ाओं को करने के लिए हिलोरें भरने लगता था।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में द्व्यर्थक पदों का अर्थ इसप्रकार समझना होगा। **अनिरुद्ध**– कामदेव का पुत्र, बिना रुके निरन्तर। **लील** –विलास, कामुक चेष्टाएँ, बाललीलाएँ। **रतिप्रिय**– रति नामक पत्नी का प्रिय कामदेव, रतिक्रीड़ा का प्रेमी कन्दर्पकेतु।

(ii)महाकवि के स्त्री विषयक मनोविज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः सुबन्धु की यह विशेषता प्रस्तुत काव्य में हमें पद–पद पर देखने को मिलती है।

(iii) **मकरकेतु**– कामदेव की ध्वजा पर 'मकर' का चिह्न होने के कारण इसका अन्य नाम मकरकेतु भी हुआ।

(iv) **पुष्पधन्वा**– पुराणों के अनुसार मान्यता है कि कामदेव का धनुष पुष्पों से निर्मित है, इसीलिए इसे 'पुष्पधन्वा' कहा जाता है।

(v) **उल्ललास**– पद का प्रयोग कवि ने सोद्देश्य किया है, जिससे कामिनियों की रतिक्रिया के लिए उत्कण्ठातिशय की भी अभिव्यक्ति हो रही है, जिसे 'हूक' भरना से समझा जा सकता है।

अवतरणिका–इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(10) **यस्मै चानुगतदक्षिणसदागतये, नेत्रश्रुतिसुख–दाय,कोमलकोकिलरुताय, विकासितपल्लवाय, कृतकान्तार–**

तरङ्गाय सुरभिसुमनोऽभिरामाय, सर्वजनसुलभपद्माय, विस्तृतकनकसम्पदे अतिक्रान्तदमनकाय वसन्तायेव,उपवन-लता इवोत्कलिकासहस्रसङ्कुलः भ्रमरसङ्गताः, प्रवाल-हारिण्यः, विलसद्वयसस्तरुण्यः स्पृहयांचक्रुः।

पदच्छेद– यस्मै च अनुगत–दक्षिण–सदा आगतये, नेत्र–श्रुति-सुखदाय, कोमल–कोकिल–रुताय, विकासित–पल्लवाय, कृत–कान्तार-तरङ्गाय सुरभि–सुमनः अभिरामाय, सर्व–जन–सुलभ–पद्माय, विस्तृत-कनक–सम्पदे अतिक्रान्त–दमनकाय वसन्ताय इव, उपवन–लता इव उत्कलिका–सहस्र–सङ्कुलः भ्रमर–सङ्गताः, प्रवाल–हारिण्यः, विलसद् वयसः तरुण्यः स्पृहयांचक्रुः।

अनुवाद– जिसप्रकार दक्षिण दिशा से आने वाली हवाओं से युक्त, सर्पों को आनन्द प्रदान करने वाले, कोयल के मधुर स्वर से युक्त, पल्लवों को विकसित करने वाले, वनों को तरंगित करने वाले, सुगन्धित पुष्पों से सुन्दर लगने वाले, सभी लोगों के लिए सुलभ कमलों वाले, चम्पा की फैली हुई सम्पत्ति से युक्त, सुगन्धित दमन नामक पुष्प विशेष को भी तिरस्कृत करने वाले, वसन्त की हजारों खिली हुई कलियों, भ्रमरों, नए–नए किसलयों से युक्त, पक्षियों से सुशोभित उपवन की लताएँ कामना करती हैं।

ठीक उसीप्रकार अनेक प्रकार की उत्कण्ठाओं से युक्त, कामुक लोगों से घिरी हुईं, प्रकृष्ट बालों वाली अंगों में प्रस्फुरित यौवनरूप अवस्था वाली युवतियाँ, सेवकों, विद्वानों एवं सज्जनों के आश्रयस्थल, देखने से नेत्रों को तथा सुनने से कानों को आनन्द प्रदान करने वाले, कोयल के समान मधुर बोलने वाले, शृंगार को प्रफुल्लित करने वाले, सुन्दरियों में सुरत सम्बन्धी अभिलाषा को उत्पन्न करने वाले, सुगन्धित पुष्पों को धारण करने से रमणीय लगने वाले, सभी लोगों के लिए सुलभ ऐश्वर्यरूप सम्पत्ति वाले, अत्यधिक स्वर्ण की

सम्पत्ति से युक्त, अपने पराक्रम से वीरों का अतिक्रमण करने वाले, कन्दर्पकेतु की कामना करती थीं।

'चन्द्रिका'– जिसप्रकार पूर्णरूप से विकसित हजारों कलियों से युक्त, भ्रमरों से आप्लावित, नए–नए पत्तों की सुन्दरता से भरी हुई, उपवन की सुन्दर लताएँ, दक्षिण वायु से युक्त, नेत्रों को सुन्दर प्रतीत होने वाले, सर्पों को आनन्द प्रदान करने वाले, कोयलों के मधुर स्वर से युक्त, सभी वृक्ष तथा लताओं के पल्लवों को विकसित करने वाले, वनों को रोमांचित करने वाले, सुगन्धों से भरे हुए पुष्पों से मन को हरने वाले, कमलों की प्रचुरता से युक्त, धतूरे या चम्पा के पुष्पों की सम्पत्ति से सम्पन्न, 'दमनक' नामक पुष्प विशेष के सौन्दर्य से युक्त, वसन्त की अभिलाषा करती हैं।

ठीक उसीप्रकार अनेक प्रकार की रतिक्रीड़ा से जुड़ी हुई अभिलाषाओं से पूर्ण, कामुक लोगों से आवृत्त, लम्बे बालों वाली या प्रवाल की माला को धारण करने वाली, शरीर के प्रत्येक अंग में स्फुरित होने वाले यौवन से युक्त रमणियाँ, अनुचरों, विद्वानों तथा सज्जन लोगों का पालन करने वाले, अपने सौन्दर्य से नेत्रों को, मधुर स्वर से कानों को सुख प्रदान करने वाले, कोयल के समान मधुर वाणी का प्रयोग करने वाले, अनेक प्रकार के शृंगार को विकसित करने वाले, कामिनियों में सुरत से सम्बन्धित अभिलाषा को उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त सुगन्धित पुष्पों को आभूषण के रूप में धारण करने वाले, सभी प्रजाजनों के लिए सहजरूप में प्राप्त होने वाले, भोगने योग्य ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति से युक्त स्वर्ण–सम्पत्ति वाले, अपने पराक्रम से शत्रुओं का अतिक्रमण करने में समर्थ, उस कन्दर्पकेतु की रति के लिए अभिलाषा करती थीं।

विशेष–(i) द्व्यर्थक पद– **अनुगत**– अनुचर, सेवक, आने वाली। **दक्षिण**– दिशा, अनुकूल, दक्ष। **नेत्रश्रुति**– सर्प, नेत्र और कान। **पल्लव**– शृंगार, कोमल पत्ते। **कान्तारतरंगाय**– वनों को आनन्दित, कान्ता,

सुन्दरियों को रति से प्रसन्न करने वाला। **पद्म**– कमल, सम्पत्ति। **कनक**–धतूरा, स्वर्ण। **दमनक**– पुष्प विशेष, दमनकारी। **उत्कलिका**– कली, उत्कण्ठा, उत्कट अभिलाषा। **भ्रमर**– कामुक, भौंरा। **वयस्**– यौवन, पक्षी।

(ii) वसन्त ऋतु में हवाओं का प्रवाह दक्षिण से हो जाता है, इस तथ्य को उद्‌घाटित करने के कारण कवि का ऋतु–विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'दमन' पद कन्दर्पकेतु के सौन्दर्य के उपमान रूप में प्रयुक्त होने से इसको 'लता' के अर्थ में न मानकर 'पुष्प' अर्थ में प्रयुक्त मानना अधिक उचित प्रतीत होता है, जो अत्यधिक सुन्दर होता है, इससे यहाँ कवि का वनस्पति–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(iv) इसीप्रकार वसन्त ऋतु में खिलने वाले पुष्पों का विस्तार से उल्लेख करने से कवि का पर्यावरण अर्थात् प्रकृति विषयक प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है।

(v) यहाँ कन्दर्पकेतु की उपमा के लिए वसन्त का तथा कामिनियों की उपमा के लिए वन की सुन्दर लताओं का उपमानरूप में चयन किया गया है। अतः कवि की कल्पना सहृदय सामाजिक के लिए मनोहारिणी बन पड़ी है।

(कन्दर्पकेतुवीरत्ववर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार कन्दर्पकेतु की यौवनावस्था का वर्णन करने के बाद, महाकवि मालादीपक, उत्प्रेक्षा एवं उपमा के माध्यम से उसकी वीरता अर्थात् पराक्रम का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

(11) **यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरैररिशिरः, अरिशिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेनाननुभूतपूर्वो नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्त्या च सप्त**

सागराः, सागरैः कृतयुगादिराजचरितस्मरणम्, स्मरणेन स्थैर्यम्, स्थैर्येण प्रतिक्षणमाश्चर्यमासादितम्।

पदच्छेद–यस्य च समर–भुवि भुज–दण्डेन कोदण्डम्, कोदण्डेन शराः, शरैः अरि–शिरः, अरि–शिरसा भू–मण्डलम्, भूमण्डलेन अन्–अनुभूत–पूर्वः नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्त्या च सप्त सागराः, सागरैः कृतयुग–आदि–राजचरित–स्मरणम्, स्मरणेन स्थैर्यम्, स्थैर्येण प्रतिक्षणम् आश्चर्यम् आसादितम्।

अनुवाद– इसके अलावा समरभूमि में जिस कन्दर्पकेतु की भुजा ने प्रति क्षण धनुष को, धनुष ने बाणों को, बाणों ने शत्रुओं के मस्तकों को, शत्रुओं के मस्तकों ने भूमण्डल को, भूमण्डल ने पहले अनुभव न किए गए नायक को, नायक ने कीर्ति को, कीर्ति ने सात सागरों को, समुद्रों ने सतयुग के राजाओं के चरितों के स्मरण को, स्मरण ने स्थिरता को तथा स्थिरता ने आश्चर्य को प्राप्त किया।

'चन्द्रिका'–युद्धभूमि में कन्दर्पकेतु के शौर्य को अतिशयोक्ति पूर्ण शैली में वर्णित करते हुए कवि कहता है कि–

इसका पराक्रम वस्तुतः शत्रुओं को भी आश्चर्यचकित करने वाला था, क्योंकि वह जैसे ही अपने हाथ में धनुष को धारण करता था, वैसे ही अगले क्षण उस धनुष पर बाण चढ़ जाते थे और वे बाण भी दूसरे ही क्षण में शत्रुओं के मस्तकों तक पहुँच जाते थे तथा उसी क्षण शत्रुओं के मस्तक कटकर पृथ्वी पर लोटने लगते थे, जिसके अग्रिम क्षण में ही उन्हें पूर्व में जिसका अनुभव नहीं किया गया है, ऐसे यश की अनुभूति उस पृथ्वीतल को हो जाती थी और यह यश भी सीमित न रहकर सातों समुद्रों की सीमाओं तक पहुँच जाता था, जिसे सुनकर समुद्रों को भी सतयुग में विद्यमान पराक्रमी राजाओं के चरितों का स्मरण हो आता था एवं उनका यह स्मरण भी कुछ क्षणों के लिए न होकर स्थायीरूप से उनकी स्मृति में अपना स्थान बना लेता था, जो वस्तुतः सभी को आश्चर्यचकित करने वाला था।

विशेष–(i) मानवीकरण महाकवि की बहुत बड़ी विशेषता रही है, यहाँ उन्होंने विभिन्न प्रकार के भावों का भी मानवीकरण किया है।

(ii) उपर्युक्त गद्यांश में पूर्व–पूर्व की वस्तु द्वारा उत्तर–उत्तर के प्रदेश को प्राप्त करना वर्णित किया गया है। इसलिए माला–दीपक अलकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

अवतरणिका– कन्दर्पकेतु की वीरता के वर्णन–प्रसंग में ही उसके शत्रुओं की मृत्यु के बाद, उनकी विधवा स्त्रियों की दुर्गति का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(12) यस्य च प्रतापानलदग्धदयितानां रिपुसुन्दरीणां करतलताडनभीतैरिव मुक्ताहारैः पयोधरपरिसरो मुक्तः।

पदच्छेद– यस्य च प्रताप–अनल–दग्ध–दयितानाम्, रिपु–सुन्दरीणाम् करतल–ताडन–भीतैः इव मुक्ताहारैः पयोधर–परिसरः मुक्तः।

अनुवाद– जिस कन्दर्पकेतु के प्रतापरूपी अग्नि से दग्ध प्रियतमों वाली, शत्रुओं की पत्नियों के हाथों द्वारा पीटे जाने के भय के कारण मानो मोतियों के हारों ने स्तनमण्डल के आश्रय का ही परित्याग कर दिया था।

'चन्द्रिका'– कन्दर्पकेतु के प्रतापरूपी अग्नि में जलकर शत्रुओं के मृत्यु को प्राप्त हो जाने के बाद, उनकी विधवा स्त्रियों द्वारा विलाप करने के प्रसंग में वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

शत्रुओं की उन विधवा स्त्रियों ने अपने कण्ठों में जिन मोतियों के हार को धारण किया हुआ था, उन्होंने इस डर से उनके पयोधरों के विस्तार को पहले ही छोड़ दिया था कि अब ये विलाप करते हुए हमें अपने हाथों से पीटेंगी अर्थात् प्रताड़ित करेंगी।

विशेष–(i) सामान्य भारतीय सामाजिक परम्परा है कि पति की मृत्यु के बाद विलाप करती हुई स्त्रियाँ अपनी छाती को दोनों हाथों से पीटती हैं, उसी ओर संकेत करते हुए यहाँ कन्दर्पकेतु द्वारा मारे गए योद्धाओं की विधवाओं की स्त्रियों के सम्बन्ध में कहा गया है।

(ii) शत्रु–स्त्रियों द्वारा धारण किए हुए हारों का मानवीकरण किया गया है, जिन्होंने पीटे जाने के भय से उन विधवा स्त्रियों के पयोधरों अर्थात् स्तनों का पहले ही त्याग कर दिया है।

(iii) उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है, क्योंकि विलाप से पूर्व मोतियों के हारों को अपने वक्ष से हटाने में पीटे जाने के भय से उनके डरकर चले जाने की सम्भावना व्यक्त की गयी है।

(iv) 'प्रतापानलदग्धदयितानाम्' में 'प्रताप' पराक्रमरूप उपमेय तथा 'अनल' अग्निरूप उपमान में अभेद की स्थापना के कारण रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

लक्षण– तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।

(कन्दर्पकेतुखड्गवर्णनम्)

अवतरणिका– तत्पश्चात् कवि युद्धभूमि में कन्दर्पकेतु की खड्ग के शत्रुओं पर प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(13) **यस्य च निशितनाराचजर्ज्जरितमत्तमातङ्ग–कुम्भस्थलविगलितनिस्तलमुक्ताफलनिकरदन्तुरितपरिसरे, पतत्पत्ररथे, रक्तवारिसमुड्ड्यमानद्विरदपदकच्छपे विलसदु–त्पलपुण्डरीके, वाहिनीशतसमाकुले, नृत्यत्कबन्धविधुरे, सुर–सुन्दरीसमामगोत्सुकभटाहङ्कारभाषणरवभीषणे, सागर इव समरशिरसि, भिन्नपदातिकरितुरगरुधिरार्द्रजयलक्ष्मीपादा–लक्तकरागरंजित इव खड्गो रराज।**

पदच्छेद– यस्य च निशित–नाराच–जर्ज्जरित–मत्त–मातङ्ग–कुम्भ–स्थल–विगलित–निस्तल–मुक्ताफल–निकर–दन्तुरित–परिसरे, पतत् पत्ररथे, रक्त–वारि–समुड्ड्यमान–द्विरद–पद–कच्छपे विलसद् उत्पल–पुण्डरीके, वाहिनी–शत–समाकुले, नृत्यत् कबन्ध–विधुरे, सुर–सुन्दरी–समामग–उत्सुक–भट–अहङ्कार–भाषण–रव–भीषणे, सागरे इव समर–शिरसि, भिन्न–पदाति–करि–तुरग–रुधिर–आर्द्र–जयलक्ष्मी–पाद–आलक्तक–राग–रंजित इव खड्गः रराज।

अनुवाद– तीक्ष्ण लोहे के बाणों से विदीर्ण, मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों से निकले हुए, गोलाकार मुक्ताफलों के समूह से व्याप्त प्रान्त भाग वाले, जल पीने के लिए गिरते हुए पक्षियों वाले, लाल जल में उतारे हुए हाथी के पैरों के समान कछुओं वाले, विकसित कुमुद एवं श्वेत कमलों से सुशोभित, सैंकड़ों नदियों से युक्त, नृत्य करते हुए जलों से सुशोभित, सुरसुन्दरी नामक मछलियों को प्राप्त करने के लिए उत्सुक मल्लाहों के अहंकार की द्योतक भयंकर ध्वनि से युक्त समुद्र के समान, जिस कन्दर्पकेतु के तीक्ष्ण लोहे के बाणों से विदीर्ण, मतवाले हाथियों के कपोलस्थलों से निकले हुए, गोल आकार वाले मुक्ताफलों के समूह से व्याप्त प्रान्तभाग वाले, गिरते हुए बाणों के पँखों वाले, रक्त रूपी जल में उतारे हुए हाथी के पैरों रूपी कछुओं की छाप से युक्त, मांसरहित, मरे हुए वीरों के हृदयों से सुशोभित, सैंकड़ों सेनाओं से युक्त, तड़पते हुए सिर व कटे हुए धड़ों (कबन्धों) के कारण ऊँचे–नीचे बने हुए तथा मृत्यु को प्राप्त होने पर देवलोक में अप्सराओं के साथ सहवास के उत्सुक वीरों के अहंकार को प्रदर्शित करने वाले, भयानक शब्दों से युक्त, युद्धभूमि में जिसका खड्ग, कटी हुई पैदल सेना, हाथी एवं घोड़ों के रक्त से गीले राजलक्ष्मी के पैरों की महावर की लालिमा से रँगे हुए के समान सुशोभित हुआ।

'चन्द्रिका'– यहाँ सागर के समान समरांगण में जिसका खड्ग सुशोभित हुआ यह मुख्यवाक्य है, जबकि सप्तमी विभक्ति एक वचन में प्रयुक्त आरम्भिक सभी समरशिरसि–सागरे के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सर्वप्रथम समुद्र का दृश्य समझना होगा। (1) इसके प्रान्त भाग शिकारियों के तीक्ष्ण लोहे के बाणों से विच्छिन्न मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों से निकले हुए गोल आकृति वाले बड़े–बड़े मोतियों से भरे हुए हैं। (2) जल पीने के लिए वेगपूर्वक आते हुए पक्षियों से व्याप्त हैं। (3) लाल जल में उतरे हुए हाथी के पैरों के अग्रभाग के समान कछुओं

से भरे हुए हैं। (4) कुमुद तथा श्वेत कमलों से शोभायमान हैं। (5) सैंकड़ों नदियों तथा नर्तन करते हुए विशाल जलों की राशि से सुशोभित हैं। (6) इसके अलावा सुर सुन्दरी नामक मछली को पकड़ने की होड़ में उत्साहपूर्वक इनके अहंकार के द्योतक भयंकर कोलाहलों से परिपूरित हैं।

जबकि इसके समरांगण की विशेषता भी कुछ ऐसी ही है, क्योंकि यह (1) तीखे लोहे के बाणों से विदीर्ण हुए मतवाले हाथियों के कुम्भस्थलों से निकले हुए गोलाकृति वाले विशाल मोतियों के समूह से भरा हुआ है। (2) इस समरभूमि में चारों ओर वाहन तथा रथ टूटकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं। (3) योद्धाओं के रक्तरूपी जल में हाथी के पैररूपी कछुए तैर रहे हैं। (4) मांसरहित हृदय, शरीरों से निकल कर इधर–उधर पड़े हुए हैं। (5) सैंकड़ों की संख्या में सैनिकों से भरा हुआ है। (6) नृत्य करते हुए कबन्धों के कारण उबड़– खाबड़ होने से दुर्गम हो गया है। (7) यहाँ पर सैनिकों में आपस में मरने की मानो होड़ लगी हुई है, क्योंकि ये सभी युद्धभूमि में प्राण त्यागकर स्वर्गलोक में जाकर सुरांगनाओं से मिलने के लिए उत्सुक हैं तथा अंहकारयुक्त भयंकर शब्द कर रहे हैं।

इसप्रकार की विशेषताओं वाली इस समरभूमि में कन्दर्पकेतु का खड्ग वस्तुतः काटी गयी पैदल सेना, हाथी, घोड़ों के रक्त से रंजित हुआ मानो विजयलक्ष्मी के पैरों में लगाए गए महावर के राग से रंजित किया हुआ सुशोभित हो रहा था।

विशेष– (i) युद्धभूमि के भयंकर कोलाहल की उपमा समुद्र के किनारे सुरसुन्दरी नामक मछलियों को पकड़ने के लिए उत्साहित मल्लाहों के भयंकर कोलाहल से दी गयी है।

(ii) यहाँ उक्त विशेषणों का प्रयोग दोनों पक्षों में किया जाएगा। इसीप्रकार समुद्र के दूसरे सभी विशेषण समरभूमि के पक्ष में भी जोड़े जाएँगे।

(iii) **द्वयर्थक** पद– **पत्ररथ–** पक्षी, वाहन एवं रथ। **उत्पल पुण्डरीक–** कुमुद व कमल, मांसरहित हृदय। **वाहिनीशत–**सैंकड़ों नदियों, सैंकड़ों सेनाओं। **कबन्धविधुर**–कटे सिर के नीचे के भागों के कारण असमान, जल से सुन्दर। **भाषणरवभीषण–** बोलने के शोर से भयंकर, अप्सराओं के समागम के लिए उत्सुक शब्दों से भीषण।

(iv) व्यक्ति का सिर कटने के बाद, शरीर के नीचे के शेष भाग को 'कबन्ध' कहते हैं। संस्कृत काव्यों के युद्ध–वर्णनों में इनके विषय में विशेषरूप से वर्णन उपलब्ध होता है। इसी कबन्ध में स्थित हाथ युद्धभूमि में सिर कटने के बाद भी रक्त की गर्मी तथा पूर्व संस्कारवश कुछ क्षणों तक तलवार चलाते रहते हैं।

(v) कवि ने यहाँ चतुरंगिणी सेना पैदल, अश्वारोही, रथी (पतत्पत्ररथे) तथा हाथियों का उल्लेख किया है, जो तात्कालिक युद्ध भूमि के दृश्य का प्रत्यक्ष कराने वाला है। अतः महाकवि की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है।

(vi) सुरसुन्दरी मछली के प्रस्तुत उल्लेख के आधार पर ही कुछ विद्वानों ने सुबन्धु को बंग निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है, क्योंकि यह मछली बंगाल में अत्यधिक पायी जाती है।[1]

(vii) निशित....परिसरे,इत्यादि अंश में छेकानुप्रास, 'पतत्पत्ररथे' में श्लेष, 'भीषणे सागरे इव' में उपमा, 'पदकच्छपे' में रूपक एवं सम्पूर्ण अंश 'रागरंजित इव खड्गो रराज' इत्यादि अनेक पदों में उत्प्रेक्षा अलंकारों के साथ–साथ इनकी संकर, संसृष्टि तथा ओजगुण तथा वैदर्भी रीति का सौन्दर्य दर्शनीय है।

---

[1]. प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका– महाकवि का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व, शीर्षक में पृष्ठ–36 ।

(प्रातःकालिक चन्द्रवर्णनम्)

अवतरणिका—इसके पश्चात् प्रकृति से विशिष्ट प्रेम करने वाले महाकवि सुबन्धु प्रातःकाल में अस्ताचल की ओर जाते हुए चन्द्रमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

(14) **अथ स कदाचिदवसन्नायां यामवत्यां दधि–धवलकालक्षपणकग्रासपिण्ड इव, निशायमुनाफेनपुंज इव, मेनकानखमार्जनधवलशिलाशकल इव, मधुच्छत्रच्छाय–मण्डलोदरे, पश्चिमाचलोपधानसुखनिषण्णशिरसो राजत–ताटङ्कचक्र इव, श्यामश्यामायाः, शेषमधुभाजिचषक इव विभावरीवध्वाः, अपरजलधिपयसि शङ्खकान्तिकामुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके...**

पदच्छेद– अथ स कदाचित् अवसन्नायाम् यामवत्याम् दधि–धवल–काल–क्षपणक–ग्रास–पिण्डः इव, निशा–यमुना–फेन–पुंजः इव, मेनका–नख–मार्जन–धवल–शिला–शकलः इव, मधुच्छत्र–छाय–मण्डल –उदरे,पश्चिम–अचल–उपधान–सुख–निषण्ण–शिरसः राजत–ताटङ्क–चक्रः इव, श्याम–श्यामायाः, शेष–मधु–भाजि–चषकः इव विभावरी–वध्वाः, अपर–जलधि–पयसि शङ्ख–कान्ति–कामुकः इव मज्जति कुमु–दिनी–नायके...

अनुवाद– इसके पश्चात् किसी समय रात्रि के व्यतीत होने पर कालरूपी 'क्षपणक' के दधि से मिश्रित ग्रासपिण्ड के समान शुभ्रवर्ण, रात्रिरूपी यमुना नदी के फेनसमूह के समान, मेनका के नख को साफ करने वाले शुभ्र पत्थर के टुकड़े के समान, शहद के छत्ते के समान मध्य बिम्ब वाला, अस्ताचलरूपी उपधान पर सिर रखकर लेटी हुई रात्रिरूपी युवति के रजत द्वारा निर्मित गोल आकार वाले कान के आभूषण (ताटंकचक्र) के समान, रात्रिरूपी वधु के पीने से बचे हुए मद्य से युक्त सुरापात्र के समान, कुमुदनी नायक चन्द्रमा, शंख की कान्ति

को प्राप्त करने की आकांक्षा से मानो पश्चिम समुद्र में डूब रहा था, (ऐसे प्रातःकाल में कन्दर्पकेतु ने स्वप्न देखा)।

'चन्द्रिका'– इसके बाद एक बार की बात है कि रात्रि के अधिकाँशरूप से व्यतीत हो जाने पर कन्दर्पकेतु ने प्रातःकाल के समय एक स्वप्न देखा, उस अवसर पर मानो चन्द्रमा शंख की कान्ति को प्राप्त करने की आकांक्षा से पश्चिम दिशा में स्थित समुद्र में डूब रहा था।

अस्त होता हुआ यह चन्द्रमा ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो कालरूपी क्षपणक का दधि से मिश्रित शुभ्र ग्रास–पिण्ड हो, रात्रिरूपी यमुना नदी का फेन का समूह हो, मेनका नामक अप्सरा के नाखूनों को साफ करने वाला, श्वेत पत्थर की शिला का पत्थर हो, मधुमक्खी के शहद के छत्ते के बीच का श्वेत भाग हो।

इसके अतिरिक्त यह चन्द्रमा अस्ताचलरूपी उपधान पर अपने सिर को रखकर विश्राम करती हुई रात्रिरूपी सुन्दरी का चाँदी से निर्मित ताटंकचक्र अर्थात् कान का गोलाकार आभूषण प्रतीत हो रहा था। इसीप्रकार यह रात्रिरूपी वधू के पान करने से अवशेष बचे हुए मदिरा से युक्त गोलाकार पात्र जैसा लग रहा था।

विशेष–(i) यहाँ मुख्य कथ्य यही है कि कन्दर्पकेतु ने प्रातःकाल में स्वप्न देखा, उस समय उक्त विशेषणों से युक्त चन्द्रमा समुद्र में डूब रहा था अर्थात् अस्ताचल को प्राप्त हो रहा था।

(ii) सम्पूर्ण वासवदत्ता काव्य में कवि का प्रकृति विषयक प्रेम विशेषरूप से अभिव्यक्त हुआ है। प्रथम दृष्ट्या तो यह भी प्रतीत होता है कि इस काव्य की संरचना ही उन्होंने प्रकृति के सुकुमार चित्रण के लिए की है, क्योंकि प्रातः, सायं, सूर्य, चन्द्रादि वर्णन के लगभग पच्चीस बिन्दुओं में यहाँ प्रकृति का वर्णन विस्तारपूर्वक पूरी तरह आकण्ठ डूबकर किया गया है। इसमें भी यहाँ प्रकृति जीवन्तता लिए हुए है, क्योंकि प्रायः सर्वत्र ही उन्होंने इसका 'मानवीकरण' किया है। उपर्युक्त

अंश में भी रात्रि में कामिनी तथा वधू की कल्पना करके उसे जीवन्तरूप प्रदान किया गया है।

(iii) यहाँ तक डूबते हुए चन्द्रमा के शुभ्रवर्ण के विषय में कवि ने सर्वथा मौलिक कल्पनाओं को प्रस्तुत किया है।

(iv) यहाँ 'क्षपणक' पद का प्रयोग बौद्ध या जैन साधु के लिए किया है, तथा उसके खाद्य दधिमिश्रित ग्रास के टुकड़े के विषय में कवि ने विशेषरूप से उल्लेख किया है, जिससे कवि की सूक्ष्म दृष्टि भी अभिव्यक्त हुई है।

(v) वाक्य के अन्त में या क्रिया पद के साथ यदि 'इव' पद का प्रयोग किया जाता है तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसलिए यहाँ सम्पूर्ण अंश में उत्प्रेक्षालंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) इसीप्रकार कालरूपी क्षपणक, निशारूपी यमुना, विभावरी रूपी वधू आदि पदों में रूपक अलंकार का भी प्रयोग देख सकते हैं।

अवतरणिका– प्रातःकालिक वर्णन प्रसंग में चन्द्रमा की शोभा का उल्लेख करने के बाद, महाकवि प्रकृति के दूसरे उपादानों भ्रमरों, सारिकाओं, छात्रावासों में अध्ययनरत छात्रों तथा कार्पटिकों के रात्रि कालीन निद्रा से जागने पर किए जाने वाले क्रियाकलापों के विषय में महाकवि कहते हैं कि–

(15) **शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदपरागमध्यबद्ध–चरणेषु षट् चरणेषु, कलप्रलापबोधितचकिताभिसारिकासु सारिकासु, प्रबुद्धाध्ययनकर्मठेषु मठेषु विभासरागमुखर–कार्पटिक जनोपगीयमानकाव्यकथासु रथ्यासु......**

पदच्छेद–शिशिर–हिमशीकर–कर्दमित–कुमुद–पराग–मध्य–बद्ध –चरणेषु षट्चरणेषु, कल–प्रलाप–बोधित–चकित–अभिसारिकासु सारिकासु, प्रबुद्ध–अध्ययन–कर्मठेषु मठेषु विभास–राग–मुखर–कार्पटिक– जन–उपगीयमान–काव्य–कथासु रथ्यासु[1]......

---

[1]. रथ्या प्रतोली विशिखेत्यमरः।

अनुवाद– उस समय शीतल हिमकणों के सम्पर्क के कारण कीचड़ बने हुए, कुमुदों के पराग के बीच में मानो भ्रमर फँसे गए थे। अपने सुन्दर प्रलाप से मानो सारिकाएँ अपनी मधुर ध्वनि से लोगों को जगा रही थीं। मठों में अध्ययन–कार्य में निपुण छात्र भी जाग गए थे। गलियों में 'विभास' नामक रागविशेष द्वारा वस्त्रों के याचक (कार्पटिक) भिक्षु काव्य कथाओं को गा रहे थे।

'चन्द्रिका'– इसी प्रातःकाल के अवसर पर कुमुद में सम्पूर्ण रात्रि बैठे रहने तथा उसी समय शीतल हिमकणों के गिरने से मानो कुमुद के पुष्प के पराग में कीचड़ (कर्दम) हो गया था, जिसमें बैठे हुए भ्रमरों के पैर फँस गए थे। इसलिए वे यहाँ से निकलने का प्रयास करने पर भी नहीं निकल पा रहे थे।

इसके अतिरिक्त पालतू सारिकाएँ अपनी अव्यक्त मधुर ध्वनि (प्रलाप) से मानो अभिसारिका नायिकाओं को जगा रही थीं। दूसरे शब्दों में, प्रिय के वियोग से भयभीत हुई अभिसारिकाओं को दूसरों द्वारा देखे जाने से सावधान कर रही थीं। मठों, गुरुकुलों या छात्रावासों में रहकर अध्ययन करने वाले छात्र रात्रिकालीन निद्रा से जाग कर अपने अध्ययन कार्य में जुट गए थे।

इसके अतिरिक्त नगर के मार्गों में या छोटे मौहल्लों की गलियों में वस्त्रों की याचना करने वाले कार्पटिक याचक 'विभास' नामक विशेषराग का गान करते हुए काव्य सम्बन्धी कथाओं को गाकर लोगों का मनोरंजन करते हुए तथा अपने कार्य का सम्पादन कर रहे थे।

विशेष–(i) कवि को उपमानों के रूप में 'कुमुद' का पुष्प अत्यधिक प्रिय रहा है, क्योंकि इस काव्य में इसका वर्णन अनेकानेक स्थलों पर किया गया है।

(ii) महाकवि ने तात्कालिक समाज के मठ तथा गलियों का सुन्दर सामाजिक चित्र प्रातःकाल वर्णन के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

यहाँ प्रयुक्त कार्पटिक से अभिप्राय वस्त्रों की याचना करने वाले भिक्षुकों से ग्रहण करना चाहिए।

(iii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में चरणेषु, षट्चरणेषु, चकिताभि-सारिकासु सारिकासु एवं अध्ययनकर्मठेषु मठेषु में यमक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) 'विभास' नामक राग विशेष का उल्लेख करने से महाकवि का संगीत विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(v) इसीप्रकार कुमुद के पुष्प के कर्दमयुक्त पराग में भ्रमरों के फँसने का उल्लेख करके कवि के वनस्पति–विज्ञान के साथ–साथ प्राणि–विज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(प्राभातिकदीपवर्णनम्)

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि रात्रिकाल में जलाए गए दीपकों की प्रातःकालिक स्थिति का वर्णन, अपनी मानवीकरण की विशेषता के साथ करते हुए कहते हैं कि–

(16) **सकलनिपीतनैशतिमिरसङ्घातमतनीयस्तया वोढुमसमर्थेष्विव कज्जलव्याजादुद्वमत्सु कामिमिथुननिधुवन–लीलादर्शनार्थमिवोद्ग्रीविकाशतदानखिन्नेषु, विविधविभ्रम–सुरतक्रीड़ासाक्षिषु, शरणागतमिवाधोनिलीनं तिमिरमवत्सु, दुर्जनवचनेष्विव दग्धस्नेहतया मन्दिमानमुपगतेषु। अति–वृद्धेष्विव दशान्तमुपगतेषु विपन्नसदीश्वरेष्विव पात्रमात्रा–वशेषेषु, दानवेष्विव निशाऽन्तमध्यचारिषु अस्तगिरिशिखरेष्विव पतत् पतंगेषु प्रदीपेषु............।**

पदच्छेद–सकल–निपीत–नैश–तिमिर–सङ्घातम् अतनीयतया वोढुम् असमर्थेषु इव कज्जल–व्याजाद् उद्वमत्सु, कामि–मिथुन–निधुवन–लीला–दर्शनार्थम् इव उदग्रीविका–शत–दान–खिन्नेषु, विविध–विभ्रम–सुरत–क्रीड़ा–साक्षिषु, शरणागतम् इव अधोनिलीनम् तिमिरम् अवत्सु, दुर्जन–वचनेषु इव दग्ध–स्नेहतया मन्दिमानम् उपगतेषु, अति–

वृद्धेषु इव दशान्तम् उपगतेषु, विपन्न–सद्–ईश्वरेषु इव पात्र–मात्रा–अवशेषेषु, दानवेषु इव निशा–अन्त–मध्य–चारिषु अस्त–गिरि–शिखरेषु इव पतत् पतंगेषु प्रदीपेषु........।

अनुवाद– उस प्रभात के समय दीपक, रात्रि के अन्धकार को पूरी तरह पी लेने से उसकी अधिकता होने के कारण वहन करने में असमर्थ होने के बहाने मानो काजल का वमन (उलटी) कर रहे थे। कामीयुगल की सुरतलीला के दर्शन के लिए मानो बार–बार गर्दन उठाने के कारण अब खिन्न हो रहे थे। उनकी अनेकप्रकार की विलासमय सुरतक्रीड़ाओं का प्रत्यक्षरूप से अवलोकन करने के कारण मानो वे साक्षी बने थे। अपने नीचे स्थित अन्धकार की मानो शरणागत के समान रक्षा कर रहे थे। तेल के दग्ध होने हो जाने से विनष्ट हुए स्नेह (प्रेम) वाले दुर्जनों के वचनों के समान, मानो मन्दता को प्राप्त हो रहे थे। अन्तिम अवस्था को प्राप्त वृद्धों के समान, मानो अन्तिम दशा को प्राप्त हो रहे थे। सम्पत्ति के विनष्ट होने से पात्रता मात्र शेष बचने वाले सज्जन व्यक्ति के समान, तेल समाप्त होने से जो पात्रमात्र अवशिष्ट रह गए थे। रात्रि के शेषभाग तथा मध्यभाग में घूमने वाले दानवों के समान जो घर में ही प्रज्वलित हो रहे थे। अस्ताचल के शिखर पर उतरते हुए सूर्य के समान, जिन पर पतंगे गिर रहे थे।..

'चन्द्रिका'–सम्पूर्ण रात्रि जलने के बाद तीसरे प्रहर में तेल के कम होने के कारण दीपक थोड़ा मन्द पड़ जाता है तथा बुझने से पहले उसकी लौ छोटी तथा लम्बी भी होती रहती है, कार्बन अपेक्षाकृत अधिक छोड़ने लगता है। दीपक की इन सभी स्वाभाविक क्रियाओं में कल्पना करते हुए कवि कहता है कि–

यह रात्रिकालीन दीपक सम्पूर्ण रात्रिपर्यन्त अन्धकार के समूह का अत्यधिक पान करने के कारण मानो प्रातःकाल में उसे वहन करने में असमर्थ हो गया है, इसीलिए यह काजल के बहाने अन्धकार का वमन अर्थात् उलटी कर रहा है।

इसके अतिरिक्त कामीयुगल की कामक्रीड़ाओं को देखने की अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा के कारण मानो बार-बार अपनी लौरूपी गर्दन को उचका-उचका कर देखने का प्रयास कर रहा है और इसप्रकार रात्रिपर्यन्त निरन्तर देखने के कारण खिन्न होने से अब यह थक हुआ प्रतीत हो रहा है। इसप्रकार ये सभी प्रभातकालीन दीपक वस्तुतः कामीयुगल की अनेक प्रकार की विलासमयी प्रेमलीलाओं के मानो साक्षीरूप में ही विद्यमान थे।

इसीप्रकार ये सभी दीपक इस समय तक भी अपने नीचे स्थित अन्धकार की रक्षा करते हुए मानो अपने शरणागत वत्सल के उत्कृष्ट धर्म का निर्वहण कर रहे हैं। जिसप्रकार दुर्जनों के वचनों में स्नेह अर्थात् प्रेम की मात्रा नहीं होती है, वैसे ही स्नेह अर्थात् तेल के कम होने से ये अब मानो अपने मद्दिम प्रकाश को प्राप्त कर रहे हैं। अत्यधिक बूढ़े लोगों के समान मानो अपनी अन्तिम दशा को प्राप्त हो रहे हैं। अत्यन्त निर्धन सज्जन व्यक्ति के समान मानो केवल पात्रमात्र ही अवशिष्ट रह गये हैं।

इसके अलावा जिसप्रकार रात्रि के अन्तिम तथा मध्य भाग में दानव केवल अपने निवास स्थान में ही विचरण करते हैं, वैसे ही ये दीपक भी इस समय केवल घर में ही जल रहे हैं, बाहर की ओर ये प्रायः वायु आदि के प्रवाह से बुझ गए हैं। इतना ही नहीं, इस समय इन बुझते हुए दीपकों पर पतंगें भी उसीप्रकार गिर रहे हैं, जैसे अस्ताचल पर जाते हुए सूर्य उसके ऊपर गिरता है।

विशेष–(i) कवि ने उपर्युक्त गद्यखण्ड में प्रज्वलित दीपकों का मानवीकरण करते हुए प्रातःकाल में सुन्दर शृंगारिक परिकल्पना की है।

(ii) उपर्युक्त गद्यांश में कवि की दीपक के सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्म रसायन-शास्त्र विषयक वैज्ञानिक दृष्टि भी अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि रात्रिभर जलने के बाद प्रातःकाल में जब वह बुझने को होता

है, तो उसमें तेल भी कम हो जाता है, उसकी लौ लम्बी हो जाती है तथा वह काजल अर्थात् कार्बन भी अधिक छोड़ता है।

(iii) महाकवि की आयुर्वेद–विज्ञान विषयक दृष्टि भी प्रदर्शित हुई है, क्योंकि कोई भी वस्तु सामर्थ्य से अधिक खाने पर व्यक्ति उसका वमन करने लगता है, जिसकी ओर यहाँ दीपक के माध्यम से संकेत किया है, क्योंकि उसने रात्रि में अंधकार का अधिक भक्षण कर लिया है। इसलिए उसे वह अब काजल के बहाने उलट रहा है।

(iv) दीपक के नीचे हमेशा अन्धकार रहता है, जिसके कारण उसे 'शरणागत अर्थात् शरण में आए हुए अन्धकार की रक्षा करने वाला बताना' कवि की सुन्दर परिकल्पना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

(v) श्लेष, उपमा एवं उत्प्रेक्षालंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) **श्लिष्ट** पद– **स्नेह**– तेल, प्रेम। **पात्र**– बर्तन, शरीर। **अन्त मध्य**– रात्रि के अन्त तथा मध्य में, घर के अन्दर । **पतंग**– सूर्य, शलभ कीट विशेष।

(vii) दीपकों का कामुकरूप चित्रित किया गया है, जिससे कवि का काम–मनोविज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि रतिक्रीड़ा करते हुए युगल को देखने की इच्छा प्रायः प्रत्येक सामान्य नर–नारी में होती ही है, जिसकी ओर महाकवि ने दीपक के माध्यम से संकेत किया है।

अवतरणिका–इसी क्रम में कवि शयनगृह में विद्यमान उपहार पुष्पों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(17) **अनवरतनिपतन्मकरन्दबिन्दुसन्दोहास्वादमदमुग्धमधुकरनिकुरम्बझङ्कारमुखरितेषु, म्लानिमानमुपगच्छत्सु वासागारकुसुमोपहारेषु ......।**

पदच्छेद– अनवरत–निपतत् मकरन्द–बिन्दु–सन्दोह–आस्वाद–मद–मुग्ध–मधुकर–निकुरम्ब–झङ्कार–मुखरितेषु, म्लानिमानम् उप–गच्छत्सु वासागार–कुसुम–उपहारेषु ......।

अनुवाद– उस समय वासगृह में उपहाररूप में प्राप्त हुए निरन्तर टपकते हुए, पुष्परस के बिन्दु–समूह के आस्वादन के मद से मस्त हुए भ्रमरों के समूह की झंकार से शब्दायमान, पुष्प मलिनता को प्राप्त हो रहे थे।

'चन्द्रिका'– रात्रि में जिन ताजे पुष्पगुच्छों को उपहाररूप में प्रशंसकों तथा अनुयायियों द्वारा प्रदान किया गया था, उस समय उनसे पुष्परस निरन्तर प्रस्रवित हो रहा था, जिसकी बिन्दुओं का आस्वादन करके भ्रमरों के झुण्डों की झंकार की ध्वनि से युक्त होकर ये इस समय तक मलिनता को प्राप्त हो रहे थे अर्थात् मुरझा रहे थे।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कवि ने तात्कालिक समाज में प्रचलित रात्रि में सुगन्धित, ताजे, पुष्प गुच्छरूप में उपहारस्वरूप देने की परम्परा की ओर संकेत किया है।

(ii) उपर्युक्त अंश का अन्वय आगे गद्यखण्ड संख्या–18 के साथ करना होगा अर्थात् ऐसी स्थिति में या इस अवसर पर...

(प्रियैरालिङ्ग्यमानाकामिनीवर्णनम)

अवतरणिका– इसके बाद कवि उक्त प्रकार के शयनगृह में स्थित कामिनियों की अपने प्रियतमों के साथ प्रातःकालिक आलिंगनबद्ध स्थिति का शृंगारिक वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(18) **विगलत्कुन्दैरलकैः प्रियविरहशोकाद्बाष्पबिन्दू–निवोत्सृजतीषु, प्रियतमगमननिषेधमिव कुर्वतीषु वाचालतुला–कोटिभिश्चरणपल्लवैः, रजनिशेषसुरतभरपरिश्रमविगलित–केशपाशदरदलितमाधवीमालापरिमललुब्धमधुकरनिकुरम्ब–पक्षानिलनिपीतनिदाघजलकणिकासु, उद्वेल्लद्भुजवल्लिक–ङ्कणझणत्कारसुभागासु, नखपदसंसक्तकेशपाशविनि–र्मोकवेदनाकृतसीत्कारविनिर्गतदुग्धमुग्धदशनकिरणच्छटा–धवलितभोगावासासु, पुनर्दर्शनप्रश्नविधुरसखीजनानुक्षण–वीक्ष्यमाणप्रियतमासु, क्षणदागतसुरतवैयात्यवचनसंस्मारक–**

गृहशुकचाटुव्याहृतिक्षणजनितमन्दाक्षासु, शरद्वासरलक्ष्मीष्विव नखालङ्कृतपयोधरासु,आसन्नमरणास्विव जीवितेशपुराभिमुखीषु, वसन्तराजिष्विव उत्कलिकाबहुलासु, प्रियैरालिङ्ग्यमानासु कामिनीषु...... ।

पदच्छेद– विगलत् कुन्दैः अलकैः प्रिय–विरह–शोकाद् वाष्प-बिन्दून् इव उत्सृजतीषु, प्रियतम–गमन–निषेधम् इव कुर्वतीषु, वाचाल-तुला–कोटिभिः चरण–पल्लवैः, रजनि–शेष–सुरत–भर–परिश्रम–विगलित केशपाश–दर–दलित–माधवी–माला–परिमल–लुब्ध–मधुकर–निकुरम्ब-पक्ष–अनिल–निपीत–निदाघ–जल–कणिकासु, उद्वेल्लद् भुज–वल्लि-कङ्कण–झणत्कार–सुभागासु, नख–पद–संसक्त–केशपाश–विनिर्मोक-वेदना–कृत–सीत्कार–विनिर्गत–दुग्ध–मुग्ध–दशन–किरण–छटा–धव-लित– भोगावासासु, पुनः दर्शन–प्रश्न–विधुर–सखीजन–अनुक्षण–वीक्ष्य माण–प्रियतमासु, क्षणदागत–सुरत–वैयात्य–वचन–संस्मारक–गृह–शुक-चाटु–व्याहृति–क्षण–जनित–मन्दाक्षासु, शरद्वासर–लक्ष्मीषु इव नख-अलङ्कृत–पयोधरासु, आसन्न–मरणासु इव जीवितेश–पुराभिमुखीषु, वसन्त–राजिषु इव उत्कलिका–बहुलासु, प्रियैः आलिङ्ग्यमानासु कामिनीषु...... ।

अनुवाद– उस प्रभातकाल के समय प्रियतमों द्वारा अपनी प्रियतमाओं का आलिंगन किए जाने पर, उनके बालों से गिरते हुए कुन्द के पुष्प मानो प्रिय के विरह के शोक में वाष्परूपी अश्रु गिरा रहे थे। ध्वनि करते हुए नूपुर मानो प्रियतम के जाने का निषेध कर रहे थे। रात्रि के अन्तिम प्रहर में सुरत के परिश्रम से उत्पन्न स्वेद की बूँदें, कामिनियों के शिथिल केशपाश में गूँथी गयी कुन्दपुष्पों की माला की सुगन्ध के लोभी भ्रमरों के समूह के पंखों की वायु से सुखायी जा रही थी। हिलती हुई भुजलताओं के कंगनों की झंकार से सुन्दर वे सुन्दरियाँ, नख–क्षत से बने हुए चिह्नों में फँसे हुए केशपाशों को छुड़ाने

की पीड़ा से किए गए 'सीत्कार' के कारण, दुग्ध के समान सुन्दर दाँतों की किरणों की कान्ति से वासगृह को धवलित कर रही थीं।

फिर से दर्शन देने के लिए पूछने में अधीर हुई सखीजनों द्वारा प्रत्येक क्षण देखे जाते हुए, प्रियतमों की प्रियतमाओं के रात्रि में रतिकाल में कहे गए निषेध वचनों को याद दिलाने वाले पालतू तोतों की चाटूक्तियों से वे क्षणभर के लिए लज्जित हो रही थीं। आकाश में बादलों के बाहुल्य से रहित शरद्काल के दिन की शोभा के समान नखक्षत से सुशोभित पयोधरों वाली, यमलोक की ओर अभिमुख, पास में आयी हुई मृत्यु के समान प्रियतम के शरीर के सम्मुख थीं तथा कलियाँ निकलने की अधिकता वाली वसन्तकाल की वन–पंक्ति के समान, अत्यधिक उत्कण्ठा से युक्त थीं।...

'चन्द्रिका'–प्रातःकाल शय्या का त्याग करने से पूर्व ही प्रियतमों ने अपनी–अपनी प्रियतमाओं का आलिंगन किया तो उस अवसर पर उनके केशों में गुथे हुए कुन्द के पुष्प गिर रहे थे, जो ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो प्रियतम के विरह के शोक के कारण अश्रुओं की बूँदें बहा रहे हों (उत्प्रेक्षा), नायिकाओं के चरणरूपी पल्लवों में पहने हुए मधुर ध्वनि करते हुए नूपुर मानो प्रियतम को 'अभी मत जाओ' यह कहकर जाने से रोक रहे थे (उत्प्रेक्षा)।

इसके अतिरिक्त रात्रि के अन्तिम प्रहर में सुरत के परिश्रम से पैदा होने वाली पसीने की बूँदों को उन रमणियों के केशपाश में गूँथी गयी कुन्दपुष्पों की माला की सुगन्ध से प्रभावित होकर उनके चारों ओर मँडराते हुए भौंरों का समूह मानो अपने पंखों की हवा से इन्हें सुखा रहा था (उत्प्रेक्षा)।

रमणियों ने अपनी भुजारूपी लताओं में कंगन पहने हुए थे, जो भुजाओं के हिलने से अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। रात्रि में केलिक्रीड़ा करते समय प्रियतमों द्वारा बनाए गए नखक्षतों के स्थलों पर सुन्दरियों के लम्बे केशपाश उलझ रहे थे, जिन्हें छुड़ाने में होने वाली पीड़ा के

कारण उनके मुख से सीत्कार का मधुर शब्द निकल रहा था, जिसके कारण उनके दूध के समान उज्ज्वल दाँतों की किरणों की छटा से सम्पूर्ण वासगृह ध्वलित हो रहा था (अतिशयोक्ति)।

आप फिर से कब दर्शन देंगे? इसप्रकार पूछे जाने के लिए अधीर सखीजनों द्वारा प्रत्येक क्षण देखे जाते हुए, प्रियतमों की प्रियतमाओं के रात में सुरत–क्रीड़ाओं के समय पर 'नहीं, नहीं' इत्यादि कहकर, मना करने के मधुर वचनों का स्मरण कराने वाले पालतू तोतों की चाटूक्तियों के शब्दों को सुनकर वे सुन्दरियाँ क्षणभर के लिए लज्जित हो रही थीं। आकाश में मेघों के बाहुल्य से सर्वथा रहित शरद्काल के दिन की शोभा के समान, नखक्षत आदि से सुन्दर लगने वाले पयोधरों वाली ये यमलोक की ओर जाने के लिए उद्यत आसन्न मृत्यु वाले व्यक्ति के समान प्रियतम के शरीर के समक्ष खड़ी थीं।

इसके अलावा ये सभी कामिनियाँ अत्यधिक मात्रा में कलियों के निकलने वाले वसन्तकाल की वनों की पंक्ति के समान अत्यधिक उत्कण्ठा अर्थात् उत्कट अभिलाषाओं से युक्त थीं।.....

विशेष–(i) द्व्यर्थक पद– **पयोधर**– बादल, स्तन, कुचयुगल। **जीवितेश**– प्रियतम, यमराज। **पुर**– शरीर, यमलोक। **उत्कलिका**– खिली हुई कलियाँ, उत्कट अभिलाषा।

(ii) उपर्युक्त गद्यखण्ड के आरम्भ के तीन वाक्यों में कवि ने मनभावन उत्प्रेक्षाएँ करके प्रातःकाल में प्रेमी–प्रेमिकाओं का श्रृंगारिक वर्णन किया है, इसके बाद प्रियतमाओं की स्थिति को कहा है।

(iii)कामशास्त्र के अन्तर्गत सुरतकाल में नखक्षत तथा दन्तक्षत को मान्यता प्रदान की गयी है, जिन्हें सुन्दरियों द्वारा अपने सौभाग्य रूप में देखा जाता है, कवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है।

(iv) तात्कालिक समाज का सटीक चित्रण किया गया है।

(प्राभातिकपवनवर्णनम्)

अवतरणिका– तत्पश्चात् महाकवि सुबन्धु इसी प्रातःकाल में प्रवाहित हो रही वायु का आलंकारिक वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(19) **आन्दोलितकुसुमकेसरे केसरेणुमुषि रणितनूपुर–मणीनां रमणीनाम्, विकचकुमुदाकरे मुदाकरे सङ्गभाजि, प्रियविरहितासु रहितासु सुखेन मुर्मुरचूर्णमिव समन्तादर्पके दर्पकेषु दहनस्य, दूरप्रसारितकोकप्रियतमारुते मारुते वहति..**

पदच्छेद– आन्दोलित–कुसुम–केसरे केस–रेणु–मुषि रणित–नूपुर–मणीनाम् रमणीनाम्, विकच–कुमुद–आकरे मुदाकरे सङ्ग–भाजि, प्रिय–विरहितासु रहितासु सुखेन मुर्मुर–चूर्णम् इव समन्ताद् अर्पके दर्पकेषु दहनस्य, दूर–प्रसारित–कोक–प्रियतमा–रुते मारुते वहति...।

अनुवाद– उस समय पुष्पराग को आन्दोलित करने वाले, शब्द करने वाली नुपूर–मणियों से युक्त कामिनियों के केशपाश में लगे हुए सिन्दूर का हरण करने वाले, विकसित प्रसन्न करने वाले, कुमुदवन के सान्निध्य से मन का हरण करने वाले, प्रियतम के संसर्ग से उत्पन्न आनन्द से रहित प्रियतमों से वियुक्त रमणियों पर कामदेव की बाण रूपी अग्नि के तुषानल चूर्ण को मानो पूरी तरह बिखेरते हुए, चक्रवाक की प्रियतमाओं के रुदन के शब्द को दूर तक फैलाते हुए प्रातःकालिक वायु के धीरे–धीरे बहने पर...

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने प्रातकालीन वायु की कल्पना कामदेव के सहयोगी एक कामी पुरुष के रूप में की है, जो दयितजन्य आनन्द से रहित प्रियतमों से अलग हुई रमणियों को न केवल छेड़ रहा है, अपितु उनके केशपाश पर लगे सिन्दूर आदि की रेणु का हरण भी कर रहा है। साथ ही, खिले हुए कुमुद के पुष्पों की सुगन्ध से मन को हरण करने वाला यह वायु इन ललनाओं पर कामदेव के बाणों की तुषानल के चूर्ण को मानो बिखेर कर उन्हें परेशान भी रहा है। कुल मिलाकर पुष्पपराग तथा नूपुरों की मणियों के मधुर शब्दों को अपने

साथ लेकर चलने वाला, प्रियतम के वियोग से चक्रवाक की प्रियतमाओं की रुदन ध्वनि को भी वातावरण में फैलाकर यह वायु वस्तुत वियोगिनों स्त्रियों को पीड़ा दे रहा है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में 'केसरे केसरेणुमुषि' 'कुमुदाकरे मुदाकरे' इत्यादि पदों में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है तथा यमक एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों के माध्यम से प्रातःकाल में बहने वाले वायु का मनोरम वर्णन किया गया है।

(ii)'मुर्मुरचूर्णमिव' में उत्प्रेक्षा के साथ–साथ भाषा में ध्वन्यात्मकता भी देखी जा सकती है, जो कवि की महती विशेषता रही है जिसका आगे भी अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है।

(iii) उल्लेखनीय है कि चक्रवाक पक्षी कवि का अत्यधिक प्रिय रहा है, प्रस्तुत काव्य में इनकी अनेक क्रियाओं के विषय में कवि ने चर्चा की है। प्रस्तुत अंश में प्रातःकाल में मन्द–मन्द प्रवाहित होने वाले वायु को, प्रियतम से अलग होने के कारण चक्रवाक की प्रियतमाओं के रुदन के मधुर शब्द को वातावरण में फैलाने वाला कहा है।

(iv) महाकवि की सूक्ष्मदृष्टि के साथ चक्रवाकियों का उल्लेख करने से उनका प्राणि–विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(v) कुमुद के पुष्प कवि को अत्यधिक प्रिय रहे हैं, इसीलिए प्रस्तुत काव्य में उन्होंने इनका पद–पद पर वर्णन किया है।

(स्वप्नदृष्टकन्यावर्णनम्)
(तत्र कन्याजघनस्थलवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार प्रातःकाल में बहते हुए कामी वायु का सुन्दर वर्णन करने के बाद, नायक द्वारा स्वप्न में देखी गयी कन्या की कमर में बाँधी गयी स्वर्णनिर्मित मेखला का शृंगारिक वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(20) **जघनमदननगरतोरणस्रजा, मन्मथमहानिधिजघनकोशमन्दिरकनकप्राकारेण, रोमराजिलतालवालवलयेन,**

जघनचन्द्रमण्डलपरिवेषेण, मदनत्रिभुवनविजयप्रशस्तिवर्णा–वलोकनकनकपत्रेण, सकलहृदयबन्दीजननिवासगृह परि–खावलयेन, सकलजगल्लोचनलासकविहङ्गमावासकनक–शलाकागुणेन, मेखलादाम्या परिकलितजघनस्थलाम्.....।

पदच्छेद– जघन–मदन–नगर–तोरण–स्रजा, मन्मथ–महानिधि–जघन–कोश–मन्दिर–कनक–प्राकारेण, रोम–राजि–लता–आलवाल–वलयेन, जघन–चन्द्र–मण्डल–परिवेषेण,मदन–त्रिभुवन–विजय–प्रशस्ति–वर्ण–अवलोकन–कनक–पत्रेण, सकल–हृदय–बन्दीजन–निवास–गृह–परिखा–वलयेन, सकल–जगत्–लोचन–लासक–विहङ्गम् आवास–कनक– शलाका–गुणेन, मेखला–दाम्या परिकलित–जघन–स्थलाम्.....।

अनुवाद– (उस समय कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में अट्ठारह वर्ष की कन्या को देखा)[1] **जिसने जघनरूपी कामदेव के नगर की वन्दनवार रूपी मेखलासूत्र** (करधनी) **को जघनस्थल** (कमर) **पर धारण किया हुआ था, जो मानो कामरूपी महानिधि के जघनरूपी खजाने की स्वर्ण से बनायी गयी चारदिवारी हो, रोमावलि रूपी लता के आलवाल का मण्डल हो, जघनरूपी चन्द्रमण्डल की परिधि हो, कामदेव के तीनों लोकों पर विजय की प्रशस्ति की वर्णमाला को लिखने के लिए स्वर्ण द्वारा बनायी हुई पट्टी हो, सभी कामीजनों के हृदयरूपी बन्दीजनों के निवासगृह की गोलाकार खाई हो, सम्पूर्ण संसार के नेत्ररूप मोर आदि पक्षियों के निवास के लिए बनायी गयी, पिंजरे की स्वर्णनिर्मित छड़ों को बाँधने वाला धागा हो।**

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि का कथ्य केवल इतना है कि स्वप्न में देखी गयी उस अट्ठारह वर्ष की कमनीय कन्या ने सोने से बनी हुई करधनी धारण की हुई थी, इसी मेखलासूत्र में जघनरूपी कामदेव की नगरी (रूपक) की वन्दनमाला, जघनरूपी खजाने की सोने से बनायी गयी चार दिवारी, नाभि के ऊपर स्थित रोमों की पंक्तिरूपी लता

---

[1] .इस वाक्य का प्रयोग आगे गद्यखण्ड संख्या– 27 में प्रयोग हुआ है।

(रूपक) के थाँवले (आलवाल) का मण्डल अर्थात् घेरा, जघनरूपी चन्द्र मण्डल (रूपक) की परिधि, तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने वाले कामदेव के प्रशंसा–पत्र की वर्णमाला को लिखने के लिए स्वर्ण का बनाया हुआ पत्र (कागज) हो, सभी कामीजनों के हृदयरूपी बन्दीजनों (रूपक) को सुरक्षित रखने के लिए चारों ओर बनायी गयी खाई एवं सम्पूर्ण संसार के लोगों के नेत्ररूपी मोरों (रूपक) के निवास के लिए बनाई गयी पिंजरे की स्वर्णनिर्मित छड़ियों को बाँधने वाले धागे की कल्पना की गयी हैं, जो वस्तुतः सहृदय को प्रफुल्लित करने वाली हैं।

विशेष–(i) उपर्युक्त वर्णन में तोते के पिंजरे के भी स्वर्ण निर्मित होने से महाकवि के काल में समाज की सुख, समृद्धि तथा ऐश्वर्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) कन्या द्वारा स्वर्णनिर्मित करधनी का वर्णन करते हुए प्रस्तुत की गयी, कवि की अनेक सुन्दर, मनभावन कल्पनाओं से उनकी अद्भुत उर्वर कल्पना–शक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

(कन्याकटिभागवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार उस कन्या के जघनस्थल के ऊपर धारण की गयी मेखला का सुन्दर वर्णन करने के बाद, महाकवि उसके उन्नत पयोधर, विस्तृत नितम्बों तथा कृश–कटिभाग का मानवीकरण के साथ वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(21) उन्नतपयोधरभारान्तरितमुखचन्द्रदर्शनाप्राप्तिखेदेनेव, गुरुतरनितम्बबिम्बकुचकुम्भनिरुद्धोभयपार्श्वजनितायासेनेव, मम मूर्ध्नि स्थितयोरियत्प्रमाणयोः पयोधरकलशयोः कथं मय्येव पातो भविष्यतीति चिन्तयेव, गृहीतगुरुकलत्रानुशयेनेव, विधातुरतिपीडयतो हस्तपरामर्शजनितपरिक्लेशेनेव, क्षीणतामुपगतेन मध्यभागेन अलङ्कृताम्....।

पदच्छेद– उन्नत–पयोधर–भार–अन्तरित–मुख–चन्द्र–दर्शन–अप्राप्ति–खेदेन इव, गुरुतर–नितम्ब–बिम्ब–कुच–कुम्भ–निरुद्ध–उभय–पार्श्व–जनित–आयासेन इव, मम मूर्ध्नि–स्थितयोः इयत् प्रमाणयोः पयोधर–कलशयोः कथम् मयि एव पातः भविष्यति, इति चिन्तया एव, गृहीत–गुरु–कलत्र–अनुशयेन इव, विधातुः अति–पीडयतः हस्त–परामर्श–जनित–परिक्लेशेन इव, क्षीणताम् उपगतेन मध्य–भागेन अलङ्कृताम्....।

अनुवाद– इसप्रकार की मेखला से घिरा हुआ कटिप्रदेश, उन्नत पयोधरों के कारण छिपे हुए मुखरूपी चन्द्रमा को न देख पाने के कारण खिन्न हो रहा था, भारी नितम्ब–मण्डल तथा स्तनरूपी घड़ों से दोनों ओर से दबा दिए जाने से उत्पन्न श्रम से अथवा मेरे सिर के ऊपर इतने विशाल दो स्तनरूपी कलश रख दिए गए हैं, जो मेरे ऊपर गिर जाएँगे, इस चिन्ता से ही मानो विशाल गुरुपत्नी के ग्रहण के पश्चात्ताप द्वारा या फिर निर्माण के अवसर पर मानो अत्यधिक दबाए जाने से ब्रह्मा के हाथ के स्पर्श से उत्पन्न कष्ट द्वारा, मध्यभाग के क्षीणता को प्राप्त होने से शोभायमान हो रहा था।

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने सर्वप्रथम कल्पना की है कि उस मनोहारिणी कन्या का कटिप्रदेश अत्यन्त क्षीण है, जो उसके सौन्दर्य का, शोभा का प्रतीक है। इसकी कृशता में हेतु खोजते हुए कवि कहता है कि– मेरे ऊपर दो घड़े के समान पीनस्तन हैं तथा नीचे की ओर भारी नितम्ब हैं, इन दोनों के बीच में मैं स्थित हूँ। इसप्रकार के चिन्तन के कारण मानो यह कटिप्रदेश दोनों ओर से दबाए जाने के श्रम से अत्यन्त दुर्बल हो गया है।

या फिर यह विचार करके कि मेरे सिर पर रखे हुए इतने बड़े दो स्तनरूपी कलश कभी भी मेरे ऊपर गिर जाएँगे, जो मुझे अत्यन्त कष्ट देने वाले होंगे, इसी चिन्ता में घुलकर यह बेचारा दुर्बल हो गया

है। इसीप्रकार इसकी दुर्बलता में विशाल (लम्बी) गुरुपत्नीरूप रोमावलि को ग्रहण करने का भी पश्चात्ताप बड़ा कारण है।

अन्त में कवि कल्पना करता है इस नायिका की सृष्टि करते समय कुम्भकाररूपी ब्रह्मा ने मानो पयोधरों को उन्नत तथा नितम्बों को स्थूल बनाने के लिए अपने हाथ से कटिप्रदेश को थोड़ा अधिक दबाया होगा, उसी दबावपूर्ण स्पर्श के कष्ट के कारण यह दुबला हो गया है।

इसके अतिरिक्त यह कटिप्रदेश इस बात से भी थोड़ा दुःखी है कि पयोधरों के अत्यधिक उन्नत होने के कारण मैं इस नायिका के मेघों से ढ़के हुए मुखरूपी चन्द्रमा को प्रयास करने पर भी देख ही नहीं पा रहा हूँ। इसप्रकार के खिन्न तथा दुर्बल कटिप्रदेश से वह कन्या सुशोभित थी।

विशेष–(i) दर्पण टीकाकार ने यहाँ 'गुरुपत्नी' पाठ को प्रसंग में अनुपयुक्त माना है, 'गुरुकलत्रानुशयेनेति पाठस्त्वयुक्तत्वादुपेक्षितः।' किन्तु यहाँ गुरु अर्थात् नितम्बों की पत्नी 'रोमावलि' को मानकर इस कल्पना को स्वीकार किया जा सकता है, जिसे कटिप्रदेश द्वारा ग्रहण किया गया है, यही उसके पश्चात्ताप का कारण है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कवि ने प्रत्येक वाक्य में उत्प्रेक्षालंकार की सुन्दर कल्पना प्रस्तुत की है।

(iii) कटिप्रदेश का मानवीकरण किया गया है, जो उन्नत पयोधरों के बीच में आने से नायिका के मुख का अवलोकन न कर पाने आदि अनेक कारणों से खिन्न, चिन्तित और परेशान है।

(iv) स्त्री के सौन्दर्य के अन्तर्गत उसके पयोधरों का उन्नत, नितम्बों का स्थूल तथा विस्तारयुक्त होना तथा कटि(कमर) का कृश होना माना गया है, जिसका यहाँ सुन्दर वर्णन कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से किया है।

(कन्याकुचवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद स्वप्न में देखी गयी उस अष्टादश वर्षीय कन्या के उन्नत पयोधरों के सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(22) अनुरागरत्नपूरितकनकमयपरुवकाभ्याम्, चूचुक–मुद्रासनाथाभ्याम्, अतिगुरुपरिणाहतया पतनभयात् चूचुक–च्छलेन विधिना गिरिसारेणेव कीलिताभ्याम्, सकलावयव–निर्मितशेषलावण्यपुंजाभ्यामिव, हृदयतटाककमलमुकुलाभ्या–मिव, हृच्छयविलासचातुरकविभ्रमाभ्याम्, रोमावलीलताफल–भूताभ्याम्,कन्दर्पदर्पवर्धनचूर्णकनककलशाभ्यामिव,अशेषजन–हृदयपतनादिव संजातगौरवाभ्याम्, संसारतरुमहाफलाभ्याम्, हारलतामृणाललोभनीयचक्रवाकाभ्याम्, हारलतारोमराजि–व्याजगङ्गायमुनासंगमप्रयागतटाभ्याम्,त्रिभुवनविजयपरिश्रम–खिन्नस्य मकरकेतोर्विश्रमविजनावासगृहाभ्याम्, पयोधराभ्यां समुद्भासमानाम्.... ।

पदच्छेद–अनुराग–रत्न–पूरित–कनकमय–परुवकाभ्याम्, चूचुक–मुद्रा–सनाथाभ्याम्, अति–गुरु–परिणाहतया पतन–भयात् चूचुक–छलेन विधिना गिरिसारेण इव कीलिताभ्याम्, सकल–अवयव–निर्मित–शेष–लावण्य–पुंजाभ्याम् इव, हृदय–तटाक–कमल–मुकुलाभ्याम् इव, हृच्छय–विलास–चातुरक–विभ्रमाभ्याम्, रोमावली–लता–फलभूताभ्याम्, कन्दर्प–दर्प–वर्धन–चूर्ण–कनक–कलशाभ्यामिव, अशेष–जन–हृदय–पतनात् इव संजात–गौरवाभ्याम्, संसार–तरु–महाफलाभ्याम्, हार–लता–मृणाल–लोभनीय–चक्रवाकाभ्याम्, हार–लता–रोमराजि–व्याज–गङ्गा–यमुना–संगम–प्रयाग–तटाभ्याम्, त्रिभुवन–विजय–परिश्रम–खिन्नस्य मकर–केतोः विश्रम–विजन–आवास–गृहाभ्याम्, पयोधराभ्याम् समुद्भासमानाम्.... ।

अनुवाद– जो चूचुकरूपी मुद्रा से चिह्नित अनुरागरूपी रत्नों से परिपूरित स्वर्णयुक्त दो गोलों वाले पयोधरों से सुशोभित थी। अत्यन्त

विशाल होने के कारण गिर जाने के डर से चूचुक के व्याज से जिन्हें मानो ब्रह्मा ने लोहे की कील से जड़ दिया हो, मानो शरीर के सभी अंगों के निर्माण के बाद, बची हुई सौन्दर्य–राशि हों, मानो हृदयरूपी सरोवर के कमल की दो कलियाँ हों या फिर कामदेव के विलास के लिए दो गोल आकार वाले तकिए हों अथवा रोमावलि रूपी लता के दो फल हों, मानो कामदेव के मद में वृद्धि करने वाले, चूर्ण से भरे हुए स्वर्णनिर्मित दो कलश हों।

मानो सभी लोगों के हृदयों के लगने से भारीपन से युक्त हो गए हों, मानो संसाररूपी वृक्ष के दो महान् फल हों, मानो हाररूपी कमलनाल के लोभ से छिपे हुए दो चक्रवाक हों, मानो हारलता रूपी रोमावलिरूपी गंगा–यमुना के संगमस्थल पर निर्मित प्रयागराज के दो तट हों या तीनों भुवनों पर विजय के परिश्रम से थके हुए कामदेव के विश्राम के लिए दो निर्जन वासगृह हों।

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि का कथ्य इतना ही है कि उस कन्या के पयोधर समुन्नत थे, जिसे उन्होंने अपनी मनोरम कल्पना से अत्यधिक चित्ताकर्षक बना दिया है, उसके ये पयोधर अनुरागरूपी रत्नों से भरे हुए दो स्वर्णनिर्मित उठे हुए गोलों के समान प्रतीत हो रहे थे। इनके अग्रभाग पर स्थित चूचुक मानो मुद्रा से चिह्नित कर दिया गया हो या फिर इनके अत्यधिक विशाल तथा भारी होने के कारण, ये कहीं गिर न जाएँ, इस डर से इन चूचुकों के व्याज से ब्रह्मा ने मानो इन्हें दो कीलों द्वारा जड़ दिया हो।

ये पयोधर इतने रमणीय थे मानो इसके सम्पूर्ण शरीर का निर्माण करने के बाद बची हुई <u>लावण्य–राशि</u> से ही इन्हें बनाया गया हो। मानो ये इस कन्या के हृदयरूपी सरोवर (रूपक) में खिली हुई कमल की दो कलियाँ हों या फिर कामदेव के आराम करने के लिए दो तकिए हों अथवा रोमावलि रूपी लता (रूपक) के ऊपर लगे हुए दो

सुन्दर फल हों। मानो कामदेव के मद में वृद्धि करने वाले चूर्ण से भरे हुए दो स्वर्ण द्वारा बनाए गए कलश हों।

मानो अनेक रसिकों के हृदयों के जुड़ जाने से ये भारी हो गए हों। मानो ये संसाररूपी वृक्ष (रूपक) के दो महान् फल हों। मानो नायिका द्वारा पहने गए हाररूपी कमलनाल को खाने के लोभी छिपे हुए दो चक्रवाक हों। मानो हाररूपी गंगा तथा रोमावलि रूपी यमुना के संगमस्थल प्रयाग के दो तट हों अथवा फिर तीनों भुवनों पर विजय करने से होने वाले परिश्रम के कारण थके हुए कामदेव के आराम करने के लिए निर्जन स्थान पर बनाए गए दो आवास हों।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यांश में महाकवि ने नायिका के पयोधरों एवं उनमें स्थित किंचित् श्यामल चुचुकों का सुन्दर, चित्ताकर्षक एवं श्रृंगारिक वर्णन किया है, जिसे उनकी रसिक प्रवृत्ति का द्योतक कहा जा सकता है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में रूपक एवं उत्प्रेक्षा दोनों ही अलंकारों का, सहृदय को आह्लादित करने वाला सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) नायिका की नाभि के ऊपर स्थित 'रोमावलि' में लता के अभेद की सुन्दर कल्पना के कारण रूपक अलंकार स्थित है। इसी प्रकार यहाँ प्रयुक्त दूसरे स्थलों पर भी समझना चाहिए।

(iv) मेदिनी कोशकार ने 'लावण्य' को इसप्रकार परिभाषित किया है–

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।।

(कन्याधरवर्णनम्)

अवतरणिका– यहाँ तक कन्या के पयोधरों का विस्तार से मौलिक कल्पना के साथ वर्णन करने के बाद, महाकवि सुबन्धु उस कन्या के अधरों के सौन्दर्य को निबद्ध करते हुए कहते हैं कि–

(23)मुखचन्द्रमण्डलसततसन्निहितसन्ध्यारागेण,द्विज-मणिरक्षासिन्दूरमुद्रानुकारिणा, निस्सरता हृदयानुरागेणेव रंजितेन, रागसागरविद्रुमशकलेनेव अधरपल्लवेनोपशोभ-मानाम्.......।

पदच्छेद– मुख–चन्द्र–मण्डल–सतत–सन्निहित–सन्ध्या–रागेण, द्विज–मणि–रक्षा–सिन्दूर–मुद्रा–अनुकारिणा, निस्सरता हृदय–अनुरागेण इव रंजितेन, राग–सागर–विद्रुम–शकलेन इव अधर–पल्लवेन उप-शोभमानाम्.......।

अनुवाद– वह कन्या मुखरूपी चन्द्रमण्डल के हमेशा ही पास में रहने वाली सन्ध्या की लालिमा से युक्त, दन्तरूपी रत्नों की रक्षा हेतु सिन्दूर की मुद्रा का अनुकरण करने वाले, बाहर की ओर निकलते हुए हृदय के अनुराग से मानो लाल वर्ण वाले, अनुरागरूपी समुद्र के विद्रुम के खण्ड के समान, अधररूपी पल्लव से सुशोभित थी।

'चन्द्रिका'– कवि का कथ्य यहाँ इतना ही है कि वह कन्या स्वाभाविक लालिमा लिए हुए अधररूपी पल्लवों से सुशोभित थी, इसकी लालिमा में ही यहाँ सुन्दर सम्भावनाओं से वर्णन अत्यन्त प्रभावी हो गया है। तदनुसार–

ये अधर मुखरूपी सन्ध्याकालीन चन्द्रमा के निरन्तर समीप रहने के कारण सन्ध्या के अनुराग के समान लालिमायुक्त थे। मानो दाँतरूपी मणियों की सुरक्षा के लिए इनमें सिन्दूर की मोहर (मुद्रा) का प्रयोग किया गया था। मानो यह लालिमा इसके हृदय में घने रूप में स्थित, बाहर निकलते हुए अनुराग का ही परिणाम थी। मानो प्रेमरूपी सागर में स्थित यह मूँगे के टुकड़े जैसी थी। इसप्रकार की विशेषता वाले वे अधररूपी पल्लव सुशोभित हो रहे थे।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कुछ मुखचन्द्रादि पदों में रूपक तथा सम्पूर्ण अंश में उत्प्रेक्षा अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) सर्वप्रथम कन्या के मुख में सन्ध्याकालीन चन्द्रमा की कल्पना और उसकी लालिमा से समीप में स्थित अधरों के लाल होने का चिन्तन, वस्तुतः कवि की अद्भुत मौलिक कल्पना का ही द्योतक है।

(iii) दाँतों के दो बार उत्पन्न होने के कारण इन्हें यहाँ 'द्विज' संज्ञा प्रदान की गयी है, क्योंकि प्रथम बार ये जन्म के कुछ ही दिनों में तथा उनके गिरने के बाद बाल्यकाल में ही उत्पन्न होते हैं।

(iv) दाँतों में मणियों की कल्पना भी सुन्दर बन पड़ी है, जिनकी रक्षा अधरों पर बनायी गयी राग की मुद्रा द्वारा की जा रही है।

(v) इसीप्रकार यहाँ अधर को अनुराग (प्रेम) रूपी सागर व पल्लव बताना व उसपर स्थित मूँगे (विद्रुम) के टुकड़े विषयक अधरों के रसिक कवि की कल्पना भी चित्ताकर्षक बन पड़ी है।

(कन्यानेत्रवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार स्वप्न में देखी गयीं कन्या के अधरों का चित्ताकर्षक वर्णन करने के बाद, महाकवि उसके नेत्रों की सुन्दरता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(24) **तरुणकेतकदलद्राघीयसा, पक्ष्मलचटुलालसेन, हृदयावासगृहावस्थितस्य हृच्छयविलासिनो गवाक्षशङ्का–मुपजनयता, सरागेणापि निर्वाणं जनयता, गतिप्रसरनि–रोधकश्रवणकृतकोपेनेवोपान्तलोहितेन, धवलयतेव जगद–खिलम्, उत्फुल्लकमलकाननसनाथमिव गगनतलं कुर्वता, दुग्धाम्भोधिसहस्राणीवोद्वमता, सकुन्दकुसुमनीलोत्पलमाला–लक्ष्मीमुपहसता नयनयुगलेन विभूषिताम्..........।**

पदच्छेद–तरुण–केतक–दल–द्राघीयसा, पक्ष्मल–चटुल–आलसेन, हृदय–आवास–गृह–अवस्थितस्य हृच्छय–विलासिनः गवाक्ष–शङ्काम् उपजनयता, सरागेण अपि निर्वाणम् जनयता, गति–प्रसर–निरोधक–श्रवण–कृत–कोपेन इव उपान्त–लोहितेन, धवलयता इव जगद्

अखिलम्, उत्फुल्ल–कमल–कानन–सनाथम् इव गगन–तलम् कुर्वता, दुग्ध–अम्भोधि–सहस्राणि इव उद्वमता, सकुन्द–कुसुम–नीलोत्पल–माला-लक्ष्मीम् उपहसता नयन–युगलेन विभूषिताम्.... ।

अनुवाद– उस कन्या के तरुण केतकी के पत्तों के समान चंचल तथा अलसाए हुए, पलकों से हृदयरूपी निवास में विद्यमान कामदेवरूपी विलासी लोगों के गवाक्ष का सन्देह उत्पन्न करने वाले, सांसारिक विषयों में अभिलाषा रखते हुए भी निर्वाण (आनन्द) को उत्पन्न करने वाले, अपनी गति के विस्तार को रोकने वाले कानों पर क्रोध करने के कारण मानो अपांगभाग के रक्तवर्ण से युक्त, सम्पूर्ण संसार को मानो शुभ्र करने वाले, आकाशमण्डल को मानो विकसित कमलों का कानन बनाने वाले, मानो सहस्रों क्षीरसागरों को प्रकट करने वाले, मानो कुन्दपुष्पों से युक्त नीलकमल की माला की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले, नयनयुगल सुशोभित हो रहे थे।

'चन्द्रिका'– मुख्य वाक्य यहाँ इतना ही है कि वह कन्या सुन्दर, विशाल, अलसाए हुए नेत्र–युगल से सुशोभित थी, जिसमें नेत्रों की पलकों, उनके रक्तिम वर्ण तथा कानों तक फैलाव, उनकी सरसता आदि का तलस्पर्शी वर्णन विविध उपमानों के माध्यम से किया है। तदनुसार–

उस कन्या के नेत्र–युगल की पलकें पूर्णरूप से खिले हुए केतकी के विशाल तथा चंचल कोमल पत्ते के समान बड़े–बड़े चंचल तथा यौवन के मद में किंचित् अलसायी हुई थीं। इसप्रकार के ये नेत्र वस्तुतः उसके हृदयरूपी आवास[1] में रहने वाले कामदेवरूपी विलासी

---

[1]. सरलता की दृष्टि से रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों को इसप्रकार समझ सकते हैं– जहाँ भी हिन्दी अनुवाद करते समय 'रूपी' करके अर्थ किया जाएगा, वहाँ 'रूपक', जबकि यदि 'समान' करके अर्थ करते हैं तो वहाँ 'उपमा', किन्तु 'मानो' पद द्वारा यदि किसीप्रकार की 'सम्भावना' प्रदर्शित की जाए, तो वहाँ पर 'उत्प्रेक्षालंकार' होता है।

जनों के मानो झरोखों का संदेह उत्पन्न कर रहे थे। अनुराग से युक्त होकर भी निर्वाण (मोक्ष) को उत्पन्न करने वाले थे (विरोध) अर्थात् राग की किंचित् लालिमा के साथ देखने वाले को सुख प्रदान करते थे (विरोध परिहार)।

कानों ने हमारे फैलने की गति को रोक दिया है, यह विचार कर मानो कानों पर क्रोध करने से इनके प्रान्तभाग रक्तवर्ण के थे। सम्पूर्ण संसार में दृष्टिपात करके उसे मानो धवल सा बना दिया गया था। साथ ही, मानो उसने आकाश मण्डल को भी खिले हुए कमलों के वन से युक्त कर दिया था। इतना ही नहीं, ये नेत्र–युगल वस्तुतः हजारों क्षीरसागरों को प्रकट सा कर रहे थे तथा कुन्द के पुष्पों से युक्त कमल की माला के सौन्दर्य का भी मानो उपहास उड़ा रहे थे।

विशेष–(i)**द्व्यर्थक** पद–**सराग**–रागयुक्त, लाल होकर, **निर्वाण**–मोक्ष, शान्ति, सुख। इन दोनों पदों में श्लेष अलंकार का प्रयोग।

(ii) 'सरागेणापि निर्वाणं जनयता' में विरोधाभास अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) कानों पर क्रोध का वर्णन करने से नेत्रों का मानवीकरण किया गया है। साथ ही, नेत्रों के अपांगों के राग(लालिमा)युक्त होने में भी सुन्दर कल्पना की गयी है। वस्तुतः हल्की लालिमा लिए हुए नेत्रों को सुन्दर माना जाता है, मानो उनसे अनुराग छलक रहा हो।

(iv) कीर्ति तथा दृष्टि इन दोनों को ही काव्य में 'धवल' माना गया है। इसीलिए यहाँ दृष्टिपात से सम्पूर्ण संसार के 'धवल' करने की सुन्दर कल्पना की गयी है।

(v) नायिका के नयन–युगल के विषय में कवि की उत्कृष्ट कल्पना को उनकी कल्पना शक्ति का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

(कन्यानासिकाभ्रूलतावर्णनम्)

अवतरणिका– यहाँ तक नेत्र–युगल की शोभा का कथन करने के बाद, काव्यकार उस कन्या की नासिका तथा भ्रूलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(25) **दशनरत्नतुलादण्डेनेव नयनामृतसिन्धुसेतुबन्धेनेव, यौवनमन्मथमत्तवारणर्योर्वरण्डकेनेव नासावंशेन परिष्कृताम्। विलोचनकुवलयभ्रमरपङ्क्तिभ्याम्, मुखमदमन्दिरतोरणमालिकाभ्याम्, रागसागरवेणिकाभ्याम्, यौवननर्तकलासिकाभ्याम्, भ्रूलताभ्यां विराजिताम्......।**

पदच्छेद– दशन–रत्न–तुला–दण्डेन इव नयन–अमृत–सिन्धु-सेतुबन्धेन इव, यौवन–मन्मथ–मत्त–वारणर्योः वरण्डकेन इव, नासा-वंशेन परिष्कृताम्, विलोचन–कुवलय–भ्रमर–पङ्क्तिभ्याम्, मुख–मद-मन्दिर–तोरण–मालिकाभ्याम्, राग–सागर–वेणिकाभ्याम्, यौवन–नर्तक-लासिकाभ्याम्, भ्रू–लताभ्याम् विराजिताम्......।

अनुवाद– **वह कन्या दन्तरूपी रत्ननिर्मित तुलादण्ड के समान, नेत्ररूपी क्षीरसागर के सेतुबन्ध के समान, यौवन एवं कामरूपी मतवाले दो हाथियों के वरण्डक के समान, नासिकारूपी बाँस के दण्ड से सुशोभित थी।**

इसके अतिरिक्त वह दो नेत्ररूपी नीलकमलों की भ्रमरावली, मुखरूपी मन–मन्दिर की दो तोरणमालाओं के समान, रागरूपी सागर के प्रवाह के समान, यौवनरूपी नर्तक की नटी के समान, दो भ्रूलताओं से शोभायमान थी।

'चन्द्रिका'– यहाँ प्रयुक्त वाक्यों में से प्रथम में कवि ने नासिका का तथा दूसरे वाक्य में उसकी भ्रूलता का प्रभावी वर्णन किया है, जो इसप्रकार है– उस कन्या की नासिका दाँतोंरूपी रत्नों को तोलने के लिए मानो तुलादण्ड थी। नेत्ररूपी अमृत के सागर के लिए सेतुबन्ध थी

एवं यौवन और कामदेवरूपी दो हाथियों को रोकने के लिए मानो वरण्डक के समान प्रतीत हो रही थी।

इसके अलावा वह कन्या नासिका के साथ-साथ दो भ्रूलताओं से भी सुशोभित थी, जो मानो नेत्ररूपी कुवलय पर भौंरों की पंक्ति के समान, मुखरूपी मनमन्दिर की तोरणमालिका के समान, अनुरागरूपी सागर के प्रवाह के समान तथा यौवनरूपी नर्तक की प्रेयसी नटी के समान प्रतीत हो रही थीं।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में दशनरत्न, (दाँतों में रत्न का आरोप) नयनामृतसिन्धु (नयनों में अमृतरूपी सिन्धु का आरोप) आदि पदों में रूपक अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(ii) जबकि सम्पूर्ण अंश में उत्प्रेक्षा के माध्यम से मौलिक सम्भावनाएँ किंवा उद्भावनाएँ की गयी हैं।

(स्वप्नदृष्टकन्या–सौन्दर्य–वर्णनम्)

अवतरणिका–यहाँ तक स्वप्न में देखी गयी कन्या के अलग-अलग अंगों की सुन्दरता का कथन करने के बाद, महाकवि उसकी शरीर-यष्टि के सौन्दर्य का विस्तार से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(26) घनसमयाकाशलक्ष्मीमिव उल्लसच्चारुपयोधराम्, जयघोषणापन्नजनमूर्तिमिव तुलाकोटिप्रतिष्ठिताम्, सुयोधन-धृतिमिव कर्णविश्रान्तलोचनाम्, वामनलीलामिव दर्शितबलि-विभङ्गाम्, वृश्चिकराशिरविस्थितिमिव अतिक्रान्तकन्या-तुलाम्, उषामिव अनिरुद्धदर्शनसुखाम्, शचीमिव नन्दनेक्षण रुचिम्, पशुपतिताण्डवलीलामिव उल्लसच्चक्षुः श्रवसम् विन्ध्याटवीमिव उतुङ्गश्यामलकुचाम्, वानरसेनामिव सुग्रीवाङ्गदशोभिताम्।

पदच्छेद– घन–समय–आकाश–लक्ष्मीम् इव उल्लसत् चारु–पयोधराम्, जय–घोषणा–आपन्न–जनमूर्तिम् इव तुला–कोटि–

प्रतिष्ठिताम्,सुयोधन–धृतिम् इव कर्ण–विश्रान्त–लोचनाम्, वामन–लीलाम् इव दर्शित–बलि–विभङ्गाम्, वृश्चिक–राशि–रवि–स्थितिम् इव अति-क्रान्त–कन्या–तुलाम्, उषाम् इव अनिरुद्ध–दर्शन–सुखाम्, शचीम् इव नन्दन–ईक्षण–रुचिम्, पशुपति–ताण्डव–लीलाम् इव उल्लसत् चक्षुः श्रवसम्, विन्ध्याटवीम् इव उतुङ्ग–श्यामल–कुचाम्, वानरसेनाम् इव सुग्रीव–अङ्गद–शोभिताम्।

अनुवाद– वह कन्या उल्लसित होते हुए वर्षाकालीन आकाश की शोभा के समान विकसित सुन्दर पयोधरों से युक्त थी। परीक्षा में उत्तीर्ण जयघोष किए जाते हुए, व्यक्ति के शरीर के समान तुलना में ग्रहण किए जाने वाले उपमान योग्य पदार्थों में अग्रणी थी। राधेय कर्ण पर आश्रित सुयोधन के धैर्य के समान कानों तक फैले हुए नेत्रों वाली थी। बलि नामक दैत्य का विनाश करने वाली, वामनरूप को धारण करने वाले विष्णु की लीला के समान त्रिवलि से सुशोभित थी, जो कन्या एवं तुला राशि का अतिक्रमण करने वाली, वृश्चिक राशि में सूर्य की स्थिति के समान[1], कन्याभाव का अतिक्रमण करने वाली थी, जो अनिरुद्ध को देखने से सुख प्रदान करने वाली उषा के समान निरन्तर दर्शन विषयक सुख को प्रदान करने वाली थी, जो नन्दन वन को देखने में रुचि रखने वाली इन्द्राणी के समान नेत्रों की शोभा से देखने वालों को आनन्द प्रदान करने वाली थी, जो सर्पों को आनन्द प्रदान करने वाली महादेव की लीला के समान मनोरम नेत्र तथा कानों से युक्त थी, जो ऊँचे तमाल के वृक्षों से युक्त विन्ध्याटवी के समान उन्नत श्यामल चूचुक वाली थी, जो सुग्रीव एवं अंगद से सुशोभित वानरसेना के समान मनोहर ग्रीवा एवं बाजूबन्द नामक आभूषण से शोभायमान थी।

---

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि का ज्योतिष विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हो रहा है।

'चन्द्रिका'– जिस कन्या को कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में देखा, वह वर्षाकाल में प्रफुल्लित होते हुए सुन्दर मेघों से युक्त आकाश की शोभा से युक्त पूर्णतया विकसित पयोधरों से युक्त थी।(पयोधर में श्लेष) परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद जय–घोष किए जाते हुए व्यक्ति के समान, उपमान के योग्य सभी सांसारिक पदार्थों में वह सर्वोत्कृष्ट थी। कर्ण पर पूर्णरूप से आश्रय लेने वाले सुयोधन अर्थात् दुर्योधन के धैर्य के समान कानों तक फैले हुए विशाल नेत्रों से युक्त थी।

इसके अतिरिक्त बालि नामक दैत्य को विनष्ट करने वाली, वामनावतार की लीला के समान, उदर में तीन वलियों से सुशोभित थी।[1] साथ ही, कन्या एवं तुला राशि को अतिक्रान्त करके वृश्चिक राशि में विद्यमान सूर्य के समान उसने मानो कन्याभाव को पार कर लिया था। अनिरुद्ध को दर्शन प्रदान करने वाली उनकी पत्नी उषा के समान वह सभी को निरन्तर सुख देने वाली थी।

स्वर्गलोक में स्थित नन्दन वन को देखने की इच्छा करने वाली इन्द्र की पत्नी शची के समान, वह सभी देखने वालों को आनन्द प्रदान करती थी। सर्पों को आनन्दित करने वाली महादेव की ताण्डव लीला के समान, जो मन को हरने वाले नेत्र तथा कानों वाली थी अर्थात् उसके नेत्र तथा कान दोनों ही अत्यन्त मनोरम थे। ऊँचे–ऊँचे श्यामल, लकुच के वृक्षों से भरी हुई विन्ध्याटवी के समान, जो उन्नत श्यामल चूचुकों वाले कुचों से युक्त थी। सुग्रीव तथा अंगद से सुशोभित वानरों की सेना के समान, जो सुन्दर ग्रीवा (गर्दन) तथा केयूर नामक आभूषणों से विभूषित थी।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में प्रयुक्त **द्व्यर्थक** पद– **उल्लसत्** –उल्लसित, विकसित। **पयोधर**–बादल, स्तन। **प्रतिष्ठा**–जयघोषणा, सर्वश्रेष्ठ। **विश्रान्त**–निर्भर, पर्यन्त। **विभंग**–विनाश, विशेषरूप से शोभित,

---

[1] . रोमावलि के साथ ही स्त्री के उदर में तीन वलियों का दिखायी देना भी उसके सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है।

कन्यातुलाम्— कन्या, तुला राशि को, कन्याभाव को। **अनिरुद्ध**— कामदेव का पुत्र, निरन्तर। **नन्दनेक्षण**— नन्दन वन को देखना, देखने वालों को आनन्द देना। **चक्षुःश्रवस्**— सर्प, नेत्र तथा कान। **सुग्रीवांगद**— सुग्रीव तथा अंगद, सुन्दर गर्दन तथा केयूर आभूषण।

(ii) यहाँ बलि तथा अनिरुद्ध दो पौराणिक पात्रों का उल्लेख हुआ है, जिनके लिए परिशिष्ट का अवलोकन करें।

अवतरणिका— इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि—

(27)भास्वराऽलङ्कारेण,श्वेतरोचिषा स्मितेन, लोहितेनाधरेण, सौम्येन दर्शनेन गुरुणा नितम्बबिम्बेन, सितेन हारेण, शनैश्चरेण पादेन, तमसा केशपाशेन, विकचेन लोचनोत्पलेन ग्रहमयीमिव, संसारभित्तिचित्रलेखामिव, त्रैलोक्यचित्तरङ्गस्य रसायनसमृद्धिमिव, यौवनमहायोगिनः सङ्कल्पसिद्धिमिव, शृङ्गारस्य निधानमिव, कौतुकस्य विजयपताकामिव, मकरध्वजस्य आजिभूमिमिव, मदनस्य सङ्केतभूमिमिव, लावण्यस्य विहारस्थलीमिव, सौन्दर्यस्य एकायतनशालामिव, सौभाग्यस्य उत्पत्तिस्थानमिव, कान्तेः स्तम्भनचूर्णमिव, इन्द्रियाणाम् आकर्षणमन्त्रसिद्धिमिव, मनसः चक्षुर्बन्धनमहौषधिमिव, मन्मथेन्द्रजालिनः त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापतेः, अष्टादशवर्षदेशीया कन्यामपश्यत्स्वप्ने।

पदच्छेद— भास्वर—अलङ्कारेण, श्वेत—रोचिषा स्मितेन, लोहितेन अधरेण, सौम्येन दर्शनेन गुरुणा नितम्ब—बिम्बेन, सितेन हारेण, शनैः चरेण पादेन, तमसा केश—पाशेन, विकचेन लोचनोत्पलेन ग्रहमयीम् इव, संसार—भित्ति—चित्र—लेखाम् इव, त्रैलोक्य—चित्त—रङ्गस्य रसायन—समृद्धिम् इव, यौवन—महायोगिनः सङ्कल्प—सिद्धिम् इव, शृङ्गारस्य निधानम् इव, कौतुकस्य विजय—पताकाम् इव, मकरध्वजस्य आजि—भूमिम् इव, मदनस्य सङ्केत—भूमिम् इव, लावण्यस्य विहारस्थलीम् इव, सौन्दर्यस्य एकायतन—शालाम् इव, सौभाग्यस्य उत्पत्ति—स्थानम् इव,

कान्तेः स्तम्भन–चूर्णम् इव, इन्द्रियाणाम् आकर्षण–मन्त्र–सिद्धिम् इव, मनसः चक्षुः बन्धन–महौषधिम् इव, मन्मथ–इन्द्र–जालिनः त्रिभुवन–विलोभन–सृष्टिम् इव प्रजापतेः, अष्टादश–वर्षदेशीया कन्याम् अपश्यत् स्वप्ने।

अनुवाद– जो कन्या प्रदीप्त होने वाले अलंकारों से सूर्य, शुभ्र–कान्ति युक्त मुस्कान से चन्द्र, रक्तवर्ण युक्त अधर से मंगल, दर्शन में मनोहर होने से बुध, गुरु नितम्बबिम्ब से गुरु, श्वेत हार के कारण शुक्र, धीमे–धीमे चलने से शनैश्चर, काले केशपाशों से राहु तथा विकसित नेत्र–कमलों से केतु, इसप्रकार सभी नवग्रहों से मानो युक्त थी।

तीनों लोकों के चित्तरूपी रंगशाला की संसारभित्ति की चित्र लेखा के समान, यौवनरूपी महायोगी की रसायन–समृद्धि के समान, श्रृंगार की संकल्परूपी सिद्धि के समान, आश्चर्य की निधि के समान, कामदेव की विजय–पताका के समान, मदन की युद्धस्थली के समान, लावण्य की संकेत स्थली के समान, सौन्दर्य की विहार–भूमि के समान, सौभाग्य के एकमात्र आश्रयस्थली के समान, कान्ति के उत्पत्ति स्थली के समान, इन्द्रियों को अपने–अपने विषयों से रोकने वाले चूर्ण के समान, मन को आकर्षित करने वाली मन्त्र–सिद्धि के समान, कामदेव रूपी ऐन्द्रजालिक की आँखों को भ्रमित करने वाली महान् ओषधि के समान, संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की तीनों लोकों को लुभाने वाली सृष्टि के समान थी।

इसप्रकार की अष्टादश वर्षीय कन्या को कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में देखा।

'चन्द्रिका'– इसीप्रकार वह कन्या सूर्य ग्रह के समान चमकते हुए आभूषणों से युक्त, चन्द्रमा ग्रह के समान स्मित अर्थात् मुस्कान सम्पन्न, मंगल ग्रह के समान लालिमायुक्त अधर वाली, बुध ग्रह के समान सुन्दर दर्शन युक्त, गुरु ग्रह के समान भारी नितम्बों से सम्पन्न,

शुक्र ग्रह के समान शुभ्र हार को धारण करने वाली, शनि ग्रह के समान पैरों से युक्त, राहु ग्रह के समान लम्बे केशपाशों से सम्पन्न एवं केतु के समान नेत्ररूपी कमलों से युक्त होकर मानो सभी ग्रहों से सम्पन्न थी।

वह कन्या तीनों लोकों के चित्तरूपी रंगशाला (रूपक) की संसाररूपी भित्ति पर चित्रित की गयी चित्रलेखा के समान थी। इसीप्रकार यौवनरूपी महान् योगी की मानो यह रसायन समृद्धि जैसी थी। श्रृंगार की संकल्पना की ही मानो यह सिद्धि हो, आश्चर्यों की मानो निधान हो, कामदेव की मानो विजय रूपी पताका ही हो, कामदेव की मानो युद्धभूमि हो। लावण्य की संकेत–भूमि हो, सौन्दर्य की विहरण करने वाली स्थली हो, मानो सौभाग्य का एकमात्र आश्रय का स्थान हो। इसके अलावा वह कान्ति के उत्पत्ति स्थान के समान थी।

इसके अतिरिक्त सभी इन्द्रियों को अपने–अपने विषय से रोकने वाले सम्मोहित करने वाले चूर्ण के समान हो, मन को अनायास ही आकर्षित करने वाली मन्त्रों की साक्षात् सिद्धि के तुल्य हो, कामदेवरूपी जादूगर के नेत्रों को बाँधने वाली महान् औषधि के समान हो, प्रजापति ब्रह्मा की तीनों लोकों को आकर्षित करने वाली, सुन्दरतम रचना के समान हो, इसप्रकार की अट्ठारह वर्षीय कन्या को कन्दर्पकेतु ने अपने प्रातःकाल के स्वप्न में देखा।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यखण्ड में प्रसादगुण तथा वैदर्भी शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii) भारतीय मान्यता है कि रात्रि के तीसरे प्रहर में देखे हुए स्वप्न सत्य होते हैं, यहाँ कवि की इसी मान्यता की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) यहाँ कन्या, तुला तथा वृश्चिक राशियों तथा सूर्य चन्द्रादि सभी नौ ग्रहों के उल्लेख से कवि का ज्योतिष विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हो रहा है।

(iv) इसीप्रकार रंगशाला की दीवार पर अंकित चित्रलेखा का कथन उन्हें चित्रकारिता की कला से भी जोड़ता प्रतीत होता है, वैसे भी प्रस्तुत काव्य में अनेकानेक चित्रात्मक वर्णन उनके इस कला के गहनज्ञान तथा नैपुण्य को अभिव्यक्ति प्रदान करते प्रतीत होते हैं।

(vi) 'महायोगी की रसायन समृद्धि' कवि को योग–विज्ञान से गहनरूप से संयुक्त करते हैं।

(vi) इसीप्रकार नेत्रों का बन्धन करने वाली महौषधि का उल्लेख तथा मन को आकर्षित करने वाली मन्त्रसिद्धि का उपर्युक्त अंश के अन्त में कथन महाकवि का 'मणि–मन्त्र–ओषधि' विषयक अगाध विश्वास तथा गम्भीर ज्ञान से अवगत होना सिद्ध करते हैं।

(कन्दर्पकेतुविरहवर्णनम्)

अवतरणिका– अष्टादशवर्षीया कन्या को स्वप्न में देखने के बाद, प्रस्तुत काव्य के नायक कन्दर्पकेतु की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(28) **अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबन्निव जनितेर्ष्ययेव निद्रया चिरसेवितया स मुमुचे। अथ प्रबुद्धस्तु विषसरसीव दुर्जनवचसीव निमग्नमात्मानमवधारयितुं न शशाक। तथाहि,निर्लक्षमाकाशतले आलिङ्गनार्थं प्रसारित–बाहुयुगलः, 'एह्येहि प्रियतमे! मा गच्छ, मा गच्छे' ति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव चक्षुषि, निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव। ततस्तत्रैव शय्यातले निलीनो निषिद्धाशेषपरिजनो दत्तकपाटः,परिहृतताम्बूलादि सकलोप–भोगस्तं दिवसमनयत्। तथैव निशामपि स्वप्नसमागमेच्छया कथमप्यनैषीत्।**

अथ तस्य प्रियसखो मकरन्दो नाम कथमपि लब्धप्रवेश–दर्शनः कन्दर्पसायकप्रहारवशं कन्दर्पकेतुमुवाच–

पदच्छेद– अथ ताम् प्रीति–विस्फारितेन चक्षुषा पिबन् इव जनित–ईर्ष्यया इव निद्रया चिर–सेवितया सः मुमुचे। अथ प्रबुद्धः तु विष–सरसि इव, दुर्जन–वचसि इव, निमग्नम् आत्मानम् अवधारयितुम् न शशाक। तथाहि– निर्लक्षम् आकाश–तले आलिङ्‌गनार्थम् प्रसारित-बाहु–युगलः, 'एहि, एहि प्रियतमे! मा गच्छ, मा गच्छ' इति, दिक्षु विदिक्षु च विलिखिताम् इव,, उत्कीर्णाम् इव, चक्षुषि, निखाताम् इव, हृदये प्रियतमाम् आजुहाव। ततः तत्र एव शय्या–तले निलीनः निषिद्ध-अशेष–परिजनः दत्त–कपाटः, परिहृत–ताम्बूल–आदि सकल–उपभोगः तम् दिवसम् अनयत्। तथा एव निशाम् अपि स्वप्न–समागम–इच्छया कथम् अपि अनैषीत्। अथ तस्य प्रिय–सखः मकरन्दः नाम कथम् अपि लब्ध–प्रवेश–दर्शनः कन्दर्प–सायक–प्रहार–वशम् कन्दर्पकेतुम् उवाच–

अनुवाद– स्वप्नदर्शन के बाद उस कन्या के प्रेम में प्रफुल्लित दृष्टि से पान करते हुए देखकर उत्पन्न ईर्ष्या वाली, चिरकाल से सेवा की जाती हुई निद्रा ने मानो उसे छोड़ दिया। जागने के पश्चात् विषरूपी सागर में आकण्ठ डूबा हुआ वह स्वयं को सम्भाल नहीं सका, क्योंकि लक्ष्य के अभाव में भी वह खुले आकाश में भुजाओं को फैलाए हुए–

'हे प्रियतमे! आओ, आओ। मत जाओ, मत जाओ।'

इसप्रकार दिशाओं तथा उपदिशाओं में चित्रित सी, नेत्रों में टंकित हुई सी, हृदय में खोदी गयी सी प्रियतमा को बुलाने लगा।

उसके बाद उसी शय्या पर निलीन होकर, सभी परिजनों के आवागमन को रोककर, दरवाजा बन्द करके, ताम्बूल आदि सभी उपभोग की वस्तुओं का परित्याग करके, उसने उस दिन को किसी प्रकार व्यतीत किया और उसीप्रकार स्वप्न में प्रियतमा से समागम की इच्छा से रात्रि को भी किसीप्रकार बिताया।

तत्पश्चात् किसीप्रकार अन्दर प्रविष्ट हुआ उसका मकरन्द नामक प्रियमित्र देखकर, कामदेव के बाण के प्रहार के वशीभूत हुए कन्दर्पकेतु से बोला–

'चन्द्रिका'– स्वप्न में षोडशी कन्या को देखकर राजकुमार कन्दर्पकेतु की तो मानो नींद ही उड़ गयी, इसी अभिप्राय को कवि ने निद्रा का मानवीकरण करते हुए कहा कि–

जब वह राजकुमार उस कन्या को प्रेम से विस्फारित नेत्रों से एकटक दृष्टि से देखने लगा तो चिरकाल से सेवा करने वाली निद्रा रूपी नायिका ने मानो इसका ईर्ष्यावश परित्याग कर दिया और रात–दिन जागता हुआ वह विष के सरोवर के समान दुष्टों के वचनों में डूबा हुआ सा, अपने आपको संभाल पाने में समर्थ नहीं हो सका

और उन्मत्त के समान आलिंगन के लिए आकाश में ही अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर– 'हे प्रियतमे! आ जाओ, मत जाओ, मत जाओ।' इसप्रकार चारों दिशाओं तथा उपदिशाओं में उसे चित्रित के समान देखने लगा एवं नेत्रों में खुदी हुई के समान हृदय में टंकित सी उस प्रियतमा का आह्वान करने लगा।

उसके बाद उसने उसी शयनकक्ष में शय्या पर लेटे हुए, कक्ष के दरवाजे को बन्द करके अपने सभी सेवकों का प्रवेश निषेध कर दिया। यहाँ तक कि उसने दैनिक उपभोग की सभी वस्तुओं ताम्बूल आदि को भी ग्रहण करना बन्द कर दिया। ऐसा करते हुए उसने पूरा एक दिन व्यतीत कर दिया और रात्रि में स्वप्न में काश प्रिया से समागम हो जाए, इस इच्छा से रात्रि को भी किसी प्रकार कठिनाई के साथ व्यतीत किया।

उसके पश्चात् इसका मकरन्द नाम का उसका अत्यधिक प्रिय मित्र येन केन प्रकारेण कक्ष में प्रवेश करके, उसे इस अवस्था में देखकर कामदेव के बाण के प्रहार से पीड़ित हुए कन्दर्पकेतु से इसप्रकार बोला–

विशेष–(i) कन्दर्पकेतु की प्रबल विरहावस्था का सुन्दर एवं चित्रात्मक वर्णन किया गया है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(मकरन्दोपदेशवर्णनम्)
(तत्र दुर्जनस्वभाववर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार कन्दर्पकेतु की दयनीय स्थिति को देखकर नायक के मित्र मकरन्द द्वारा दिए गए उपदेश के विषय में उल्लेख करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(29) सखे! किमिदमसाम्प्रतमसाधुजनोचितमध्वानमाश्रितोऽसि। तवैतच्चरितमालोक्य वितर्कदोलासु निवसन्ति सन्तः। खलाः पुनस्त्वदनुचितमनिष्टमाचरन्ति। अनिष्टोद्भावनरसोत्तरं हि भवति खलहृदयम्। को नामाऽस्य तत्त्वनिरूपणे समर्थः। तथाहि– भीमो न बकद्वेषी, आश्रयाशोऽपि मातरिश्वा, अतिकटुरपि महारसः, सर्षपस्नेह इव करयुगललालितोऽपि शिरसा धृतोऽपि न कटुत्वं जहाति। तालफलरस इवापातमधुरः परिणामविरसस्तिक्तश्च। पादपराग इवावधूतोऽपि मूर्धानं कषाययति। विषतरुप्रसूनमिव यथा यथाऽनुभूयते तथा तथा मोहमेव द्रढयति। नीचदेशस्येव नवारिविरहोऽस्य जायते। निदाघदिवस इव बहुमत्सरस्सुमनसां सन्तापं वहति। अन्धकार इव दोषानुबन्धचतुरः विश्वकर्मावलोपनोद्यतश्च।

रुद्र इव विरूपाक्षः, विष्णुरिव चक्रधरः। शक्राश्च इवोच्चैःश्रवाः नदेशजप्रशंसी च। शरस्येव विभिन्नस्यापि सतः स्नेहं दर्शयतः तक्राट इव हृदयं विलोडयति।

पदच्छेद– सखे! किम् इदम् असाम्प्रतम्, असाधु–जन–उचितम् अध्वानम् आश्रितः असि। तव एतत् चरितम् आलोक्य वितर्क–दोलासु

निवसन्ति सन्तः। खलाः पुनः त्वद् अनुचितम् अनिष्टम् आचरन्ति। अनिष्ट–उद्भावन–रस–उत्तरम् हि भवति खल–हृदयम्। कः नाम अस्य तत्त्व–निरूपणे समर्थः। तथाहि– भीमः न बकद्वेषी, आश्रयाशः अपि मातरिश्वा, अतिकटुः अपि महारसः, सर्षप–स्नेहः इव कर–युगल–लालितः अपि, शिरसा धृतः अपि, न कटुत्वम् जहाति। ताल–फल–रस–इव आपात–मधुरः, परिणाम–विरसः तिक्तः च। पाद–परागः इव अवधूतः अपि मूर्धानम् कषाययति। विष–तरु–प्रसूनम् इव यथा–यथा अनुभूयते, तथा–तथा मोहम् एव द्रढयति। नीच–देशस्य इव न वारि–विरहः अस्य जायते। निदाघ–दिवस इव बहु–मत्सरः सुमनसाम् सन्तापम् वहति। अन्धकारः इव दोष–अनुबन्ध–चतुरः विश्व–कर्म–अवलोपन–उद्यतः च।

रुद्रः इव विरूपाक्षः, विष्णुः इव चक्रधरः, शक्राः च इव उच्चैः श्रवाः, न देशज–प्रशंसी च। शरस्य इव विभिन्नस्य अपि सतः, स्नेहम् दर्शयतः तक्राटः इव हृदयम् विलोडयति।

अनुवाद– हे मित्र! तुमने अनुचित तथा दुर्जन लोगों द्वारा अपनाने योग्य मार्ग का आश्रय क्यों ग्रहण कर लिया है? तुम्हारे इसप्रकार के आचरण को देखकर सज्जन लोग संशयरूपी झूले पर निवास कर रहे हैं तथा दुष्ट लोग तुम्हारे समान अनुचित और अनिष्ट मार्ग का आचरण कर रहे हैं, क्योंकि दुर्जन लोगों का हृदय तो दूसरों की निन्दा के प्रचार में ही आनन्द का अनुभव करता है। दुष्टों के हृदय का यथार्थ चित्रण करने में भला कौन समर्थ है?

क्योंकि यह तो भयंकर होते हुए भी बकासुर नामक राक्षस का द्वेषी नहीं है। (विरोध, परिहार) भयंकर होते हुए भी सज्जनों से द्वेष करने वाला है। अग्नि होते हुए भी वायु है। (विरोध, परिहार) अपने ही आश्रयदाता को नष्ट करता हुआ माता के समान अपना पालन करने वालों के प्रति ही श्वावृत्ति का आचरण करने वाला है। अत्यन्त कड़वाहोते हुए भी मधुर होता है। दोनों हाथों से मलकर सिर पर रखा होने पर भी कड़ुवेपन को न छोड़ने वाले सरसों के तेल के समान

दोनों हाथों से पूजा गया भी सिर पर ही पैर रखने की कटुता को नहीं छोड़ता है।

आस्वादन के समय में मधुर तथा अन्त में नीरस और तिक्त ताल के फल के समान यह भी आरम्भ में मीठा और अन्त में तीखे स्वभाव वाला होता है। पैरों की धूल के समान तिरस्कृत किया जाने पर भी मस्तिष्क को कलुषित कर देता है। विषवृक्ष के पुष्प के समान यह जैसे–जैसे अनुभव किया जाता है, वैसे--वैसे यह मोह को ही दृढ़ करता है।

जिसप्रकार निम्न प्रदेश में जल का कभी भी अभाव नहीं होता है, वैसे ही दुर्जन व्यक्ति के शत्रुओं का कभी अभाव नहीं होता है। अत्यधिक मक्खियों वाले, पुष्पों को सन्तप्त करने वाले, ग्रीष्मकाल के दिन के समान अत्यधिक ईर्ष्या से वह सज्जनों को कष्ट देता ही रहता है। रात्रि का अनुसरण करने में चतुर और सूर्य को ढकने में तत्पर अन्धकार के समान, यह दूसरों पर दोष लगाने में निपुण तथा सभी के कार्यों को नष्ट करने में उद्यत रहता है।

यह कुरूप नेत्रों वाले शंकर के समान दुर्जन विपरीत ज्ञान वाला होता है। चक्रधारी विष्णु के समान कपटपूर्ण व्यवहार वाला है। समुद्र में उत्पन्न प्रशंसनीय उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान, यह दूसरों के कार्य को ऊँची ध्वनि में सुनने वाला और अपने ही देश में पैदा होने वालों की प्रशंसा न करने वाला होता है। दही का मन्थन करते हुए मन्थन–दण्ड(तक्राट) के समान यह दुर्जन स्नेह का प्रदर्शन करने वाले सज्जनों के हृदय को भी विलोडित करता ही रहता है।

'चन्द्रिका'– हे मित्र! कन्दर्पकेतु, तुम इसप्रकार अनुचित कार्य को क्यों कर रहे हो? इसप्रकार का कार्य तो प्रायः दुर्जनों द्वारा ही किया जाता है, जबकि तुमने तो इसी को अपना आश्रय बना लिया है। तुम्हारे जैसे सज्जन व्यक्ति द्वारा इसप्रकार के किए गए आचरण को देखकर तो सज्जन लोग अत्यधिक संशय की स्थिति में पड़ गए हैं,

क्योंकि वे इस विषय में उचित–अनुचित का निर्णय नहीं कर पा रहे हैं, जबकि दुष्ट लोगों ने तो तुम्हारे इस आचरण को देखकर उचित, अनुचित तथा अनिष्ट की परवाह किए बिना इसी आचरण को स्वीकार कर लिया है, क्योंकि उन्हें तो वैसे भी दूसरों की निन्दा में ही अधिकाधिक आनन्द एवं तृप्ति की अनुभूति होती है। इन दुष्टों के हृदय का ठीक–ठीक निरूपण करने में भला कौन समर्थ हो सकता है?

(क) क्योंकि दुष्टों का यह हृदय मध्यम पाण्डव भीम होते हुए भी 'बक' नामक राक्षस से द्वेष करने वाला नहीं है (विरोध)। दुर्जन तो भयंकर होता हुआ सज्जनों से द्वेष करने वाला होता है (परिहार)।

(ख) अग्नि होते हुए भी यह वायु है(विरोध)। दुर्जन व्यक्ति अपने आश्रय प्रदान करने वाले को विनष्ट करने वाला होते हुए, माता के समान अपना पालन करने वाले के प्रति भी कुत्ते के समान अनुचित आचरण ही करता है (परिहार)।

(ग) अत्यधिक कड़वा होता हुआ भी मीठा होता है(विरोध)। यह अत्यन्त अनुचित कार्यों को सम्पादित करता हुआ बहुत ही नीरस होता है। (परिहार)

दुर्जन व्यक्ति की विशेषता होती है कि यह दोनों हाथों से मसलने के बाद सिर पर रखे जाने वाले अपनी कड़वाहट का परित्याग न करने वाले सरसों के तेल के समान, दोनों हाथों को जोड़कर अंजलि बाँधे जाने पर भी सिर पर पैर रखने की अपनी क्रूरता को नहीं छोड़ता है।

आस्वादन के समय में मीठा और उसके बाद तीखा लगने वाले ताल फल के रस के समान खाने के परिचय के आरम्भ में तो अत्यन्त मधुर व्यवहार करता है, जबकि अन्त में अपने तीखे स्वभाव को ही प्रदर्शित करने वाला होता है।

इसीप्रकार उपेक्षा के योग्य, मस्तिष्क को कलुषित करने वाली अपने ही ऊपर फैंकी गयी धूलि के समान, उपेक्षा किए जाने पर भी

यह व्यक्ति की बुद्धि को कलुषित कर देता है तथा उपयोग में ला गए मूर्च्छा में वृद्धि करने वाले विष–वृक्ष पुष्प के समान, दुर्जन व्यक्ति ज्यों–ज्यों दूसरों के सम्पर्क में आता है, वैसे–वैसे वह अज्ञान को बढ़ाता ही है। जिसप्रकार नीचे स्थान पर हमेशा ही जल विद्यमान रहता है, वैसे ही दुर्जन व्यक्ति के भी हमेशा ही शत्रु होते हैं।

जिसप्रकार ग्रीष्म ऋतु में मक्खियों का बाहुल्य होता है तथा वे दिन पुष्पों को अत्यधिक सन्तप्त करते हैं, वैसे ही यह दुर्जन अत्यधिक ईर्ष्या के कारण सज्जनों को पीड़ा पहुँचाने वाला होता है। रात्रि का अनुसरण करने वाले एवं सूर्य को ढ़क लेने के लिए सदा ही तैयार रहने वाले चतुर अन्धकार के समान यह दुर्जन व्यक्ति दूसरों पर दोषारोपण में कुशल तथा सभी लोगों की आजीविकाओं को विनष्ट करने में सदा ही तत्पर रहता है, शेष स्पष्ट है।

विशेष–(i) द्व्यर्थक पद– **भीम**–पाण्डुपुत्र भीम, भयंकर। **नबकद्वेषी**– बकासुर से द्वेष न करने वाला, सज्जनों से द्वेष करने वाला। **आश्रयाशः**– अग्नि, आश्रितों को ही खाने वाला। **मातरिश्वा**– वायु, माता के समान ममत्वयुक्त लोगों के प्रति श्वावृत्ति को धारण करने वाला। **महारसः**– अत्यन्त मधुर, अत्यधिक नीरस। **विरूपाक्ष**–तीन नेत्रों वाला, विपरीत व्यवहार से युक्त। **चक्रधर**– चक्र को धारण करने वाला विष्णु, षड़यन्त्रों को रचने वाला। **उच्चैश्रवाः**– इन्द्र के घोड़े का नाम, ऊँचा सुनने वाला। **न देशजप्रशंसी**–समुद्र में उत्पन्न होने से प्रशंसनीय, अपने देश के निवासियों की प्रशंसा न करने वाला।

(ii) दुर्जन व्यक्ति के स्वभाव की उपमा के लिए सरसों के तेल, ताल फल, पैर की धूलि, विष–वृक्ष, निम्न स्थान पर स्थित गड्ढे आदि का उपमानरूप में प्रयोग किया है, जो उसके कुटिल स्वभाव को स्पष्ट करने में पूर्णतया सक्षम रहे हैं।

(iii) 'ताल' नामक फल की विशेषता होती है, वह खाने पर आरम्भ में मीठा प्रतीत होता है, जबकि बाद में कड़वा लगता है, इसका

उल्लेख करने से कवि का वनस्पति–विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iv)भीम तथा बकासुर के आख्यान के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(v) उपमा, श्लेष तथा विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग दर्शनीय बन पड़ा है।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(30)यक्षबलिरिव आत्मघोषमुखरो मण्डलभ्रमणकश्च, मातंग इव स्ववशालोलमुखोऽधरीकृतदानश्च, वृषभ इव सुरभियानविकलः, कामीव गोत्रस्खलनविधुरो वामाध्वा–नुरक्तश्च। जीर्णरोग इव कलेवरे वचसि मन्दिमानमावहति। वंचक इव रक्तः कटपले विभावरीरक्तश्च।

परेत इव बन्धुतापदर्शनः। परशुरिव भद्रश्रियमपि खण्डयति। कुदाल इव दलितगोत्रः क्षमाभाजः प्राणिनश्च निकृन्तति। रतिकील इव जघन्यकर्मलग्नो ह्रेपयति साधून्। दुष्टशूर्पश्रुतिरिव काननरुचिरनुगतमपि यवसं सततं नानु–मोदते। अबीजादेव जायन्ते, अकाण्डादेव प्ररोहन्ति खल–व्यसनांकुराः। दुरुच्छेदाश्च भवन्ति। असतां हृदि प्रविष्टो दोषलवः करालायते। सतां तु हृदि न प्रविशत्येव। यदि कथमपि प्रविशति, तदा पारद इव क्षणमपि न तिष्ठति।

पदच्छेद– यक्ष–बलिः इव आत्म–घोष–मुखरः मण्डल–भ्रमणकः च, मातंगः इव स्व–वश–अलोल–मुखः अधरी–कृत–दानः च, वृषभः इव सुरभि–यान–विकलः, कामी इव गोत्र–स्खलन–विधुरः वामा–अध्वा–अनुरक्तः च। जीर्ण–रोगः इव कलेवरे वचसि मन्दिमानम् आवहति। वंचकः इव रक्तः कटपले विभावरी–रक्तः च। परेतः इव बन्धु–ताप–दर्शनः। परशुः इव भद्र–श्रियम् अपि खण्डयति। कुदालः इव दलित–गोत्रः क्षमा–भाजः प्राणिनः च निकृन्तति। रतिकीलः इव जघन्य–कर्म–लग्नः ह्रेपयति साधून्। दुष्ट–शूर्प–श्रुति–इव कानन–रुचिः अनुगतम्

अपि यवसम् सततम् न अनुमोदते। अबीजाद् एव जायन्ते, अकाण्डात् एव प्ररोहन्ति, खल–व्यसन–अंकुराः, दुरुच्छेदाः च भवन्ति। असताम् हृदि प्रविष्टः दोष–लवः करालायते। सताम् तु हृदि न प्रविशति एव। यदि कथम् अपि प्रविशति, तदा पारदः इव क्षणम् अपि न तिष्ठति।

अनुवाद– कौओं की ध्वनि से शब्दायमान तथा कुत्तों को इधर–उधर घुमाने वाली, यक्ष को लक्ष्य करके दी गयी, बलि के समान यह दुष्ट व्यक्ति आत्मप्रशंसा में मुखर तथा व्यर्थ ही इधर–उधर घूमने वाला होता है। अपनी हथिनी के प्रति चंचल मुख वाले एवं मदजल को प्रवाहित करने वाले गजराज के समान, यह दुर्जन स्वाधीन, वाचाल एवं किसी को भी दान न देने वाला होता है। गायों के पीछे दौड़ने से थके हुए साँड के समान यह दुष्ट हमेशा ही विद्वानों के पास जाने से विरत (विकल) रहता है।

गोत्रस्खलन से व्याकुल तथा स्त्रियों के मार्ग का अनुकरण करने वाले कामी के समान यह दुर्जन अपने वंश के लिए उचित व्यवहार से सर्वथा रहित और प्रतिकूल मार्ग के प्रति अनुरक्त रहता है। शरीर एवं वाणी में असमर्थ पुराने रोगी के समान, यह श्रेष्ठ वचनों (कलेवर) से ईर्ष्या करता है। शव के मांस में अनुराग रखने वाले तथा रात्रि को चाहने वाले गीदड़ के समान यह रिश्वत लेने में अनुरक्त और विवादों से प्रेम करने वाला होता है।

कुटुम्बी लोगों को दिखायी न देने वाले प्रेत के समान यह बन्धुजनों को कष्ट प्रदान करने वाला होता है। चन्दन को भी काट डालने वाले कुठार (कुल्हाडी) के समान, सज्जनों की शोभा को भी विनष्ट कर डालता है। भूमि को खोदने वाले, वहाँ रहने वाले प्राणियों को मार डालने वाले कुदाल के समान दुर्जन व्यक्ति अपने ही कुल का विनाशक तथा क्षमाशील प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने वाला होता है। रतिक्रिया में लगे हुए कुत्ते के समान, जघन्य कर्मों को करता हुआ, सज्जनों को लज्जित करता है। वन में जाने की इच्छा वाले, आसानी

से प्राप्त होने वाले तिनकों की ओर न देखने वाले दुष्ट हाथी के समान, कुत्सित मुख की कान्ति से युक्त यह दुर्जन सकार युक्त प्रतिलोम से पढ़े गए, यवस् अर्थात् मित्र का भी स्वागत नहीं करता है।

दुर्जन द्वारा उत्पन्न किए गए दुःखरूपी अंकुर वस्तुतः बिना बीज के ही उत्पन्न होते रहते हैं। अवसर (शाखा) के अभाव में भी वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं तथा अत्यधिक कठिनता से नष्ट होते हैं। दुर्जन के हृदय में प्रविष्ट थोड़ा भी दोष का कण विकरालरूप धारण कर लेता है। सज्जनों के हृदय में तो ये दोषों के कण (दोषलव) कभी प्रवेश ही नहीं करते हैं और यदि किसी कारणवश प्रवेश भी कर जाएँ तो पारे के समान क्षण भर भी स्थिर नहीं रहते हैं।[1]

'चन्द्रिका'– जिसप्रकार यक्ष को लक्ष्य करके प्रदान की गयी 'बलि' कौओं के शब्दों से युक्त तथा कुत्तों को इधर–उधर घुमाने वाली होती है, वैसे ही दुष्ट व्यक्ति हमेशा ही व्यर्थ में इधर–उधर घूमने वाला तथा आत्मश्लाघा करने वाला होता है। जिसप्रकार हाथी अपनी प्रिया हथिनी के प्रति चंचल मुख वाला और गण्डस्थलों से मदजल प्रवाहित करने वाला होता है, वैसे ही दुष्ट व्यक्ति स्वयं तथा अपने मुख, इन दोनों को ही स्वतन्त्र मानते हुए चंचल मुख वाला और कभी भी किसी को भी दान न देने वाला होता है।

जिसप्रकार साँड, गायों के पीछे दौड़ने से थक जाता है, वैसे ही दुष्ट व्यक्ति विद्वानों के पास जाने से परेशान हो जाता है। वंशोचित व्यवहार से अलग रहने वाले तथा उचित नाम के स्थान पर दूसरे नाम का उच्चारण करने वाले कामी व्यक्ति के समान दुष्ट व्यक्ति, अपने वंश के लिए उचित व्यवहार से हटकर विपरीत मार्ग पर चलने वाला होता है। जिसप्रकार पुराने रोग से ग्रसित कोई व्यक्ति

---

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि का रसायन–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि 'पारा' (पारद) तरल होने से एक स्थान पर ठहर नहीं पाता है।

शरीर तथा वाणी दोनों से ही मन्दता को धारण करता है, वैसे ही दुष्ट व्यक्ति मधुर वचनों से ईर्ष्या करते हुए उदासीनता को धारण करता है।

जिसप्रकार सियार(वंचकः) शव के मांस (कटपल) से प्रेम और रात्रि को पसन्द करने वाला होता है, वैसे ही यह दुष्ट व्यक्ति रिश्वत लेने तथा विवादों में विशेषरूप से अनुरक्त होता है। इसके अतिरिक्त बन्धुजनों को दृष्टिगोचर न होने वाले प्रेतात्मा के समान, यह हमेशा ही अपने परिवारजनों के कष्टों को ही देखता है (अपदर्शन)।

इसीप्रकार चन्दन वृक्ष को भी काट डालने वाले फरसे के समान, यह दुष्ट सज्जनों की श्री, शोभा तथा यशादि सभी को विनष्ट कर देता है। शान्तिपूर्वक भूमि में रहने वाले जीवों को पीड़ित करने वाली, भूमि को खोदने वाली कुदाल के समान, दुष्ट व्यक्ति विपरीत आचरण से अपने कुल का ही विनाशक एवं उसके अपने प्रति भी क्षमाभाव को धारण करने वाले सज्जनों को भी पीड़ा देने वाला होता है।

रतिक्रिया में लगे हुए कुत्ते के समान[1], नीच कार्यों में संलग्न यह दुष्ट अपने निकृष्ट और जघन्य कार्यों से सज्जनों को लज्जित करता है। वन में जाने की अभिलाषा युक्त, सरलता से उपलब्ध तिनके आदि की ओर नेत्र उठाकर न देखने वाले, शूर्प[2] (सूप, छाज)के समान विशाल कानों वाले दुष्ट हाथी के समान, कुत्सित मुख की शोभा से युक्त दुष्ट व्यक्ति सरलता से प्राप्त होने वाले, संस्कारयुक्त मित्र का भी अभिनन्दन नहीं करता है (यवसं तृणम्)।

उल्लेखनीय है कि इन दुर्जनों द्वारा उत्पन्न किए हुए दुःखरूपी अंकुर वस्तुतः कारण (बीज) के अभाव में ही उत्पन्न होते रहते हैं। ये तो शाखाओं रूपी अवसरों के अभाव में भी बढ़ने वाले होते हैं। साथ ही, इन्हें नष्ट करना भी सरल नहीं होता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि

[1]. महाकवि का प्राणि–विज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

[2]. द्विपायिशूर्पश्रुतिकुम्भिसोमजा इति हारावली।

इन दुर्जनों के हृदय में प्रवेश किया हुआ दोष का छोटे से छोटा(लव) कण भी विकराल रूप को धारण कर लेता है, जबकि सज्जनों के हृदयों में तो ये कभी भी प्रविष्ट ही नहीं हो पाते हैं अर्थात् उनसे प्रेम नहीं करते हैं और यदि किसी प्रकार स्वार्थवश प्रवेश कर भी जाते हैं, तो पारे के समान[1] ये उनके हृदयों में टिक नहीं पाते हैं तथा फिसल जाते हैं।

विशेष–(i) दुष्टों के स्वभाव का अत्यधिक सुन्दर चित्रण किया गया है। उसकी उपमा परशु, कुदाल, प्रेत आदि से दी गयी है, जो पूर्णतया सटीक प्रतीत होती है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में उपमा एवं श्लेष इन दो अलंकारों का स्वाभाविक सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **आत्मघोषमुखर**– कौओं के शब्द से युक्त, अपनी प्रशंसा करने में निपुण। **मण्डलभ्रमणक**– कुत्तों को इतस्ततः घूमाने वाला, इधर–उधर व्यर्थ भ्रमण करने वाला। **स्ववशालोलमुख**– अपनी हथिनी के प्रति चंचल मुख से युक्त, अपने मुख को स्वतन्त्र मानकर चपल मुख वाला। **अधरीकृतदान**– कभी दान न देने वाला, मद जल को बहाने वाला। **सुरभियानविकल**– गायों के पीछे दौड़ने से थका हुआ, विद्वानों के समीप जाने पर व्याकुल होने वाला। **विधुर**– व्याकुल, रहित। **वामा**– स्त्री, विपरीत। कलेवर– सुन्दर, शरीर। **कटपल**– शव का मांस, घूस। **विभावरी**– रात्रि, विवाद।

(iv) जब पितरों को बलि दी जाती है, तो उस अवसर पर शब्द करते हुए कौए तथा इधर–उधर घूमने वाले कुत्ते एकत्र हो जाते हैं। दुष्टों की उपमा प्रेतात्माओं को दी गयी बलि से दी गयी है।

---

[1]. पारे की उपमा से कवि का रसायन शास्त्र विषयक विज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि पारे की विशेषता है कि वह एक स्थान पर स्थिर न होकर चंचल बना रहता है।

(v) दुष्टों की दुष्टता के पीछे किसी बीजरूप कारण विशेष का होना आवश्यक नहीं है, वे तो बिना कारण के ही सज्जनों का अहित करने वाले होते हैं।

(साधुस्वभाववर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार महाकवि दुर्जनों के स्वभाव का सूक्ष्मतापूर्वक विस्तार से वर्णन करने के बाद, सज्जनों के स्वभाव के सम्बन्ध में गहनता के साथ कहते हैं कि–

(31) मृगा इव विनोदविन्दोर्वशगा न भवन्ति साधवः। सुखं जना हि भवादृशाः शरत्समया इव हरन्ति मित्रमण्डलस्य। न च सचेतना विसदृशमुपदिशन्ति। अचेतनानामपि मैत्री समुचितपक्षे निक्षिप्ता।

तथाहि– माधुर्यशैत्यशुचित्वसन्तापशान्तिभिः पय इति शब्दसाम्याच्च मित्रतामुपगतस्य तत् संगमादभिवर्धितस्य क्षीरस्य क्वाथे पुरतो ममैव क्षयो युक्त इति विचिन्त्येव वारिणा क्षीयते। तदिदमसाम्प्रतमाचरितम्।

सखे! गृहाण साधुजनोचित– मध्वानम्। साधवो हि दिङ्मोहादुत्पथप्रवृत्ता अपि पुनर्गृहीतसत्पथा भवन्ति।' इत्यादि वदति तस्मिन्मकरन्दे प्रियसखे, कथमपि स्मरशरप्रहारपरवशः कन्दर्पकेतुः परिमिताक्षरमुवाच–

पदच्छेद– मृगाः इव विनोद–विन्दोः वशगाः न भवन्ति साधवः। सुखम् जनाः हि भवादृशाः शरत्समयाः इव हरन्ति मित्र–मण्डलस्य। न च सचेतना विसदृशम् उपदिशन्ति। अचेतनानाम् अपि मैत्री समुचित–पक्षे निक्षिप्ता।

तथाहि– माधुर्य–शैत्य–शुचित्व–सन्ताप–शान्तिभिः पयः, इति, शब्द–साम्यात् च मित्रताम् उपगतस्य तत् संगमाद् अभिवर्धितस्य क्षीरस्य क्वाथे पुरतः मम एव क्षयः युक्तः, इति, विचिन्त्य एव वारिणा क्षीयते। तद् इदम् असाम्प्रतम् आचरितम्।

'सखे! गृहाण, साधुजन–उचितम् अध्वानम्। साधवः हि दिङ्–मोहाद् उत्पथ–प्रवृत्ताः अपि पुनः गृहीत–सत्पथाः भवन्ति।' इत्यादि वदति, तस्मिन् मकरन्दे प्रियसखे, कथम् अपि स्मर–शर–प्रहार–पर–वशः कन्दर्पकेतुः परिमित–अक्षरम् उवाच–

अनुवाद– जिसप्रकार शिकार करने में निपुण शिकारी अपने शिकार के वश में नहीं होते हैं, उसीप्रकार सज्जन लोग भी थोड़े से कौतुक के अधीन नहीं होते हैं। जिसप्रकार मेघ आदि को नष्ट करके शरद्काल लोगों को या सूर्य को सुख प्रदान करता है, वैसे ही आप जैसे लोग ही मित्रमण्डल को आनन्द प्रदान करते हैं। केवल चेतन प्राणियों में ही वैसा सादृश्य नहीं देखा जाता है, किन्तु अचेतन पदार्थों की मैत्री भी उचित पक्ष में ही होती है।

जैसे– **मधुरता, शीतलता, शुचित्व और ताप निवारकता आदि की योग्यता के कारण 'पयः' इस नाम की समानता के कारण मित्रता को प्राप्त हुए और अपने साथ में दूध की मात्रा के बढ़ जाने से, गर्म होते समय 'पहले मेरा ही विनाश उचित है' इसप्रकार सोचकर जल मानो पूर्व में जल जाता है। इसलिए तुम्हारा यह आचरण उचित नहीं है।**

इसलिए हे मित्र! तुम तो सज्जनों के लिए उचित मार्ग का अनुसरण करो, सज्जन लोग दिशाभ्रम के कारण सुमार्ग से विचलित होने पर भी फिर से सन्मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं।

इसप्रकार मकरन्द द्वारा कन्दर्पकेतु को समझाने पर, कामदेव के बाण के प्रहार से पराधीन हुए कन्दर्पकेतु ने किसीप्रकार सीमित अक्षरों में इसप्रकार कहा–

'चन्द्रिका'–मृगों के समान सज्जन लोग पक्षियों को ही प्रेरित करने (नोद) में निपुण लोगों के वश में आने वाले नहीं होते हैं। आपके जैसे सज्जन लोग ही तो मेघादि को नष्ट करने वाले शरद्काल के समान सूर्यमण्डल अर्थात् मित्रों के समूह को आनन्द प्रदान करने वाले

होते हैं। केवल चेतन प्राणियों में ही इसप्रकार का विशेष सादृश्य गोचर नहीं होता है, किन्तु अचेतन पदार्थों में भी यह मैत्री उचित पक्ष में ही देखी जाती है। उदाहरण के लिए–

मधुरता, शीतलता, पवित्रता तथा सन्ताप को शान्त करने की क्षमता इत्यादि गुणों से युक्त पयः अर्थात् दूध तथा जल, इस नाम की समानता के कारण ही जिनमें मैत्रीभाव हुआ है, ऐसे दूध के साथ सर्वप्रथम तो पानी की मित्रता उन दोनों में वृद्धि करने वाली होती है, क्योंकि पानी में दूध मिलाने से या दूध में पानी मिलाने पर, दोनों की ही मात्रा बढ़ जाती है।

इसी के साथ, गर्म किए जाने पर भी जल यही सोचकर पहले जलता है कि अपने मित्र से पहले मेरा ही नष्ट हो जाना उचित है। इसलिए इस समय तुम्हारे द्वारा इसप्रकार का आचरण किया जाना लेशमात्र भी उचित नहीं है।

अतः हे मित्र! तुम्हें तो सज्जनोचित मार्ग का ही अवलम्बन करना चाहिए, दुर्जनोचित का नहीं। यों भी सज्जनों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी होती है कि वे दिशाओं के भ्रम के समान यदि कभी अनुचित मार्ग पर चल भी पड़ते हैं, तो भी वे फिर से कर्तव्य एवं अकर्तव्य के विषय में अपने सद्विवेक का प्रयोग करके जल्दी ही सन्मार्ग पर आ जाते हैं।

इसप्रकार मित्र मकरन्द द्वारा अनेक विधियों से समझाए जाने पर, काम के बाण के प्रहार से पराधीन हुए कन्दर्पकेतु ने अत्यधिक सीमित शब्दों में येन केन प्रकारेण प्रयासपूर्वक इन वचनों को कहा कि–

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड के आरम्भिक तीन वाक्यों में उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है तथा दूध और जल के उदाहरण में स्वाभाविक या आगन्तुक चिह्न के कारण किसी वस्तु का आच्छादन करने का वर्णन होने से मिलित अलंकार भी दर्शनीय है।

(ii) सज्जनों की मैत्री के विषय में कवि ने दूध तथा जल को उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया है, जो अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है, क्योंकि दूध को अग्नि में गर्म करने पर दूध को सुरक्षित रखते हुए पहले जल ही जलता है अर्थात् भाप बनकर उड़ जाता है।

अवतरणिका– इसके बाद कामसन्तप्त कन्दर्पकेतु ने अपने मित्र मकरन्द से कहा कि–

(32) **वयस्य! दितिरिव शतमन्युसमाकुला भवत्य–स्मादृशजनचित्तवृत्तिः। नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृतिः। अधुना तदलमनया कथया। यदि त्वं सहपांसुक्री–डासमदुःखसुखोऽसि, तन्मया सममागम्यतामित्युक्त्वा परिजनालक्षित एव तेन सह पुरान्निर्जगाम।**

पदच्छेद– वयस्य! दितिः इव शतमन्यु–समाकुला भवति अस्मादृश–जन–चित्त–वृत्तिः। न अयम् उपदेश–कालः। पच्यन्ते इव मे अंगानि। कृष्यन्ते इव इन्द्रियाणि। भिद्यन्ते इव मर्माणि। निस्सरन्ति इव प्राणाः। उन्मूल्यन्ते इव विवेकाः। नष्टा इव स्मृतिः। अधुना तद् अलम् अनया कथया। यदि त्वम् सह–पांसु–क्रीडा–सम–दुःख–सुखः असि, तत् मया समम् आगम्यताम् इति उक्त्वा परिजन–अलक्षितः एव तेन सह पुरात् निर्जगाम।

अनुवाद– हे मित्र! इन्द्र से डरी हुई दिति[1] के समान हम जैसे लोगों की चित्तवृत्ति भी सैकड़ों शोकों से व्याकुल रहती है। यह उपदेश का समय नहीं है। मेरे अंग मानो पक रहे हैं। इन्द्रियाँ मानो उबल रही हैं। मर्मस्थल मानो फट रहे हैं। प्राण मानो निकले जा रहे हैं। विवेक मानो जड़ से ही उखड़ रहा है। स्मरण शक्ति मानो नष्ट हो गयी है। इसलिए अब इस कथा से बस करो। यदि तुम बाल्यकाल से मेरे सुख

---

[1]. विस्तृत परिचय के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

दुःख के साथी हो, तो मेरे साथ आओ, ऐसा कहकर परिजनों से छिप कर मकरन्द के साथ वह कन्दर्पकेतु नगर से निकल गया।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कवि द्वारा कन्दर्पकेतु की कामदशा का अत्यन्त मार्मिक, तलस्पर्शी एवं चित्रात्मक शैली में चित्रण किया गया है।

(ii) मकरन्द की निःस्वार्थभाव से मित्रता प्रदर्शित होने से तथा कन्दर्पकेतु के उदात्तप्रेम की अभिव्यक्ति से इन दोनों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

(iii) आरम्भिक सात वाक्यों में उपमालंकार का सौन्दर्य निरन्तर होने से मालोपमालंकार विद्यमान है।

(iv) इसीप्रकार 'शतमन्युसमाकुला' में श्लेष का प्रयोग हुआ है, क्योंकि इसके दो अर्थ हैं– इन्द्र से भयभीत तथा सैंकड़ों प्रकार के शोकों से व्याकुल।

(विन्ध्याचलवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार नगर से निकलने के बाद, वे दोनों विन्ध्यपर्वत पर पहुँचे, जिसका वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(33)ततोऽनेकनल्वशतमध्वानं गत्वा तेनागस्त्यवचन-संहृतब्रह्माण्डखण्डगतशिखरसहस्रः, कन्दरान्तराललता-गृहसुप्त प्रबुद्धविद्याधरमिथुनगीताकर्णनसुखितचमरीगण-मारणोत्सुकशबरकुलसम्बाधकच्छतटः, कटकतटगतकरि-कराकृष्टभग्नहरिचन्दनस्यन्दमानरसामोदहरगन्धवाहशिशिरि-तशिलातलः, सुदूरपतनभग्नतालफलरसार्द्रकरतलास्वादनो-त्सुकशाखामृगकदम्बकः,प्रलम्बमाननिर्झरापान्तापविष्टजीवं-जीवकमिथुन लेलिह्यमानविविधफलरसामोदसुरभितपरिसरः सरभसकेसरिसहस्रखरनखरधाराविदारितमत्तमातङ्गकुम्भ-

स्थलविगलित स्थूलमुक्ताफलशबलशिखरतया शिखरावलग्नं तारागणमिवोद्वहन्......।

पदच्छेद– ततः अनेक–नल्व[1]–शतम् अध्वानम् गत्वा तेन अगस्त्य–वचन–संहृत–ब्रह्माण्ड–खण्ड–गत–शिखर–सहस्रः, कन्दरा–अन्तराल–लता–गृह–सुप्त–प्रबुद्ध–विद्याधर–मिथुन–गीत–आकर्णनसुखित–चमरी–गण–मारण–उत्सुक–शबर–कुल–सम्बाध–कच्छ–तटः, कटक–तट–गत–करिकर–आकृष्ट–भग्न–हरिचन्दन–स्यन्दमान–रस–आमोद–हर–गन्धवाह–शिशिरित–शिलातलः,सुदूर–पतन–भग्न–ताल–फल–रसार्द्र–करतल–आस्वादन–उत्सुक–शाखा–मृग–कदम्बकः,प्रलम्बमान–निर्झर–अपान्त–अपविष्ट–जीवंजीवक–मिथुन–लेलिह्यमान–विविध–फल–रस–आमोद–सुरभित–परिसरः स–रभस–केसरि–सहस्र–खर–नखर–धारा–विदारित–मत्त–मातङ्ग–कुम्भस्थल–विगलित–स्थूल–मुक्ता–फल–शबल–शिखरतया शिखरौ आलग्नम् तारागणम् इव उद्वहन्........ ।

अनुवाद– उसके पश्चात् अनेक 'नल्व' परिमित मार्ग को पार करके, (उन्हें विन्ध्याचल दिखायी दिया), **जिसने महर्षि अगस्त्य[2] के कहने से आकाश में फैली हुई अपनी हजारों चोटियों को संकुचित कर लिया था। उसका जलमग्न तट, गुफाओं के मध्य में बने हुए लतागृहों में सोकर जगे, विद्याधर युगल के गीतों को सुनने से सुखी चमरीमृगों को मारने के लिए उत्सुक बहेलियों के समूह से व्याप्त था, उसके शिलातल, पर्वत के मध्यभाग के तटों पर स्थित हाथियों की सूँड से खींचने के कारण, टूटे हुए हरिचन्दन के बहते हुए रस की गन्ध को वहन करने वाली वायु से शीतल हो रहे थे, जो अत्यधिक दूर से**

---

[1]. माप के लिए प्रयुक्त होने वाली दूरीवाची इकाई के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे कवि का गणित–विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

[2]. विस्तार के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

गिरने के कारण विदीर्ण तालफल के रस से गीले हाथों को चाटने के लिए उत्सुक बन्दरों के समूह से व्याप्त था।

उसका प्रान्तप्रदेश गिरते हुए झरनों के तटों पर बैठे हुए जीवंजीवक नामक पक्षियों के युगल द्वारा चाटे गए, अनेक फलों के रस की सुगन्ध से सुगन्धित था, अत्यन्त वेगपूर्वक आक्रमण करने वाले हजारों सिंहों के तीखे नाखूनों के अग्रभाग से विदीर्ण किए गए मदमस्त हाथियों के गण्ड–स्थलों से विगलित बड़े–बड़े मुक्ताफलों से विचित्र भाग वाले उसके शिखर ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे मानो वह पर्वत ताराओं के समूह को धारण कर रहा हो।

'चन्द्रिका'– नगर से निकलने के बाद कन्दर्पकेतु अपने मित्र मकरन्द के साथ अनेक सौ हाथों की लम्बी दूरी तय करके, विन्ध्य पर्वत पर पहुँचा, जिस विन्ध्याचल ने महर्षि अगस्त्य की आज्ञा से अपने ऊपर की ओर फैल रही ऊँची–ऊँची चोटियों को सिकोड़ लिया था।

इस विन्ध्याचल की गुफाओं में भीतर की ओर लतागृहों का निर्माण किया गया था, जिसमें विद्याधर युगल केलिक्रीड़ा के बाद शयन करते थे तथा जो जागरण के बाद उनके द्वारा आनन्द से गाए जाने वाले गीतों को सुनने से प्राप्त होने वाले आनन्द से युक्त चमरीमृगों के समूहों का शिकार करने के लिए प्रयासरत बहेलियों के समूहों से युक्त तथा विभिन्न प्रकार के जलों से व्याप्त था।

इस पर्वत के मध्यभाग में हाथियों की सूँड़ से खींचने के कारण जिसकी शाखाएँ टूट गयी हैं तथा जो ऐसे हरिचन्दन के बहते हुए रस की गन्ध को अपने साथ लेकर बहने वाले वायु से शीतल हुए शिलाखण्डों से युक्त था, जो अत्यधिक ऊपर से गिरने के कारण फूटने से निकलने वाले ताल के फलों के रस के गीले हुए हाथों को चाटने के लिए उत्सुक वानरों के समूह से भरा हुआ था।

इस पर्वत का प्रान्तभाग बहने वाले झरनों के तटों पर बैठे हुए जीवंजीवक नामक पक्षियों के युगल द्वारा आस्वादित अनेक फलों की

सुगन्ध से सुगन्धित था, जो अनेक सिंहों द्वारा वेगपूर्वक आक्रमण करने पर अपने तीक्ष्ण नाखूनों के आगे के भाग से फाड़ डाले गए मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों[1] से टपकाए गए बड़े-बड़े मुक्ताफलों से भरे हुए शिखरों वाला था, जो ऐसा प्रतीत होता था मानो यह पर्वत इन चोटियों पर लगे हुए ताराओं के समूह को धारण कर रहा हो।

विशेष–(i) बन्दरों की स्वाभाविक चेष्टा का उल्लेख करने के कारण महाकवि का प्राणि–विज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड में अनुप्रास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है तथा 'तारागणमिवोद्वहन्' में सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) उपर्युक्त स्वाभाविक तथा सूक्ष्म वर्णन से प्रतीत होता है कि महाकवि का सम्पर्क या निवास निश्चय ही अपने जीवन में कभी दुर्गम वनों में हुआ था, जिनका उन्होंने सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन किया था।

(iv) यहाँ सर्वप्रथम विन्ध्यपर्वत की विशेषताओं का उल्लेख करके महर्षि अगस्त्य के महत्त्व को भी कवि द्वारा इंगित किया गया है, जिससे कवि का पौराणिक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

अवतरणिका– विन्ध्याचल वर्णन के प्रसंग में ही कवि पुनः कहते हैं कि–

(34) सुग्रीव इव ऋक्षगवयशरभकेसरिकुमुदपनस सेव्यमानपादच्छायः, पशुपतिरिव नागनिश्वाससमुत्क्षिप्तभूतिः, जनार्दन इव विचित्रवनमालः, सहस्रकिरण इव सप्तपत्र स्यन्दनोपेतः, विरूपाक्ष इव सन्निहितगुहः शिवानुगतश्च,

---

[1]. मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों पर केसरी सिंह के आक्रमण करने का दृश्य महाकवि को अत्यधिक प्रिय रहा है, जिसका इस काव्य में अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है।

कामीव कान्तारोषरसानुगतः समदनश्च, श्रीपर्वत इव सन्निहितमल्लिकार्जुनः, नरवाहनदत्त इव प्रियङ्गु-श्यामासनाथः, शिशुरिव कृतधात्रोधृतिः, वासरारम्भ इवारुणप्रभापाटलितपत्रवनराजिः, कृष्णपक्ष इव बहुलता-गहनः, कर्ण इवानुभूतशतकोटिदानः, भीष्म इव शिखण्डि-मुक्तैरर्धचन्द्रैराचिततनुः, कामसूत्रविन्यास इव मल्लनाग-घटितकान्तारसामोदः, हिरण्यकशिपुरिव शम्बरकुलाश्रयः....।

पदच्छेद– सुग्रीवः इव ऋक्ष–गवय–शरभ–केसरि–कुमुद–पनस–सेव्यमान–पाद–छायः, पशुपतिः इव नाग–निश्वास–समुत्क्षिप्त–भूतिः, जनार्दनः इव विचित्र–वनमालः, सहस्र–किरणः इव सप्त–पत्र–स्यन्दन–उपेतः, विरूपाक्षः इव सन्निहित–गुहः शिव–अनुगतः च, कामी इव कान्ता–रोष–रस–अनुगतः समदनः च, श्रीपर्वतः इव सन्निहित-मल्लिकार्जुनः, नरवाहनदत्तः इव प्रियङ्गु–श्यामा–सनाथः, शिशुः इव कृत–धात्रोधृतिः, वासर–आरम्भः इव अरुण–प्रभा–पाटलित–पत्र–वन-राजिः, कृष्णपक्षः इव बहुलता–गहनः, कर्णः इव अनुभूत–शत–कोटि-दानः, भीष्मः इव शिखण्डि–मुक्तैः अर्धचन्द्रैः अचित–तनुः, कामसूत्र-विन्यासः इव मल्ल–नाग–घटित–कान्ता–रस–आमोदः, हिरण्यकशिपुः इव शम्बर–कुल–आश्रयः..........।

अनुवाद– जो विन्ध्याचल जाम्बवान्, गवय, शरभ, केसरि, कुमुद तथा पनस नामक वानरों के चरण की कान्ति से शोभायमान सुग्रीव के समान भालू, नीलगाय, शरभ (आठ पैरों वाला जीव विशेष) सिंह, कुमुदिनी और कटहल के वृक्षों से युक्त शिखरों की छाया वाला था। इसीप्रकार वह सर्पों के निःश्वास से उड़ायी गयी शरीरभस्म वाले महादेव के समान, हाथियों के निःश्वास से इधर–उधर फैलाए गए गेरु आदि के कणों से युक्त था। इसके अतिरिक्त वह विचित्र वैजयन्ती माला वाले विष्णु के समान, विचित्र पंक्तियों वाला था।

इसीप्रकार सात घोड़ों वाले रथ से युक्त सूर्य के समान, सप्त पर्ण एवं तिनिश (स्यन्दन) नामक वृक्षों से सम्पन्न था। इसके अतिरिक्त वह कार्तिकेय से युक्त एवं पार्वती द्वारा अनुकरण किए जाते हुए भगवान् शंकर के समान, गुफाओं से युक्त तथा सियारों वाला था, जो रमणियों के कोप तथा प्रेम से युक्त कामव्यथा सम्पन्न कामी व्यक्ति के समान दुर्गम मार्ग, ऊसर भूमि तथा शिखरों से युक्त था, जो धाय द्वारा गोद में धारण किए गए बालक के समान भूमि को धारण करने वाला था।

जो प्रियंगुश्यामा नामक महिषी से युक्त नरवाहनदत्त के समान खिरनी नाम वृक्ष और सोमलताओं से युक्त था, जो सूर्य की रक्तिम प्रभा से लाल पत्तियों तथा जल वाले प्रातःकाल के समान लाल गेरु इत्यादि की कान्ति से लाल की गयी पंक्तियों से सम्पन्न था, जो कालिमायुक्त कृष्णपक्ष के समान कृष्णवर्ण वाली अनेक लताओं से व्याप्त था, जो अनेक कोटि धन दान देने के अनुभव से युक्त कर्ण के समान वज्र द्वारा पंखों के कटने के अनुभव से युक्त था।

इसीप्रकार शिखण्डी द्वारा छोड़े गए, अर्धचन्द्र नामक बाण से व्याप्त शरीर वाले भीष्म पितामह के समान मयूरों द्वारा गिराए गए, अर्धचन्द्राकार पंखों से व्याप्त शरीर से युक्त था। कामसूत्र के प्रणेता आचार्य वात्स्यायन द्वारा विरचित स्त्रियों के अत्यन्त उत्कृष्ट रस से युक्त कामसूत्र की रचना के समान, बलशाली हाथियों से सम्पन्न दुर्गम मार्ग में फैले हुए मदजल की गन्ध से युक्त था। शम्बर दैत्य के आश्रय भूत हिरण्यकशिपु के समान शम्बर नामक मृग–विशेष के समूह का आश्रयस्थल था।

'चन्द्रिका'– यह विन्ध्याचल वस्तुतः जाम्बवान्, गवय, शरभ, केसरी, कुमुद एवं पनस नाम के वानरों से सुशोभित चरणों की शोभा से युक्त सुग्रीव के समान भालुओं, नीलगायों, शरभ नाम के मृगों, सिंहों से युक्त था और कुमुदिनी तथा कटहल के वृक्षों की घनी छाया वाला

था, जिसमें सर्पों की फुँकार से उड़ायी गयी भस्म से युक्त भगवान् शंकर के समान हाथियों के निःश्वास से इधर–उधर बिखेरे गए गेरु के कण अत्यधिक मात्रा में इधर–उधर फैले हुए थे।

वह विचित्र प्रकार की वैजयन्ती माला को धारण करने वाले भगवान् विष्णु के समान विचित्र प्रकार के वनों की पंक्तियों से युक्त था, इसमें सात घोड़ों वाले रथ से युक्त सूर्यदेव के समान सप्तपर्ण एवं तिनिश नाम के अनेक वृक्ष विद्यमान थे। वह शिव के पुत्र कार्तिकेय के साथ पार्वती द्वारा अनुगमन किए जाने वाले महादेव के समान अनेक प्रकार की गुफाओं एवं शृगालों से सम्पन्न था।

इसीप्रकार वह विन्ध्य पर्वत वस्तुतः रमणियों के कोप तथा प्रेम से युक्त काम की व्यथा से युक्त कामी व्यक्ति के समान दुर्गम मार्गों, ऊसर भूमि–भागों, शिखरों तथा धतूरे के वृक्षों से युक्त था। वह मल्लिकार्जुन नामक शिवलिंग से युक्त श्रीनामक पर्वत के समान, मल्लिका नाम की लताओं और अर्जुन नाम के वृक्षों से सम्पन्न था, जो पर्वत, धाय द्वारा अपनी गोद में धारण करने वाले बालक के समान सम्पूर्ण भूमि को धारण करने वाला था।

इसके अतिरिक्त वह पर्वत प्रियंगुश्यामा नाम की राजमहिषी अर्थात् पटरानी से युक्त नरवाहनदत्त के समान खिरनी नाम के वृक्षों तथा सोम लताओं से समन्वित था, जो सूर्य की लालिमा युक्त प्रभा से रक्तिम पत्तियों एवं जलों से युक्त प्रातःकाल के समान गेरु आदि की लाल कान्ति से युक्त पत्तियों से सम्पन्न वन की पंक्तियों वाला था, जो पर्वत कालिमा से युक्त कृष्णपक्ष के समान अनेक कृष्णवर्ण की लताओं से परिपूरित था।

जो विन्ध्याचल अनेक करोड़ स्वर्ण मुद्रा दान देने के अनुभव से युक्त कर्ण के समान इन्द्र के वज्र द्वारा पंखों को काटने के अनुभव वाला था। वह पर्वत शिखण्डी द्वारा छोड़े गए अर्द्धचन्द्राकार बाणों से

व्याप्त शरीर वाले भीष्म पितामह के समान, मोरों द्वारा गिराए गए, अर्द्ध चन्द्राकार पंखों से व्याप्त शरीर से युक्त था।

वह पर्वत कामसूत्र के प्रणयन करने वाले आचार्य वात्स्यायन द्वारा संकलन किए गए श्रृंगाररस युक्त कामसूत्र नामक कृति के समान विशाल, बलशाली हाथियों से युक्त दुर्गम मार्ग में चारों ओर व्याप्त मदजल की गन्ध से समन्वित था, वह शम्बरकुल के आश्रयरूप हिरण्यकशिपु के समान 'शम्बर' नाम के मृग विशेष के समूह का आश्रयस्थल था।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में कवि का प्राणि–विज्ञान के साथ–साथ वनस्पति–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(ii) मोरों की विशेषता होती है कि वे एक निश्चित अवधि के बाद अपने शरीर के पंखों को गिरा देते हैं, जिससे उनके नए पंख फिर से आ सकें, यहाँ कवि ने इसी ओर संकेत किया है।

(iii) युवा एवं उत्कृष्ट जाति के हाथी की विशेषता होती है, कि उसके गण्डस्थलों से सुगन्धित द्रव पदार्थ बहता रहता है, जिसे 'मद' कहते हैं, इसे भ्रमर अत्यधिक पसन्द करते हैं, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है। संस्कृत काव्यों में कवियों द्वारा इसकी अत्यधिक चर्चा की गयी है।

(iv) **द्व्यर्थक पद– ऋक्ष, गवय, शरभ, केसरी, कुमुदपनस** वानरों के नाम तथा भालू, नील गाय, शरभ पशु विशेष, सिंह पशुओं के नाम, कुमुद पुष्प और पनस कटहल, **छायः**–शोभा। **नाग**–हाथी, नाग सर्प। **भूतिः**– रज, भस्म। **वनमाल**–वैजयन्ती माला, वनपंक्ति। **सप्तपत्र–स्यन्दोपेतः**– सात घोड़ों से युक्त रथ, सप्तपर्ण तथा तिनिश नामक वृक्षों से युक्त। **गुहः**– कार्तिकेय, गुफा। **शिवा**– पार्वती, सियारनी। **कान्ता–रोषरसानुगत**– पत्नी के रोष एवं प्रीति से युक्त, दुर्गम, ऊषर भूमि एवं शिखरों से युक्त। **समदन**–काम से युक्त, मदन नामक वृक्ष से युक्त। **मल्लिकार्जुन**– मल्लिकार्जुन नामक शिवलिंग, मल्लिका नामक लता

तथा अर्जुन नामक वृक्ष। **प्रियंगुश्यामा**– प्रियंगुश्यामा नामक रानी, प्रियंगु नामक वृक्ष तथा श्यामा नामक लता। **धात्रेधृतिः**–धाय की गोद, पृथ्वी द्वारा धारण किया। **पाटलि**–पाटल पत्ते, लालिमा युक्त। **बहुलता-गहनः**–घने अन्धकार से युक्त, बहुत सी लताओं से व्याप्त। **शिखण्डी**-मोर, शिखण्डी महाभारत का पात्र। **तनुः**–शरीर, पंख। **मल्लनाग**-मतवाले हाथी, महर्षि वात्स्यायन। **शम्बरकुल**– शम्बर नामक मृगों का समूह, शम्बर वंश।

(v) विन्ध्यपर्वत के सूक्ष्म वर्णन में कवि की आलंकारिक दृष्टि की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही नरवाहन दत्त, शिखण्डी, भीष्म कर्ण आदि के नामोल्लेख से पौराणिक एवं महाभारतीय शास्त्रीय ज्ञान भी व्यक्त हुआ है।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि फिर से कहते हैं कि–

(35) **गैरिकव्याजादुपरिरविरथमार्गमार्गणार्थमिवारुणेनोपास्यमानः, शिखरगतसूर्यचन्द्रमस्तया विस्तारितलोचनोऽगस्त्यमार्गमुद्वीक्षमाणः, कुलिशक्षतरन्ध्रस्रस्तान्त्रजाल इव जरदजगरभोगैः, कुम्भकर्ण इव दन्तान्तरालगतैर्वानरव्यूहैः, पिण्डालक्तकरागपल्लवितपदपंक्तिसूचितसंचारशचीपति-पुरवारविलासिनी सङ्केतकेतकीमण्डपः, अकुलीनोऽपि सद्वंशभूषितः, दर्शिताभयोऽपि मृत्युफलदायी, सप्रस्थोऽप्यपरिमाणः, सनदोऽपि निश्शब्दः, भीमोऽपि कीचकसुहृत्, पिहिताम्बरोऽपि विलसदंशुकः, विन्ध्यो नाम गिरिरदृश्यत।**

पदच्छेद– गैरिक–व्याजाद् उपरि–रवि–रथ–मार्ग–मार्गण–अर्थम् इव अरुणेन उपास्यमानः, शिखर–गत–सूर्य–चन्द्रमस्तया विस्तारित-लोचनःअगस्त्य–मार्गम् उद्वीक्षमाणः, कुलिश–क्षत–रन्ध्र–स्रस्त–अन्त्रजालः इव जरदजगरभोगैः, कुम्भकर्णः इव दन्त–अन्तराल–गतैः वानर–व्यूहैः पिण्ड–आलक्तक–राग–पल्लवित–पद–पंक्ति–सूचित–संचार–शचीपति-पुर–वार–विलासिनी सङ्केत–केतकी–मण्डपः, अकुलीनः अपि सद्वंश-

भूषितः, दर्शित–अभयः अपि मृत्यु–फलदायी, सप्रस्थः अपि अपरिमाणः, सनदः अपि निश्शब्दः, भीमः अपि कीचक–सुहृत्, पिहित–अम्बरः अपि विलसद् अंशुकः, विन्ध्यः नाम गिरिः अदृश्यत।

अनुवाद– जो गेरु के व्याज से मानो सूर्य के रथ के लिए मार्ग खोजने के लिए अरुण द्वारा उपासना किया जा रहा हो तथा शिखर पर स्थित सूर्य और चन्द्रमा से युक्त होने से जो मानो नेत्र फैलाकर अगस्त्य के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो। बूढ़े अजगरों के शरीरों द्वारा मानो वज्रप्रहार के बिंधे हुए विवरों से बाहर निकली हुई अन्तडियों वाला हो,

जो दाँतों के बीच में फँसे हुए वानर–समूह वाले कुम्भकर्ण के समान चोटियों के बीच में विद्यमान वानरसमूह से भरा हुआ हो, जो पिण्ड के आकार के यावकरस की लालिमा से सुशोभित पैरों के चिह्नों से सूचित हो रहे विचरण करने वाली इन्द्रपुरी की अप्सराओं के संकेत का स्थान बने हुए केतकी के मण्डपों से युक्त था, जो श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न न होने वाला होते हुए भी उत्तम वंश से सुशोभित था(विरोध), वास्तव में वह अत्यधिक ऊँचा होते हुए भी वह श्रेष्ठ प्रकार के बाँसों से सम्पन्न था। (परिहार) जो अभय दिखाने वाला होते हुए भी मृत्युरूपी फल को प्रदान करने वाला था(विरोध), वस्तुतः वह हरीतकी को प्रदर्शित करने वाला और केले के फलों को प्रदान करने वाला था (परिहार)।

जो परिणाम विशेष से युक्त होते हुए भी परिणामरहित था (विरोध), वास्तव में वह शिखरों से युक्त तथा विशाल था(परिहार)। जो ध्वनि से युक्त होते हुए भी शब्दों से शून्य था(विरोध), वस्तुतः वह शोण नाम के विशाल नद से युक्त होते हुए भी निर्जन होने से निःशब्द था (परिहार), जो भीम होते हुए भी कीचक का मित्र था(विरोध), वास्तव में वह अत्यधिक भयंकर तथा बाँस के वृक्षों से भरा हुआ था(परिहार)। जो दिगम्बर होते हुए भी वस्त्रों से सुशोभित था(विरोध)। वस्तुतः वह

पर्वत आकाश को ढ़कने वाला तथा सूर्य के चारों ओर फैली हुई किरणों वाला था(परिहार)। इसप्रकार की विशेषताओं वाला विन्ध्य नामक पर्वत, उन दोनों के द्वारा देखा गया।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत अंश के आरम्भ में कवि ने उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों के माध्यम से विन्ध्यपर्वत का वर्णन किया है। तदनुसार–

वह विन्ध्याचल गेरु अर्थात् लाल रंग के पत्थर विशेष के बहाने से मानो सूर्य के रथ का मार्ग खोजने में लगे हुए सूर्य के सारथि अरुण के द्वारा उपासना किया जा रहा हो (उत्प्रेक्षा)। अपने शिखर पर वर्तमान सूर्य एवं चन्द्रमा इन दोनों के बहाने से मानो अपने दोनों नेत्रों को फैलाकर महर्षि अगस्त्य[1] के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो (उत्प्रेक्षा)। इसीप्रकार इधर–उधर पड़े हुए विशाल शरीर वाले बूढ़े अजगरों के बहाने से मानो इन्द्र[2] के वज्र के प्रहार से बींध दिए गए विवरों के कारण बाहर की ओर निकली हुई आँतों वाला हो(उत्प्रेक्षा)। दाँतों में फँसे हुए वानरों के समूह वाले कुम्भकर्ण[3] नामक राक्षस के समान मानो चोटियों के मध्य में विद्यमान वानरों के समूह से व्याप्त था (उपमा, उत्प्रेक्षा), जो विन्ध्याचल मानो यावक रस की लालिमा से सुशोभित पैरों के चिह्नों से पता चल रहे, विचरण करने वाली इन्द्रपुरी की अप्सराओं के संकेतस्थान रूप में बने हुए केतकी के मण्डपों से सम्पन्न था(उत्प्रेक्षा)।

इसके बाद कवि विरोधाभास के माध्यम से विन्ध्याचल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

जो पर्वत उत्तम कुल में पैदा न होने वाला होते हुए भी श्रेष्ठ कुल से सुशोभित था (विरोध), जो अत्यधिक ऊँचा होते हुए भी उत्तम श्रेणी के बाँसों से युक्त था (परिहार), वह पर्वत अभय प्रदर्शित करने

---

[1]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।
[2]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।
[3]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

वाला होते हुए भी मृत्युरूपी फल को प्रदान करने वाला था(विरोध), वह पर्वत वास्तव में हरीतकी वृक्ष को प्रदर्शित करने वाला एवं केले के फलों को प्रदान करने वाला था (परिहार), जो परिणाम विशेष से युक्त होते हुए भी परिणाम से पूर्णतया रहित था(विरोध), वह पर्वत वस्तुतः अनेक शिखरों से युक्त एवं विशाल आकार से सम्पन्न था(परिहार), जो ध्वनियुक्त होते हुए भी शब्दशून्य था(विरोध), जो पर्वत वास्तव में शोण नाम के नद[1] से युक्त एवं निर्जन होने के कारण सभीप्रकार के मानव शब्दों से शून्य (निःशब्द) था (परिहार), जो भीम होते हुए भी कीचक का मित्र था (विरोध), जो वस्तुतः देखने में डरावना एवं कीचक नाम के बाँसों से सम्पन्न था(परिहार)। वह पर्वत वस्त्रहीन होते हुए भी वस्त्रों से सुशोभित था(विरोध), जो वास्तव में विशाल आकाश को ढ़क देने वाला एवं चारों ओर प्रसारित होती हुई सूर्य की किरणों से व्याप्त था।

इसप्रकार की विशेषताओं से युक्त विन्ध्य नाम के उस पर्वत को उन दोनों अर्थात् कन्दर्पकेतु तथा उसके मित्र मकरन्द ने देखा।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यांश में उपमा, श्लेष, विरोधाभास एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(ii) ' भीम व कीचक' के आख्यान के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **अकुलीन**–श्रेष्ठ कुल से रहित, अत्यन्त ऊँचा। **सद्वंश**–श्रेष्ठ बाँस, उत्कृष्ट कुल। **अभय**–भयरहित, हरीतकी वृक्ष। **मृत्यु**–मौत, कदली। **सप्रस्थ**–शृंगयुक्त, प्रस्थयुक्त। **भीम**– भयंकर, पाण्डु पुत्र। **अपरिणाम**–बिना परिणाम, अत्यन्त विशाल। **कीचक**–व्यक्ति विशेष, बाँस। **पिहित**– रहित, आच्छादित। **अम्बर**– आकाश, वस्त्र। **अंशुक**–वस्त्र, किरणें।

अवतरणिका– इसी क्रम में फिर से उपमा के माध्यम से विन्ध्य पर्वत का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

---

[1]. नदी से भी आकार में अधिक फैलाव वाला, अथाह जल–राशि से सम्पन्न ही 'नद' कहलाता है।

(36) **यश्च प्रवृद्धगुल्मतया रोगीव दृश्यमान बहुधातुविकारः, साधुरिव सानुग्रहप्रचारप्रकटितमहिमा, मीमांसान्याय इव पिहितदिगम्बरदर्शनः, यश्च हरिवंशैरिव पुष्कराक्षप्रादुर्भावरमणीयैः, राशिभिरिव मीनमकरकुलीर मिथुनसङ्गतैः, करणैरिव शकुनिनागभद्रबालवकुलोपेतैः, देवखातैरुपशोभितान्तः। यश्च छन्दोविचितिरिव कुसुम विचित्राभिः, वंशपत्रपतिताभिः सुकुमाराभिः पुष्पिताभिः प्रहर्षिणीभिः शिखरिणीभिर्लताभिर्दर्शितानेकवृतविलासः।**

पदच्छेद– यः च प्रवृद्ध–गुल्मतया रोगी इव दृश्यमान बहु धातु-विकारः, साधुः इव सानुग्रह–प्रचार–प्रकटित–महिमा, मीमांसा– न्याय इव पिहित–दिगम्बर–दर्शनः, यः च हरिवंशैः इव पुष्कराक्ष– प्रादुर्भाव-रमणीयैः, राशिभिः इव मीन–मकर–कुलीर–मिथुन–सङ्गतैः[1], करणैः इव शकुनि–नागभद्र–बालव–कुल–उपेतैः,देवखातैः उप–शोभित– अन्तः। यः च छन्दोविचितिः इव कुसुम–विचित्राभिः, वंश–पत्र–पतिताभिः सुकुमाराभिः पुष्पिताभिः प्रहर्षिणीभिः शिखरिणीभिः लताभिः दर्शित-अनेक–वृत–विलासः।

अनुवाद– जो अनेक प्रकार के वात–पित्त आदि धातु–विकारों को प्रदर्शित करने वाले बढ़े हुए 'गुल्म' नामक रोग युक्त रोगी के समान[2] बढ़े हुए गुल्मों से दिखायी देते हुए अनेक गेरु आदि धातुओं के कणों से युक्त था। दयापूर्वक व्यवहार द्वारा अपनी महिमा को प्रदर्शित करने वाले सज्जन व्यक्ति के समान शिखरों पर सूर्य आदि ग्रह के संचरण से अपनी ऊँचाई को प्रदर्शित कर रहा था।

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का खण्डन करने वाले मीमांसा शास्त्र के समान, ऊँचाई के कारण दिशाओं एवं आकाश को छिपाने वाला

---

1. प्रस्तुत अंश से महाकवि का जीवविज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।
2. इस गद्यांश द्वारा महाकवि सुबन्धु के आयुर्वेद विषयक गम्भीर ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है।

था। वह विन्ध्याचल उन प्राकृतिक सरोवरों से सुशोभित प्रान्तभाग वाला था, जो कृष्ण की उत्पत्ति के वर्णन से रमणीय, हरिवंश पुराण के समान कमल के बीजों की उत्पत्ति के वर्णन से सुन्दर था, जो मीन, मकर, कुम्भ आदि से युक्त मेषादि राशियों के समान मछलियों, मगरमच्छों तथा केकड़ों के युगल से समन्वित था, जो शकुनि, नाग, भद्र तथा बालबकुल से युक्त था और जो पर्वत कुसुमविचित्रा, वंशस्थपतिता, पुष्पिताग्रा, सुकुमारा, प्रहर्षिणी, शिखरिणी आदि अनेक प्रकार के छन्दों के विलास को प्रदर्शित करने वाले छन्दःशास्त्र के समान अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, समूह पर फैली हुई, कोमल, पुष्पित तथा सभी देखने वालों के मनों को हर्षित करने वाली, सुरक्षित आगे के भागों वाली, लताओं से अनेक प्रकार के विलासों से युक्त था।

'चन्द्रिका'– वह विन्ध्याचल अत्यधिक बढ़े हुए 'गुल्म' नामक रोग विशेष द्वारा दृष्टिगोचर होने वाले वायु, कफ आदि अनेक धातु सम्बन्धी विकारों से ग्रसित रोगी व्यक्ति के समान वृद्धि को प्राप्त हुए पुष्प गुच्छों (गुल्मों) जैसे दिखायी पड़ने वाले गेरु आदि अनेक धातुओं के कणों से भरा पड़ा था।

इसके अतिरिक्त जो दयापूर्वक व्यवहार द्वारा अपनी महिमा को प्रदर्शित करने वाले सज्जन व्यक्ति के समान, अपने शिखरों पर सूर्य आदि दूसरे ग्रहों के विचरण करने से अपनी ऊँचाइयों को दिखा रहा था, जो पर्वत दिगम्बर नामक जैन सम्प्रदाय के दर्शन का खण्डन करने वाले दूसरे मीमांसा–दर्शन के समान ऊँचाइयों के कारण वास्तव में सभी आठों दिशाओं और आकाश को छिपा देने वाला था।

इसीप्रकार वह विन्ध्याचल वहाँ स्थित प्राकृतिक तालाबों से युक्त प्रान्तभाग वाला था, जो कमल के समान नेत्र वाले भगवान् श्री कृष्ण के जन्म के वर्णन से सुन्दर हरिवंश पुराण[1] के समान, कमल के

---

[1]. महाकवि का पौराणिक ज्ञान अभिव्यंजित हुआ है।

बीजों की उत्पत्ति के वर्णनों से युक्त था, जो मीन, मकर, कुम्भ, मेष आदि राशियों[1] से युक्त ज्योतिषशास्त्र के समान मछलियों, घड़ियालों, केकड़ों के जोड़ों से सम्पन्न था, जो शकुनि, नाग, भद्र, बाल इत्यादि करणों वाले ज्योतिष शास्त्र के समान[2] पक्षी, हाथी, सर्प, नागर मोथा एवं बकुल के छोटे पौधों से युक्त था।

इसीप्रकार वह विन्ध्यपर्वत वस्तुतः कुसुमविचित्रा, वंशस्थपतिता, पुष्पिताग्रा, सुकुमारा, प्रहर्षिणी एवं शिखरिणी आदि अनेक प्रकार के छन्दों के सौन्दर्य को प्रदर्शित करने वाले, छन्दःशास्त्र के समान पुष्पों से सुशोभित था। इसके अलावा वह समूहरूप में चारों ओर फैली हुई, अत्यधिक कोमल पुष्पित दर्शकों के मन को विशेषरूप से प्रसन्न करने वाली, सुरक्षित आगे के भागों से युक्त, लताओं के माध्यम से अनेक प्रकार की शोभा को प्रदर्शित कर रहा था।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि द्वारा कुसुमविचित्रा, वंशस्थपतिता, पुष्पिताग्रा, सुकुमारा, प्रहर्षिणी एवं शिखरिणी छन्दों का उल्लेख करने के कारण उनका छन्दशास्त्र विषयक गहनज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, इनमें सुकुमारा छन्द सम्भवतः बाद में कवियों द्वारा कम ही प्रयोग किया गया।

(ii) **द्व्यर्थक पद**–**गुल्म**– रोग, स्तबक। **धातुविकार**–वात, पित्त, कफ आदि धातुविकार, गेरु आदि धातुओं की उत्पत्ति। **सानुग्रह**– दयापूर्ण, ग्रहों का संचार से युक्त। **पिहितदिगम्बरदर्शन**– दिगम्बर जैन दर्शन को परास्त करने वाला, दिशाओं के दर्शन को छिपाने वाला। **पुष्कराक्ष**– श्रीकृष्ण, कमल के बीज। **मीनमकरकुलीरमिथुन**– मीन, मकर, कर्क, मिथुन आदि राशि विशेष, मछली, मगरमच्छ, केकड़े के युगल आदि जीव विशेष। **शकुनिनागभद्रबालु**– ज्योतिष के करण विशेष, पक्षी, सर्प, नागरमोथा तथा बालव कुल विशेष। **कुसुमविचित्र**–

---

1. ज्योतिष शास्त्र की राशियों के उल्लेख के कारण कवि का ज्योतिष शास्त्रीय गहन ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।
2. ज्योतिष शास्त्र में ही योग, करण आदि का प्रयोग होता है, इसलिए यह भी कवि की ज्योतिष शास्त्रीय उत्कृष्ट प्रतिभा का द्योतक है।

छन्द विशेष, विचित्र प्रकार के पुष्प। **वंशपत्रपतित**–छन्द विशेष, बाँस के पत्तों पर गिरी हुई। **पुष्पिताभिः–** पुष्पिताग्रा छन्द विशेष, खिले हुए पुष्पों वाली, **प्रहर्षिणिभिः–** छन्द विशेष, देखने वालों के मन को प्रसन्न करने वाली, **शिखरिणिभिः–** छन्द विशेष, चोटियों तक पहुँची हुई। **वृत्त–** छन्द, प्रकार।

(iii) यद्यपि यहाँ उल्लिखित छन्दों का महाकवि ने इस काव्य में प्रयोग नहीं किया है। पुनरपि नामोल्लेख मात्र से भी इनका परिचय प्राप्त करना यहाँ उचित प्रतीत होता है–

(क) **कुसुमविचित्रा–** इस छन्द के प्रत्येक पाद में नगण, यगण, नगण, यगण के क्रम से कुल बारह वर्ण होते हैं।[1]

(ख) **वंशस्थपतिता–** इसमें क्रमशः भगण, रगण, नगण, भगण, नगण तथा लघु, गुरु का प्रयोग होता है तथा दस और सात वर्णों पर यति होती है।[2]

(ग) **पुष्पिताग्रा–** इस छन्द के अन्तर्गत विषम पादों में दो नगण के बाद, एक रगण तथा एक यगण हो एवं सम पादों में एक नगण, दो जगण, एक रगण तथा अन्त में एक गुरु का प्रयोग किया जाता है।[3]

(घ) **प्रहर्षिणी–** इस छन्द में क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण तथा अन्त में एक गुरु होता है एवं तीन और दस वर्णों के बाद यति होती है।[4]

(ङ) **शिखरिणी–** इसमें यगण, मगण, सगण, भगण तथा अन्त में लघु व गुरु के क्रम से कुल सत्रह वर्ण होते हैं और छः और ग्यारह पर यति होती है।[5]

---

1. नयसहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा। वृत्तरत्नाकर–3/53।
2. दिङ्मुनि वंशपत्रपतितं भरनभनलगैः। वृत्तरत्नाकर–3/92।
3. अयुजि नयुगरेफतो यकारो। युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।
वृत्तरत्नाकर–4/10।
4. म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्। वृत्तरत्नाकर–3/71।
5. रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी। वृत्तरत्नाकर–3/90।

(च) **सुकुमार–** इस छन्द का उल्लेख वृत्तरत्नाकर छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ तथा कोषादि में भी नहीं किया गया है।

(iv) 'रोगीव' इत्यादि पदों में उपमा एवं 'प्रवृद्धगुल्मतया' इत्यादि शब्दों में श्लेष अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(रेवावर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार विन्ध्याचल का विस्तृत वर्णन करने के बाद महाकवि उसी पर्वत में बह रही रेवा नामक नदी के सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(37) यश्च समदकलहंससारसरसितोद्भ्रान्तभाकूट-विकटकुंजकूर्चव्याधूतकमलषण्डगलितमकरन्दबिन्दुसन्दोह-सुरभितसलिलया, सायन्तनसमयमज्जत् पुलिन्दराजसुन्दरी-निम्ननाभिमण्डलपीतप्रतिहतरयसलिलया, मदमुखरराज-हंसकुलकोलाहलमुखरितकूलपुलिनया, तटनिकटस्थितमत्त-मातङ्गगण्डस्थलविगलन्मदधाराबिन्दुप्रकरस्तबकितसलि-लया, तीरप्ररूढकेतकीकाननपतितधूलिनिकुरम्बसंजातसित-सैकतसुखोपविष्टतरुणसुरमिथुननिधुवनलीलापरिमलसाक्षि-कूलोपवनया,तटावटविघटिताम्भोजषण्डमण्डपावस्थितजल-देवतावगाह्यमानपयसा, तीरप्ररूढवेतसलताभ्यन्तरलीनदा-त्यूहव्यूहमदकलकुहकेलीकुहकुहारावकौतुकाकृष्टसुरमिथुन-संस्तूयमानकूलोपवनोपभोगया, उपकूलसंजातनलनिकुंज-पुंजितकुलायकुक्कुटघटाघटितघूत्कारभैरवतीरयाऽऽतपसेवा-समुत्सुकजलमानुषीमृदितसुकुमारतरपुलिनया, उपवनपवना-न्दोलिततरलतरतरंगया,नलिनीनिकुंजपुंजनिविष्टदुष्टबकोट-ककुटुम्बिनीनिरीक्ष्यमाणवृद्धशफरया पोतधानलब्धकोयष्टिक-स्तम्भनभीमवेतसवनलतया,तरंगमालासन्तरदुद्दण्डबालदर्शन-धावदतिचपलराजिलराजिराजितोपकूलसलिलया, खंजरीट-मिथुननिधुवनदर्शनोपजातनिधिग्रहणकौतुककिरातशतनख-

न्यमानस्थपुटिततीरया, क्रुद्धयेव दर्शितमुखभङ्गया, मत्तयेव स्खलद्गत्या, दिनारम्भलक्ष्म्येव वर्धमानवेलया, भारतसमर–भूम्येव नृत्यत्कबन्धया, प्रावृषेव विजृम्भमाणशतपत्र पिहित–विषधरया, धनकामयेव कृतभूभृत्सेवया, रेवया प्रियतमयेव–प्रसारित तरङ्गहस्तयोपगूढः। यश्च–

पदच्छेद– यः च समद–कलहंस–सारस–रसित–उद्भ्रान्त–भाकूट–विकट–कुंज–कूर्च–व्याधूत–कमल–षण्ड–गलित–मकरन्द–बिन्दु –सन्दोह–सुरभित–सलिलया, सायन्तन–समय–मज्जत् पुलिन्दराज–सुन्दरी–निम्न–नाभि–मण्डल–पीत–प्रतिहत–रय–सलिलया, मद–मुखर–राजहंस–कुल–कोलाहल–मुखरित–कूल–पुलिनया, तट–निकट–स्थित–मत्त–मातङ्ग–गण्डस्थल–विगलत् मदधारा–बिन्दु–प्रकर–स्तबकित–सलिलया, तीर–प्ररूढ–केतकी–कानन–पतित–धूलि–निकुरम्ब–संजात–सित–सैकत–सुख–उपविष्ट–तरुण–सुर–मिथुन–निधुवन–लीला–परिमल –साक्षि–कूल–उपवनया,तटावट–विघटित–अम्भोज–षण्ड–मण्डप–अव–स्थित–जलदेवता–अवगाह्यमान–पयसा, तीर–प्ररूढ–वेतस–लता–अभ्यन्तर–लीन–दात्यूह–व्यूह–मद–कल–कुहू–केली–कुहू–कुहू–आराव–कौतुक–आकृष्ट–सुर–मिथुन–संस्तूयमान–कूल–उपवन–उपभोगया,उप–कूल–संजात–नल–निकुंज–पुंजित–कुलाय कुक्कुट–घटा–घटित–घूत्कार–भैरव–तीरया आतप–सेवा–समुत्सुक–जल–मानुषी–मृदित–सुकुमारतर–पुलिनया,उपवन–पवन–आन्दोलित–तरलतर–तरंगया,नलिनी –निकुंज– पुंज–निविष्ट–दुष्ट–बकोटक–कुटुम्बिनी–निरीक्ष्यमाण– वृद्ध–शफरया पोत–धान–लब्ध–कोयष्टिक–स्तम्भन–भीम–वेतस–वन–लतया, तरंग–माला–सन्तरद् उद्दण्ड–बाल–दर्शन–धावत् अति– चपल–राजिल– राजि–राजित–उपकूल–सलिलया, खंजरीट–मिथुन–निधुवन–दर्शन– उपजात–निधि–ग्रहण–कौतुक–किरात–शत–नख–न्यमानस्थ–पुटित–तीरया, क्रुद्धया इव दर्शित–मुख–भङ्गया, मत्तया इव स्खलद्–गत्या, दिन–आरम्भ–लक्ष्म्या इव वर्धमान–वेलया, भारत–समर–भूम्या इव

नृत्यत् कबन्धया, प्रावृषा इव विजृम्भमाण–शत–पत्र–पिहित–विषधरया, धन–कामया इव कृत–भूभृत्–सेवया, रेवया प्रियतमया इव प्रसारित-तरङ्ग–हस्तया उपगूढः। यः च–

अनुवाद– और जो पर्वत तरंगरूपी भुजाओं(रूपक) को फैलायी हुई प्रियतमा के समान रेवा नदी से आवेष्टित था, जिसका जल मदयुक्त कलहंस एवं सारसों के शब्दों से चकित मछलियों के विशाल मुख–रोमों के स्पर्श द्वारा हिलते हुए कमल के समूहों से घिरे हुए मकरन्द बिन्दुओं के समूह से सुगन्धित हो रहा था, जो सायंकाल के समय स्नान करती हुईं शबरराज की सुन्दरियों के गहरे नाभिमण्डल में भर जाने के कारण कुण्ठित वेग वाले जल से युक्त थी।

जो नदी मदमस्त राजहंसों के समूह के कोलाहल से शब्द युक्त रेतीले तट वाली थी, जो तट के ही पास में स्थित मदोन्मत्त हाथियों के गण्डस्थलों से निकलने वाले मदजल के कणों के समूह से विविध वर्णों के जल वाली थी, जो किनारे पर स्थित केतकी वनों से गिरे हुए पुष्पों के परागकणों के समूह से श्वेत हुए बालुओं पर आराम से बैठे हुए, तरुण देवयुगल की सुरतक्रीड़ा के साक्षीरूप उपवनों से युक्त थी।

जो तटवर्ती गर्तों में खिले हुए कमलसमूहों के मण्डप में विद्यमान जलदेवियों द्वारा प्रवेश किए जाते हुए जल से युक्त थी। इसीप्रकार जो तट पर उगे हुए वेतस् लताओं के मध्य छिपे हुए काले कौओं (कोयल) के समूह की अव्यक्त तथा मधुर 'कुहकुह' ध्वनि के कौतूहल से आकर्षित देवयुगल द्वारा प्रशंसा की गयी तटवर्ती उपवन प्रदेश वाली थी।[1]

जो किनारे पर उत्पन्न 'नल' नामक लता के झुरमुटों में समूहरूप में निर्मित घोसलों के कुक्कुट समूह से उत्पन्न घूत्कार ध्वनि

---

[1]. ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता महाकवि की भाषा की महती विशेषता रही है, प्रस्तुत अंश इसका निदर्शन कहा जा सकता है।

के कारण भयंकर किनारों से युक्त थी, जो धूप का सेवन करने के लिए उत्कण्ठित जलदेवियों की स्त्रियों द्वारा मर्दन किए गए अत्यधिक कोमल किनारों वाली थी, जो उस उपवन के वायु से आन्दोलित अत्यन्त चंचल तरंगों वाली थी, जो कमलिनियों के झुरमुटों के समूह में बैठी हुई, दुष्ट बगुलियों के द्वारा देखी जाती हुई वृद्ध मछलियों से युक्त थी।

जहाँ पर छोटी–छोटी मछलियों को पकड़ने के लिए कोयष्टि नाम पक्षी, विशेष ध्यानपूर्वक बैठे हुए थे, इसके कारण जिसका वेतस् लताओं वाला तट भयंकर प्रतीत हो रहा था, जिसका तट जल मालाओं पर तैरते हुए उद्दण्ड बाल नामक मछलियों को देखकर दौड़ते हुई चंचल राजिल नामक सर्प विशेषों के समूह से सुशोभित हो रहा था। इसके अतिरिक्त वह खंजन नामक पक्षी विशेष के युगल की रतिक्रीड़ा को देखकर, निधि को प्राप्त करने की उत्सुकता से अनेक किरातों द्वारा खोदे जाने से ऊँचे–नीचे तट वाली थी।

जो मुख पर क्रुद्धभाव को प्रदर्शित करती हुई स्त्री के समान अपने उद्गमस्थल तथा लहरों को प्रदर्शित कर रही थी।(उपमा) स्खलित गति वाली मदमस्त स्त्री के समान (उपमा) जिसकी गति कुण्ठित हो रही थी, जो दिन के विस्तार को बढ़ाने वाली प्रातःकालीन शोभा के समान(उपमा) बढ़े हुए तटप्रदेश से युक्त थी।

जो तडपते हुए घोड़ों वाली महाभारत की युद्धभूमि के समान (उपमा) तरंगित जल वाली थी, निकलते हुए दार्वाघाट नामक पक्षी विशेषों द्वारा आच्छादित मेघों से युक्त वर्षाकाल के समान (उपमा) खिले हुए कमलों से आच्छादित जलों से युक्त थी, जो मानो धन की कामना से राजा की सेवा करने वाली स्त्री के समान (उपमा, उत्प्रेक्षा) पर्वत की सेवा कर रही थी।

इसप्रकार की विशेषताओं से युक्त रेवा नदी उस विन्ध्य पर्वत की अपनी तरंगरूपी भुजाओं को पूर्णरूप से फैलाकर मानो उसका प्रगाढ़ आलिंगन कर रही थी (रूपक, उत्प्रेक्षा) **और जो....**

'चन्द्रिका'– इस विन्ध्याचल के चारों ओर बहने वाली प्रियतमा के समान शिप्रा (रेवा) नदी ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो अपनी तरंग रूपी भुजाओं को फैलाए हुए अपने प्रियतम विन्ध्य का आलिंगन कर रही हो। यह नदी मदमस्त कलहंसों तथा सारसों के शब्दों के माध्यम से चकित 'भ्राकूट' नाम के मत्स्य विशेष के मुख पर स्थित बड़े-बड़े रोमों द्वारा कँपाए जाते हुए कमलों की नाल से गिरते हुए पराग के कणों के समूह से सुगन्धित जल वाली थी।

इस नदी में सायंकाल में स्नान करती हुई शबरराज की सुन्दरियों के गहरे नाभिमण्डल में भर जाने के कारण जलों का वेग मानो किंचित् रुक सा गया था। इस नदी का तट ध्वनि करते हुए मदमस्त राजहंसों के झुण्ड के कोलाहल से मुखरित था। यह नदी अपने तट के पास में ही स्थित मदमस्त हाथियों के गण्डस्थलों से निकलने वाले मदजल के कणों के समूह को मानो गुच्छों के समान धारण कर रही थी।

यह नदी अपने किनारे पर विद्यमान केतकी के वनों से गिरे हुए पुष्पों के पराग के समूह से शुभ्र हुए बालुओं पर आराम से विराजमान युवक देवों के युगलों की सुरतक्रीड़ा के साक्षीरूप तटवर्ती उपवनों से युक्त थी अर्थात् यहाँ आकर देवयुगल केलिक्रीड़ाएँ करते थे। यह नदी के किनारों पर स्थित गड्ढों में खिले हुए कमल के दण्डरूपी मण्डप में विराजमान जल–देवियों द्वारा प्रवेश किए जाते हुए जलों वाली थी।

इसके अतिरिक्त यह नदी तट पर स्थित वेंत की लताओं के बीच में छिपे हुए काले कौओं अर्थात् कोयलों के समूह की अव्यक्त एवं मधुर कुहुकुहु की ध्वनि के कारण कौतूहलवश आकर्षित होने वाले देव

युगलों द्वारा प्रशंसा किए गए तटप्रदेशों से युक्त थी। यह नदी तटों पर उत्पन्न हुए 'नल' नाम की लता के झुरमुटों में समूहरूप में बने हुए घोसलों के कुक्कुटों के झुण्डों से उत्पन्न होने वाली 'घू,घू' की ध्वनि के कारण भयंकर किनारों वाली थी।

इसीप्रकार इस नदी के किनारे धूप का सेवन करने के लिए आए हुए जल–मानुषों की स्त्रियों के इधर–उधर भ्रमण के कारण मर्दित होने से अत्यधिक कोमल हो गए थे। उपवनों की वायु से अत्यधिक कंपित होने के कारण इस नदी की लहरें अत्यन्त चंचल थीं। इस नदी में कमलिनियों के झुरमुटों में झुण्डरूप में बैठी हुई दुष्ट बगुलियों को देखती हुई मछलियाँ विद्यमान थीं। यह नदी छोटी–छोटी मछलियों को पकड़ने के लालची 'कोयष्टि' नाम के पक्षी विशेष के एक साथ इकट्ठे होने से भयंकर प्रतीत होने वाली, वेंत की लताओं से युक्त थी।

इस नदी के तट के जल, लहरों की पंक्ति में तैरते हुए उद्दण्ड 'वाल' नामक मत्स्य विशेष को देखकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ती हुई अत्यधिक चंचल 'राजिल' नाम के सर्प विशेषों के समूहों से सुशोभित थे। इस नदी के तट खंजन नाम के पक्षियों के युगलों की सुरतलीला को देखने से उत्पन्न होने वाली निधि को प्राप्त करने की उत्सुकता के कारण अनेक किरातों द्वारा खोदे जाने से ऊँचे–नीचे हो गये थे। यह नदी मानो क्रोध की भंगिमा को मुख पर प्रदर्शित करने वाली स्त्री के समान, अपने उद्‌गम स्थल तथा लहरों को प्रदर्शित कर रही थी।

इसके अलावा मद से मस्त लड़खड़ाती हुई स्त्री के समान, जो कुण्ठित प्रवाह वाली थी अर्थात् इसका प्रवाह अनेक स्थानों पर पत्थरों के कारण अवरुद्ध सा रहा था, जो मानो लड़खडाता रहा हो, वह नदी दिन के मान अर्थात् विस्तार को बढ़ाने वाली प्रातःकाल की शोभा के

समान फैले हुए तट प्रदेश वाली थी, जो नृत्य करते हुए कबन्धों वाली महाभारत की भूमि के समान नाचते हुए तरंगित जलों से युक्त थी।[1]

बाहर की ओर निकलते हुए 'दार्वाघाट' नाम के पक्षी विशेषों द्वारा मेघों को ढँक देने वाले वर्षाकाल के समान यह नदी खिले हुए कमलों के जलाशयों से सम्पन्न थी। यह रेवा नदी धन प्राप्त करने की इच्छा से राजा की सेवा करने वाली स्त्री के समान मानो इस पर्वत रूपी राजा की सेवा कर रही थी।[2]

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **मुखभंगया**– मुख की भंगिमा, उद्गम स्थल तथा लहरें। **स्खलद्गत्या**– लड़खड़ाती गति से, कुण्ठित गति से। **कबन्ध**– सिर कटा धड़, जल। **भूभृत्**– राजा, पर्वत।

(ii) विन्ध्य पर्वत के चारों ओर प्रवाहित होने वाली रेवा नदी की तरंगों में फैलाए हुए दोनों हाथों का आरोप करके उसके मानवीकरण द्वारा पर्वतरूपी नायक का आलिंगन करना, कवि की मनोहारिणी कल्पनाशक्ति का द्योतक रहा है।

(iii) इसीप्रकार प्रस्तुत गद्यखण्ड के प्रत्येक वाक्य में कवि की सुन्दर मनोहारिणी कल्पना दर्शनीय एवं सहृदय को आह्लादित करने वाली है।

(iv) पद–पद पर अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा एवं श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य भी प्रशंसनीय कहा जा सकता है।

अवतरणिका– इसप्रकार विन्ध्य पर्वत में स्थित रेवा नदी का विस्तार से वर्णन करने के बाद, महाकवि पर्वत की अन्य महत्त्वपूर्ण पौराणिक विशेषता के विषय में कहते हुए इसका मानवीकरण करके सुन्दर कल्पना प्रस्तुत करते हैं कि–

हरिखरनखरविदारितकुम्भस्थलविकलवारणध्वानैः।
अद्यापि कुम्भसम्भवमाह्वयतीवोच्चतालभुजः।।14।

---

[1]. नदी के जलों में नर्तन की कवि कल्पना अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही है।

[2]. नदी और पर्वत दोनों का ही मानवीकरण दर्शनीय और मनोरम है।

अन्वय–(सः विन्ध्यः) उच्च–ताल–भुजः हरिहर–नखर–विदारित–कुम्भ–स्थल–विकल–वारण–ध्वानैः इव अद्य अपि कुम्भ–सम्भवम् आह्वयति।।14।।

अनुवाद– वह विन्ध्याचल ऊँची तालवृक्षरूपी भुजाओं को उठाकर, सिंह के तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण होने के कारण व्याकुल हाथियों के शब्दों द्वारा मानो आज भी महर्षि अगस्त्य को बुला रहा है।।14।।

'चन्द्रिका'– इस विन्ध्याचल पर नभस्पर्शी लम्बे–लम्बे ताल के वृक्ष विद्यमान हैं तथा मदमस्त हाथियों के मांस के लोभी पराक्रमी सिंह, मदमस्त हाथियों पर आक्रमण करके अपने तीक्ष्ण नखों से उनके गण्डस्थलों को विदीर्ण कर देते हैं, जिससे भय एवं पीड़ा के अतिरेक से वे भयंकर रूप से चिंघाड़ते हैं, इसमें कवि तलस्पर्शी सुन्दर कल्पना करता है कि– यह पर्वत अपनी वृक्षरूपी विशाल भुजाओं को फैलाकर सिंह द्वारा आक्रान्त हाथियों की चिंघाड के रूप में मानो महर्षि अगस्त्य को वापस आने के लिए पुकार रहा है।[1]

दूसरे शब्दों में, सिंह के आक्रमण से उसके तीक्ष्ण नाखूनों द्वारा विदीर्ण किए गए कपोलस्थल वाले हाथियों ने भयंकर पीड़ा के कारण दर्दनाक चिंघाड़ की है, जिसमें कवि ने विन्ध्यपर्वत के महर्षि अगस्त्य को पुकारने की कल्पना करके मानो पर्वत की स्वयं की पीड़ा को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है, क्योंकि उन्हें गए हुए भी लम्बा समय हो गया है, किन्तु वे लौटे नहीं हैं, जिसके कारण यह पर्वत अपने शिखरों को विस्तार ही नहीं दे पा रहा है।

विशेष–(i) विन्ध्याचल का मानवीकरण करते हुए कवि ने सुन्दर हृदयस्पर्शी परिकल्पना प्रस्तुत की है।

(ii) पुराणों के अनुसार महर्षि अगस्त्य की उत्पत्ति घड़े से हुई थी, इसीलिए उन्हें यहाँ 'कुम्भसम्भव' कहा गया है। (द्रष्टव्य परिशिष्ट)

---

[1]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(iii) हाथियों पर तीक्ष्णनखों वाले सिंह के आक्रमण का सुन्दर चित्रण किया गया है, जिनके चिंघाड़ने में पर्वत द्वारा अगस्त्य को पुकारने की मनभावन कल्पना की गयी है।

(iv) प्रस्तुत गद्यखण्ड में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है, लक्षण ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण के अवसर पर दिया गया है।

(v) तालवृक्षों में भुजाओं का आरोप होने से रूपक एवं मानो आह्वान (पुकारना) कर रहा है, इत्यादि में क्रियोत्प्रेक्षालंकार अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(गजोपरिसिंहाक्रमणवर्णनम्)

अवतरणिका– इसी बीच वहाँ एक सिंह ने हाथी पर आक्रमण कर दिया, उसी ओर कन्दर्पकेतु का ध्यान आकर्षित करते हुए उसका मित्र मकरन्द कहता है कि–

तत्रान्तरे मकरन्दस्तमुवाच–

पश्योदंचदवांचदंचितवपुः पूर्वार्धपश्चार्धभाक्।
स्तब्धोत्तानितपृष्ठनिष्ठितमनाग्भुग्नाग्रलाङ्गूलभृत्।।
दंष्ट्राकोटिविशंकटास्यकुहरः कुर्वन् सटामुत्कटा–
मुत्कर्णः कुरुते क्रमं करिपतौ क्रूराकृतिः केसरी।(15)

अनुवाद– इसी बीच मकरन्द उससे बोला–

अन्वय– पश्य, उदंचद् अवांचद् अंचित–वपुः पूर्वार्ध–पश्चार्ध–भाक् स्तब्ध–उत्तानित–पृष्ठ–निष्ठित–मनाक् भुग्न–अग्र–लांगूल–भृत दंष्ट्रा–कोटि–विशंकट–आस्य–कुहरः सटाम् उत्कटाम् उत्कर्णः कुर्वन् क्रूर–आकृतिः केसरी करिपतौ क्रमम् कुरुते।।15।।

अनुवाद– देखो, उठे हुए थोड़े अगले आधे भाग वाला तथा थोड़ा झुके हुए पिछले आधे भाग वाला, जिसका आगे का भाग कुछ मुड़ा हुआ है, ऐसी पूँछ से युक्त, दाँतों के अग्रभाग से भयंकर मुखरूपी विवर (गुफा) वाला, सुन्दर शरीरयुक्त यह केसरी सिंह, अपने आयालों

(केसर) **और कानों को ऊपर उठाए हुए गजराज पर आक्रमण कर रहा है।।15।।**

'चन्द्रिका'– सिंह की विशेषता है कि वह जब अपने शिकार पर आक्रमण करता है तो उसके शरीर के पीछे का आधा भाग थोड़ा झुका हुआ तथा आगे का भाग किंचित् उठा हुआ होता है और आगे के विशाल जबड़े वाले भाग को वह थोड़ा तिरछा करके शिकार की गरदन पर अपने दाँतों को गाड़ देता है। साथ ही, अपने तीखे पँजों से उस शिकार के शरीर को फाड़ डालता है। इस स्थिति में इसके कान और कन्धे के बाल अर्थात् आयाल या सटा ऊपर की ओर खड़े हो जाते हैं। कुल मिलाकर इसकी यह आकृति अत्यन्त भय प्रदान करने वाली होती है। इसी रूप में कवि के केसरी सिंह का आक्रामक चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

विशेष–(i) गर्दन पर बालों का विशाल गुच्छ, जिसे 'सटा' भी कहते हैं, उससे युक्त सिंह को 'केसरी' कहा जाता है, उसी के द्वारा विशाल गजराज पर आक्रमण का यहाँ सुन्दर चित्रण किया गया है।

(ii) शक्तिशाली गजराज पर आक्रमण का स्वाभाविक चित्रण करने के कारण 'स्वभावोक्ति[1] अलंकार' का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iii) शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध उपर्युक्त श्लोक महाकवि की चित्रात्मक शैली का सुन्दर उदाहरण है। शार्दूलविक्रीडित छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा अन्त में एक गुरु होता है और बारह व सात वर्णों पर यति होती है, जिसका लक्षण इसप्रकार है। **लक्षण**– सूर्याश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

(iv) दाँतों के आगे के भाग से भयंकर दिखायी देने वाला इसका मुख गुफा के समान विशाल दृष्टिगोचर हो रहा है, इस अभिप्राय से मुख में गुफा का आरोप करने से रूपक अलंकार।

---

[1]. स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्। काव्यप्रकाश–10/111 ।

अवतरणिका– इसके बाद पुनः महाकवि इसी हाथी पर सिंह की दूसरी अनेक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसके आक्रमण का द्वितीय सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

अपि च–

उत्कण्ठोऽयमकाण्डचण्डिमपटुः स्फारस्फुरत्केसरः,
क्रूराकारकरालवक्त्रकुहरः स्तब्धोर्ध्वलाङ्गूलभृत्,
चित्रे चापि न शक्यतेऽभिलिखितुं सर्वांगसंकोचभाक्,
फीटकुर्वद् गिरिकुंजकुंजरबृहत्कुम्भस्थलस्थो हरिः ।(16)

और भी,

अन्वय–उत्कण्ठः, अकाण्ड–चण्डिम–पटुः, स्फार–स्फुरत्–केसरः, क्रूर–आकार–कराल–वक्त्र–कुहरः, स्तब्ध–ऊर्ध्व–लाङ्गूल–भृत्, सर्व–अंग–संकोच–भाक् अयम् हरिः, फीट–कुर्वत्, गिरि–कुंज–कुंजर–बृहत्–कुम्भस्थल–स्थः चित्रे अपि अभि–लिखितुम् न शक्यते ।।16।।

अनुवाद– ऊपर उठी हुई गर्दन वाला, बिना कारण स्वाभाविक उग्रता में कुशल, अत्यधिक चमकदार आयालों (केसर) **से युक्त, भयंकर तथा विशाल मुखरूपी गुफा** (कुहरः) **वाला, स्थिर तथा ऊपर उठी हुई पूँछ को धारण करने वाला, अपने सभी अंगों को सिकोड़ लेने वाला, यह केसरी सिंह, चिंघाडते हुए** (फीटकुर्वत्), **पर्वत की कन्दराओं में गजराज के विशाल मस्तक पर बैठा हुआ, चित्र में भी अभिचित्रित नहीं किया जा सकता है।।16।।**

'चन्द्रिका'– आक्रामक केसरी सिंह के स्वरूप वर्णन की ही कुछ दूसरी विशेषताओं का उल्लेख यहाँ किया गया है, जिनमें बिना कारण के भी अपने स्वभाव की उग्रता को प्रदर्शित करने में कुशलता, इसके बालों अर्थात् आयालों का अत्यधिक चमकदार होना, भय पैदा करने वाले दाँतों के कारण फाड़े हुए मुख की विशालता एवं भयंकरता का कथन गुफा के माध्यम से करना, विशेषरूप से आक्रमण की स्थिति में पूँछ का स्थिर तथा ऊपर की ओर खड़ा रहना आदि, शेष स्पष्ट है।

विशेष–(i) वस्तुतः महाकवि सुबन्धु केवल आलंकारिक गद्य काव्य के प्रणयन में ही निपुण नहीं हैं, अपितु बड़े छन्दों में उत्कृष्ट पद्यकाव्य की निर्मिति में भी कुशल हैं, इस तथ्य की पुष्टि हो रही है।

(ii) उपर्युक्त श्लोकों से महाकवि की चित्रकारिता में अभिरुचि भी प्रदर्शित हुई है। साथ ही, केसरी सिंह की आक्रामक स्थिति एवं स्वभाव का सटीक चित्रण करने से उनका प्राणि–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) मुखरूपी गुफा (वक्त्रकुहरः) में रूपक अलंकार।

(iv) आक्रान्ता सिंह को अत्यन्त निकट से देखने के कारण नायक कन्दर्पकेतु तथा मित्र मकरन्द दोनों की निर्भीकता तथा धैर्य आदि गुणों की भी अभिव्यक्ति हुई है।

(v) कवि सिंह के स्वभाव में स्वाभाविक उग्रता से भलीप्रकार परिचित हैं, जिसकी ओर यहाँ स्पष्ट संकेत किया गया है।

(विन्ध्याटवी–वर्णनम्)
(विन्ध्याटवी मार्ग–वर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार हाथी के ऊपर भयानक केसरी के आक्रमण का चित्रात्मक वर्णन करने के बाद, महाकवि सुबन्धु पुनः विन्ध्याटवी का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(38) अनन्तरं नीचदेशनद्येव न्यग्रोधोचितया, उत्तर–गोग्रहणसमरसभूम्येव विजृम्भमाणबृहन्नलया, कुरुदेशढक्क–येव घनसारसार्थवाहिन्या, विदग्धमधुगोष्ठ्येव नानाविट–पीतासवया, नलकूबरचित्तवृत्त्येव सततधृतरम्भया, मत्त–मातङ्गगत्येव घण्टारवावेदितमार्गया, सदीश्वरसेवयेव अदूरोद्गतबहुफलया, विराटलक्ष्म्येव आनन्दितकीचकशतया, विध्याटव्या कतिपयपदमध्वानं गत्वा....

पदच्छेद– अनन्तरम् नीच–देश–नद्या इव न्यग्रोध–उचितया, उत्तर–गो–ग्रहण–समर–सभूम्या इव विजृम्भमाण–बृहन्नलया, कुरुदेश–

ढक्कया इव घन–सारसार्थ–वाहिन्या, विदग्ध–मधु–गोष्ठया इव नाना–विटपीत–आसवया, नलकूबर–चित्तवृत्त्या इव सतत–धृत–रम्भया, मत्त–मातङ्‌ग–गत्या इव घण्टारव–आवेदित–मार्गया, सदा ईश्वर–सेवया इव अदूर–उद्‌गत–बहु–फलया, विराट–लक्ष्म्या इव आनन्दित-कीचक–शतया, विन्ध्याटव्या कतिपय–पदम् अध्वानम् गत्वा.....

अनुवाद– इसके बाद जलप्रवाह को रोककर ऊपर लायी गयी[1], नीचे स्थान में बहने वाली नदी के समान(उपमा) वट के वृक्षों से व्याप्त, बृहन्नला वेषधारी अर्जुन के पराक्रम से युक्त उत्तरकुमार की गायों वाली युद्ध की स्थली के समान[2] (उपमा) बड़े–बड़े बाँसों या नल नामक तृण–विशेष से शोभायमान, कर्पूर राशि को धारण करने वाली, महान् धनशाली वैश्यों से युक्त कुरुप्रदेश की यशरूपी दुन्दुभि (ढक्का) के समान (उपमा), अनेक धूर्त लोगों द्वारा मद्यपान किए जाने वाली, नागरिकों की मधुपान–गोष्ठी के समान (उपमा) पुष्परस से शोभायमान अनेक वृक्षों से युक्त, निरन्तर रम्भा नामक अप्सरा को धारण करने वाली, नलकूबर[3] की मानसिक वृत्ति के समान(उपमा) कदली वन से सुशोभित, घण्टों के शब्द से मार्ग को सूचित करने वाली, मदोन्मत्त गजराज की गति के समान, (उपमा) शणपुष्पी नामक घास से आवृत्त मार्ग से युक्त, शीघ्र ही श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाली, उदारमना स्वामी की सेवा के समान, (उपमा) पास के ही वृक्षों पर लगे हुए अनेक फलों

---

[1] प्रस्तुत अंश से महाकवि के भौतिक विज्ञान विषयक गहन ज्ञान की प्रतीति हो रही है, क्योंकि यदि पानी को ऊपर ले जाना हो तो उसके प्रवाह को रोका जाता है, क्योंकि पानी की प्रकृति सदा ही ऊपर से नीचे की ओर बहने की होती है, यह भौतिक विज्ञान का नियम है। साइफन सिस्टम को इसी सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है, जिसकी ओर यहाँ कवि ने संकेत किया है।

[2] . बृहन्नला वेषधारी अर्जुन तथा उत्तर के आख्यान के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

[3] . रम्भा एवं नलकूबर के आख्यान के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

वाली, कीचक को आनन्दित करने वाली, विराट[1] की लक्ष्मी के समान (उपमा) **बाँसों को आनन्दित करने वाली, विन्ध्याटवी के मार्ग में कुछ कदम चलकर......**

'चन्द्रिका'– इसके बाद इन्होंने विशाल वटवृक्षों, बड़े–बड़े बाँसों, कर्पूर की खानों, पुष्पित वृक्षों, कदली वनों, फलदार वृक्षों आदि से भरी हुई विन्ध्याटवी को देखा, जिसका वर्णन यहाँ कवि ने सुन्दर कल्पनाओं के साथ आलंकारिक भाषा में किया है। तदनुसार–

प्रवाह को रोककर ऊपर की ओर लायी गयी नीचे स्थान पर प्रवाहित होने वाली नदी के समान (उपमा) वट के वृक्षों से युक्त अर्थात् विशाल वट वृक्ष ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे नीचे की ओर बहने वाली नदी के प्रवाह को रोककर उसे ऊपर प्रवाहित किया गया हो।

अर्जुन की शोभा से युक्त राजा विराट के पुत्र उत्तर की गायों वाली युद्ध की स्थली के समान (उपमा) विशाल बाँसों अथवा नल नाम के तृण विशेषों से भरी हुई, अत्यधिक ऐश्वर्य सम्पन्न वैश्यों से युक्त कुरुप्रदेश की यशरूपी दुन्दुभि के समान(उपमा) कर्पूर की खानों से युक्त थी।

इसीप्रकार वह अनेक विटों द्वारा मदिरापान किए जाने वाली नागरिकों की मद्यपान गोष्ठी के समान(उपमा) पुष्पों के रस से युक्त अनेकानेक वृक्षों से सम्पन्न थी, निरन्तर धारण की गयी रम्भा नाम की अप्सरा से युक्त नलकूबर के समान (उपमा) निरन्तर केले के वनों को धारण करने वाली थी।

वह विन्ध्याटवी घण्टों की ध्वनि से मार्ग की सूचना देने वाली हाथियों की गति के समान(उपमा) गजपुष्पी नाम की घास से ढ़के हुए मार्ग वाली थी। शीघ्र फलित होने वाली सज्जन स्वामी की सेवा के समान(उपमा) पास में ही लगे हुए अनेक फलों वाली थी। अनेक

---

[1]. कीचक एवं विराट के परिचय के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

कीचकों का आनन्द प्रदान करने वाली राजा विराट की लक्ष्मी के समान (उपमा) अनेक बाँसों से भरी हुई, इस विन्ध्यपर्वत की अटवी अर्थात् वन में कुछ दूर चलने पर ही...

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **न्यग्रोध**– वटवृक्ष, प्रवाह रोकना। **बृहन्नला**– अर्जुन, बढे हुए नल नामक तृण विशेष। **ढक्का**– यशरूपी दुन्दुभि, कर्पूर की खान या नहर। **विटपी**– धूर्त लोग, वृक्ष। **रम्भा**– अप्सरा विशेष, कदलीवन। **अदूर**–शीघ्र, निकट। **कीचक**–बाँस, व्यक्ति विशेष (द्रष्टव्य परिशिष्ट)।

(ii) नलकूबर, बृहन्नला तथा कीचक हेतु द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(iii) उपमा एवं श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) तात्कालिक ऐश्वर्य सम्पन्न समाज का चित्र प्रस्तुत करने के साथ–साथ कवि का महाभारत विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(जम्बूवृक्षच्छायावर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार विन्ध्याटवी का उपमा के माध्यम से चित्रात्मक वर्णन करने के बाद, महाकवि यहाँ स्थित जामुनवृक्ष का उपमा, रूपक के माध्यम से चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(39)कामिन इव मदनशलाकाङ्कितस्य, विकर्तनस्येव स्निग्धच्छायस्य, वैकुण्ठस्येव लक्ष्मीभृत्, यात्रोद्यतनृपतेरिव धनपत्रशोभितस्य, वेदस्येव भूरिशाखालङ्कृतस्य, गाणिक्यस्येव अनेकपल्लवोज्ज्वलस्य,जम्बूतरोरधश्छायायां विशश्राम।

पदच्छेद– कामिनः इव मदन–शलाका–अङ्कितस्य, विकर्तनस्य इव स्निग्ध–छायस्य, वैकुण्ठस्य इव लक्ष्मीभृत्, यात्रा–उद्यत–नृपतेः इव धनपत्र–शोभितस्य, वेदस्य इव भूरि–शाखा–अलङ्कृतस्य, गाणिक्यस्या इव अनेक–पल्लव–उज्ज्वलस्य, जम्बू–तरोः अधः छायायाम् विशश्राम।

अनुवाद– **मदनशलाका** (कामवर्धक ओषधि विशेष) **को धारण करने वाले कामी व्यक्ति के समान,** (उपमा, श्लेष) **सारिकाओं से सुशोभित, स्नेहयुक्त 'छाया' नामक पत्नी से युक्त, सूर्य के समान**

(उपमा, श्लेष) **शीतल छाया सम्पन्न, लक्ष्मी को धारण करने वाले, विष्णु के समान शोभायुक्त, अनेक वाहनों वाले दिग्विजय यात्रा के लिए उद्यत राजा के समान,** (उपमा, श्लेष)**घने पत्तों से सुशोभित, शाकल आदि शाखाओं से युक्त वेद के समान, अनेक शाखाओं वाले तथा अनेक विटों से युक्त, वेश्यागण के समान,** (उपमा, श्लेष) **अनेक पत्तों से शोभायमान, जामुन के वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा।**

'चन्द्रिका'– उस विन्ध्याटवी में काम को बढ़ाने वाली या स्तम्भन शक्ति में वृद्धि करने वाली ओषधि विशेष 'मदन–शलाका' को धारण करने वाले कामुक व्यक्ति के समान सारिकाओं से सुशोभित, प्रेम करने वाली अपनी 'छाया' नामक पत्नी से युक्त सूर्य के समान शीतल छाया से युक्त, पत्नी लक्ष्मी को धारण करने वाले विष्णु की शोभा को वहन करने वाले, अनेक वाहनों को लेकर दिग्विजय यात्रा के लिए निकलने वाले राजा के समान घने पत्तों से सुशोभित,

ऋग्वेद की शाकल आदि शाखाओं से युक्त दूसरे सभी वेदों की शाखाओं के समान अनेक शाखाओं से सम्पन्न एवं अनेक विटों, धूर्तों से युक्त अनेक सुन्दर वेश्यागण के समान अनेक कोमल पत्तों से उज्ज्वल जामुन के वृक्ष की छाया में वह कन्दर्पकतु अपने मित्र मकरन्द के साथ विश्राम करने लगा।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कवि का कथ्य इतना ही है कि उस विन्ध्याटवी में जामुन के वृक्ष की छाया में कन्दर्पकेतु ने अपने मित्र के साथ विश्राम किया, किन्तु आलंकारिक भाषा में उपमा एवं श्लेष के प्रयोगों से वर्ण्यविषय को अत्यन्त चमत्कारिक बना दिया है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– मदनशलाका**–काम में वृद्धि करने वाली, सारिका। **स्निग्धछाया–** सूर्य की स्नेहयुक्त छाया पत्नी, शीतल घनी छाया। **लक्ष्मी**–शोभा, विष्णु की पत्नी। **घनपत्र–** अनेक वाहन, घने पत्ते। **शाखा–** वृक्ष की शाखा, शाकल, वाष्कलादि ऋग्वेदादि की शाखाएँ। **पल्लव–** विट, कोमल पत्ते।

(iii) मदनश्लाका के प्रयोग से तात्कालिक समाज में कामवृद्धि के लिए किसी विशेष प्रकार की ओषधि रूप शलाका के प्रयोग का पता चलता है।

(iv) कामवर्धक ओषधि के प्रस्तुत उल्लेख से कवि का आयुर्वेद विषयक गहनज्ञान तथा तात्कालिक समाज का संक्षिप्त चित्र भी प्रस्तुत हुआ है।

(कन्दर्पकेतुशयनवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद की घटना का उल्लेख करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(40) अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमालो आतप-क्लान्तवनमहिषलोचनपाटलमण्डलश्चरमाचलमारुरोह। ततो मकरन्दः फलमूलान्यादाय कथं कथमपि तमभिनन्दिताहारमकार्षीत्। स्वयमपि तदुपभुक्तशेषमकरोदशनम्। अथ तामेव प्रियतमां हृदयफलके सङ्कल्पतूलिकया लिखितामिवावलोयन्निस्पन्दकरणग्रामः कन्दर्पकेतुर्मकरन्दविरचिते पल्लवशयने सुष्वाप।

पदच्छेद– अत्रान्तरे भगवान् अपि मरीचि–मालः आतप-क्लान्त–वन–महिष–लोचन–पाटल–मण्डलः चरम–आचलम् आरुरोह। ततः मकरन्दः फल–मूलानि आदाय कथम्–कथम् अपि तम् अभिनन्दित–आहारम् अकार्षीत्। स्वयम् अपि तद् उपभुक्त–शेषम् अकरोत् अशनम्। अथ ताम् एव प्रियतमाम् हृदय–फलके सङ्कल्प-तूलिकया[1] लिखिताम् इव आवलोयन् निस्पन्द–करण–ग्रामः कन्दर्पकेतुः मकरन्द–विरचिते पल्लव–शयने सुष्वाप।

अनुवाद– इसी बीच भगवान् सूर्य भी धूप से थके हुए वन के भैंसे के नेत्रों के समान लाल मण्डल वाले होकर अस्ताचल के शिखर

---

[1] तूलिका कूर्चिकेति हैमः।

पर आरूढ़ हो गए। उसके बाद मकरन्द ने वन से फल–मूल लाकर किसी प्रकार उस कन्दर्पकेतु को खिलाया एवं उसके भोजन से बचे हुए आहार को स्वयं भी ग्रहण किया और उसके पश्चात् उसी प्रियतमा को हृदयरूपी फलक(रूपक) पर संकल्परूपी तूलिका से चित्रित की हुई के समान देखता हुआ, शिथिल इन्द्रियों वाला कन्दर्पकेतु, मकरन्द द्वारा निर्मित की गयी, कोमल पत्तों की शय्या पर सो गया।

'चन्द्रिका'– अपने मित्र मकरन्द के साथ जामुन के वृक्ष के नीचे विश्राम करने के बाद, लाल मण्डल वाले भगवान् सूर्य भी अस्ताचल के शिखर पर आरूढ़ हो गए, जो धूप से थके हुए जँगली भैंसों के रक्तिम नेत्रों के समान प्रतीत हो रहे थे अर्थात् लालिमायुक्त सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा।

तभी कन्दर्पकेतु का मित्र मकरन्द वन में जाकर खाने के लिए फल–मूल ले आया तथा उसके मना करने पर भी येनकेन प्रकारेण कन्दर्पकेतु को उसने इन्हें खिलाया एवं उसके खाने से बचे हुए फलादिकों को स्वयं भी खाकर अपनी क्षुधा को शान्त किया।

इसके बाद शिथिल इन्द्रियों वाला कन्दर्पकेतु पूर्व में स्वप्न में देखी गयी प्रियतमा वासवदत्ता को ही मानो अपने हृदयरूपी पटल पर संकल्परूपी कूची से चित्रित करते हुए मन ही मन देखता हुआ, अपने मित्र मकरन्द द्वारा बनायी गयी कोमल पत्तों की शय्या पर सो गया।

विशेष–(i) डूबते हुए सूर्य का मानवीकरण करते हुए उसकी लालिमा की उपमा जँगली भैंसे के लाल नेत्रों से दी गयी है, जो कवि की प्राणि–विज्ञान विषयक सूक्ष्मदृष्टि का द्योतक कहा जा सकता है।

(ii) यहाँ कवि ने वियोग–प्रेमी का सुन्दर चित्रण किया है, जो अपनी ही प्रिया के अभिचित्रित विचारों में प्रतिक्षण खोया रहता है।

(iii) मकरन्द का त्यागी, परोपकारी तथा श्रेष्ठ मित्र के रूप में उत्कृष्ट चरित्र उभरकर आया है, जो पाठक को सहज ही आकृष्ट कर लेता है।

(iv) जंगली भैंसों की यह विशेषता होती है कि उनकी आँखें विशिष्ट प्रकार की लालिमायुक्त होती हैं, जो पालतू भैंसों में देखने को नहीं मिलती है। इसलिए प्रस्तुत कथन से कवि का वन्यप्राणी विषयक स्वयं का अनुभव भी अभिव्यक्त हुआ है।

(शुकसारिकयोः वार्तालापवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके पश्चात् महाकवि उसी जामुन के वृक्ष पर रहने वाले तोते–मैना (शुक–सारिका) के मध्य–रात्रि में मनुष्य वाणी में किए गए वार्तालाप के विषय के वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(41) अथ याममात्रावखण्डितायां यामवत्यां तत्र जम्बूतरु–शिखरे मिथः कलहायमानयोः शुकशारिकयोः कलकलं श्रुत्वा कन्दर्पकेतुर्मकरन्दमुवाच–

पदच्छेद– अथ याम–मात्रा–अवखण्डितायाम् यामवत्याम् तत्र जम्बू–तरु–शिखरे मिथः कलहायमानयोः शुक–शारिकयोः कलकलम् श्रुत्वा कन्दर्पकेतुः मकरन्दम् उवाच–

अनुवाद– इसके बाद एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर, वहाँ जामुन के वृक्ष के शिखर पर, आपस में झगड़ा करते हुए, तोता–मैना के कलरव को सुनकर, कन्दर्पकेतु ने मकरन्द से कहा कि–

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) तोता–मैना का मानव–वाणी में परस्पर वार्तालाप अभिव्यंजित हो रहा है, जिससे अद्भुत रस का परिपाक हुआ है।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि इसी क्रम में कहते हैं कि–

(42) 'वयस्य शृणुमस्तावदनयोरालापम्' इति। ततो जम्बूनिकुंजस्थिता शारिका काचिच्चिरादागतं शुकं प्रकोप–तरलाक्षरमुवाच–

कितव! शारिकान्तरमन्विष्य समागतोऽसि। कथम–न्यथा रात्रिरियती तव' इति। अथ तच्छ्रुत्वा शुकस्ताम–वादीत्–

पदच्छेद– 'वयस्य शृणुमः, तावत् अनयोः आलापम्' इति। ततः जम्बू–निकुंज–स्थिता शारिका काचित् चिराद् आगतम् शुकम् प्रकोप–तरल–अक्षरम् उवाच–

'कितव! शारिका–अन्तरम् अन्विष्य समागतः असि। कथम् अन्यथा रात्रिः ईयती तव' इति। अथ तत् श्रुत्वा शुकः ताम् अवादीत्–

अनुवाद– हे मित्र! इन दोनों तोता–मैना के बातचीत को सुनो। तब जम्बूलता के झुरमुट में बैठी हुई मैना कुछ विलम्ब से आए हुए तोते से अत्यधिक कुपित होकर प्रकम्पित अक्षरों में कह रही थी कि– 'हे धूर्त! दूसरी मैना को खोजकर आ गए, नहीं तो इतनी रात भला कैसे बीत जाती?'

इसके बाद उसे सुनकर तोते ने उससे कहा कि–

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) मैना के माध्यम से स्त्रीसुलभ ईर्ष्या की भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति की गयी है, क्योंकि न केवल मानवी, अपितु पक्षियों की स्त्री जाति में भी यह ईर्ष्या देखी जा सकती है।

(ii) कवि का स्त्रीमनोविज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

अवतरणिका– इसके बाद तोते द्वारा दिए गए उत्तर के विषय में वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(43) 'भद्रे! मुंच कोपम्। अपूर्वाद्य बृहत्कथा मया श्रुता प्रत्यक्षीकृता च तेनायं कालातिपातः।' इति।

अथ समुपजातकुतूहलतया शारिकया मुहुर्मुहुरनुबध्यमानः कथां कथयितुमारेभे।

पदच्छेद– 'भद्रे! मुंच कोपम्। अपूर्वा–अद्य बृहत्कथा मया श्रुता, प्रत्यक्षीकृता च तेन अयम् काल–अतिपातः', इति। अथ समुपजात-कुतूहलतया शारिकया मुहुर्मुहुः अनुबध्यमानः कथाम् कथयितुम् आरेभे।

अनुवाद– 'हे कल्याणि! कोप का परित्याग करो, आज मैंने एक विचित्र कथा को सुना और प्रत्यक्षरूप से देखा है। उसीकारण मुझे आने में यह विलम्ब हो गया है।'

यह सुनकर उत्पन्न हुए कुतूहल वाली, उस मैना द्वारा बार-बार आग्रह किए जाने पर, तोते ने कथा कहना आरम्भ किया।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष– (i) यहाँ पर तोते का धैर्य तथा शान्त एवं स्थिर चित्त वाला चरित्र प्रदर्शित हुआ है, जिसके माध्यम से कवि का स्वयं का व्यक्तित्व भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(शुककथितकथावर्णनम्)
(तत्र कुसुमपुरनगरवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके पश्चात् तोते द्वारा कही गयी कथा के अन्तर्गत सर्वप्रथम कुसुमपुर नगरी का वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(44) अस्ति मन्दरगिरिश्रृंगैरिव प्रशस्तसुधाधवलैः बृहत्कथालम्बैरिव सालभंजिकोपशोभितैः, वृत्तैरिव समाणवकक्रीड़ितैः, करियूथैरिव समत्तवारणैः, सुग्रीवसैन्यैरिव सगवाक्षैः, बलिभवनैरिव सुतलसन्निवेशैः, वेश्मभिरुद्भासितम्..।

पदच्छेद– अस्ति मन्दर–गिरि–श्रृंगैः इव प्रशस्त–सुधा–धवलैः बृहत्कथा–लम्बैः इव साल–भंजिक–उपशोभितैः, वृत्तैः इव समाण-वक–क्रीड़ितैः, करि–यूथैः इव समत्त–वारणैः, सुग्रीव–सैन्यैः इव सगवाक्षैः, बलि–भवनैः इव सुतल–सन्निवेशैः, वेश्मभिः उद्भासितम्......।

अनुवाद— मन्दर पर्वत की चोटियों के समान, उत्कृष्ट अमृत के समान शुभ्रवर्ण (उपमा) वाले, सालभंजिका नामक विद्याधरी[1] से अलंकृत, बृहत्कथा[2] के लम्बकों के समान, पत्थरों के स्तम्भ आदि पर खोदी गयी पुत्तलिकाओं से सुशोभित, 'माणवकक्रीडित' नामक छन्द से युक्त छन्दों के समान बालकों की मनोरम अठखेलियों से मनोरम, मदोन्मत्त हाथियों के समूह के समान, सुन्दर बरामदों से शोभायमान, गवाक्ष नामक सेनापति[3] से युक्त सुग्रीव की सेना के समान गवाक्षों से युक्त, सुतल नामक पाताललोक में विद्यमान राजा बलि के भवनों के समान सम विहारभूमि से युक्त....(कुसुमपुर नामक नगर है।)।

'चन्द्रिका'— कुसुमपुर नामक वह नगरी मन्दाचल के शिखरों के समान ऊँचे, उत्तम कोटि की शिलाओं से निर्मित, उत्तम अमृत के समान शुभ्र वर्ण के महलों से युक्त थी। उसमें सालभंजिका नामक विद्याधरी की कथा से सुशोभित गुणाढ्य कवि की बृहत्कथा के समान अनेकानेक लम्बकों जैसे खम्भों पर खोदी गयी पुत्तलिकाओं तथा गणिकाओं द्वारा बनाया गया था। माणवकक्रीड़ित नाम के छन्द विशेष से युक्त छन्दों के समान सुन्दर थी तथा उसमें वेद का अध्ययन करने वाले बालक अपनी मनभावन क्रीड़ाओं के साथ खेलते रहते थे।

मदमस्त हाथियों से युक्त गजसमूहों के समान शोभायमान इस नगरी में बरामदों तथा गवाक्षों का निर्माण किया गया था, जो गवाक्ष नाम के सेनापति वाली सुग्रीव की सेनाओं के समान सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। साथ ही, वह सुतल नाम के पाताल में विद्यमान बलि राजा के भवनों के समान समतल विहारस्थली वाली थी।

---

[1]. द्रष्टव्य परिशिष्ट ।

[2]. इसके माध्यम से कवि द्वारा महाकवि गुणाढ्यकृत बृहत्कथा की ओर संकेत किया गया है।

[3]. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

विशेष–(i) यहाँ माणवकक्रीडित[1] छन्द का नामोल्लेख करने से महाकवि का छन्द विषयक विशिष्ट ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक भगण, एक तगण तथा अन्त में एक लघु तथा एक गुरु होता है। वृत्तरत्नाकर में इसे केवल माणवक कहा गया है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– प्रशस्तसुधा–** प्रशंसनीय शिला, प्रशस्त कलई। **सालभंजिका–** पुत्तलिका, विद्याधरी, वेश्या। समाणवकक्रीडित– माणवक क्रीडित नामक छन्द से युक्त, मनोरम क्रीडाओं से युक्त। **समत्तवारण**–मदमस्त हाथी, सुन्दर बरामदे। सगवाक्ष– गवाक्ष सेनापति से युक्त, वातायनों से सम्पन्न। **सुतलसन्निवेश**–सुतल नामक पाताल लोक, सम विहारभूमि वाले, पुत्रों से सुशोभित।

(iii) वेदाध्यायी बालकों के कथन से वेदों के प्रति महाकवि की विशेष आस्था व्यक्त हुई है।

(iv) विहारस्थली के समतल कहने तथा शिखर, पुत्तलिका आदि दूसरे उल्लेखों से कवि का वास्तुविज्ञान विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है। वैसे भी विहार–स्थली का निर्माण करने के लिए समतल भूमि को ही उत्कृष्ट माना गया है।

(iii) महलों के स्तम्भों पर पुत्तलिकाओं के खोदने का उल्लेख करने से कवि द्वारा शिल्पकला विषयक जानकारी भी प्रस्तुत की गयी है।

(कुसुमपुरनिवासिजनवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार कुसुमपुर नगरी की बनावट सम्बन्धी विशेषताओं का कथन करने के बाद, उसमें निवास करने वाले लोगों के विषय में कवि कहते हैं कि–

---

[1]. माणवकं भात्तलगाः। वृत्तरत्नाकर–14।

(45) धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, प्रियंवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणा–प्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असङ्ख्येनापि सङ्ख्यावता

अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण, अपतितेनापि नानासवा–सक्तेन, सुदर्शनेनाप्यचक्रेण, अजातमदेनापि सुप्रतीकेन, हंसेनाप्यपक्षपातिना, अविदितस्नेहक्षयेणापि कुलप्रदीपेन,

अग्रन्थिनापि वंशपोतेन, अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन, निदाघदिवसेनेव वृषवर्धितरुचिना, माघविरामदिवसेनेव तपस्यारम्भिणा, नभस्वतेव सत्पथगामिना विवस्वतेव गोपतिना, महेश्वरेणेव चन्द्रं दधता निवासिजनेनानुगतम्.....।

पदच्छेद– धनदेन अपि प्रचेतसा, गोपालेन अपि रामेण, प्रियंवदेन अपि पुष्पकेतुना, भरतेन अपि लक्ष्मणेन, तिथि– परेण अपि अतिथि–सत्कार–प्रवणेन, असङ्ख्येन अपि सङ्ख्यावता

अमर्मभेदिन अपि वीरतरेण, अपतितेन अपि नाना–आसव–आसक्तेन, सुदर्शनेन अपि अचक्रेण, अजात–मदेन अपि सुप्रतीकेन, हंसेन अपि अपक्षपातिना, अविदित–स्नेह–क्षयेण अपि कुल–प्रदीपेन,

अग्रन्थिना अपि वंश–पोतेन, अग्रहेण अपि काव्य–जीवज्ञेन, निदाघ–दिवसेन इव वृष–वर्धित–रुचिना, माघ–विराम–दिवसेन इव तपस्या आरम्भिणा, नभस्वता इव सत्पथ– गामिना विवस्वता इव गोपतिना, महेश्वरेण इव चन्द्रम् दधता निवासि–जनेन अनुगतम्.......।

अनुवाद– कुसुमपुर में निवास करने वाले, कुबेर होते हुए भी वरुण थे (विरोध) अर्थात् दानशील होते हुए भी उदारमन वाले थे (परिहार)। गोपाल होते हुए भी राम थे (विरोध) अर्थात् गायों का पालन करने वाले होते हुए भी सन्तुष्ट करने वाले थे (परिहार)। प्रियंवद नामक गन्धर्व होते हुए भी कामदेव थे (विरोध) अर्थात् प्रिय बोलने वाले होते हुए भी पुष्पों को धारण करने वाले थे। (परिहार)भरत होते हुए भी लक्ष्मण थे (विरोध) अर्थात् ज्योतिष शास्त्र में कुशल होते हुए भी

धनसम्पन्न थे (परिहार)। तिथि के अनुसार कार्य करने वाले होते हुए भी अतिथि थे (विरोध)अर्थात् ज्योतिषशास्त्र के द्वारा बतायी गयी तिथियों के अनुसार यज्ञादि कार्यों का अनुष्ठान करने पर भी अतिथि सत्कार में निपुण थे (परिहार)। असंख्य होकर भी संख्या वाले थे (विरोध) अर्थात् विवाद में रुचि वाले न होकर भी ज्ञान सम्पन्न थे (परिहार)।

शत्रु के मर्म का भेद न करने वाले होकर भी उत्तम वीर थे (विरोध) अर्थात् दूसरे के रहस्यों को प्रकटित न करने वाले होकर भी परमवीर थे (परिहार)। बिना गिरे भी अनेक प्रकार की मदिरा का पान करने वाले थे (विरोध) अर्थात् विष्णु की भक्ति वाले होकर भी अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले थे (परिहार)। विष्णु होते हुए भी चक्र से रहित थे (विरोध) अर्थात् सुन्दर दर्शन वाले होते हुए भी अहंकार से रहित थे (परिहार)। मदजल से रहित होते हुए भी 'सुप्रतीक' नामक दिग्गज थे (विरोध) अर्थात् मद से रहित होते हुए भी सुन्दर अंगों से युक्त थे (परिहार)।

हंस होकर भी पंखों के अभाव में ही उड़ने वाले थे (विरोध) अर्थात् निर्मल अन्तःकरण वाले होते हुए भी पक्षपात से रहित थे (परिहार)। तेल के क्षय का ज्ञान न होते हुए भी कुलदीपक थे (विरोध) अर्थात् किसी से प्रेम या वैर न रखते हुए भी वंश को प्रकाशित करने वाले थे (परिहार)।

ग्रन्थियों से रहित होते हुए भी बाँस के अँकुर थे (विरोध)अर्थात् किसी भी प्रकार के छल–कपट से रहित उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाले थे (परिहार)। ग्रह न होते हुए भी काव्य (शुक्र), जीव(गुरु) तथा ज्ञ (बुध) थे (विरोध) अर्थात् आग्रह से रहित होते हुए काव्य के रहस्यों को जानने वाले थे (परिहार)।

वृष राशि में विद्यमान सूर्य[1] **की प्रचण्डता से युक्त गर्मी के दिनों के समान धर्म की वृद्धि में रुचि सम्पन्न थे** (उपमा, श्लेष)। **तप का आरम्भ करने वाले फाल्गुन के दिन के समान तपस्या को आरम्भ करने वाले थे** (उपमा, श्लेष)। **आकाश में विचरण करने वाले वायु के समान, सन्मार्ग पर चलने वाले थे** (उपमा, श्लेष)। **पृथ्वी की रक्षा करने वाले सूर्य के समान, गायों के स्वामी थे** (उपमा, श्लेष)। **चन्द्रमा को धारण करने वाले महादेव के समान, स्वर्ण धारण करने वाले थे** (उपमा, श्लेष)।

'चन्द्रिका'– उस कुसुमपुर नगरी में रहने वाले लोग दानशील, उदार विचार सम्पन्न, गायों की रक्षा करने वाले, याचकों को दान आदि से सन्तुष्ट करने वाले, प्रिय बोलने वाले, पुष्पों को अलंकार रूप में धारण करने वाले, आश्रितों का पालन करने वाले शोभा से सम्पन्न थे। इसके अतिरिक्त वे लोग ज्योतिष की शुभ–अशुभ तिथियों का विचार करके कार्य करने वाले एवं अतिथियों का सम्मान करने वाले थे।

उनके कोई भी कलहों में विश्वास नहीं करता था, क्योंकि वे ज्ञान सम्पन्न थे। इसके अलावा वे किसी भी दूसरे के रहस्यों को प्रकट नहीं करते थे तथा विशेष पराक्रमी भी थे। सुडोल अंगों वाले सुन्दर एवं अहंकार से रहित, ईश्वर में आस्था रखने वाले ये लोग हमेशा ही अनेक बड़े–बड़े सोमयागों को सम्पादित करते रहते थे।

इनके व्यवहार में कभी भी पक्षपात नहीं होता था। छल–कपट से रहित ये उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए थे। पूर्वाग्रहों से रहित ये काव्यों के मर्मज्ञ तथा धर्म के प्रति बढ़ी हुई रुचि वाले, तप का आचरण करने वाले, सन्मार्ग पर चलने वाले, मधुर वाणी के स्वामी तथा धन, स्वर्ण आदि सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त भी थे।

---

[1]. महाकवि का ज्योतिष विज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

विशेष–(i) कुसुमपुर के वासियों की अनेक विशेषताओं का प्रत्यक्षर श्लेषमयी शैली में विस्तार से उल्लेख किया है।

(ii) **द्व्यर्थक पद–वृष**–राशि विशेष, धर्म। **रुचि**–कान्ति, इच्छा। **सत्पथ**–श्रेष्ठ मार्ग, आकाश। **गो**–किरण, वाणी। **चन्द्र**– स्वर्ण, चन्द्रमा।

(iii) बाँस की विशेषता है कि वह उस पर स्थित ग्रन्थियों से ही अंकुरित होता है, जिसका कवि ने यहाँ उल्लेख किया है।

(नगरवेश्यावर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार कुसुमपुर के नगरवासियों का वर्णन करने के बाद महाकवि यहाँ निवास करने वाली वेश्याओं के विषय में कहते हैं कि–

(46) घनापगमेनेव दर्शितखण्डाभ्रेण, वेलातटेनेव प्रवालमण्डनेन, देवाङ्गनाजनेनेव इन्द्राणीपरिचयविदग्धेन, गजेन्द्रेणेव पल्लववर्धितरुचिना, कोकिलेनेव परपुष्टेन, भ्रमरेणेव कुसुमेषु लालितेन, जलोकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन, यायजूकेनेव सुरतार्थिना, महानटबाहुनेव बद्धभुजङ्गाङ्केन, गरुडेनेव विलासिहृदयतापकारिणा बन्धकेनेव शूलानामुपरिगतेन, वेश्याजनेनाधिष्ठितं कुसुमपुरं नाम नगरम्।

पदच्छेद– घन–अपगमेन इव दर्शित–खण्ड–अभ्रेण, वेला-तटेन इव प्रवाल–मण्डनेन, देवाङ्गना–जनेन इव इन्द्राणी–परिचय-विदग्धेन, गजेन्द्रेण इव पल्लव–वर्धित–रुचिना, कोकिलेन इव पर-पुष्टेन, भ्रमरेण इव कुसुमेषु लालितेन, जलोकसा इव रक्त– आकृष्टि-निपुणेन यायजूकेन इव सुरतार्थिना, महानट–बाहुना इव बद्ध–भुजङ्ग-अङ्केन गरुडेन इव,विलासि–हृदय–तापकारिणा बन्धकेन इव, शूलानाम् उपरि–गतेन, वेश्या–जनेन अधिष्ठितम् कुसुमपुरम् नाम नगरम्।

अनुवाद– इस नगर की वेश्याएँ प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले शरद्कालीन बादलों के खण्डों के समान, अपने दन्तक्षत[1] को प्रदर्शित करने वाली थीं। विद्रुमों से सुशोभित समुद्रतट के समान लम्बे बालों[2] से सुशोभित थीं। इन्द्राणी से परिचयवश जो चतुर अप्सराओं के समान, इन्द्राणी सुरत विषयक आसन विशेष को बाँधने में निपुण थीं। पल्लवों को खाने में रुचि रखने वाले गजराज के समान[3], जो कामुक लोगों द्वारा बढ़ायी हुई शोभा से युक्त थीं।

दूसरों द्वारा पाली गयी कोयल के समान, जो दूसरों के धनों से परिपुष्ट थीं। पुष्पों से संतुष्ट होने वाले भ्रमर के समान, जो कामावेश के कारण विलासोचित वेश धारण करने वाली थीं। रक्त को खींचने में निपुण जोंक के समान, जो अनुरक्त लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली थी। देवत्व की चाहना करने वाले याज्ञिकों के समान, जो सदैव सुरत को चाहती थीं।

सर्परूपी आभूषणों को धारण करने वाले, महादेव के समान, जो कामुकों की गोद में लेटी रहती थीं। सर्प के हृदय में ताप को उत्पन्न करने के समान, जो विलासियों के हृदय में सन्ताप उत्पन्न करने वाली थीं। शूल पर चढ़े हुए अन्धकासुर के समान, वे दूसरे प्रदेशों में स्थित वेश्याओं में श्रेष्ठ थीं। इसप्रकार की वेश्याओं से सुशोभित कुसुमपुर नाम का नगर है।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

---

[1]. कामशास्त्र के अनुसार रतिक्रिया में दन्तक्षत, नखक्षत अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया है, स्त्रियों के लिए इसे सफल रति का द्योतक मानकर गर्व से प्रदर्शित किया जाता था, जिसका महाकवि ने प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है।

[2] बालों का लम्बा होना स्त्रियों के सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है।

[3]. वृक्षों के कोमल पत्ते हाथियों को अत्यन्त प्रिय होते हैं, यहाँ इसी ओर संकेत किया गया है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक पद– खण्डाभ्र**– दन्तक्षत, मेघखण्ड। **प्रवाल**– लम्बे बाल, प्रवाल रत्न विशेष। **इन्द्राणी**– इन्द्र की पत्नी, रतिक्रिया में आसन विशेष। **पल्लव**– कामी, कोमल पत्ता। **परपुष्ट**- दूसरों द्वारा पाला गया, दूसरों के धनों से समृद्ध। **कुसुमेषु**– कामदेव, पुष्पों में। **रक्ताकृष्टि**– रक्त खींचना, प्रेमी लोगों को प्रभावित करना। **सुरत**– देवत्व, सुरतक्रिया। **भुजंगांक**– सर्परूपी आभूषण, कामियों की गोद। **विलासी**– सर्प, विलासप्रिय। **शूल**– शूली, अन्य।

(iii) तात्कालिक रसिक समाज का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। पुरुषों को लुभाने के लिए वेश्याओं को न केवल सामाजिक एवं राजनैतिक मान्यता प्राप्त थी, अपितु उन्हें राज्य का गौरव मानते हुए प्रशंसनीय तथा राज्य की प्रतिष्ठा रूप में देखा जाता था। इस सम्पूर्ण वर्णन से यही अभिप्राय अभिव्यक्त होता है।

(iv) यज्ञ करने से देवत्व की प्राप्ति होती है, इस सामाजिक मान्यता को भी प्रदर्शित किया गया है।

(v) 'जोंक' जल में रहने वाला एक जीव विशेष जो व्यक्ति या पशु के शरीर से रक्त चूस लेता है, इसका उल्लेख करने से कवि का प्राणि–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(कात्यायनीवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि कुसुमपुर नगर में स्थित भगवती कात्यायनी माँ दुर्गा के विषय में वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

(47) **यत्र च सुरासुरमौलिमालाललितचरणारविन्दा, शुम्भनिशुम्भमहासुरबलमहावनदावज्वाला, महिषासुरगिरिवरवज्रधारा,प्रणयकलहप्रणतगङ्गाधरजटाजूटकोटिस्खलितजाह्नवीजलधाराधौतपादपद्मा, भगवती कात्यायनी चण्डाभिधाना स्वयं निवसति।**

पदच्छेद– यत्र च सुर–असुर–मौलि–माला–लालित–चरण–अरविन्दा,शुम्भ–निशुम्भ–महा–असुर–बल–महावन–दावज्वाला,महिषासुर–गिरिवर–वज्र–धारा, प्रणय–कलह–प्रणत–गङ्गाधर–जटाजूट–कोटि–स्खलित–जाह्नवी–जलधारा–धौत–पाद–पद्मा,भगवती कात्यायनी चण्डा–अभिधाना स्वयं निवसति।

अनुवाद– और जहाँ पर देवों तथा असुरों के सिरों पर स्थित मालाओं द्वारा पूजा की गयी, चरणरूपी कमल वाली, शुम्भ एवं निशुम्भ नामक महान् असुरों के बलरूपी महान् वन को भी जला डालने वाली, ज्वाला के समान, महिषासुररूपी पर्वत के लिए वज्र की धारा के समान, प्रणय–कलह में पैरों में गिरे हुए महादेव के जटाजूट के अग्रभाग से गिरती हुई गंगा की जल–धारा से प्रक्षालित चरणरूपी कमल वाली, 'चण्डिका' नाम से कही गयी भगवती कात्यायनी (पार्वती) **स्वयं निवास करती हैं।**

'चन्द्रिका'– देवों तथा असुरों द्वारा अपने सिरों को चरणों में झुकाते हुए पूजा की गयी, शुम्भ एवं निशुम्भ नाम के दुर्दान्त असुरों के बलरूपी महान् वन को जला डालने में दावाग्नि की भयंकर ज्वाला के समान, महिषासुररूपी पर्वत (रूपक) के लिए वज्र की धार के समान(उपमा), प्रणय कलह में मनाने के लिए पैरों में गिरे हुए भगवान् शंकर के जटाजूट के आगे के भाग से गिरती हुई गंगा के जल की धारा से प्रक्षालित चरणरूपी कमलों (रूपक) से युक्त 'चण्डिका' नाम वाली भगवती पार्वती स्वयं ही साक्षात्‌रूप से कुसुमपुर नामक इस नगरी में विराजमान थी।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में रूपक एवं उत्प्रेक्षालंकारों का सुन्दर प्रयोग एवं भाषा की सरलता दर्शनीय है।

(ii) स्वतन्त्ररूप से एक खण्ड में वर्णन करने के कारण महाकवि का देवी दुर्गा, चण्डिका, कात्यायनी के प्रति श्रद्धाभाव अभिव्यंजित हुआ है। इनके पराक्रम की प्रशंसा में पौराणिक पात्रों शुम्भ,

निशुम्भ, महिषासुर की ओर संकेत किया गया है, जो कवि के पौराणिक ज्ञान को प्रदर्शित कर रहा है।

(iii) यहाँ आरम्भिक तीन वाक्यों में कवि ने दुर्गा देवी के पराक्रम का तथा अन्तिम वाक्य में उनके प्रणयकोप युक्त व्यवहार का कथन किया है।

(iv) कवि का अभिप्राय है कि नायिका वासवदत्ता के पिता की कुसुमपुर नामक नगरी को माँ दुर्गा का प्रत्यक्षरूप से आशीर्वाद प्राप्त था।

(गङ्गावर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार भगवती कात्यायनी के कुसुमपुर में प्रत्यक्षरूप से निवास के विषय में उल्लेख करने के बाद, महाकवि इसके परिसर में स्थित गंगा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(48) **यस्य च परिसरे सुरासुरमज्जनगलितकुसुम-मुकुटरजो राजिपरिमलवाहिनी, पितामहकमण्डलुविनिर्गत-धर्मद्रवधारा, धरातलसगरसुतशतसुरनगरसमारोहणपुण्य-रज्जुनिश्रेणिका, ऐरावतकपोलकषणकम्पिततटगतहरिचन्दन-स्यन्दमानरससुरभितसलिला,सलीलसुरसुन्दरीनितम्ब बिम्बा-दृतितरलिततरङ्गा, स्नानावतीर्णसप्तर्षिमण्डलविमलजटा-टवीपरिमलपुण्यवेणिः, एणतिलकमुकुटविकटजटाजूटकुहर-भ्रान्तिजनितसंस्कारेवाद्यापि कुटिलावर्ता, धरणीव सार्व-भौमकरस्पर्शोपभोगक्षमा, जलदकालसरसीव गन्धपरिभ्रमद भ्रमरमालानुमीयमानजलमूलमग्नकुमुदपुण्डरीका, छन्दोवि-चितिरिव मालिनीसनाथा, ग्रहपङ्क्तिरिव सूर्यात्मजोपशोभिता सराजहंसा च, शरत्कालदिनश्रीरिव उज्ज्वलत्कोकनदा प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षा च, हृतान्धतमसापि तमसान्विता, वीचि-कलिताप्यवीचिदुर्गमा, भगवती भागीरथी वहति।**

पदच्छेद– यस्य च परिसरे सुरासुर–मज्जन–गलित–कुसुम–मुकुट–रजःराजि–परिमल–वाहिनी, पितामह–कमण्डलु–विनिर्गत–धर्म–द्रवधारा, धरातल–सगर–सुत–शत–सुरनगर–समारोहण–पुण्य–रज्जुनि–श्रेणिका,ऐरावत–कपोल–कषण–कम्पित–तट–गत–हरिचन्दन–स्यन्दमान–रस–सुरभित–सलिला,सलील–सुरसुन्दरी–नितम्ब–बिम्बादृति–तरलित–तरङ्गा,स्नान–अवतीर्ण–सप्तर्षि–मण्डल–विमल–जटा–अटवी–परिमल–पुण्य–वेणिः,एण–तिलक–मुकुट–विकट–जटाजूट–कुहर–भ्रान्ति–जनित–संस्कारा इव अद्य अपि कुटिल–आवर्ता, धरणी इव सार्वभौम–कर–स्पर्श–उपभोगक्षमा, जलदकाल–सरसी इव गन्ध–परिभ्रमद् भ्रमर–माला–अनुमीयमान–जलमूल–मग्न–कुमुद–पुण्डरीका, छन्दोविचितिः इव मालिनी–सनाथा, ग्रहपङ्क्तिः इव सूर्य–आत्मजा–उपशोभिता सराज–हंसा च, शरत्काल–दिनश्रीः इव उज्ज्वलत् कोकनदा प्रबुद्ध–पुण्डरी–काक्षा च, हृत–अन्ध–तमसा अपि तमसा–अन्विता, वीचि–कलिता अपि अवीचि–दुर्गमा, भगवती भागीरथी वहति।

अनुवाद– जिस कुसुमपुर के प्रान्तभाग में सुर एवं असुरों के स्नान के समय गिरे हुए पुष्पों से निर्मित मुकुटों के परागसमूह की सुगन्ध को वहन करने वाली, ब्रह्मा के कमण्डलु से निकले हुए धर्मरूपी जल की धारा वाली, पाताल में गिरे हुए सैंकड़ों सगर[1] के पुत्रों के स्वर्गारोहण के लिए पवित्र रस्सी से निर्मित सीढ़ी स्वरूपा, ऐरावत के गण्डस्थलों के रगड़ने से हिलते हुए तटवर्ती हरिचन्दन के वृक्ष से टपकते हुए रस से सुगन्धित जलों से युक्त, विलास सम्पन्न देवांगनाओं के नितम्ब मण्डल के आघात से चंचल तरंगों वाली,

स्नान के लिए उतरे हुए सप्तर्षियों के विमल जटाजूट की सुगन्ध से पवित्र प्रवाह वाली, चन्द्रमौलि भगवान् शंकर की विशाल जटाओं की 'कुहर' (गुफा) में घूमने से उत्पन्न संस्कार के कारण, आज भी मानो कुटिल भँवरों वाली, पृथ्वी के समान 'सार्वभौम' नामक दिग्गज

---

[1]. राजा सगर के आख्यान के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

ऐरावत के सूँड के स्पर्शरूप उपभोग के योग्य चक्रवर्ती राजा को दूसरे राजाओं द्वारा दिए गए 'कर' (टैक्स) के उपभोग के योग्य, वर्षाकालीन तालाबों के समान, मद की गन्ध के कारण उड़ते हुए भ्रमरसमूह से अनुमान किए जाने योग्य जल की सतह तक डूबे हुए कुमुद एवं कमल से युक्त, छन्दोविचिति नामक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ के समान,

मालिनी नदी से युक्त, शनि, चन्द्र और सूर्य ग्रहों की पंक्ति के समान, सूर्य से उत्पन्न होने वाली यमुना नदी और राजहंसों से शोभायमान, कोक पक्षियों के शोर एवं जगे हुए भगवान् विष्णु से युक्त शरद्कालीन दिन की शोभा के समान, विकसित लाल कमलों तथा सफेद कमलों से युक्त, अन्धकार को समाप्त करने वाली होते हुए भी 'अन्धतामिस्र' नामक नरक को विनष्ट करने वाली, अन्धकार सम्पन्न तमसा नदी से युक्त, वीचि नामक दुर्गम नरक से दुर्गम होते हुए भी 'अवीचि' नामक नरक विशेष से रहित तरंगों से व्याप्त प्रवेश करने में दुर्गम, भगवती गंगा बहती है।

'चन्द्रिका'– इस कुसुमपुर नगर के चारों ओर भगवती गंगा प्रवाहित होती थी, जो देवों तथा असुरों के स्नान के अवसर पर गिरे हुए पुष्पों से बनाए गए मुकुटों के पराग के कणों की पंक्तियों की सुगन्ध को धारण करने के कारण सुगन्धित थी, जो मानो परमपिता ब्रह्मा के कमण्डलु से निकली हुई धर्मरूपी जल(रूपक) की धारा हो, यह वस्तुतः पाताल में विद्यमान राजा सगर के सौ पुत्रों के स्वर्गारोहण के लिए मानो पवित्र रस्सी से बनायी गयी सीढ़ी थी, यह इन्द्र के हाथी ऐरावत के गण्डस्थलों को रगड़ने से हिलाए गए तट पर स्थित चन्दन के बहते हुए सुगन्धित रस से सुशोभित थी, जो देवांगनाओं के लीला-पूर्वक किए गए स्नान के कारण स्थूल नितम्बों के आघात से चंचल तरंगों वाली थी। यह मानो स्नान के लिए जल में उतरे हुए सप्तर्षि मण्डल की निर्मल जटाओं के समूह की सुगन्ध से पवित्र प्रवाह से युक्त थी।

जो चन्द्रमौलि भगवान् शिव के विकट जटासमूह रूपी गड्ढे में चक्राकाररूप में घूमने के कारण उत्पन्न हुए संस्कार से आज भी कुटिल आवर्तों (भँवरों)से युक्त थी, जो चक्रवर्ती राजा को दूसरे राजाओं द्वारा दिए गए टैक्स के उपभोग के योग्य पृथ्वी के समान, इन्द्र के ऐरावत नामक हाथी की सूँड के स्पर्शरूप उपभोग के योग्य थी, जो मद की गन्ध के कारण उड़ते हुए भ्रमरों के समूह द्वारा अनुमान किए गए जल की सतह तक डूबे हुए कुमुद और कमलों से युक्त थी, जो मालिनी छन्द से युक्त छन्दोविचिति नामक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ के समान पवित्र मालिनी नदी से युक्त थी, जो शनि, चन्द्र तथा सूर्य आदि से सुशोभित ग्रहों की माला के समान, यमुना एवं राजहंसों से सुशोभित थी, जो प्रफुल्लित लाल कमलों एवं योगनिद्रा से जागे हुए भगवान् विष्णु वाली शरद्काल के दिन की सुन्दरता के समान खिले हुए लाल एवं श्वेत कमलों से युक्त थी।

वह घने अन्धकार को विनाश करने वाली होते हुए भी अन्धकार से युक्त थी(विरोध) अर्थात् वह अन्धतामिस्र नामक नरक को विनष्ट करने वाली तमसा (यमुना) नदी से युक्त थी (परिहार), जो 'अवीचि' नाम के नरक विशेष से युक्त, दुर्गम नाम के नरक विशेष के कारण से दुर्गम थी (विरोध) अर्थात् वह गंगा वीचि अर्थात् तरंगों से परिव्याप्त होने के कारण प्रवेश करने में दुर्गम और 'अवीचि' नाम के नरक विशेष से रहित थी। (परिहार)

विशेष--(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष एवं विरोधाभास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– सार्वभौम**– ऐरावत, चक्रवर्ती राजा। गन्ध– सुगन्ध, मदजल की गन्ध। **कुमुदपुण्डरीक**– नामक पुष्प विशेष, नामक दिग्गज। **मालिनी**– छन्द विशेष, नदी। सूर्यात्मजा– यमुना, शनि। **सराजहंसा**– राजहंसों से युक्त, सूर्य एवं चन्द्र से युक्त। **कोकनद**– लाल कमल, कोक नामक पक्षी। **पुण्डरीक**– विष्णु, श्वेत कमल।

अन्धतमसा– घना अन्धकार, अन्धतामिस्र नरक। **तमसान्विता**– अन्धकार से युक्त, तमसा नदी से युक्त। **वीचि**– तरंग। **अवीचि**[1]– नामक नरक।

(iii) महाकवि का गंगा के प्रति आदर एवं श्रद्धाभाव अभि-व्यंजित हो रहा है।

(कुसुमपुरस्य उपवनवर्णनम्)

अवतरणिका– यहाँ तक कुसुमपुर के प्रान्तभाग में बहने वाली गंगा का सूक्ष्म तथा गहन वर्णन करने के बाद महाकवि कुसुमपुर के चारों ओर स्थित उपवन के वृक्षों के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(49) यच्च दिशि दिशि सन्तानकतरुकुसुमनिकरमिव शिखरावलग्नं तारागणमिव कुसुमनिकरमुद्वहद्भिः, उत्तम्भित-जलदैः, अनूरुकशाभिघातपरवशरविरथतुरगग्रासविषमिता-ग्रपल्लवैः, चन्द्रचमूरुचरणसङ्क्रान्तामृतकणनिकरसेकसं-जातबहुलसुकुमारनवकिसलयसहस्रदर्शिताकालसन्ध्याकाल-विभ्रमैः,भरतचरितैरिव सदारामाश्रितैः, महावीरैरिव नारिकेलि-धरैः, असंस्कृततरुणैरिव अतिदूरप्रसारिताक्षैः, तपस्विभिरिव जपासक्तैः, प्रसाधितैरिव कृतमालोपशोभितैः, मातङ्गकुम्भ-स्थलविदारणोत्सुकसिंहैरिव उत्फुल्लकेसरैः,सारिष्टैरपि चिर-जीविभिः, मुनियुतैरपि मदनाधिष्ठितैः, उपवनपादपैरुप-शोभितम्। अदितिजठरमिव अनेकदेवकुलाध्यासितम्। पाता-लमिव महाबलिशोभितं भुजङ्गाधिष्ठितं च। ससुराल-यमपि पवित्रम्, भोगियुक्तमप्यनुपद्रवम्।

पदच्छेद– यत् च दिशि–दिशि सन्तानक–तरु–कुसुम–निकरम् इव शिखर–अवलग्नम् तारागणम् इव कुसुम–निकरम् उद्वहद्भिः उत्तम्भित–जलदैः,अनूरु–कशा–अभिघात–परवश–रवि–रथ–तुरग–ग्रास–

---

[1]. तपनावीचिमहारौरवरौरवास्तद्भेदाः। इत्यमरः।

विषमित–अग्रपल्लवैः, चन्द्र–चमूरु–चरण सङ्क्रान्त–अमृतकण–निकर–सेक–संजात–बहुल–सुकुमार–नव–किसलय–सहस्र–दर्शित–अकाल–सन्ध्या–काल–विभ्रमैः, भरत–चरितैः इव सदा–आराम–आश्रितैः, महावीरैः इव नारिकेलिधरैः, असंस्कृत–तरुणैः इव अतिदूर–प्रसारिताक्षैः, तपस्विभिः इव जपा–सक्तैः, प्रसाधितैः इव कृतमाला–उपशोभितैः, मातङ्ग–कुम्भ–स्थल–विदारण–उत्सुक–सिंहैः इव उत्फुल्ल–केसरैः, सारिष्टैः अपि चिर–जीविभिः, मुनियुतैः अपि मदन–अधिष्ठितैः, उपवन–पादपैः उप–शोभितम्। अदिति–जठरम् इव अनेक–देवकुल–अध्यासितम्। पातालम् इव महाबलि–शोभितम् भुजङ्ग–अधिष्ठितम् च। स–सुरालयम् अपि पवित्रम्, भोगि–युक्तम् अपि अनुपद्रवम्।

अनुवाद– तथा जिसकी प्रत्येक दिशा में मेघों को रोकने वाले 'सन्तानक'(कल्पवृक्ष) नामक वृक्षों का पुष्पसमूह तारागणों के समान सुशोभित हो रहा था। सूर्य के रथ के घोड़े सारथि अरुण की चाबुक के प्रहार से पराधीन होकर कहीं–कहीं ग्रास खाने के कारण पल्लवों वाले उन–उन वृक्षों के आगे के भाग विषमित थे।

जो चन्द्रमृग के चरणों में लगे हुए अमृतकण के समूह के सींचने से अनेक कोमल नूतन किसलयों द्वारा असमय में ही सन्ध्या–काल का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। हमेशा ही राम के आश्रित भरत के चरित के समान जो निरन्तर उपवनों पर आश्रित थे, जो रमणियों की क्रीड़ा में आसक्त, महावीरों के समान नारियल के वृक्षों से सुशोभित थे। अत्यधिक दूर तक दृष्टि डालने वाले, असंस्कृत युवकों के समान अत्यधिक दूर तक फैले हुए बहेड़े (अक्ष) के वृक्षों से युक्त थे।

जप में आसक्त तपस्वियों के समान, जो जपा नामक पुष्पों से सम्पन्न थे। माला से सुशोभित शृंगार के समान जो कृतमाल नामक वृक्षों से युक्त थे। हाथियों के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाले, केसरी सिंह के समान, जो खिले हुए केसर वाले थे। अरिष्टों से युक्त होते हुए भी चिरजीवी थे अर्थात् फेनिल (अरिष्ट) नामक वृक्षों से युक्त थे।

मुनियों से युक्त होते हुए भी काम से युक्त थे अर्थात् जो मुनि तथा मदन नामक वृक्षों से सम्पन्न थे।

अनेक देवों से युक्त अदिति के उदर के समान, जो अनेक मन्दिरों से युक्त थे। महान् बलि तथा सर्पों से युक्त पाताल के समान, जो महाबलियों तथा विट लोगों से भरे हुए थे। वह सुरालय होकर भी पवित्र थे अर्थात् अनेक देवालयों के कारण वे पवित्र थे। सर्पों से युक्त होने पर भी जो उपद्रवों से रहित थे अर्थात् भोगी लोगों के होते हुए भी जो शान्त थे।

'चन्द्रिका'– इस कुसुमपुर नगर के चारों ओर विद्यमान उपवन की प्रत्येक दिशा में सन्तानक नाम के ऊँचे–ऊँचे वृक्ष विद्यमान थे, जिन वृक्षों के ऊपर स्थित विकसित पुष्पों का समूह तारों के समुदाय के समान सुशोभित हो रहा था। इन वृक्षों की चोटियाँ इतनी अधिक ऊँची थीं कि ऐसा प्रतीत होता था कि ये आकाश में स्थित तारागणों का स्पर्श कर रहे हों या फिर ये आकाश में विद्यमान मेघों को अपने ऊपर रोके हुए हों।

इसके अतिरिक्त ये वृक्ष शिखर पर ऊँचे–नीचे अर्थात् विषमित थे, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि सूर्य के रथ के घोड़े, सारथि अरुण की चाबुक के मारे जाने से पराधीन होने से मजबूर होकर इन वृक्षों के कोमल पत्तों को कहीं–कहीं से ही खा पाए हों।

इन वृक्षों की चोटियों पर चन्द्ररूपी मृग के चरणों में लगे हुए अमृत के कणों के समूह द्वारा सिंचित होने के कारण उत्पन्न हुए अनेक कोमल नए किसलयों द्वारा असमय में ही सन्ध्याकाल का भ्रम उत्पन्न किया जा रहा था, जो वृक्ष निरन्तर राम पर आश्रित भरत के चरित के समान आराम अर्थात् उपवनों पर ही सदा आश्रित रहने वाले थे, जो शत्रुओं के आनन्द को सहन न करने वाले महान् वीरों के समान, नारियल के वृक्षों से सुशोभित थे अथवा सुन्दरियों के साथ

क्रीड़ा में निरत महान् कायरों (महा–अवीर) के समान नारियल के वृक्षों से शोभायमान थे।

जो उपवन दूर तक दृष्टि को दौड़ाने वाले अशिक्षित तथा दुश्चरित्र युवकों के समान दूर तक फैले हुए बहेड़े के वृक्षों से युक्त थे, जो निरन्तर जप का आचरण करने वाले तपस्वियों के समान जपा के पुष्पों से युक्त थे, जो माला को धारण करने से सुशोभित शृंगार सम्पन्न युवकों के समान कृतमाल नामक वृक्षों से शोभायमान थे, जिन उपवनों में हाथियों के गण्डस्थल को विदीर्ण करने की प्रबल इच्छा के कारण उठे हुए आयाल (केसर) युक्त सिंहों के समान विकसित नाग–केसर के वृक्ष भी विद्यमान थे।

जो मरने की सूचना देने वाले अरिष्ट योगों से युक्त होते हुए भी लम्बे समय तक रहने वाले थे (विरोध) अर्थात् जो अरिष्ट नामक फेनिल के वृक्षों से युक्त एवं चिरस्थायी थे। (परिहार), जो ऋषियों से युक्त होते हुए भी काम से युक्त थे(विरोध) अर्थात् जो मुनि एवं मदन नाम के वृक्षों से युक्त थे(परिहार)।

जो उपवन अनेक देवताओं के समूह से युक्त होते हुए भी अदिति के उदर के समान अनेक मन्दिरों से सुशोभित था, जो बलि नाम के दैत्य से सुशोभित तथा अनेक सर्पों से युक्त पाताल के समान (उपमा) महाबलशाली लोगों तथा विटों, धूर्तों से युक्त था। वह मधुशाला से युक्त होते हुए भी पवित्र था (विरोध) अर्थात् वह अनेक मन्दिरों से युक्त एवं पवित्र था (परिहार)। अनेक सर्पों से युक्त होते हुए भी उपद्रवों से रहित था (विरोध) अर्थात् वह ऐश्वर्य सम्पन्न भोगी लोगों से युक्त एवं सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित था (परिहार)।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष एवं विरोधाभास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– आराम–** उपवन, राम। नारिकेलिधरैः– शत्रुओं के मनोरंजन को सहन न करने वाले, नारियल के वृक्ष। **अक्ष–**

दृष्टि, बहेड़े के वृक्ष। **जप**– भगवान् का नाम जपना, जपा पुष्प। **कृतमाल**– माला, कृतमाल वृक्ष। **केसर**– नागकेसर के वृक्ष, आयाल, सिंह के घने बाल। **देवकुल**–देवों का समूह, मन्दिरों का समूह। **बलि**-राजा, बलशाली। **भुजंग**–सर्प, विट। **अरिष्ट**–ज्योतिष के योग, फेनिल नामक वृक्ष। **मुनि**– मौनधारण करने वाले तपस्वी, मुनि वृक्ष। **मदन**-काम, मदन नामक वृक्ष। **सुरालय**–देवालय, मदिरालय। **भोगि**-सर्प, सांसारिक भोग करने वाले लोग।

(iii) ऊँचे, घने सन्तानक वृक्षों के पुष्पों के गुच्छों में ही तारा गणों की कल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, जो महाकवि की उत्कृष्ट कल्पना शक्ति की परिचायक है।

(iv) चन्द्रमा और अमृत की उत्पत्ति समुद्र से ही होने के कारण यहाँ चन्द्रमा के चरणों में अमृत–बिन्दुओं के लगे होने की प्रभावी कल्पना भी मनोरम कही जा सकती है।

(शृङ्गारशेखरवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार कुसुमपुर एवं उसमें स्थित उपवन का वर्णन करने के बाद, महाकवि उस नगरी के राजा एवं नायिका वासवदत्ता के पिता शृंगारशेखर के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(50) तत्र सुरतरभसखिन्नप्रसुप्तसीमन्तिनीरत्नताटङ्कमुद्रितबाहुदण्डः, प्रचण्डप्रतिपक्षलक्ष्मीकेशपासकुसुममालामोदसुरभितकरकमलः, प्रशस्तकेदार इव बहुधान्यकार्यसम्पादकः, पार्थ इव सुभद्रान्वितः सभीमसेनश्च, कृष्ण इव सत्यभामोपेतः सबलश्च, शृङ्गारशेखरो नाम राजा प्रतिवसति स्म। यो बलभित्, पावकः, धर्मराट्, निर्ऋतिः, प्रचेताः, सदागतिः, धनदः, शङ्कर इत्यष्टमूर्तिरप्यनष्टमूर्तिः।

पदच्छेद– तत्र सुरत–रभस–खिन्न–प्रसुप्त–सीमन्तिनी–रत्न-ताटङ्क–मुद्रित–बाहुदण्डः, प्रचण्ड–प्रतिपक्ष–लक्ष्मी–केशपास–कुसुम-

माला–आमोद–सुरभित–कर–कमलः,प्रशस्त–केदारः इव बहु–धान्य–कार्य –सम्पादकः, पार्थः इव सुभद्रा–अन्वितः स–भीमसेनः च, कृष्णः इव सत्यभामा–उपेतः सबलः च, शृङ्गारशेखरः नाम राजा प्रतिवसति स्म। यः बलभित्, पावकः, धर्मराट्, निर्ऋतिः, प्रचेताः, सदागतिः, धनदः, शङ्करः इति अष्टमूर्तिः अपि अन् अष्टमूर्तिः।

अनुवाद– वहाँ शृंगारशेखर नामक राजा रहता था, जो सुरत के वेग से खिन्न हुई स्त्रियों के रत्नजटित कानों के आभूषणों के चिह्नों से अंकित भुजदण्ड वाला, भयंकर प्रतिपक्षी राजाओं की राजलक्ष्मी के केशपाश की कुसुममाला से सुगन्धित हाथरूपी कमल(रूपक) से युक्त, अनेक प्रकार के अनाजों को उत्पन्न करने वाले, उत्कृष्ट खेतों के समान (उपमा) दूसरों के कार्यों को सम्पादित करने वाला, सुभद्रा एवं भीम से युक्त पार्थ के समान श्रेष्ठ कल्याणों वाला, विशाल सेना से युक्त, सत्यभामा और बलराम सहित कृष्ण के समान (उपमा) सत्य, तेज, ऐश्वर्य एवं सेना से युक्त था।

जो इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋती, वरुण, वायु तथा कुबेर और शंकर से युक्त होते हुए भी आठ मूर्तियों वाला शंकर नहीं था(विरोध) अर्थात् वह इन्द्र के समान शत्रुओं की सेना को विनष्ट करने वाला, अग्नि के समान (उपमा) पवित्र करने वाला, यमराज के समान धर्मात्मा, निर्ऋती और वरुण के समान (उपमा) स्पर्धारहित, प्रकृष्ट हृदय वाला, सज्जनों को आश्रय प्रदान करने वाला और उन्हें धन प्रदान करने वाला (परिहार) था।

'चन्द्रिका'– शृङ्गारशेखर नामक राजा का विशाल भुजदण्ड वेगपूर्वक किए गए सुरत व्यापार के बाद थककर सोयी हुई रमणियों के कानों में पहने जाने वाले आभूषण विशेष अर्थात् कर्णफूलों के चिह्नों से अंकित था। उसके कमलरूपी हाथ महान् शक्तिशाली शत्रुओं की राजलक्ष्मी के केशपाश को पकड़ने के कारण उसमें शृंगार के लिए लगाए गए सुगन्धित पुष्पों की माला से सुगन्धित थे।

यह राजा अनेक प्रकार के अन्नों को (धान्य) उत्पन्न करने वाले भलीप्रकार जोते गए, उत्तम श्रेणी के खेत के समान प्रायः (बहुधा) दूसरों लोगों (अन्यकार्य)अर्थात् प्रजाजनों के अनेक कार्यों को सम्पादित करता था अर्थात् परोपकारी स्वभाव का था। जिसप्रकार अर्जुन सुभद्रा और भीम से युक्त है, वैसे ही वह भी सुन्दर कल्याणों तथा शत्रु में भय उत्पन्न करने वाली विशाल सेना से युक्त था। सत्यभामा एवं बलराम से युक्त कृष्ण के समान वह राजा सत्य, तेज तथा ऐश्वर्य से युक्त शक्तिशाली सेना से सम्पन्न था।

ध्यातव्य है कि वह राजा इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति अर्थात् सर्वोत्कृष्ट दिक्पाल, वरुण देव, वायु, कुबेर एवं इन्द्रादि से युक्त आठ मूर्तियों से युक्त होते हुए भी अष्टमूर्ति अर्थात् शंकर नहीं था, क्योंकि वह तो वस्तुतः बलशाली सभी शत्रुओं को विनष्ट करने वाला(इन्द्र) सभी को पवित्र करने वाला (पावक), धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करने वाला, (यम) सुखी (निर्ऋती), वरुण के समान प्रकृष्ट हृदय से युक्त, हमेशा गतिशील रहने वाला (वायु), याचकों को प्रभूत मात्रा में धन दान देने वाला (कुबेर) तथा सम्पूर्ण प्रजा का कल्याण करने वाला (शंकर) था। इसप्रकार वह आठ प्रकार की मूर्तियों से रहित सुन्दर शरीर से सम्पन्न था।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में उपमा, रूपक, श्लेष तथा विरोधाभास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **बहुधान्यकार्य**– अनेक प्रकार के अनाजों को उत्पन्न करना, दूसरे लोगों के कार्य। **सुभद्रान्वितः**– सुभद्रा युक्त, उत्तम कल्याणों से युक्त। **सभीमसेनः**–पाण्डुपुत्र भीम से युक्त, बड़ी सेना से सम्पन्न। सत्यभामोपेतः– सत्यभामा से युक्त, सत्य, तेज तथा धन से युक्त। **सबलः**– बलराम से युक्त, सेना से सम्पन्न। **बलभित्**– इन्द्र शत्रुओं को नष्ट करने वाला। **पावक**– अग्नि, पवित्र करने वाला। **धर्मराट्**– यमराज, धर्मात्मा। **निर्ऋति**– सुखी, राक्षस। **प्रचेता**– उत्कृष्ट

मन वाला, वरुण। **सदागति–** सज्जनों का अनुकर्ता, वायु। **धनद**–कुबेर, धन दान करने वाला। **शंकर–** कल्याण करने वाला, महादेव।

(iii) श्रृंगारशेखर के प्रबल कामी, पराक्रमी, परोपकारी, सत्यवादी, तेजस्वी, ऐश्वर्य सम्पन्न, विशाल सेनायुक्त, धर्मात्मा, सज्जन, दानी तथा सुखी आदि उत्कृष्ट चारित्रिक गुणों का उल्लेख किया गया है।

(iv) अष्टमूर्ति से अभिप्राय यहाँ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर एवं भगवान् शंकर से ग्रहण करना चाहिए।

(शृङ्गारशेखरस्य चारित्रिकवैशिष्ट्यम्)

अवतरणिका– इसके बाद कवि श्रृंगारशेखर की चारित्रिक विशेषताओं को ही फिर से श्लोकबद्ध रूप में कहते हैं कि–

सुराणां पाताऽसौ स पुनरतिपुण्यैकहृदयो
ग्रहस्तस्यास्थाने गुरुरुचितमार्गे स निरतः।
करस्तस्यात्यर्थं वहति शतकोटिप्रणयितां
स सर्वस्वं दाता तृणमिव सुरेन्द्रं विजयते।।(17)

अन्वय– असौ सुराणाम् पाता, सः पुनः अतिपुण्य–एकहृदयः, ग्रहः गुरुः, तस्य आस्थाने सः उचित–मार्गे निरतः, तस्य करः शत–कोटि–प्रणयिताम् अत्यर्थम् वहति, सः सर्वस्वम् तृणम् इव दाता, एवम् सुरेन्द्रम् विजयते।।17।।

अनुवाद– देवराज इन्द्र तो देवों का रक्षक तथा सुरापान करने वाला है, जबकि वह तो अत्यधिक पवित्र हृदय वाला है। उस इन्द्र की सभा में तो बृहस्पति ग्रहरूप में विद्यमान है तथा वह अनुचित स्थान में प्रवृत्त होने वाला भी है, जबकि यह तो उचित मार्ग में ही निरत रहता है। इन्द्र के हाथ में सदा वज्र रहता है तथा उसका हाथ सदा माँगने के लिए ही उद्यत रहता है, जबकि यह तो अपना सर्वस्व ही तिनके के समान दान देने वाला है। इसप्रकार श्रृंगारशेखर ने गुणों में इन्द्र को भी तिरस्कृत कर दिया है।।17।।

'चन्द्रिका'— प्रस्तुत श्लोक में कवि शृंगारशेखर को देवराज इन्द्र से भी उत्कृष्ट बताते हुए कहते हैं कि— (1) देवताओं की रक्षा करने वाला वह इन्द्र तो मदिरापान करने वाला है, जबकि यह शृंगार शेखर नाम का राजा तो अत्यधिक पवित्र हृदय वाला है, इसलिए यह इन्द्र से उत्कृष्ट है। (2) इन्द्र की सभा में बृहस्पति आदि ग्रहरूप में विद्यमान हैं और वह दूसरे की पत्नी के साथ व्यभिचार करने में प्रवृत्त रहने वाला है, जबकि शृंगारशेखर हमेशा ही उचित मार्ग पर चलने वाला है। (3) इसके अलावा इन्द्र अपने हाथ में हमेशा ही वज्र को धारण करते हुए माँगने के लिए अपना हाथ ऊपर की ओर रखता है, जबकि शृंगारशेखर तो अपना सभी कुछ तिनके के समान दान देने वाला है। इसप्रकार इस शृंगारशेखर ने अपने कार्यों से इन्द्र को भी तिरस्कृत कर दिया है।

विशेष—(i) उपर्युक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त में लघु, गुरु के क्रम से कुल सत्रह वर्ण होते हैं एवं नौ एवं आठ वर्णों पर यति होती है।

लक्षण— रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

(ii) **द्व्यर्थक पद**— **सुरा**— देवता, मदिरा। **पाता**— रक्षा करने वाला, पीने वाला। **ग्रह**— सूर्य आदि ग्रह, आग्रह। **गुरु**— ग्रह विशेष, महान्। **आस्थाने**— सभा में, अनुचित स्थान में।

(iii) सामान्यरूप में उपमेय की अपेक्षा उपमान गुणों में अधिक होता है, किन्तु यहाँ इन्द्ररूप उपमान की अपेक्षा शृंगारशेखर रूप उपमेय की उत्कृष्टता का कथन करने के कारण व्यतिरेक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

लक्षण— उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

(iv) इन्द्र की विशेषता है कि वह हमेशा ही माँगने के लिए उद्यत रहता है, इसलिए उसका हाथ ऊपर की ओर रहता है, किन्तु

शृंगारशेखर तो हमेशा ही अपनी हथेली को सैंकड़ों करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दान देने के लिए नीचे की ओर ही रखता है, इसलिए वह इन्द्र से भी उत्कृष्ट है।

(v) इन्द्र के विषय में महाभारत में प्रसिद्ध है कि वह अपने पुत्र अर्जुन के जीवन की रक्षा के लिए कर्ण के पास उसके कवच, कुण्डल माँगने के लिए ब्राह्मण के वेश में गया था।

(शृङ्गारशेखरस्य युद्धवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार शृंगारशेखर के चारित्रिक गुणों का कथन करके, महाकवि उसके युद्धकौशल के विषय में वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

जीवाकृष्टिं च चक्रे मृधभुवि धनुषः शत्रुरासीद्गतासु
र्लक्षाप्तिर्मार्गणानामभवदरिबले तद्यशस्तेन लब्धम्।
मुक्ता तेन क्षमेति त्वरितमरिबलैरुत्तमाङ्गैः प्रतिष्ठा
पंचत्वं द्वेषिसैन्यैर्गतमवनिपतिर्नाप सङ्ख्यान्तरं सः।(18)

अन्वय– मृध–भुवि सः धनुषः जीवा[1]–आकृष्टिम् चक्रे, शत्रुः गतासु आसीत्, अरि–बले मार्गाणाम् लक्षाप्तिः अभवत्, तेन तद् यशः लब्धम्। तेन क्षमा मुक्ता, इति त्वरितम् अरि–बलैः उत्तमांगैः प्रतिष्ठा (मुक्ता), द्वेषि–सैन्यैः पंचत्वम्[2] गतम्, सः अवनि–पतिः संख्या–अन्तरम् न आप।।18।।

अनुवाद– शृंगारशेखर ने इधर युद्धभूमि में धनुष की प्रत्यंचा को खींचा और उधर शत्रु निष्प्राण हो गए। इधर शत्रुओं की सेना पर उसने बाणों से लक्ष्यभेदन किया और उधर शृंगारशेखर द्वारा शत्रुओं के यश को प्राप्त कर लिया गया। इधर उसने क्षमा का त्याग किया कि उधर शत्रुसेना के मस्तकों ने अपनी स्थिति का परित्याग कर दिया।

---

[1]. मौर्वी जीवा गुणो गव्या शिंजा बाणासनं गुणे, इति हैमः।

[2]. पंचता कालधर्म इत्यमरः।

इधर शत्रुओं की सेना पंचत्व को प्राप्त हुई, किन्तु वह राजा दूसरी संख्या को प्राप्त ही नहीं कर सका।।18।।

'चन्द्रिका'– शृंगारशेखर का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए कवि कहता है कि– वह इतना अधिक पराक्रमी था कि इधर तो वह अपने धनुष की डोरी को खींचता था और उधर अर्थात् युद्धभूमि में उसके सभी शत्रु निष्प्राण हो जाते थे अर्थात् मर जाते थे। इसीप्रकार इधर तो वह शत्रु की सेना पर अपने तीक्ष्ण बाणों से लक्ष्य का भेदन करता था और उधर युद्धभूमि में वह अपने शत्रुओं के सम्पूर्ण यश को छीन लेता था, क्योंकि वे सभी पराजित हो जाते थे।

यद्यपि सामान्य स्थिति में शृंगारशेखर क्षमा को धारण करता था, किन्तु शत्रुओं के विपरीत आचरण करने पर जैसे ही वह इसका परित्याग करता, वैसे ही उधर शत्रुओं के सिर शरीर से अपनी स्थिति का परित्याग कर देते थे अर्थात् उनके सिर कटकर अपने–अपने धड़ों से अलग हो जाते थे। इसीप्रकार जब शत्रुओं की सेना पंचत्व को प्राप्त हुई अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो गयी, तो भी वह राजा दूसरी संख्या को प्राप्त न कर सका अर्थात् सभी शत्रुओं के विनष्ट होने पर शत्रुओं का कोई भी योद्धा उसे नहीं मिला, जिसके साथ वह युद्ध कर सके।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में 'स्रग्धरा' छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसमें मगण, रगण, भगण, नगण तथा अन्त में तीन यगण होते हैं एवं सात–सात वर्णों पर कुल तीन बार यति होती है। इसका लक्षण इसप्रकार है– **म्रभ्नैर्यानां त्रयेन त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।**

(ii) यहाँ कारण का वर्णन तो शृंगारशेखर में किया गया है, जबकि कार्यरूप फल का कथन शत्रुसेना में हुआ है। इसलिए यहाँ

कारण तथा कार्य की दिशा भिन्नरूप में वर्णित होने से 'असंगति' अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।[1]

(शृंगारशेखरस्य नगरव्यवस्थावर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार शृंगारशेखर के पराक्रम का वर्णन करने के बाद, महाकवि सुबन्धु कुसुमपुर नगर की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(51) यत्र राजनि राजनीतिचतुरे, चतुरम्बुधिमेखलां शासति वसुमतीम् पितृकार्येषु वृषोत्सर्गः, शशिनः कन्या–तुलारोहणम्, योगेषु शूलव्याघातचिन्ता, दक्षिणवामकरणं दिङ्निश्चयेषु, दानच्छेदः करिकपोलेषु, शरभेदो दधिषु, शृङ्खलाबन्धो वर्णप्रथनासु, उत्प्रेक्षाक्षेपः काव्यालङ्कारेषु, लक्षदानच्युतिः सायकानां क्विपां सर्वविनाशः, कोषसङ्कोचः कमलाकरेषु, न जनेषु........।

पदच्छेद– यत्र राजनि राजनीति–चतुरे, चतुः अम्बुधि–मेखलाम् शासति, वसुमतीम् पितृ–कार्येषु वृषोत्सर्गः, शशिनः कन्या–तुला–रोहणम्, योगेषु शूल–व्याघात–चिन्ता[2], दक्षिण–वाम–करणम् दिङ्–निश्चयेषु, दानच्छेदः करि–कपोलेषु, शर–भेदः दधिषु, शृङ्खला–बन्धः वर्ण–प्रथनासु, उत्प्रेक्षा–आक्षेपः काव्यालङ्कारेषु, लक्ष–दान–च्युतिः सायकानाम्, क्विपाम् सर्व–विनाशः[3], कोष–सङ्कोचः कमलाकरेषु, न जनेषु........।

---

[1]. भिन्नदेशतयात्यन्तं कार्यकारणभूतयोः।
युगपद्धर्मयोर्यत्र ख्यातिः सा स्यादसंगतिः। काव्यप्रकाश–10/124 ।

[2]. प्रस्तुत अंश से महाकवि का ज्योतिष विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

[3]. प्रस्तुत गद्यखण्ड से कवि का व्याकरण विषयक ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।

अनुवाद– जहाँ पर राजनीति में निपुण श्रृंगारशेखर चारो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर शासन करता था, यहाँ पितृकार्यों में ही साँड छोड़ने की परम्परा थी, किन्तु प्रजा में धर्म का त्याग नहीं किया जाता था। चन्द्रमा का ही कन्या एवं तुला राशि पर संक्रमण होता था, किन्तु प्रजा में कोई कन्या से संगमन नहीं करता था तथा अपराधरहित का दण्ड स्वरूप तुला पर आरोहण नहीं किया जाता था। ज्योतिष के योगों में ही 'शूल' तथा 'व्याघात' योगों का चिन्तन होता था, किन्तु प्रजाओं में किसी को दण्डरहित होने पर शूली पर चढ़ाकर मारे जाने की चिन्ता नहीं होती थी।

दिशा का निश्चय करने के लिए ही दक्षिण एवं उत्तर का विचार होता था, किन्तु प्रजाओं में दाएँ या बाएँ हाथ, पैर को नहीं काटा जाता था। हाथियों के मस्तक में ही मदजल का अभाव देखा जाता था, किन्तु प्रजा में दान का अभाव नहीं था। दही को मथने में ही 'शर'[1] को प्रयोग किया जाता था, किन्तु प्रजाओं में अपराध राहित्य के कारण बाण से प्रहार नहीं करते थे। काव्यों में ही 'मुरजबन्ध'[2] आदि छन्दोबद्ध रचना में ही श्रृंखलाबन्ध होता था, किन्तु प्रजाओं में किसी को श्रृंखला से नहीं बाँधा जाता था।

काव्यों में प्रयुक्त अलंकारों में ही उत्प्रेक्षा एवं आक्षेप आदि अलंकारों का प्रयोग किया जाता था, किन्तु प्रजाओं में लापरवाही से किसी की निन्दा नहीं होती थी। बाण ही अपने लक्ष्य को काटकर गिराते थे, किन्तु प्रजा में लाखों दान देने का अभाव नहीं था। व्याकरण में 'क्विप्' प्रत्ययों का ही सम्पूर्णरूप से लोप होता था, किन्तु प्रजाओं का कभी सर्वनाश नहीं होता था। कमलों के समूह में ही

---

[1]. दही मथने के लिए प्रयोग में आने वाले यन्त्र की डण्डी, जिसे ग्राम में 'रई' कहते हैं।

[2]. महाकवि का छन्द विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

पंखुडियों का संकोच होता था, किन्तु प्रजाओं में खजाने (कोश) **का संकोच नहीं था।....**

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में परिसंख्या एवं श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– वृष–** धर्म, साँड। **कन्यातुलारोहण**– कन्या, तुला राशि, कन्याओं के साथ व्यभिचार या विक्रय। **शूलव्याघात**– शूली, फाँसी, शूल–व्याघात ज्योतिषीय योग। **करण**–प्रयोग, काटना। **दान**– मद, दान करना। **शर**–बाण, दही मथने का यन्त्र। **शृंखलाबन्ध**– छन्द विशेष, जंजीर बाँधना। **उत्प्रेक्षाक्षेप**– लापरवाही से निन्दा, उत्प्रेक्षा, आक्षेप अलंकार। **लक्षदानच्युति**– लक्ष्य को काटकर गिराना, लाखों के दान से विरति। **क्विप्**– प्रत्यय, पक्षी। **कोष**– खजाना, पंखुडी।

(iii) धर्मशास्त्रों में पितृकार्यों में साँड़ छोड़ने का विधान किया गया है, इससे कवि के धर्मशास्त्रीय ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है।

(iv) इसीप्रकार कन्या एवं तुला राशि के चन्द्रमा में आरोहण तथा शूल तथा व्याघात योग की बात के उल्लेख से महाकवि के ज्योतिष शास्त्रीय गहन ज्ञान की प्रतीति हो रही है।

अवतरणिका– कुसुमपुर नगर की व्यवस्था के ही विषय में पुनः महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(52) जातिविहीनता मालासु न कुलेषु, शृङ्गारहानिः जरत् करिषु न जनेषु, दुर्वर्णयोगः कटकादिषु न कामिनी–कान्तिषु, गान्धारविच्छेदो रागेषु न पौरवनितासु, मूर्च्छाधि–गमो गानेषु न प्रजासु, खर्माभावो नीचसेवकेषु न परिजनेषु, मलिनाम्बरत्वं निशासु न जनेषु, चलरागता गीतेषु न विदग्धेषु, वृषहानिः निधुवनलीलासु न पौरेषु, भङ्गुरत्वं रागविकृतिषु न चित्तेषु,

पदच्छेद– जाति–विहीनता मालासु न कुलेषु, शृङ्गार–हानिः जरत् करिषु न जनेषु, दुर्वर्ण–योगः कटक–आदिषु न कामिनी–कान्तिषु गान्धार–विच्छेदः रागेषु न पौर–वनितासु, मूर्च्छा–अधिगमः गानेषु[1] न प्रजासु, खर्म–अभावः नीच–सेवकेषु न परिजनेषु, मलिन–अम्बरत्वम् निशासु न जनेषु, चल–रागता गीतेषु न विदग्धेषु, वृष–हानिः निधुवन–लीलासु न पौरेषु, भङ्गुरत्वम् राग–विकृतिषु न चित्तेषु,....

अनुवाद– जहाँ निम्न कुलों में ही जाति–विहीनता होती थी, पुष्पों की मालाओं में जाति (मालती) नाम के पुष्पों की कमी नहीं थी। वृद्ध हाथियों में ही 'शृंगार' नामक विशेष आभूषण का अभाव होता था, लोगों में सजाने की प्रवृत्ति का अभाव नहीं था। 'कटक' आदि आभूषणों में ही चाँदी की मिलावट की जाती थी, कामिनियों की कान्ति में कभी कुत्सित वर्ण का मिश्रण नहीं होता था। रागों में ही 'गान्धार' नामक स्वर विशेष का विच्छेद किया जाता था, नगर की स्त्रियों में सिन्दूर का अभाव नहीं था। गीतों में ही 'मूर्च्छा' नामक स्वर का आरोह एवं अवरोह होता था, प्रजाओं में संज्ञा का विनाश (मूर्च्छा) नहीं होती था।

निम्न सेवकों में ही परम्परागत अशुद्धि होती थी, परिजनों में पौरुष (खर्म) का अभाव नहीं था। रात्रियों में ही आकाश में मलिनता देखी जाती थी, लोगों में कोई भी मलिन वस्त्रों को धारण नहीं करता था। गीतों में ही रागों की चंचलता देखी जाती थी, विदग्ध लोगों में चंचलता का अभाव था। संभोग में ही वीर्य का स्खलन होता था, नागरिकों में धर्म का स्खलन नहीं था। राग के विकारों में ही उतार–चढ़ाव (भंगुरत्व) होता था, प्रजाओं में कुटिलता नहीं थी।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

---

[1]. प्रस्तुत अंश में संगीत के गान्धार, मूर्च्छा आदि स्वरों के उल्लेख से महाकवि का संगीत विषयक गहनज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

विशेष–(i) तात्कालिक उत्कृष्ट सामाजिक एवं राजनैतिक चित्र को प्रस्तुत किया गया है, जिससे कवि की राजनैतिक अभिरुचि भी अभिव्यंजित हुई है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **जाति**– पुष्प विशेष, जाति, वर्ण। **शृंगार**– हाथी का आभूषण, सजावट। **दुर्वर्ण**– चाँदी, तेज रहित। **गान्धार**– संगीत में स्वर विशेष, सिन्दूर। **खर्म**– पौरुष, परम्परागत अशुद्धि। **मूर्च्छा**– संगीत में आरोह–अवरोह आदि स्वर विशेष, संज्ञानाश। **अम्बर**– वस्त्र, आकाश। **वृष**– धर्म, वीर्य। **भंगुरत्व**– कुटिलता, उतार–चढ़ाव।

अवतरणिका– इसी क्रम में फिर से कवि कहता है कि–

(53) अनङ्गता कामदेवे न परिजने, मारागमो यौवनोदयेषु न प्रकृतिषु, द्विजाघातः सुरतेषु न प्रजासु, रसनाबन्धो रतिकलहेषु न दानानुमतिषु, अधररागता तरुणीषु न परिजनेषु, कर्तनमलकेषु न पुरन्ध्रीषु, निस्त्रिं–शत्वमसिषु न मनस्सु, करवालनाशो योधेषु न जनपदेषु, पुरमेवं व्यवस्थितम्।

पदच्छेद– अनङ्गता कामदेवे न परिजने, मारागमो यौवनोदयेषु न प्रकृतिषु, द्विजाघातः सुरतेषु न प्रजासु, रसनाबन्धो रतिकलहेषु न दानानुमतिषु, अधर–रागता तरुणीषु न परिजनेषु, कर्तनम् अलकेषु न पुरन्ध्रीषु, निस्त्रिंशत्वम् असिषु न मनस्सु, करवाल–नाशो योधेषु न जनपदेषु, पुरम् एवम् व्यवस्थितम्।

अनुवाद– कामदेव में ही अंगराहित्य था[1], परिजनों में असाध–नता नहीं थी। 'काम' (सेक्स) का उदय यौवन में ही होता था, प्रजाओं

---

[1]. कामदेव को भस्म करने के बाद शिव ने ही बाद में उसे शरीररहित रूप में जीवित रहने का वरदान प्रदान किया था। इसीलिए उसका एक नाम 'अनंग' भी है।

में हत्या का उदय नहीं था। रतिकाल में ही 'दन्तक्षत' होता था, प्रजाओं में द्विजों की हत्या नहीं की जाती थी। रति विषयक कलहों में ही रसना से प्रियतमों का बन्धन होता था, दान देने में किसी की जिह्वा का बन्धन नहीं होता था।

रमणियों के अधर में ही रागता देखी जाती थी, परिजनों में नीच लोगों के प्रति अनुराग का भाव नहीं था। स्त्रियों में ही बालों का काटना होता था, उनमें अनुराग (प्रेम) का अभाव नहीं था। तलवारों में ही तीस अंगुल से अधिक का परिमाण देखा जाता था, प्रजाओं के मन में किसी प्रकार की क्रूरता का भाव नहीं था। योद्धाओं में ही तलवार का नाश होना सुनिश्चित था, जनपदों में हाथ का नाश या बालकों की हत्या नहीं की जाती थी।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) 'खर्माभाव' का अभिप्राय यहाँ परम्परागत अशुद्धि अथवा पौरुष के अभाव से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) प्रस्तुत गद्य में स्वरों के आरोह, अवरोह, गीतों में राग, मूर्च्छा स्वर, रागों में गान्धार स्वर का उल्लेख करने से महाकवि के संगीतविषयक गहन की पुष्टि हुई है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **मार**– काम, हत्या। **द्विज**– दाँत, ब्राह्मण वर्ण। **अधर**– ओष्ठ, नीच व्यक्ति। **रागता**– अनुराग, लालिमा। **कर्तन**– काटना, प्रेम का अभाव। **निस्त्रिंश**– तीस से अधिक परिणाम, क्रूरता। **करवाल**– तलवार, हाथ या बालक।

(iv) बूढ़े हाथियों की 'शृंगार' आभूषण विशेष की हानि के कथन से तात्कालिक समाज में युवा हाथियों को सजाने–संवारने की परम्परा का पता चलता है।

(अनङ्गवतीवर्णनम्)

अवतरणिका– कुसुमपुर की शासन–व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करने के बाद, महाकवि श्रृंगारशेखर की महिषी अर्थात् पटरानी अनंगवती के विषय में कहते हैं कि–

(54) तस्य चाभूदेवंविधस्य राज्ञो महिषी दिग्गज–मदरेखेवानन्दितालिगणा, पार्वतीव सुकुमारा चन्द्रलेखा–लङ्कृता च, वनराजिरिव नवमालिकोद्भासिता सचित्रका च, अप्सरः संहतिरिव संहतसुकेशी समंजुघोषा च, सर्वान्तःपुर–प्रधानभूता अनङ्गवती नाम।

पदच्छेद– तस्य च अभूत् एवंविधस्य राज्ञः महिषी दिग्गज–मद–रेखा इव आनन्दित–अलिगणा, पार्वती इव सुकुमारा चन्द्रलेखा–अलङ्कृता च, वनराजिः इव नवमालिका–उद्भासिता सचित्रका च, अप्सरः संहतिः इव संहत–सुकेशी समंजु–घोषा च, सर्व–अन्तःपुर–प्रधानभूता अनङ्गवती नाम।

अनुवाद– इसप्रकार के उस राजा की सम्पूर्ण अन्तःपुर में प्रधान, भ्रमरसमूह को आनन्दित करने वाली दिग्गजों की मदलेखा के समान, अपनी सभी सखियों के समूह को आनन्द प्रदान करने वाली, कार्तिकेय से युक्त, चन्द्रलेखा से अलंकृत पार्वती के समान, अत्यन्त कोमल 'चन्द्रलेखा' नामक दन्तक्षत[1] विशेष से सुशोभित, नवमालिका नामक लता विशेष एवं चित्रक नामक वृक्ष विशेष से अलंकृत, वनपंक्ति के समान, नूतन माला और तिलक से सुशोभित, घने सुन्दर केश और

---

[1]. कामशास्त्र में दन्तक्षत एवं नखक्षत का विशेषरूप से उल्लेख हुआ है। दन्तक्षत के भी एक प्रकार 'चन्द्रलेखा' जो अत्यन्त दयापूर्वक किया जाता था, इनसे चिह्नित होने पर स्त्रियाँ स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती थीं। इसीलिए इनका प्रदर्शन भी किया जाता था, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

मधुर स्वर वाली अप्सराओं के समान सुन्दर केश और मधुर स्वर वाली अनंगवती नाम की महिषी थी।

'चन्द्रिका'– राजा शृंगारशेखर की पटरानी का नाम अनंगवती था, जो अन्तःपुर की दूसरी सभी रानियों में प्रमुख थी, जिसप्रकार दिग्गजों के गण्डस्थलों पर स्थित मद की रेखा अपनी गन्ध के कारण भ्रमरों के समूह को आनन्दित करती है, उसीप्रकार वह अपनी सखियों के समूह को अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से आनन्दित करने वाली थी। (उपमा)

इसीप्रकार वह अपने पुत्र कार्तिकेय तथा चन्द्रमा की कला से सुशोभित पार्वती के समान (उपमा) अत्यन्त सुकोमल अंगों से युक्त, रतिक्रिया में प्राप्त होने वाले 'चन्द्रलेखा' नामक दन्तक्षत विशेष से अलंकृत थी, जिसप्रकार वन की पंक्ति नवज्योत्स्ना नाम की लता विशेष तथा तिलक नाम के वृक्ष विशेष से सुशोभित थी, वैसे ही अनंगवती नयी बनायी हुई माला धारण करने तथा माथे पर तिलक लगाने के कारण शोभायमान थी (उपमा)। इसके अतिरिक्त वह घने तथा निर्मल केशपाश और मधुर स्वर वाली अप्सराओं के समूह (संहति) के समान (उपमा) घने एवं स्वच्छ केशों से युक्त, मधुर वाणी से युक्त थी।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में महाकवि द्वारा उपमा एवं श्लेष के माध्यम से अर्थाभिव्यक्ति की गयी है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– आलिगण**– भ्रमरों का समूह, सखियों का समूह। **सुकुमार**– कार्तिकेय, अत्यन्त कोमल। **चन्द्रलेखा**– दन्तक्षत विशेष, चन्द्रमा की लेखा। **नवमल्लिका**– नवमालिका लता, नूतन माला। **चित्रक**– वृक्ष विशेष, माथे का तिलक।

(iii) 'चन्द्रलेखा' दन्तक्षत विशेष का उल्लेख करने से महाकवि का कामशास्त्रीय गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) इसीप्रकार 'नवमालिका' (नवज्योत्स्ना) लता तथा 'चित्रक' नामक वृक्षविशेष का कथन करने से कवि का वनस्पति–विज्ञान विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(वासवदत्तावर्णनम्)

अवतरणिका– शृंगारशेखर की महिषी का प्रभावी वर्णन करने के बाद, महाकवि इन दोनों की पुत्री तथा प्रस्तुत काव्य की नायिका वासवदत्ता के सौन्दर्य का प्रस्तुतीकरण करते हुए कहते हैं कि–

(55) तयोश्च मध्यमोपान्ते वयसि वर्तमानयोः कथमपि दैववशात्,त्रिभुवनविलोभनीयाकृतिः, पुलोमतनयेवा–नन्दितसहस्र नेत्रा, मेरुगिरिमेखलेव सुजातरूपा, शरन्निशेव उल्लसत्तारका, सत्परिषदिव अच्छिद्रद्विजपङ्क्तिभूषिता, राक्षसकुललक्ष्मीरिव माल्यवत्सुकेशशोभिता, तनयाऽभूत् वासवदत्ता नाम।

अथ सा रावणभुजवन इव उल्लसितगोत्रे, विन्ध्या–चल इव मदनालङ्कृते, पारावार इव संजातलावण्ये, नन्दनवन इव सदाकल्पतरुणाभिनन्दिते,पवन इव सुमनोहरे, परिणाममुपयात्यपि यौवने परिणयपराङ्मुखी तस्थौ।

पदच्छेद– तयोः च मध्यम–उपान्ते वयसि वर्तमानयोः कथम् अपि दैववशात्, त्रिभुवन–विलोभनीया–आकृतिः, पुलोम–तनया इव आनन्दित–सहस्र–नेत्रा, मेरु–गिरि–मेखला इव सुजात–रूपा, शरन्निशा इव उल्लसत् तारका, सत्परिषद् इव अच्छिद्र–द्विज–पङ्क्ति–भूषिता, राक्षस–कुल–लक्ष्मीः इव माल्यवत् सुकेश–शोभिता, तनया अभूत् वासवदत्ता नाम।

अथ सा रावण–भुज–वने इव उल्लसित–गोत्रे, विन्ध्याचले इव मदन–अलङ्कृते, पारावारे इव संजात–लावण्ये, नन्दन–वने इव सदा–

कल्पतरुण–अभिनन्दिते, पवने इव सुमनोहरे, परिणामम् उपयाति अपि यौवने परिणय–पराङ्मुखी तस्थौ।

अनुवाद– उन दोनों की मध्यम अवस्था के अन्तिम भाग में सौभाग्यवश किसी प्रकार 'वासवदत्ता' नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो तीनों लोकों को लुभाने वाली आकृति से सम्पन्न, इन्द्र को आनन्दित करने वाली 'शची' के समान (उपमा) हजारों युवकों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली, सुन्दर स्वर्णयुक्त सुमेरु पर्वत की मेखला के समान(उपमा)सुन्दर रूप वाली, चमकते हुए तारों से सुशोभित शरद् कालीन रात्रि के समान (उपमा), विकसित पुतलियों वाली, दोषरहित द्विजों के समूह से सुशोभित सज्जनों की गोष्ठी के समान(उपमा) छिद्ररहित दाँतों की पंक्ति से विभूषित, माल्यवान् एवं सुकेश नामक राक्षसों से अलंकृत राक्षसकुल की लक्ष्मी के समान (उपमा) माला और सुन्दर केशों से शोभायमान थी।

इसके अतिरिक्त वह पर्वत को उठाने वाली रावण की भुजा के समान (उपमा) अपने कुल को आनन्दित करने वाली, मदन नामक वृक्ष से अलंकृत विन्ध्यपर्वत के समान (उपमा) काम से सुशोभित, उत्पन्न हुए नमक वाले समुद्र के समान (उपमा) लावण्य से युक्त, सदैव कल्पवृक्ष से अभिनन्दन किए गए नन्दन वन के समान (उपमा) उत्तम वेश वाले युवकों द्वारा प्रशंसित, पुष्पों को आनन्दित करने वाले, वायु के समान (उपमा) युवकों के मन को हरण करने वाली थी, किन्तु परिणाम को प्राप्त यौवन वाली होते हुए भी वह विवाह से पराङ्मुख थी।

'चन्द्रिका'– राजा शृंगारशेखर एवं उनकी महिषी अनंगवती को यौवन की अन्तिम अवस्था में सौभाग्य से एक सुन्दर कन्या की प्राप्ति हुई, जिसका नाम वासवदत्ता था, वह तीनों लोकों में लुभाने वाली आकृति से सम्पन्न थी, जिसप्रकार पुलोम की पुत्री इन्द्र की पत्नी

इन्द्राणी हजारों नेत्रों वाले इन्द्र को आनन्दित करती है, वैसे ही यह हजारों लोगों के नेत्रों का आनन्द प्रदान करती थी अर्थात् सभी लोग उसके अद्भुत सौन्दर्य को देखकर आनन्दित होते थे, जिसप्रकार सुमेरु पर्वत की मेखला सुन्दर स्वर्ण से सम्पन्न है, वैसे ही वह अप्रतिम सौन्दर्य से युक्त थी।

वह प्रदीप्त होते हुए नक्षत्रों से युक्त शरद्कालीन रात्रि के समान, मन को हरने वाली नेत्रों की पुतलियों से युक्त थी। पूर्णतया दोष से रहित ब्राह्मणों के समूह से सुशोभित सज्जनों की संगोष्ठी के समान, छिद्रों से रहित सुन्दर दन्तपंक्ति से शोभायमान थी। इसीप्रकार माल्यवान् एवं सुकेश नाम के राक्षसों से सुशोभित राक्षसों की लक्ष्मी के समान वह सुगन्धित माला तथा शोभन केशों को धारण करती थी।

इसके अलावा वह पर्वत को उठाने वाली रावण की भुजा के समान अपने वंश के सभी लोगों को हमेशा ही असीम आनन्द का अनुभव कराने वाले, मदन नाम के वृक्ष से सुशोभित विन्ध्य पर्वत के समान, कामदेव द्वारा सन्तप्त किए जाने वाले, नमक को उत्पन्न करने वाले समुद्र के समान लावण्य वाले, हमेशा ही कल्पवृक्ष के कारण अभिनन्दन किए जाने वाले इन्द्र के नन्दन कानन के समान, सदा उत्तम वेशयुक्त युवकों द्वारा प्रशंसा किए गए, पुष्पों को आनन्दित करने वाले मन्द–मन्द वायु के समान पुरुषों के मन का हरण करने वाले तथा परिपक्वता को प्राप्त होने वाले, **यौवन के आने पर** भी वह विवाह के प्रति पराङ्मुख थी अर्थात् विवाह नहीं करना चाहती थी।

विशेष– (i) प्रस्तुत गद्य में प्रयुक्त 'मध्यम अवस्था' पद से अभिप्राय 'यौवन की अन्तिम अवस्था' से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) यहाँ कवि ने काव्य की नायिका वासवदत्ता के अप्रतिम सौन्दर्य का श्लेष तथा उपमा के माध्यम से आलंकारिक तलस्पर्शी वर्णन किया है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **सहस्रनेत्र–** इन्द्र, सहस्रों युवकों के नेत्र। **सुजातरूपा–** सुन्दर स्वर्णयुक्त, सुन्दर रूप वाली। **तारक–** नक्षत्र, पुतलियाँ। **अच्छिद्र–** निर्दोष, छिद्ररहित। **द्विज–** ब्राह्मण, दाँत। **माल्य-** माल्यवान् राक्षस, माला। **सुकेश–** नामक राक्षस, शोभन केश। **गोत्र-** वंश, पर्वत। **उल्लसित–** उठाना, आनन्दित करना। **लावण्य–** नमक, सौन्दर्य। **कल्प–** कल्पवृक्ष, सुन्दर वेश। **सुमन–** सुन्दर मन, पुष्प।

(iv) प्रस्तुत गद्यखण्ड के अन्तिम वाक्य में यौवनरूप कारण के होने पर भी उसके कार्य, 'विवाह की इच्छा' का निषेध करने से विशेषोक्ति अलंकार[1] का सौन्दर्य विद्यमान है।

(v) दाँतों का छिद्ररहित होना स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है। यद्यपि शास्त्रों में 'छिद्रदन्त' को वैदुष्य का कारण भी कहा गया है। (छिद्रदन्तः क्वचिन्मूर्खः)

(vi) प्रस्तुत अंश के अन्तिम अंश में सप्तमी विभक्ति में प्रयुक्त सभी वाक्यों का यौवन के विशेषणों के रूप में प्रयोग करते हुए, इस प्रकार अर्थ करना होगा। इसप्रकार कामदेव से प्रभावित, अद्भुत लावण्य युक्त, युवकों द्वारा प्रशंसित, उनके मन को हरण करने वाला, यह यौवन वंश के सभी लोगों को आनन्दित करने वाला था।

(वसन्तवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार वासवदत्ता के सौन्दर्य का वर्णन करने के बाद, महाकवि वसन्तऋतु का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(56) **अथैकदा विजृम्भमाणसहकारकोरकनिकुरम्ब-निपतितमधुकरमालामदकलहुङ्कारजनितपथिकजनसंज्वरः, कोमलमलयमारुतोद्धूतचूतप्रसवरसास्वादकषायकण्ठकल–**

---

1 . विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः। काव्यप्रकाश–10/108।

कण्ठकुहूरुतभरितसकलदिङ्मुखः, विकचकमलषण्डनिलीय-मानमत्तहंसकुलकोलाहलमुखरितसकलसरोवरः, परभृतखर-नखरत्रोटिकोटिपाटितपाटलीकुड्मलवृन्तविवरविनिर्गतमधु-धारासारशीकरनिकरसमालब्धदक्षिणसमीरणमारवारणव्रणित-पथिकवधूहृदयतटः मधुमदमुदितकामिनीमुखकमलगण्डूष-शीधुसेकपुलकितबकुलः,मदनरसपरवशविलासिनीतुलाकोटि-विकटचटुलचरणारविन्दमन्दप्रहारहृष्टकङ्कोलितरुशतः, प्रतिदिशमश्लीलप्रायंवैहासिकगीयमानगीतश्रवणोत्सुकषिङ्ग-जनसमारब्धचर्चरीतालाकर्णनमुह्यदनेकपथिकः.......... ।

पदच्छेद– अथ एकदा विजृम्भमाण–सहकार–कोरक–निकुरम्ब–निपतित–मधुकर–माला–मद–कल–हुङ्कार–जनित–पथिकजन–संज्वरः, कोमल–मलय–मारुत–उद्धूत–चूत–प्रसव–रसास्वाद–कषाय–कण्ठ–कल–कण्ठ–कुहू–रुत–भरित–सकल–दिङ्–मुखः, विकच–कमल–षण्ड–निलीयमान–मत्त–हंसकुल–कोलाहल–मुखरित–सकल–सरोवरः, परभृत–खर–नखर–त्रोटि–कोटि–पाटित–पाटली–कुड्मल–वृन्त–विवर–विनिर्गत–मधुधारा–सार–शीकर–निकर–समालब्ध–दक्षिण–समीरण–मार–वारण–व्रणित–पथिक–वधू–हृदय–तटः मधुमद–मुदित–कामिनी–मुख–कमल–गण्डूष–शीधु–सेक–पुलकित–बकुलः, मदन–रस–परवश–विलासिनी तुला–कोटि–विकट–चटुल–चरण–अरविन्द–मन्द–प्रहार–हृष्ट–कङ्–कोलित–रुशतः, प्रतिदिशम् अश्लील–प्रायम् वैहासिक–गीयमान–गीत–श्रवण–उत्सुक–षिङ्गजन–समारब्ध–चर्चरी–ताल–आकर्णनम्[1] उह्यत् अनेक–पथिकः.......... ।

अनुवाद– इसके पश्चात् एक बार वसन्त काल आया, जो विकसित आम्रमंजरियों के समूह पर मंडराती हुई भौंरों की पंक्तियों की मतवाली गुंजार से पथिकजनों में सन्ताप उत्पन्न करने वाला, मन्द मलय पवन से हिलती हुई आम्रमंजरियों के रस के आस्वादन से कषाय

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि का संगीत विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

कण्ठयुक्त कोयलों की 'कुहू' ध्वनि से सभी दिशाओं को परिपूरित करने वाला, विकसित कमल के वनों में छिपे हुए मतवाले हंसों के समूह के कोलाहल से सम्पूर्ण सरोवर के शब्दायमान करने वाला, कोयलों के तीखे नखों तथा चोंच के अग्रभाग से विदीर्ण पाटल(लाल) वर्ण की कलियों के समूह के छिद्रों से निकले मधुर पुष्परस के कणों से संयुक्त दक्षिण वायुरूपी कामदेव(रूपक)द्वारा पथिकों की वधुओं के हृदय को व्यथित करने वाला, मद्यपान से मतवाली सुन्दरियों के मुखरूपी कमल(रूपक)द्वारा कुल्ली करने से केसर वृक्षों को पुलकित करने वाला, कामरस के वशीभूत हुई विलासिनियों के नूपुरों से सुन्दर तथा चंचल चरण–कमल के धीमे प्रहार से सैंकड़ों अशोक के वृक्षों को मुकुलित कर देने वाला, प्रत्येक दिशा में विदूषकों द्वारा गाए जाने वाले अश्लील प्रायः गीतों को सुनने के लिए उत्सुक विटजनों द्वारा आरम्भ की गयी चर्चरी ताल[1] को सुनने से अनेक पथिकों को मूर्च्छित करने वाला था।

'चन्द्रिका'– वसन्तकाल के स्त्री–पुरुषों, पेड़, पौधों, अन्य प्राणियों पर पड़ने वाले कामोद्दीपक प्रभाव का उल्लेख किया है। अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) वसन्त ऋतु के उपर्युक्त वर्णन से महाकवि के प्राणि, वनस्पति, व्याकरण, संगीत, आयुर्वेद एवं ऋतुओं से सम्बन्धित सूक्ष्म प्रयोगों से इनके गहन ज्ञान की पुष्टि हुई है।

(ii) वसन्त के समय में आम्र की मंजरी आती हैं, जो भ्रमरों एवं कोयलों को अत्यन्त प्रिय होती हैं, इन दोनों के ही मधुरस्वर को काम के सन्ताप में वृद्धि करने वाला माना गया है।

---

[1]. संगीत की विशेष ताल को चर्चरी कहते हैं। नाटककार कालिदास ने भी इसके विषय में उल्लेख किया है।

(iii) वसन्तकाल में दक्षिण दिशा से सुगन्धित मलयानिल प्रवाहित होता है, जो विदेश से लौट रहे पथिकों की वधुओं के काम–संताप को बढ़ाने वाला है।

(iv) संस्कृत कवियों में मान्यता है कि केसर तथा अशोक के वृक्ष मद्यपान करके कामिनियों की कुल्ली से पुष्पित होते हैं, जिसका कवि ने यहाँ उल्लेख किया है, उनके पुलकित होने से मानवीकरण किया गया है।

अवतरणिका– इसी क्रम में पुनः महाकवि कहते हैं कि–

(57) दुर्जन इव सतामरसः, दुष्कुल इव जातिहीनः, रावण इवापीतलोहितपलाशशतसेवितः,महाश्रृङ्गारीव सुगन्धवहः, सुराजेव समृद्धकुवलयः, वास्तुक इव विवर्धितसुखाशः, सत्कविकाव्यबन्ध इव अनवद्धतुहिनपातः, सत्पुरुष इव दोषानुबन्धरहितः, कैवर्त्त इव बद्धराजीवोत्पलसालः, समृद्ध–कासारशकुनिसार्थ इव निन्दितमरुबकः, शुक्र इवेन्द्राणी–रुचिरः, महावीर इवाधरीकृतदमनकः, षिङ्ग इवाम्लानसुभगो वसन्तकाल आजगाम।

पदच्छेद– दुर्जनः इव सताम् अरसः, दुष्कुलः इव जाति–हीनः, रावणः इव आपीत–लोहित–पलाश–शत–सेवितः, महाश्रृङ्गारी इव सुगन्ध–वहः, सुराजा इव समृद्ध–कुवलयः, वास्तुकः इव विवर्धित–सुखाशः[1], सत्कवि–काव्य–बन्धः इव अनवद्ध–तुहिन–पातः, सत्पुरुषः इव दोष–अनुबन्ध–रहितः, कैवर्त्तः इव बद्ध–राजीव–उत्पल–सालः, समृद्ध–कासार–शकुनि–सार्थः इव निन्दित–मरुबकः, शुक्रः इव इन्द्राणी–रुचिरः, महावीरः इव अधरीकृत–दमनकः, षिङ्ग इव अम्लान–सुभगः वसन्त–कालः आजगाम।

---

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि का ऋतुविज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

अनुवाद– वह (वसन्तकाल) सज्जनों के लिए, अप्रिय दुर्जन के समान (उपमा) कमल से युक्त था। जाति से विहीन दुष्टकुल में उत्पन्न हुए व्यक्ति के समान(उपमा), मालती के पुष्पों से रहित था। रक्त का भलीप्रकार पान करने वाले राक्षसों से युक्त, रावण के समान (उपमा) कुछ श्वेत तथा कुछ लाल रंग के सैंकड़ों पलाश के वृक्षों से शोभायमान था। इसीप्रकार सुगन्ध को धारण करने वाले महाकामुक के समान(उपमा), सुगन्धित मलय पवन को धारण करने वाला था।

समृद्ध भूमण्डल से युक्त श्रेष्ठ राजा के समान(उपमा) प्रचुर कमलों से सम्पन्न था। सुख की अभिलाषा को बढ़ाने वाले ऋतुविज्ञानी के समान(उपमा), काम की अभिलाषा में वृद्धि करने वाला था। निरर्थक तु, हि इत्यादि निपातों के प्रयोग से रहित, श्रेष्ठ कवि के काव्यबन्ध के समान शीतल हिमयुक्त वायु के संचार से रहित था। बाँधे गए राजीव, उत्पल एवं साल नामक मत्स्य विशेष से युक्त मछुआरों के समान (उपमा)कमल, कमलिनी एवं साल नामक वृक्षों से सम्पन्न था।

मरुस्थल में विद्यमान बगुलों का उपहास करने वाले सरोवरों में स्थित पक्षीसमूह के समान, (उपमा)'मरुवक' नामक ओषधि विशेष का तिरस्कार करने वाला था। इन्द्राणी को रुचिकर लगने वाले, इन्द्र के समान(उपमा) सिन्धुवार नामक ओषधि विशेष से मनोहर था। प्रतिपक्षी का तिरस्कार करने वाले महान् योद्धा के समान(उपमा), जो दमनक नामक पुष्पविशेष को तिरस्कृत करने वाला था। हमेशा प्रसन्न रहने वाले, सौभाग्यशाली कामुक के समान, 'महासहा' नामक लताविशेष से सुशोभित वसन्त काल आ गया।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) 'मरुवक' एवं 'सिन्धुवार' ओषधियों का उल्लेख करने से महाकवि का वनस्पति–विज्ञान के साथ–साथ गहन आयुर्वेद विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) ध्यातव्य है कि कवि का मन प्रकृति के मनभावन चित्रण में अत्यधिक रमा है, उन्होंने प्रकृति के प्रत्येक उपादान भ्रमर, कोयल, हंस, मत्स्य, वायु, कमल, मालती लता, पलाश, साल वृक्ष, सिन्धुवार, मरुवक ओषधि–विशेष आदि के अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक चित्ताकर्षक चित्र प्रस्तुत किए हैं, उपर्युक्त वर्णन इस कथ्य की पुष्टि करता है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– जाति– मालती पुष्प, जाति। **लोहित–** रक्त, लाल। **सुगन्धवह–** वायु, सुगन्ध को धारण करने वाला। **कुवलय–** भू मण्डल, कमल। **तुहिन–** हिम, तु और हिन निपात। **अनवबद्ध–** निरर्थक, संचार रहित। **दोषानुबन्ध–** रात्रि से जुड़ा, दोषों से सम्बन्धित। **राजीवोत्पलसाल–** मत्स्य विशेष, कमल, कमलिनी, साल वृक्ष। **मरुबक–** मरुस्थल के बगुले, ओषधि विशेष। **इन्द्राणी–** इन्द्र की पत्नी, सिन्धुवार नामक ओषधि विशेष। **दमनक–** पुष्प विशेष, प्रतिपक्षी। **अधरीकृत–** तिरस्कृतकार। **अम्लान–** प्रसन्न, महासहा नामक ओषधि विशेष।

अवतरणिका–इसी वसन्तकाल का वर्णन करते हुए ही महाकवि सुबन्धु पुनः कहते हैं कि–

(58) अतिदूरप्रवृद्धेन मधुना जगति न को वा न विक्रियते, यदतिमुक्तको मुनिरपि विचकास। कुसुमशरस्य नवचूतप्रसवशरमूले निलीयमानामधुकरावलिर्नामाक्षरपङ्क्ति–रिव रेजे। वृन्तविनिर्गतविकचविचिकिलकलिकाविवरे मंजुगुंजन् मधुकरो मकरकेतोस्त्रिभुवनविजयप्रयाणशङ्ख–ध्वनिमिव चकार। नवयावकपङ्कपल्लवितसनूपुरतरुणी–चरणप्रहारानुरागवशान्नवकिसलयच्छलेन तमिव रागमुद्वह–दशोकः, मधुरमधुपरिपूरितकामिनीमुखकमलगण्डूषसेकादिव तद्रसगन्धमात्मकुसुमेषु बिभ्रद्बकुलतरू रराज।

पदच्छेद–अतिदूर–प्रवृद्धेन मधुना जगति न कः वा न विक्रियते, यद् अतिमुक्तकः मुनिः अपि विचकास। कुसुमशरस्य नव–चूत– प्रसव-शरमूले निलीयमाना मधुकरावलिः नाम–अक्षर–पङ्क्तिः इव रेजे। वृन्त-विनिर्गत–विकच–विचिकिल–कलिका–विवरे मंजु–गुंजन् मधुकरः मकरकेतोः त्रिभुवन–विजय–प्रयाण–शङ्ख–ध्वनिम् इव चकार। नव-यावक–पङ्क–पल्लवित–स–नूपुर–तरुणी–चरण–प्रहार–अनुराग–वशात् नव–किसलय–छलेन तम् इव रागम् उदवहद् अशोकः, मधुर–मधु-परिपूरित–कामिनी–मुख–कमल–गण्डूष–सेकात् इव तत् रस–गन्धम् आत्म–कुसुमेषु बिभ्रद्–बकुल–तरू–रराज।

अनुवाद– अत्यधिक बढ़े हुए नशे के समान (उपमा), चारों ओर फैले हुए वसन्त द्वारा संसार में भला कौन ऐसा है, जिसमें कामविकार उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि इस समय तो मोक्ष चाहने वाला मुनि भी विषयों की ओर आकर्षित हो जाता है। नयी आम्रमंजरी के मूल में छिपी हुई भौंरों की पंक्ति इसप्रकार सुशोभित हो रही थी, मानो कामदेव के बाणों में उसके नाम की वर्णमाला अंकित की गयी हो(उत्प्रेक्षा)। डण्ठलों से निकलकर ऊपर की ओर फैली, विकसित 'विचकिल' नामक लता की कलियों के छिद्रों में मधुर गुंजार करता हुआ भ्रमर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो कामदेव की तीनों लोकों की विजय–यात्रा के समय शंख ध्वनि कर रहा हो(उत्प्रेक्षा)।

अशोक के नूतन रक्तवर्ण के पल्लव इसप्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो नूतन लाक्षारस से रक्तिम नूपुरों वाली युवती के पादप्रहार के अनुराग से नए पत्तों के बहाने उनके पैरों की लालिमा को धारण कर रहा हो(उत्प्रेक्षा)। इसीप्रकार बकुल वृक्ष मधुर मद्य से भरे हुए कामिनी के मुखरूपी कमल के कुल्लों के सींचने से मानो उसकी गन्ध को धारण करता हुआ सुशोभित हुआ (उत्प्रेक्षा)।

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष–(i) उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत काव्य में कवि ने अनेक प्रकार की विविध गुणसम्पन्न लताओं का उल्लेख किया है, जिससे उनके वनस्पति–विज्ञान विषयक गहनज्ञान की प्रतीति पाठक को स्वतः ही हो जाती है।

(ii) वसन्त को कामविकार में वृद्धि करने वाला कहा गया है।

(iii) उपमा एवं उत्प्रेक्षालंकारों के माध्यम से सुन्दर भावाभि–व्यक्ति की गयी है, कवि की मौलिक कल्पनाएँ तलस्पर्शी रही हैं।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि वसन्तऋतु में खिलने वाले अशोक, विचिकिल, नागकेसर तथा पाटिल आदि के पुष्पों के सौन्दर्य तथा लोगों पर होने वाले उनके प्रभावों का सुन्दर वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(59) अन्तरान्तरानिपतितमधुकरनिकरकिर्मीरः कङ्–केलिगुच्छोऽर्धनिर्वाणमनोभवचिताचक्रानुकारी पथिकजन–हृदयदाहमुवाह। विकचविचिकिलराजिरलिकुलशबला कलि–तेन्द्रनीला मुक्तावलीव मधुश्रियो रुरुचे। विरहिणां हृदय–मथनाय कुसुमशरस्य शरशाणचक्रमिव नागकेसरकुसुम–मशोभत। पथिक जनहृदयमत्स्यं ग्रहीतुं मकरकेतोः पलाव पाटलिपुष्पमदृश्यत्।

पदच्छेद– अन्तर–अन्तर–आनिपतित–मधुकर–निकर–किर्मीरः कङ्केलि–गुच्छः अर्ध–निर्वाण–मनोभव–चिता–चक्र–अनुकारी पथिक–जन–हृदय–दाहम् उवाह। विकच–विचिकिल–राजिः अलि–कुल–शबला कलितेन्द्र–नीला मुक्तावली इव मधु–श्रियः रुरुचे। विरहिणाम् हृदय–मथनाय कुसुमशरस्य शर–शाण–चक्रम् इव नागकेसर–कुसुमम् अशोभत, पथिक–जन–हृदय–मत्स्यम् ग्रहीतुम् मकरकेतोः पलाव–पाटलि–पुष्पम् अदृश्यत्।

अनुवाद– बीच–बीच में मंडराते हुए भौंरों के समूह से चित्रित तथा आधी जलकर शान्त हुई कामदेव की गोलाकार चिता का अनुकरण करने वाला, अशोक पुष्प का गुच्छ विरही पथिकों के हृदयों में दाह उत्पन्न कर रहा था। भ्रमरसमूह से विचित्र एवं विकसित 'विचिकिल' नामक पुष्पों की पंक्ति वसन्त–लक्ष्मी के इन्द्रनील मणियों से जटित मोतियों की माला के समान सुशोभित हो रही थी।

नागकेसर के पुष्प विरहियों के हृदयों को मथने के लिए कामदेव के बाणों के 'शाण–चक्र' के समान शोभायमान हो रहे थे। इसीप्रकार पाटिल पुष्प पथिक जनों के हृदयरूपी मछली को पकड़ने के लिए कामदेव के काँटे (कटिए) के समान दिखायी दे रहे थे।

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने वसन्त ऋतु में मँडराते हुए भौंरों वाले अशोक के पुष्प–गुच्छों का विरही पथिकों पर प्रभाव, भ्रमर–समूह से विचित्र प्रतीत होने वाले विचिकिल नामक पुष्पों की श्रेणी का वसन्त की लक्ष्मी के लिए इन्द्रनीलमणि से जड़ी हुई मोतियों की माला की शोभा को धारण करना। इसीप्रकार नागकेसर के पुष्पों का विरही लोगों के हृदयों को विदीर्ण करने के लिए शाणचक्र पर चढ़ाना तथा कामदेव की मछली पकड़ने की कटियारूपी पाटल के पुष्पों का विरही पथिकों के हृदयरूपी मछलियों को पकड़ने की बात का विशेषरूप से कथन किया गया है।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में मछली पकड़ने के कांटे का उल्लेख करने के कारण कवि का मछली पकड़ने विषयक गहनज्ञान एवं अनुभव भी अभिव्यक्त हो रहा है।

(ii) इसीप्रकार इन्द्रनील मणि का उल्लेख करने से कवि का मणि विषयक सूक्ष्मज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(iii) प्राचीन कवियों में मान्यता है कि बकुल, अशोक आदि के वृक्ष कामिनियों के मद्ययुक्त कुल्लों की सुगन्ध से ही पुष्पित होते हैं।

(मलयमारुतवर्णनम्)

अवतरणिका–इसके बाद कवि सुबन्धु वसन्तऋतु में प्रवाहित होने वाले मलय–वायु का प्रभावशाली वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(60) **कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकधम्मिल्लभारबकुलकुसुमपरिमलमेलनसमृद्धमधुरिमगुणः, कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाटसुन्दरीस्तनकलशघुसृण–धूलिपटलपरिमलामोदवाही, रणरणकरसितापरान्तकान्ता–कुन्तलोल्ललनसङ्क्रान्तपरिमलमिलितालिमालामधुरतर–झंकाररवमुखरितनभःस्थलः, नवयौवनरागतरलकेरलीकपोल–पालिपद्मावलीपरिचयचतुरः, चतुःषष्टिकलाकलापविदग्ध–मुग्धमालवनितम्बिनीनितम्बबिम्बसंवाहनकुशलः,सुरतश्रमपर–वशान्ध्रपुरध्रीनीरन्ध्रपीनपयोधरभारनिदाघजलकण–निकरशिशिरितो मलयमारुतो ववौ।**

पदच्छेद– कन्दर्प–केलि–सम्पत्–लम्पट–लाटी–ललाट–तट–लुलित– अलक–धम्मिल्ल–भार–बकुल–कुसुम–परिमल–मेलन–समृद्ध–मधुरिम–गुणः, कामकला–कलाप–कुशल–चारु–कर्णाट–सुन्दरी–स्तन–कलश– घुसृण–धूलि–पटल–परिमल–आमोदवाही, रण–रणक–रसित–अपरान्त–कान्ता–कुन्तल–उल्ललन–सङ्क्रान्त–परिमल–मिलित–अलि–माला–मधुरतर–झंकार–रव–मुखरित–नभःस्थलः, नवयौवन–राग–तरल–केरली–कपोल–पालि–पद्मावली–परिचय–चतुरः,चतुःषष्टि–कला–कलाप –विदग्ध–मुग्ध–मालव–नितम्बिनी–नितम्ब–बिम्ब–संवाहन–कुशलः,सुरत –श्रम–परवश–आन्ध्र–पुरध्री–नीरन्ध्र–पीन–पयोधर–भार–निदाघ–जल–कण–निकर–शिशिरितः मलय–मारुतः ववौ।

अनुवाद– उस समय दक्षिण दिशा से बहने वाला मलय–पवन प्रवाहित हो रहा था, जो सुरतक्रीड़ा के विलास में लाटप्रदेश की कामिनियों के मस्तक पर लटकते हुए, केशों के जूड़े में लगे हुए मौलसरी के पुष्पों की सुगन्ध के संयोग से बढ़े हुए मन को हरने वाले गुणों वाला हो रहा था, जो कामकलाओं में कुशल, सुन्दर कर्णाटक प्रदेश की रमणियों के स्तनरूपी कलशों पर लगाए गए, कुमकुम के पराग के सम्पर्क के कारण अत्यधिक मनोहर गन्ध को धारण करने वाला था।

जो उत्सुकता से उत्पन्न होने वाले अनुराग से युक्त पश्चिमी घाट की सुन्दरियों के केशों को आन्दोलित करके, संक्रमित हुई सुगन्ध से एकत्र हुई भौंरों की पंक्ति की अत्यन्त मधुर झंकार से आकाश को ध्वनित कर रहा था, जो नए यौवन के अनुराग से चंचल केरल देश की ललनाओं के कपोलों पर पत्रावली बनाने में चतुर था, जो चौंसठ कलाओं में निपुण तथा अद्भुत सौन्दर्य सम्पन्न मालव प्रदेश की स्त्रियों के नितम्ब–मण्डल को शनैः–शनैः दबाने में निपुण था। इसीप्रकार जो सुरतक्रीड़ा के परिश्रम से थकी हुई, आन्ध्रप्रदेश की युवतियों के घने विशाल स्तनों पर पसीने की बूँदों के सम्पर्क के कारण अत्यन्त शीतल हो रहा था।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i)उपर्युक्त अंश से कवि का लाट देश, कर्नाटक प्रदेश, पश्चिमी घाट (अपरान्त देश), केरल, मालव प्रदेश एवं आन्ध्रप्रदेश आदि विविध प्रदेशों की स्त्रियों के स्वभाव, आभूषण तथा परिधानादि विषयक गहन ज्ञान के साथ उनके मनोविज्ञान की भी प्रतीति हो रही है।

(ii) उपर्युक्त वर्णन में कवि ने मालव प्रदेश की रमणियों को चौसठ कलाओं में निपुण तथा अद्भुत सौन्दर्य सम्पन्न बताया है, इस आधार पर उनका इस प्रदेश के प्रति विशेष आकर्षण अभिव्यक्त होने

से निवास स्थान की दृष्टि से उन्हें इस प्रदेश से गहनरूप से जोड़ता प्रतीत हो रहा है।

(iii) अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग हुआ है।

(स्वयंवरवर्णनम्—तत्र मंचवर्णनम्)

अवतरणिका— इसप्रकार वसन्त ऋतु एवं उसमें बहने वाले मलय वायु का विस्तार से वर्णन करने के बाद महाकवि काव्य की नायिका वासवदत्ता के पिता श्रृंगारशेखर द्वारा उसके विवाह के लिए आयोजित किए गए स्वयंवर के मंच का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि—

(61) अत्रान्तरे वासवदत्तासखीजनाद्विदितसुताभिप्रायः श्रृङ्गारशेखरः स्वसुतायाः स्वयंवरार्थमशेषधरणितलभाजां राजपुत्राणामेकत्र मेलनमकरोत्। ततो दग्धकृष्णगुरुपरिम-लामोदमोहितमधुव्रतव्रातबहुलगुमगुमायितमुखरितम्, अति-रभसहासच्छटादीधितिधवलिमपरिमिलितम्, अनेकपरिहास-कथाकलापविदग्धश्रृङ्गारमयजननिचयसमाकुलम्, दह्यमान-महिषाक्षादिसुगन्धिद्रव्यसौरभाकृष्टपुरोपवनषट्पदकुलसमा-कुलम्, अर्जुनसमरमिव नन्दिघोषमुखरितदिगन्तरम्, नृपा-स्थानमिव सराजोपहारम्, तापसाश्रममिव वितानोद्भासितम्, त्रिविष्टपमिव सुमनोऽलङ्कृतं मंचमारुरोह वरारोहा वासवदत्ता।

पदच्छेद— अत्रान्तरे वासवदत्ता—सखीजनात् विदित—सुता—अभिप्रायः श्रृङ्गारशेखरः स्व—सुतायाः स्वयंवरार्थम् अशेष—धरणितल—भाजाम् राजपुत्राणाम् एकत्र—मेलनम् अकरोत्। ततः दग्ध—कृष्ण—अगुरु—परिमल—आमोद—मोहित—मधु—व्रत—व्रात—बहुल—गुमगुमायित—मुखरितम्, अति—रभस—हास—छटा—दीधिति—धवलिम—परिमिलितम्,अनेक—परिहास—

कथा–कलाप–विदग्ध–शृङ्गारमय–जन–निचय–समाकुलम्, दह्यमान–महिषाक्ष–आदि–सुगन्धि–द्रव्य–सौरभ–आकृष्ट–पुर–उपवन–षट्पद–कुल–समाकुलम्, अर्जुन–समरम् इव नन्दि–घोष–मुखरित–दिगन्तरम्, नृप–आस्थानम् इव सराजोपहारम्, तापस–आश्रमम् इव वितान–उद्भासितम्, त्रिविष्टपम् इव सुमनः अलङ्कृतम् मंचम् आरुरोह वरारोहा वासवदत्ता।

अनुवाद– इसी बीच अपनी पुत्री वासवदत्ता के अभिप्राय को उसकी सखियों से जानकर श्रृंगारशेखर ने उसके स्वयंवर के लिए सम्पूर्ण भूमण्डल के राजकुमारों का एक सम्मेलन आयोजित किया। तत्पश्चात् पति का चयन करने वाली वासवदत्ता, जलते हुए काले 'अगरु' की सुगन्ध से मुग्ध हुए भौंरों के समूह के गुंजार से मुखरित हो रहे, दासियों की प्रसन्नता के कारण हास के किरणसमूह से शुभ्र, अनेक प्रकार के हास–परिहास की कथाओं को कहने में कुशल और सजे–धजे लोगों से व्याप्त, प्रज्वलित 'गूगुल' आदि सुगन्धित पदार्थों की सुगन्ध से आकर्षित नगर के उपवनों के भ्रमरों से व्याप्त, 'नन्द' नामक अर्जुन के रथ की ध्वनि से ध्वनित दिशाओं से युक्त, दूसरे राजाओं को प्रदान किए गए उपहारों से सम्पन्न, यज्ञों से सुशोभित तपस्वियों के आश्रम के समान(उपमा) चंदोवों से अलंकृत एवं देवों से विभूषित स्वर्ग के समान(उपमा) पुष्पों से सुसज्जित मंच पर आरूढ़ हुई।

'चन्द्रिका'– कवि का अभिप्राय है कि वासवदत्ता के पिता श्रृंगारशेखर ने उसके विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन किया, जिसके अवसर पर पति का चयन करने वाली वासवदत्ता स्वयंवर के मंच पर आरूढ़ हुई। शेष सभी विशेषताएँ मंच की बतायी गयी हैं कि–

वह मंच वस्तुतः अद्भुत था। जैसे–वह काले अगरू की सुगन्ध से प्रसन्न एवं मनोहर भौंरों की मधुर गुँजार से युक्त था। प्रसन्न दासियों की हँसी ठिठोली के कारण उनके शुभ्र दाँतों की कान्ति से

धवल हो रहा था। वहाँ अनेक प्रकार के परिहास में कुशल तथा सजे–धजे लोग विद्यमान थे।

इसके अतिरिक्त गूगुल आदि सुगन्धित पदार्थों के कारण नगर–उपवनों के भ्रमर समूह भी यहाँ आकर मँडरा रहे थे। यहाँ पर इधर–उधर भ्रमण कर रहे लोगों की पादध्वनि ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो अर्जुन के नन्द नामक रथ की ध्वनि हो। यह मंच राजाओं द्वारा लाए गए विविध प्रकार के सुन्दर उपहारों से राजभवन के समान सुशोभित था। यहाँ पर तपस्वियों के आश्रमों में आयोजित किए जाने वाले यज्ञों के अवसरों पर लगाए जाने वाले वितानों अर्थात् तम्बुओं को लगाया गया था। इसे देवों के स्वर्ग के समान विविध प्रकार के पुष्पों से सजाया गया था।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में उपमा एवं श्लेष अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– नन्दिघोष**–नन्द नामक अर्जुन के रथ की ध्वनि, पदचाप ध्वनि। **वितान**– यज्ञ, चंदोवे। **सुमन**– देवता, पुष्प।

(iii) महाकवि के समय में उत्सवों के आयोजन के अवसर पर अगरु तथा गूगल से वातावरण को सुगन्धित करने की परम्परा थी, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(iv) स्वयंवर के मंच को स्वर्ग के समान पुष्पों से सुसज्जित करने तथा देवतुल्य विविध राजकुमारों की उपस्थिति से उसकी महत्ता स्वर्ग के समान बतायी गयी है।

(स्वयंवरागतराजकुमारवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार स्वर्ग के समान स्वयंवर–मंच का विस्तार से वर्णन करने के बाद, महाकवि विविध प्रदेशों से स्वयंवर में आए हुए, राजकुमारों का सूक्ष्मतापूर्वक कथन करते हैं–

(62) तत्र च केचित् कलाङ्कुरा इव विदित-नगरमण्डनाः, अपरे पाण्डवा इव दिव्यचक्षुः कृष्णागुरु-परिमिलिताः, अन्ये शरद्दिवसा इव दूरप्रवृद्धाशाः, इतरे प्रहर्तुमुद्यता इव स्वबलार्थिनः, केचिद् व्याधा इव शकुन-श्रावकाः, केचिदाखेटा सक्ता इव रूपानुसारप्रवृत्ताः, केचि-ज्जैमिनिमतानुसारिण इव तथागतमतध्वंसिनः, केचित्खंजना इव सांवत्सरफलदर्शिनः, केचित् सुमेरुपरिसरा इव कार्तस्वरमयाः, केचित्कुमुदाकरा इव भास्वद्दर्शननिमीलिताः, केचिद्धार्तराष्ट्रा इव विश्वरूपावलोकनजनितेन्द्रजालाद्भुत-प्रत्ययाः, केचिदात्मनि वारणबुद्ध्या बलवन्तोऽपि सुवाहाः, केचित्पाणिग्रहणार्थिनोऽप्यसुकरं मन्यमानाः, केचिदधरीकृता अपि स्थिराः, केचित्पाण्डुपुत्रा इवाक्षहृदयाज्ञानहृतक्षमाः, केचिद् बृहत्कथानुबन्धिन इव गुणाढ्याः, केचित्तिर्यग्गतय इव सुगन्धवाहाः, केचित्कौरवसैनिका इव द्रोणाशासूचकाः, केचित्कुमुदाकरा इवासोढशूरभासः। सा च क्षणेनैकैकशः समवलोक्य विरक्तहृदया सती तस्मात् कर्णीरथादवततार।

पदच्छेद– तत्र च केचित् कला–अङ्कुराः इव विदित–नगर-मण्डनाः, अपरे पाण्डवाः इव दिव्य–चक्षुः कृष्ण–अगुरु–परिमिलिताः, अन्ये शरद्–दिवसाः इव दूर–प्रवृद्ध–आशाः, इतरे प्रहर्तुम् उद्यताः इव स्व-बलार्थिनः, केचिद् व्याधाः इव शकुन–श्रावकाः, केचिद् आखेट–आसक्ताः इव रूप–अनुसार–प्रवृत्ताः, केचित् जैमिनि–मतानुसारिणः इव तथागत-मत–ध्वंसिनः, केचित् खंजनाः इव सांवत्सर–फल–दर्शिनः, केचित् सुमेरु–परिसराः इव कार्तस्वरमयाः, केचित् कुमुदाकराः इव भास्वत् दर्शन–निमीलिताः, केचिद् धार्तराष्ट्राः इव विश्वरूप–अवलोकन-जनित–इन्द्रजाल–अद्भुत–प्रत्ययाः, केचिद् आत्मनि वारण–बुद्ध्या बल-वन्तः अपि सुवाहाः, केचित् पाणि–ग्रहणार्थिनः अपि सुकरम् मन्यमानाः

केचिद् अधरीकृताः अपि स्थिराः, केचित् पाण्डुपुत्राः इव–अक्ष–हृदय–अज्ञान–हृत–क्षमाः, केचिद् बृहत्कथा–अनुबन्धिनः इव गुणाढ्याः, केचित् तिर्यक्–गतयः इव सुगन्ध–वाहाः, केचित् कौरव–सैनिकाः इव द्रोण–आशा–सूचकाः, केचित् कुमुद–आकराः इव असोढ–शूर–भासः। सा च क्षणेन एक–एकशः समवलोक्य विरक्त–हृदया सती तस्मात् कर्णी–रथाद् अवततार।

अनुवाद– उस स्वयंवर में कुछ राजकुमार नगर की वेश्याओं को जानने वाले, चौरशास्त्र[1] के प्रवर्तक मूलदेव के समान(उपमा) सभ्य नागरिक के योग्य आभूषणों से सुशोभित थे। दूसरे धृतराष्ट्र, द्रौपदी तथा गुरु द्रोणाचार्य से युक्त पाण्डवों के समान(उपमा) सुन्दर नेत्रों वाले, अपने शरीर पर काले अगरु का लेप किए हुए थे। उनमें कुछ दूर तक फैली हुई प्रतीत होने वाली दिशाओं से युक्त शरद्कालीन दिवसों के समान(उपमा) वासवदत्ता को प्राप्त करने की अत्यधिक बढ़ी हुई आशाओं वाले थे।

कुछ उत्तम रमणियों को चाहने वाले सुरतार्थियों के समान, अपने बल का प्रदर्शन करने वाले थे। कुछ पक्षियों के शब्दों को सुनने वाले शिकारियों(व्याध) के समान, शुभ शकुन[2] को सुनने वाले थे। कुछ मृगों के पीछे दौड़ने वाले व्याधों के समान (उपमा)सौन्दर्य के अनुसार प्रवृत्त होने वाले थे। कुछ बौद्धों के मत का खण्डन करने वाले, मीमांसकों के समान समयोचित वस्त्राभूषणों को धारण करने वाले राजाओं का उपहास कर रहे थे।

कुछ वर्षभर शुभ एवं अशुभ के विषय में फल का कथन करने वाले खंजन पक्षियों के समान(उपमा), ज्योतिषियों द्वारा बताए गए फल

---

[1]. प्रस्तुत उल्लेख से कवि के 'चौरशास्त्र' विषयक ज्ञान की भी अभिव्यक्ति हुई है। शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में भी इस शास्त्र के विषय में उल्लेख हुआ है।

[2]. इससे महाकवि का शकुनशास्त्र के प्रति विश्वास अभिव्यक्त हुआ है।

की आलोचना कर रहे थे।[1] कुछ स्वर्णमय सुमेरु पर्वत के प्रान्त भाग के समान(उपमा), सुवर्णमय प्रतीत हो रहे थे। कुछ सूर्य को देखने से संकुचित हुए कुमुद वन के समान, तेजस्वियों के दर्शन से आँखों को बन्द किए हुए थे। कुछ श्रीकृष्ण के विश्वरूप का दर्शन करके उत्पन्न होने वाले, इन्द्रजाल के भ्रम से युक्त होकर कौरवों के समान उपस्थित राजकुमारों के सौन्दर्य को देखकर इन्द्रजाल का निश्चय कर रहे थे।

कुछ स्वयं को हाथी मानते हुए भी शक्ति सम्पन्न अश्व थे। कुछ वासवदत्ता के पाणिग्रहण के अभिलाषी होते हुए भी इसे सरल नहीं मान रहे थे। कुछ पृथ्वी शून्य किए हुए भी भूमि ही थे। कुछ द्यूत शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण अपने राज्य को विनष्ट कर देने वाले, पाण्डुपुत्रों के समान, व्यवहार कुशलता की अज्ञानता के कारण अपनी शान्ति को लुप्त कर चुके थे। कुछ गुणाढ्य कवि द्वारा विरचित बृहत् कथा के समान, विशाल गुणों का भण्डार थे।

कुछ सुगन्ध को फैलाने वाले वायु के समान, सुगन्धित पदार्थों को धारण किए हुए थे। कुछ आचार्य द्रोण से विजय की आशा रखने वाले, कौरव सैनिकों के समान द्रोण नामक पुष्प विशेष (कृष्णकाक) से वासवदत्ता की प्राप्ति की आशा करने वाले थे। कुछ सूर्य की कान्ति को सहन न करने वाले, कुमुद वन के समान शूरवीरों का तेज सहन ही नहीं कर पा रहे थे और वह वासवदत्ता क्षणभर में ही उन राजकुमारों में प्रत्येक की ओर देखकर, विरक्त हृदय वाली होकर, उस 'कर्णी' नामक रथ से उतर गयी।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) कवि द्वारा यहाँ चौर्यशास्त्र का प्रवर्तक मूलदेव को बताया गया है,

---

1. प्राचीनकाल में खंजन पक्षी की विविध क्रियाओं के आधार पर इस शास्त्र के वेत्ताओं द्वारा भविष्यवाणियाँ की जाती थीं, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(ii) **द्व्यर्थक पद– मण्डना–** वेश्या, आभूषण। **दिव्यचक्षु–** धृष्टराष्ट्र या कृष्ण, आकर्षक नेत्र। **आशा**–दिशा, आकांक्षा। **स्वबला–** श्रेष्ठ स्त्रियाँ, अपना बल। **शकुन–** पक्षी, संकेत। **रूप**–सौन्दर्य, मृग। **फलदर्शी–** फल को सूचित करने वाले, फल की आलोचना करने वाले। **भास्वद्**–सूर्य, तेजस्वी। **विश्वरूप–** श्रीकृष्ण का विश्वरूप, वासवदत्ता का सौन्दर्य। **अक्षहृदय–** द्यूतशास्त्र, व्यवहार कुशलता। **गुणाढ्य–** गुणों से सम्पन्न, गुणाढ्य कवि। **वाहा–** धारण करने वाले, फैलाने वाले। **द्रोणाशा–** द्रोण से विजय की आशा, कृष्ण काक से वासवदत्ता प्राप्त करने की आशा। **शूर–** सूर्य, शूरवीर।

(iii) उपमा, श्लेष तथा विरोधाभास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है, जिससे कवि के काव्य सृजन की उत्कृष्ट प्रतिभा अभि–व्यंजित हुई है।

(iv) महाकवि ने स्वयंवर में विविध प्रदेशों से आए हुए राज–कुमारों की विशेषताओं का सूक्ष्मतापूर्वक उल्लेख करने के साथ–साथ अपने भी विविध शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित किया है।

(v) राजकुमारों के चिन्तन के आधार के मनोवैज्ञानिक पक्ष की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(वासवदत्तया स्वप्नदृष्टयुवकवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके पश्चात् महाकवि स्वयंवर की उसी रात्रि में वासवदत्ता द्वारा स्वप्न में देखे गए युवक का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(63) अथ तस्यामेव रात्रौ सा स्वप्ने, बालिनमि–वाङ्गदोपशोभितम्, कुहुमुखमिव हारिकण्ठम्, कनकमृगमिव रामाकर्षणनिपुणम्, जयन्तमिव वचनामृतानन्दितवृद्धश्रवसम्, कृष्णमिव कंसहर्षं न कुर्वन्तम्, महामेघमिव विलसत्करकम्, समुद्रमिव महासत्त्वम्, मालिन्या कवरिकया, तुङ्गभद्रनासि–कया, शोणेनाधरेण,नर्मदया वाचा, गोदया भुजया, स्वर्वाहि–

ण्या कीर्त्यां च पुण्यसरिन्मयमिव, आदिकन्दं शृङ्गारपादपस्य, रोहणगिरिं सकुलगुणरत्नसमूहस्य, प्रभवशैलं सुन्दरकन्दर्पकथानदीनाम्, सुरभिमासं वैदग्ध्यसहकारस्य, आदर्शतलं सौजन्यमुखस्य, आदिबीजं विद्यालतानां, कोशगृहं महासौन्दर्यधनस्य, मूलगृहं शीतसम्पदः, स्वयंवृतपतिं कीर्तेः, स्पर्धागृहं लक्ष्मीसरस्वत्योः, त्रिभुवनविलोभनीयाकृतिं कंश्चिद्युवानं ददर्श।

पदच्छेद– अथ तस्याम् एव रात्रौ सा(वासवदत्ता)स्वप्ने, बालिनम् इव अङ्गद–उपशोभितम्, कुहु–मुखम् इव हारि–कण्ठम्, कनक–मृगम् इव राम–आकर्षण–निपुणम्, जयन्तम् इव वचन–अमृत–आनन्दित–वृद्ध–श्रवसम्, कृष्णम् इव कंस–हर्षम् न कुर्वन्तम्, महा–मेघम् इव विलसत् करकम्, समुद्रम् इव महा–सत्त्वम्, मालिन्या कवरिकया, तुङ्ग–भद्र–नासिकया, शोणेन अधरेण, नर्मदया वाचा, गोदया भुजया, स्वः वाहिण्या कीर्त्याम् च पुण्य–सरित्मयम् इव, आदि–कन्दम् शृङ्गार–पादपस्य, रोहण–गिरिम् सकुल–गुण–रत्न–समूहस्य, प्रभव–शैलम् सुन्दर–कन्दर्प–कथा–नदीनाम्, सुरभि–मासम्वैदग्ध्य–सहकारस्य, आदर्श–तलम् सौजन्य –मुखस्य, आदि–बीजम् विद्या–लतानाम्, कोश–गृहम् महा–सौन्दर्य–धनस्य, मूल–गृहम् शीत–सम्पदः, स्वयं–वृत–पतिम् कीर्तेः, स्पर्धा–गृहम् लक्ष्मी–सरस्वत्योः, त्रिभुवन–विलोभनीया–आकृतिम् कंश्चिद युवानम् ददर्श।

अनुवाद– उसके पश्चात् वासवदत्ता ने उसी रात में स्वप्न में तीनों लोकों को लुभाने वाली आकृति वाले किसी युवक को देखा, जो अपने पुत्र अंगद से सुशोभित बालि के समान(उपमा),केयूर नामक आभूषण से अलंकृत था। मनोहारी ध्वनि वाली कोयल के समान (उपमा), गले में हार धारण किए हुए था। राम को आकर्षित करने में निपुण स्वर्णमृग के समान(उपमा), जो कामिनियों को आकृष्ट करने में कुशल था।

अपने वचनरूपी अमृत से अपने पिता इन्द्र को आनन्दित करने वाले जयन्त के समान(उपमा), अपने अमृततुल्य वचनों से विद्वानों को भी आनन्दित करने वाला था। कंस को हर्षित न करने वाले श्रीकृष्ण के समान(उपमा), जो भला किसे हर्षित नहीं करता था? ओलों से सुशोभित विशाल मेघ के समान(उपमा), भुजाओं से सुशोभित था। अनेक प्रकार के प्राणियों से युक्त समुद्र के समान(उपमा), उदार स्वभाव वाला था।

इसके अतिरिक्त माला से युक्त केश–विन्यास वाला, उन्नत, सुन्दर नासिका से सम्पन्न, रक्तिम अधरयुक्त, विलास–संलाप में निपुण वाणी से युक्त, गोदान करने वाली भुजा तथा स्वर्ग तक फैली हुई कीर्ति से सम्पन्न वह, मालिनी, तुंगभद्रा, शोण, नर्मदा, गोदा एवं गंगा इन सभी पवित्र नदियों के संगम के समान(उपमा)था। शृंगाररूपी वृक्ष के मूल आधार के समान (उपमा) वह सुन्दर कामदेव विषयक कथारूपी नदियों का उत्पत्ति–पर्वत था।

वह चातुर्यरूपी(रूपक) आम्र के लिए वसन्त का महीना था, सज्जनतारूपी मुख (रूपक)के लिए दर्पणतल था। विद्यारूपी लताओं (रूपक) के लिए मूलबीज था। महान् सौन्दर्यरूपी धन (रूपक)के लिए कोशगृह था। शीलरूपी सम्पत्ति(रूपक) के लिए प्रधान घर था। कीर्ति का स्वयं वरण किया गया पति था तथा लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का स्पर्धागृह था।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– अंगद–बालिपुत्र, केयूर आभूषण। **हारि**– मनोहारी ध्वनि, हार। **रामा**– राम, युवति। **वृद्धश्रवम्**–इन्द्र, पण्डित। **कंस**– किसे, कंस। **करम्**– ओले, हाथ। **महासत्त्व**– अनेक जीव–जन्तु, उदारस्वभाव। **मालिनी**– नदी, माला। **तुंगभद्रा**–नदी, उन्नत तथा सुन्दर। **शोण**–नद, लाल। **नर्मदा**– नदी, हासयुक्त। **गोदा**– गोदावरी नदी, गोदान, भूमिदान।

(ii) वासवदत्ता द्वारा स्वप्न में देखे गए नायक का हृदयस्पर्शी पराक्रम एवं नखशिख वर्णन किया गया है। कवि की अद्भुत वर्णन-शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण कहा जा सकता है।

(वासवदत्ताविरहवर्णनम्)

अवतरणिका– स्वप्न में युवक को देखने के बाद प्रस्तुत काव्य की नायिका वासवदत्ता के विरह विषयक चिन्तन का प्रभावी एवं सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(64) स चिन्तामणिनाम्नो राज्ञस्तनयः कन्दर्पकेतुरिति स्वप्न एव तन्नामादिकमश्रृणोत्। अनन्तरम् 'अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम्। मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनोत्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणूनादाय विरचितोऽयमिति, अन्यथा कथमिवास्य कान्तिविशेष ईदृशो भवति। वृथैव दमयन्ती नलस्य कृते वनवासवैशसमवाप। मुधैवेन्दुमती महिष्यप्यजानुरागिणी बभूव। विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला। निरर्थकमेव मदनमंजरी नरवाहनदत्तं चकमे। निष्कारणमेव ऊरुगरिमनिर्जितरम्भा रम्भा नलकूबरमचीकमत। व्यर्थमेव धूमोर्णा स्वयं स्वयंवरार्थमागतेषु देवगणेषु धर्मराजमाचकाङ्क्ष। निष्प्रयोजनमेव ऋद्धिर्गन्धर्वयक्षेषु कुबेरमाससाद। अहेतुकमेव पुलोमतनया देवेन्द्रासक्तचित्ता बभूव।

पदच्छेद– सः चिन्तामणि–नाम्नः राज्ञः तनयः कन्दर्पकेतुः इति, स्वप्ने एव तत् नाम–आदिकम् अश्रृणोत्। अनन्तरम् 'अहो प्रजापतेः रूप-निर्माण–कौशलम्। मन्ये, स्वस्य एव नैपुण्यस्य एकत्र दर्शन–उत्सुक-मनसा वेधसा जगत्–त्रय–समवायि–रूप–परमाणून् आदाय विरचितः अयम् इति, अन्यथा कथम् इव अस्य कान्ति–विशेषः ईदृशः भवति। वृथा एव दमयन्ती नलस्य कृते वनवास–वैशसम् अवाप। मुधा एव इन्दुमती महिषी अति अज–अनुरागिणी बभूव। विफलम् एव दुष्यन्तस्य कृते

दुर्वाससः शापम् अनुबभूव शकुन्तला। निरर्थकम् एव मदनमंजरी नरवाहनदत्तम् चकमे। निष्कारणम् एव ऊरु–गरिम–निर्जित–रम्भा नलकूबरम् अचीकमत। व्यर्थम् एव धूमोर्णा स्वयं स्वयंवर–अर्थम् आगतेषु देव–गणेषु धर्मराजम् आचकाङ्क्ष। निष्प्रयोजनम् एव ऋद्धिः गन्धर्व–यक्षेषु कुबेरम् आससाद। अहेतुकम् एव पुलोम–तनया देवेन्द्र–आसक्त–चित्ता बभूव।

अनुवाद– उसने स्वप्न में ही उसके नाम आदि के विषय में सुन लिया कि– 'वह चिन्तामणि नाम के राजा का पुत्र कन्दर्पकेतु है।' इसके बाद, 'अहो, प्रजापति ब्रह्मा का इसप्रकार का रूप–निर्माण कौशल?' मैं तो मानती हूँ कि अपनी ही निपुणता को एक साथ देखने की उत्सुकता से तीनों लोकों के सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूक्ष्म कणों को एकत्र करके, इस युवक का निर्माण किया गया है। नहीं तो, इसकी इसप्रकार की विशेष कान्ति भला कैसे हो सकती है?

व्यर्थ ही दमयन्ती ने नल के लिए वनवास का कष्ट सहन किया अथवा व्यर्थ ही रानी इन्दुमती अज के लिए अनुरागयुक्त हुई। बेकार ही दुष्यन्त के लिए शकुन्तला ने दुर्वासा के शाप को अनुभव किया। निरर्थक ही, मदनमंजरी ने नरवाहनदत्त की अभिलाषा की। अकारण ही अपनी जंघाओं के सौन्दर्य से केले के तने को तिरस्कृत करने वाली, रम्भा नामक अप्सरा ने नलकूबर की चाहना की। व्यर्थ ही धूमोर्णा ने स्वयं ही स्वयंवर के लिए आए हुए, देवताओं में से धर्मराज की आकांक्षा की। इसीप्रकार प्रयोजन के अभाव में ही ऋद्धि ने गन्धर्व एवं यक्षों में कुबेर को प्राप्त किया, बिना किसी कारण के ही पुलोम की पुत्री शची, इन्द्र के प्रति आकृष्ट चित्त वाली हुई।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में महाकवि का महाभारत, पुराण तथा कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का गहन अध्ययन अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि उक्त सभी कथाएँ हमें इन्हीं स्थलों पर मिलती हैं।

(ii) ध्यातव्य है कि महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यान में दुर्वासा के शाप जैसी घटना का उल्लेख न होने से यह पंक्ति कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् को ही आधार बनाकर कही गयी है। इस दृष्टि से हमने सुबन्धु को नाटककार कालिदास का परवर्ती माना है।[1]

(iii) प्रस्तुत गद्यांश में कवि ने नल–दमयन्ती, अज–इन्दुमती, दुष्यन्त–शकुन्तला, नरवाहन–मदनमंजरी, नलकूबर–रम्भा, धर्मराज–धूमोर्णा, कुबेर–ऋद्धि तथा इन्द्र–पुलोमपुत्री शची के आख्यानों का उल्लेख किया गया है, जिससे कवि की महाभारतादि इतिहास ग्रन्थों एवं कथाग्रन्थों की अध्ययनशीलता विषयक सूक्ष्मदृष्टि अभिव्यंजित हुई है।

अवतरणिका– इसी क्रम में पुनः महाकवि कहते हैं कि–

(65) इति बहुविध चिन्तयन्ती, विरहमुर्मुरमध्यमधिरूढेव, मदनदावाग्निशिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्निगृहीतेव, दक्षिणमारुतरुद्रपावकग्रस्तेव, उन्मादपातालगृहं प्रविष्टेव, शून्यकरणग्रामेव वर्तमानाः, हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलितमिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपंजरप्रविष्टमिव, मर्मान्तरस्थितमिव, मज्जारसशवलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पललसंविभक्तमिव, कन्दर्पकेतुं मन्यमाना, उन्मत्तेव, अन्धेव, बधिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छागृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव, यौवनसागरतरलतरङ्गपरम्परापरिगतेव, रागरज्जुभिः परिवारितेव, कन्दर्पकुसुमबाणैः कीलितेव, शृङ्गारभावनाविषरसघूर्णितेव, रूपपरिभावनशल्यकीर्तितेव, मलयानिलापहृतजीवितेव भवन्ती, 'हा प्रिये, सख्यनङ्गलेखे! वितर हृदये मे पाणिपद्मम्, दुःसहो विरहसन्तापः।

---

[1]. द्रष्टव्य, भूमिका, सुबन्धु का काल, पूर्ववर्ती सीमा– पृष्ठ 37 ।

पदच्छेद– इति बहु–विध–चिन्तयन्ती, विरह–मुर्मुर–मध्यम् अधिरूढा इव, मदन–दावाग्नि–शिखा–कवलिता इव, वसन्त–काल–अग्नि–गृहीता इव, दक्षिण–मारुत–रुद्र–पावक–ग्रस्ता इव, उन्माद–पाताल–गृहम् प्रविष्टा इव, शून्य–करण–ग्रामा इव वर्तमानाः, हृदये विलिखितम् इव, उत्कीर्णम् इव, प्रत्युप्तम् इव, कीलितम् इव, निगलितम् इव, वज्र–लेप–घटितम् इव, अस्थिपंजर–प्रविष्टम् इव, मर्मान्तर–स्थितम् इव, मज्जा–रस–शवलितम् इव, प्राण–परीतम् इव, अन्तः आत्मानम् अधिष्ठितम् इव, रुधिर–आशये द्रवीभूतम् इव, पलल–संविभक्तम् इव, कन्दर्पकेतुम् मन्यमाना, उन्मत्ता इव, अन्धा इव, बधिरा इव, मूका इव, शून्या इव, निरस्त–इन्द्रिय–ग्रामा इव, मूर्च्छा–गृहीता इव, ग्रह–ग्रस्ता इव, यौवन–सागर–तरल–तरङ्ग–परम्परा–परिगता इव, राग–रज्जुभिः परिवारिता इव, कन्दर्प–कुसुम–बाणैः कीलिता इव, श‍ृङ्गार–भावना–विष–रस–घूर्णिता इव, रूप–परिभावन–शल्य–कीर्तिता इव, मलय–अनिल–अपहृत–जीविता इव भवन्ती, 'हा प्रिये, सखि, अनङ्गलेखे! वितर हृदये मे पाणि–पद्मम्, दुःसहो विरह–सन्तापः। (उत्प्रेक्षा)

अनुवाद– इसप्रकार अनेक प्रकार से विचार करती हुई, वियोग रूपी तुषानल में मानो प्रविष्ट हुई(रूपक, उत्प्रेक्षा)। **कामरूपी दावानल की ज्वालाओं में मानो व्यथित हुई**(रूपक,उत्प्रेक्षा)। **वसन्तरूपी कालाग्नि द्वारा मानो ग्रहण की गयी**(रूपक, उत्प्रेक्षा)। **दक्षिण पवनरूपी शंकर के तीसरे नेत्र की अग्नि से मानो जकड़ी हुई**(रूपक, उत्प्रेक्षा)। **उन्मादरूपी पाताल में मानो प्रविष्ट हुई**(रूपक, उत्प्रेक्षा)। **वह वस्तुतः निष्क्रिय इन्द्रियों के समूह के साथ ही मानो स्थित थी**(रूपक, उत्प्रेक्षा)।

उस समय वह कन्दर्पकेतु को अपने हृदय में चित्रित सा, खुदा हुआ सा, जड़ा हुआ सा, कील से ठोका हुआ सा, श‍ृंखला (जंजीर) से जकड़ा हुआ सा, मानो वज्र के लेप से चिपकाया हुआ, अस्थिपंजर में प्रविष्ट हुआ सा, कोमल अन्तःकरण में विराजमान हुआ सा, मज्जा के रस में मिला हुआ सा, प्राणों से घिरा हुआ सा, अन्तरात्मा में अधिष्ठित

हुआ सा, रक्त में मानो घुला हुआ, मानो मांस में मिला हुआ सा मानो हुई (यहाँ तक उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है)

वह वासवदत्ता उन्मत्त के समान, अन्धी के समान, बहरी के तुल्य, गूँगी के समान, निश्चेष्ट के समान, निष्क्रिय इन्द्रियों वाली के समान, चेतना शून्य के समान, अनिष्टकारी ग्रह से ग्रसिता के समान, (यहाँ तक उपमालंकार) यौवनरूपी समुद्र की चंचल तरल तरंगों के समूह की परम्परा से घिरी हुई के समान, प्रेमरूपी रस्सी से बँधी हुई के समान, कामदेव के पुष्पबाणों से बिंधी हुई के समान, शृंगारभावना रूपी विषरस से व्याकुल हुई सी, सौन्दर्यरूपी कील से कीलित की हुई के समान, मलय पवन द्वारा अपहरण की गयी प्राणों वाली (मृतप्राय) के समान, (उसके बाद यहाँ तक रूपक, उपमालंकार) हाय प्रिय सखी, अनंगलेखा! मेरे हृदय पर अपने हाथरूपी कमल को रखो, यह विरह सन्ताप अब सहन नहीं हो रहा है।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष– (i) वासवदत्ता की विरह वेदना एवं दयनीय दशा का चित्रात्मक वर्णन स्त्री मनोविज्ञान पर आधारित अत्यन्त प्रभावी शैली में किया गया है।

(ii) उपर्युक्त अंश में कवि ने वासवदत्ता की विरहावस्था का उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से सुन्दर वर्णन किया है, जिसे उनकी ऊर्वर-कल्पनाशक्ति एवं कवित्व का सुन्दर निदर्शन कहा जा सकता है।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि पुनः नायिका वासवदत्ता की विरहावस्था का हृदयद्रावक चित्रण उसकी सखियों तथा सेविकाओं का नामोल्लेखपूर्वक करते हुए कहते हैं कि–

(66) मुग्धे मदमंजरि! सिंचाङ्गानि चन्दनवारिणा। सरले वसन्तसेने! संवृणु केशपाशम्। तरले तरङ्गवति! विकिराङ्गेषु कैतवधूलिम्। वामे मदनमालिनि! कलय वलये शैवालकलापेन। चपले चित्रलेखे! चित्रपटे विलिख चित्तचोरं

जनम्। भाविनि विलासवति!विक्षिपावयवेषु मुक्ताचूर्ण-निदानम्। रागिणि रागलेखे! स्थगय नलिनीदलनिचयेन पयोधरभारम्। सुकान्ते कान्तिमति! मन्दं मन्दमपनय बाष्प-बिन्दून्। यूथिकालङ्कते यूथिके! संचारय नलिनीदल-तालवृन्तेनार्द्रवातान्।

पदच्छेद– मुग्धे मदमंजरि! सिंच अङ्गानि चन्दन-वारिणा। सरले वसन्तसेने! संवृणु केश-पाशम्। तरले तरङ्गवति! विकिरा-ङ्गेषु कैतवधूलिम्। वामे मदनमालिनि! कलय वलये शैवाल-कलापेन। चपले चित्रलेखे! चित्रपटे विलिख चित्तचोरम् जनम्। भाविनि विलासवति! विक्षिप अवयवेषु मुक्ता-चूर्ण-निदानम्। रागिणि रागलेखे! स्थगय नलिनी-दल-निचयेन पयोधर-भारम्। सुकान्ते कान्तिमति! मन्दम्-मन्दम् अपनय बाष्प-बिन्दून्। यूथिकालङ्कते यूथिके! संचारय नलिनी-दल-तालवृन्तेन आर्द्रवातान्।

अनुवाद– हे मुग्धे, मदनमंजरी! मेरे अंगों पर चन्दन के जल से सिंचन करो। हे मुग्धे, वसन्तसेना! मेरे बालों को बाँध दो। हे चंचल तरंगवती! मेरे अंगों पर केतकी के पुष्पों के पराग कणों को लगा दो। हे सुन्दरी, मदनमालिनी! मुझे शैवाल के समूह से बने हुए कंगन पहना दो। हे चंचल चित्रलेखा! चित्रपट पर उस चित्त को चुराने वाले का चित्र बना दो। हे भावों को समझने वाली विलासवती! मेरे शरीर पर मोतियों का चूर्ण छिड़क दो। हे अनुराग रखने वाली रागलेखा! मेरे स्तनों को कमलिनियों के पत्तों के समूह से आवृत्त कर दो। हे सुन्दर प्रियतम युक्त कान्तिमती! मेरे आँसुओं को धीरे-धीरे पौंछ दो। हे जूही के पुष्पों से सुशोभित यूथिके! मुझे कमलिनी के पत्तों के पंखे से शीतल हवा करो।

'चन्द्रिका'– असह्य कामातिरेक की पीड़ा को कम करने के उपचारों में यहाँ कवि ने काम सन्तप्त अंगों को चन्दन के रस से सींचना, खुले बालों को बाँधना, अंगों पर केतकी के पुष्प के पराग

कणों का लगाना, शैवाल के कंगनों का पहनाना, चित्रपट पर प्रेमी नायक के चित्र का बनाना, शरीर पर मोतियों का चूर्ण छिड़कना, स्तनों को कमलिनी के पत्तों से ढ़कना, निरन्तर बहने वाले आँसुओं को पौंछना तथा कमलिनी के पंखे से शीतल हवा करना आदि का उल्लेख किया है।

विशेष–(i)सखियों तथा सेविकाओं के प्रति उनके नाम व कार्य के निर्देश के साथ–साथ उनकी चारित्रिक विशेषताओं का भी कथन किया गया है।

(ii) कामातिरेक के कारण वासवदत्ता की दयनीय तथा हृदय-द्रावक स्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है।

(iii) तात्कालिक समय में कामसन्ताप को दूर करने वाले शीतोपचारों के विस्तृत वर्णन करने से कवि का आयुर्वेद विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

अवतरणिका– इसी क्रम में वासवदत्ता के कामसन्ताप के अधिक होने से किए जाने वाले प्रलाप के विषय में कवि फिर से कहते हैं कि–

(67)एहि भगवति निद्रे! अनुगृहाण माम्, धिक् इन्द्रियैरपरैः, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यङ्गानि विधिना। भगवन् कुसुमायुध तवायमंजलिः, अनुवशो भव भाववति मादृशे जने। मलयानिल सुरतमहोत्सवदीक्षागुरो वह यथेष्टम्, अपगता मम प्राणाः, इति बहुविधं भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समं सम्मुमूर्च्छ।

पदच्छेद– एहि भगवति निद्रे! अनुगृहाण माम्, धिक् इन्द्रियैः अपरैः, किमिति लोचनमयानि एव न कृतानि अङ्गानि विधिना। भगवन् कुसुमायुध! तव अयम् अंजलिः, अनुवशः भव भाववति मादृशे जने। मलयानिल! सुरत–महोत्सव–दीक्षा–गुरुः, वह यथेष्टम्, अपगताः मम प्राणाः, इति बहुविधम् भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समम् सम्मुमूर्च्छ।

अनुवाद– हे भगवति निद्रे! आओ, मुझ पर कृपा करो। दूसरी सभी इन्द्रियों को धिक्कार है, विधाता ने मेरे दूसरे अंगों को भी नेत्रमय क्यों नहीं बना दिया। हे भगवन् कामदेव! यह तुम्हारे लिए प्रणामांजलि है। अनुरक्त जनों मुझ जैसे लोगों पर अनुकम्पा करो। हे सुरतरूपी महोत्सव की दीक्षा देने वाले गुरु मलयपवन! तुम तो इच्छानुसार प्रवाहित होओ, क्योंकि मेरे प्राण तो निकल ही गए हैं। इस तरह अनेक प्रकार से बोलती हुई वासवदत्ता सखीजनों के समीप में ही मूर्च्छित हो गयी।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) 'सखीजनेन' पद में 'सह' अर्थ वाले 'समम्' के योग में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(ii) निद्रा, मलय–पवन का मानवीकरण किया गया है।

(iii) शरीर में स्थित दूसरी सभी इन्द्रियों की अपेक्षा केवल नेत्रेन्द्रिय की सार्थकता प्रदर्शित की गयी है, क्योंकि एकमात्र यही इन्द्रिय प्रियतम के दर्शनसुख को प्रदान करने वाली है।

(iv) विचित्र प्रकार के प्रलाप करते हुए अन्त में मूर्च्छित हो जाना विरहावस्था की पराकाष्ठा है, जिसका यहाँ कवि ने सुन्दर, मनमोहक तथा सूक्ष्म चित्रण किया है।

अवतरणिका– इसके बाद सखियों द्वारा अनेक प्रकार के प्रयास पूर्वक होश में लायी गयी, वासवदत्ता के क्रियाकलापों से उसकी विरह विकलता का आख्यान करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(68) अनन्तरं परिजनप्रयत्नोच्छ्वसितजीविता सती, क्षणमतिशिशिरघनसाररसाकुलनिम्नगाकूलपुलिने, क्षणमति–तुहिनमलयजरससारसरित्परिसरे, क्षणमरविन्दकाननपरि–वारितसरस्तटविटपिच्छायासु,क्षणमनिलोल्लसितदल कदली–काननेषु, क्षणं कुसुमप्रवालशय्यासु, क्षणं नलिनीदलसंस्तरेषु, क्षणं तुषारसंघातशिशिरितशिलातलेषु परिजनेन नीयमाना

प्रलयकालोदितद्वादशरविकिरणकलापतीव्रविरहानलदह्यमा- नामतिकृशां विप्राणामिव तनुं बिभ्रती सा, प्रचलदमन्दमन्द- रान्दोलितदुग्धसिन्धुतरलतरंगच्छटाधवलहासच्छुरिताधरपल्लवं तन्मुखारविन्दं द्विजकुलमिव श्रुतिप्रणयि तदीक्षणयुगलम्, सहजसुरभिमुखपरिमलमाघ्रातुकामेव दूरविनिर्गता तन्ना- सावंशलक्ष्मीः, कलंकमुक्तेन्दुकलाकलापकोमलापीयूषफेन- पटलपाण्डुरा तद् द्विजपंक्तिः, अदृष्टचरमनंगातिशायि तद्रूपम्, धन्यानि तानि स्थानानि, ते जनपदाः पुण्याः, तानि नामाक्षराणि सुकृतभांजि, यान्यमुना परिष्कृतानि, इति मुहुर्मुहुः परिभावयन्ती, दिक्षु विलिखितामिव, नभस्युत्कीर्णमिव, लोचने प्रतिबिम्बितमिव, चित्रपटे पुरोदर्शितमिव, तमितस्ततो विलोकयन्ती व्यतिष्ठत।

पदच्छेद– अनन्तरम् परिजन–प्रयत्न–उच्छ्वसित–जीविता सती, क्षणम् अति–शिशिर–घनसार–रस–आकुल–निम्नगा–कूल–पुलिने, क्षणम् अति–तुहिन–मलयज–रससार–सरित्–परिसरे, क्षणम् अरविन्द- कानन–परिवारित–सरःतट–विटपि–छायासु, क्षणम् अनिल–उल्लसित- दल–कदली–काननेषु, क्षणम् कुसुम–प्रवाल–शय्यासु, क्षणम् नलिनी- दल–संस्तरेषु, क्षणम् तुषार–संघात–शिशिरित–शिलातलेषु परिजनेन नीयमानाम्, प्रलयकाल–उदित–द्वादश–रविकिरण–कलाप–तीव्र–विरह- अनल–दह्यमानाम्, अतिकृशाम् विप्राणाम् इव तनुम् बिभ्रती सा, प्रचलद् अमन्द–मन्दर–आन्दोलित–दुग्ध–सिन्धु–तरल–तरंग–छटा–धवल–हास- छुरित–अधर–पल्लवम्, तत् मुख–अरविन्दम्, द्विजकुलम् इव श्रुति- प्रणयि तद् ईक्षण–युगलम्, सहज–सुरभि–मुख–परिमलम् आघ्रातुकामा इव दूर–विनिर्गता तत् नासा–वंश–लक्ष्मीः, कलंक–मुक्तेन्दु–कला- कलाप–कोमला, पीयूष–फेन–पटल–पाण्डुरा तद् द्विज–पंक्तिः, अदृष्ट- चरम् अनंग–अतिशायि तद् रूपम्, धन्यानि तानि स्थानानि, ते जनपदाः पुण्याः, तानि नाम–अक्षराणि सुकृत–भांजि, यानि अमुना परिष्कृतानि,

इति, मुहुर्मुहुः परिभावयन्ती, दिक्षु विलिखिताम् इव, नभसि उत्कीर्णम् इव, लोचने प्रतिबिम्बितम् इव, चित्रपटे पुरः दर्शितम् इव, तम् इतस्ततः विलोकयन्ती व्यतिष्ठत।

अनुवाद– इसके बाद वह वासवदत्ता अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सखियों द्वारा क्षणभर के लिए अत्यधिक शीतल कर्पूर के रस से भरी हुई नदी के तट पर स्थित बालू पर, क्षणभर के लिए अत्यधिक ठंडी चन्दन रस से व्याप्त नदी के तट पर, क्षणभर के लिए लाल कमल के समूहों से भरे हुए तालाब के किनारे पर स्थित वृक्षों की छाया में, क्षणभर के लिए वायु द्वारा आन्दोलित पत्तों वाले केले के वनों में, क्षणभर के लिए पुष्प तथा नूतन पत्तों की शय्याओं पर, क्षणभर के लिए कमलिनियों के पत्तों के बिछौने पर, क्षणभर के लिए हिमपात के कारण शीतल हुए शिलातलों पर सखियों द्वारा ले जायी गयी।

प्रलयकाल में एक साथ उदित हुए बारह आदित्यों[1] की तीक्ष्ण किरणों के समूह के समान विरह की अग्नि से जलती हुई वह, अत्यधिक दुबली तथा प्राणरहित शरीर को धारण कर रही थी।

घूमते हुए विशाल मन्दराचल से आन्दोलित क्षीरसागर की चंचल तरंगों की छटा के समान, (उपमा) उस कन्दर्पकेतु के कमलरूपी मुख के समान (रूपक, उपमा) मुख में श्वेत हास–कान्ति से उसका अधररूपी पल्लव (रूपक) व्याप्त हो रहा था। वेदों में अनुराग रखने वाले ब्राह्मण कुल के समान (उपमा), उसके नेत्र कानों तक फैले हुए थे। उसकी नासिका की शोभा स्वभाव से ही सुगन्धित मुख की गन्ध को सूँघने के लिए मानो आगे की ओर निकल गयी थी (उत्प्रेक्षा)।

---

[1]. बारह महीनों के अनुसार आदित्यों की संख्या बारह मानी गयी है, जो इस प्रकार है– अंशुमान्, अर्यमन्, इन्द्र, त्वष्टृ, धातृ, पर्जन्य, पूषन्, भग, मित्र, वरुण, विवस्वत् और विष्णु। यद्यपि कुछ स्थलों पर ये नाम भिन्न भी दिए गए हैं।

प्राचीन चरित्रकोष–पृष्ठ, 58।

उसकी दन्तपंक्ति निष्कलंक चन्द्रमा की कला के समूह के समान (उपमा), मनोहर तथा अमृतफेन के समान (उपमा) शुभ्रवर्ण वाली थी। उसका रूप कामदेव के सौन्दर्य को भी तिरस्कृत करने वाला, कभी न देखा हुआ था। वे स्थान वस्तुतः धन्य हैं, वे जनपद वास्तव में पुण्यशाली हैं, कन्दर्पकेतु के नाम के वे अक्षर वस्तुतः पुण्यवान् हैं, जिन्हें इसने सुशोभित किया है। इसप्रकार बार–बार विचार करती हुई, दिशाओं में चित्रित, आकाश में खोदे गए, नेत्रों में प्रतिबिम्बित तथा सामने ही चित्रपट में दिखाए गए हुए से उस (कन्दर्पकेतु) को इधर–उधर देखते हुए बैठी रही।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षालंकारों का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

(ii) विरहाग्नि के संतापाधिक्य को व्यंजित करने के लिए बारह आदित्यों के एक साथ चमकने की कल्पना की गयी है। अतिशयोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

अवतरणिका–इसप्रकार वासवदत्ता की विरहावस्था का मनोहारी चित्र प्रस्तुत करने के पश्चात् महाकवि इस विषय में उसकी सखियों द्वारा की गयी युक्ति के विषय में कहते हैं–

(69) अथ तस्यास्तमालिका नाम शारिका तत्प्रिय सखीभिः समं समालोक्य कन्दर्पकेतोर्भावमाकलयितुं प्रेषिता। सापि मया सार्धं प्रस्थितागता चात्रैव तरोऽधस्तात्तिष्ठति। इत्युक्त्वा विरराम।

पदच्छेद– अथ तस्याः 'तमालिका' नाम शारिका, तत् प्रियसखीभिः समम् समालोक्य कन्दर्पकेतोः भावम् आकलयितुम् प्रेषिता। सा अपि मया सार्धम् प्रस्थिता आगता च अत्र एव तरो अधस्तात् तिष्ठति, इति उक्त्वा विरराम।

अनुवाद– इसके बाद उसकी प्रिय सखियों ने आपस में परामर्श करके, कन्दर्पकेतु के भावों को जानने के लिए, तमालिका नामक सारिका (पक्षीपात्र) को भेजा, वह भी मेरे साथ ही चल पड़ी थी और यहीं इसी पेड़ के नीचे बैठी हुई है। इसप्रकार कहकर तोता चुप हो गया।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) सरल प्रसाद गुणयुक्त भाषा तथा वैदर्भी शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। साथ ही, सखियों की सखी–हितचिन्तन एवं दूरदर्शिता भी प्रदर्शित हुई है।

अवतरणिका– इसी विषय में महाकवि आगे कहते हैं कि–

(70) अथ तच्छ्रुत्वा सहर्षं समुत्थाय मकरन्दस्तां तमालिकामाहूय विदितवृत्तान्तामकरोत्। सा तु तस्मै कृत–प्रणामा तां पत्रिकामुपानयत्। अथ मकरन्दस्तामादाय पत्रिकां विस्रस्य स्वयमेवावाचयत्।

पदच्छेद– अथ तत् श्रुत्वा सहर्षम् समुत्थाय मकरन्दः ताम् तमालिकाम् आहूय विदित–वृत्तान्ताम् अकरोत्। सा तु तस्मै कृत–प्रणामा ताम् पत्रिकाम् उप–आनयत्। अथ मकरन्दः ताम् आदाय पत्रिकाम् विस्रस्य स्वयम् एव अवाचयत्।

अनुवाद– इसके पश्चात् उस तोते के वाक्यों को सुनकर, मकरन्द ने आनन्दपूर्वक उठकर तमालिका को बुलाकर, उसे सभी कुछ घटनाक्रम बता दिया। उसने भी प्रणाम करके उसे वह पत्रिका दी, मकरन्द ने उस पत्रिका को लेकर स्वयं ही खोलकर पढ़ा।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) भाषा की सरलता दर्शनीय है। महाकवि की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि अनेक स्थलों पर उन्होंने सरल भाषा का भी प्रयोग किया है।

(वासवदत्ताप्रेषितप्रेमपत्रवर्णनम्)

अवतरणिका–इसके बाद महाकवि वासवदत्ता द्वारा प्रेषित प्रेम पत्र के विषय में श्लोकबद्ध रूप में कहते हैं कि–

प्रत्यक्षदृष्टभावाप्यस्थिरहृदया हि कामिनी भवति।
स्वप्नानुभूतभावा द्रढ़यति न प्रत्ययं युवतिः।।19।

अन्वय–कामिनी प्रत्यक्ष–दृष्ट–भावा अपि हि अस्थिर–हृदया भवति। स्वप्न–अनुभूत–भावा युवतिः प्रत्ययम् न द्रढ़यति।।19।।

अनुवाद– **स्त्री का हृदय अपने प्रेमी के प्रेम को अभिव्यक्त करने वाले भावों को प्रत्यक्षरूप से देखकर भी स्थिर नहीं होता है, फिर जिसने अपने स्वप्न में ही उन भावों को अनुभव किया है, वह स्त्री तो उनमें भला कैसे विश्वास कर सकती है?।।19।।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत पत्र में नायिका की नायक के प्रेम के विषय में किंचित् शंका अभिव्यक्त हुई है। यह अत्यन्त स्वाभाविक भी है क्योंकि प्रेमी–प्रेमिका एक दूसरे के भावों को जानने से पूर्व परस्पर प्रेम के सम्बन्ध में शंकालु रहते ही हैं, यही बात वासवदत्ता के पत्र में भी प्रदर्शित की गयी है।

अभिप्राय यही है कि जब स्त्री अपने प्रेमी के प्रेमविषयक भावों को प्रत्यक्षरूप से उपस्थित होने पर देख लेती है, किन्तु फिर भी उसे इसके विषय में सहसा उस युवक पर विश्वास नहीं होता है, फिर मैंने तो तुम्हें स्वप्न में ही तुम्हारे उसप्रकार के प्रेमपूर्ण भावों का अवलोकन किया है, उन्हें अनुभव किया है, इसलिए स्वप्न की उस बात पर अकस्मात् मैं भला कैसे विश्वास कर सकती हूँ? इसलिए तुम्हारे पास यह पत्र भेजकर तुम्हारे भावों को वास्तविक रूप से जानने के लिए उत्सुक हूँ। अतः तुम मेरे साथ प्रेमविषयक अपने भावों को इस दूती के माध्यम से मुझे बताने का अनुग्रह करो।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण आरम्भ में मंगलाचरण के अवसर पर प्रस्तुत किया जा चुका है।

(ii) अर्थापत्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है, क्योंकि यहाँ प्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रतीत अर्थ की अनुपपन्नता प्रतिपादित की गयी है।

लक्षण– प्रत्यक्षादि प्रतीतोऽर्थो यस्तथा नोपपद्यते।
अर्थान्तरं च गमयत्यर्थापत्तिं वदन्ति ताम्।।

(iii) वासवदत्ता द्वारा सारिका के माध्यम से प्रेषित प्रस्तुत प्रेम–पत्र वस्तुतः प्रेमी–मनोविज्ञान पर आधारित रहा है।

(प्रेमपत्रस्य कन्दर्पकेतोपरिमनोवैज्ञानिकप्रभावः)

अवतरणिका– वासवदत्ता के प्रेमपत्र को पढ़कर कन्दर्पकेतु की दशा का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि–

(71)तच्छ्रुत्वा कन्दर्पकेतुरमृतार्णवनिमग्नमिव,सर्वानन्दा–नामुपरि वर्तमानमिवात्मानं मन्यमानो मन्दं मन्दमुत्थाय प्रसारितबाहुयुगलस्तमालिकामालिलिंग। अथ तयैव सार्धं समासीनः, किं करोति, किं वदति, कथमास्ते इत्यादि सकलं वासवदत्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तं च दिवसं तत्रैवातिवाह्य तस्मात् प्रदेशात्तया सहोच्चचाल ससुहृत्कन्दर्पकेतुः। अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमाली वृत्तान्तममुं कथयितुमिव मध्यमं लोकमवततार।

पदच्छेद– तत् श्रुत्वा कन्दर्पकेतुः अमृत–अर्णव–निमग्नम् इव, सर्व–आनन्दानाम् उपरि वर्तमानम् इव आत्मानम् मन्यमानः मन्दम्–मन्दम् उत्थाय प्रसारित–बाहु–युगलः तमालिकाम् आलिलिंग। अथ तया एव सार्धम् समासीनः, किम् करोति? किम् वदति? कथम् आस्ते? इत्यादि सकलम् वासवदत्ता वृत्तान्तम् अपृच्छत्। तम् च दिवसम् तत्र एव अतिवाह्य तस्मात् प्रदेशात् तया सह उच्चचाल, ससुहृत्–कन्दर्पकेतुः।

अत्र अन्तरे भगवान् अपि मरीचिमाली वृत्तान्तम् अमुम् कथयितुम् इव मध्यमम् लोकम् अवततार।

अनुवाद– उसे सुनकर कन्दर्पकेतु ने अपने को अमृत के सागर में डूबे हुए के समान (उपमा) एवं सभी प्रकार के आनन्दों को अनुभव करता हुआ सा माना तथा धीरे–धीरे उठकर दोनों भुजाओं को फैलाकर तमालिका का आलिंगन किया।

और उसके साथ बैठकर वह वासवदत्ता क्या करती है? क्या कहती है? कैसे बैठती है? इत्यादि वासवदत्ता विषयक अनेक प्रकार से वृत्तान्तों को पूछा एवं उस दिन को वहीं पर व्यतीत करके, वह तमालिका और अपने मित्र मकरन्द के साथ उस प्रदेश से चल दिया। इसके पश्चात् भगवान् सूर्य भी मानो इस घटनाक्रम को कहने के लिए मध्यम भूलोक पर उतर आए (उत्प्रेक्षा)।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) भगवान् मरीचिमाली अर्थात् सूर्यदेव का मानवीकरण किया गया है।

(ii) नायक कन्दर्पकेतु की तमालिका सारिका के प्रति कृतज्ञता की भावना अभिव्यक्त हुई है, जिसे उसने तमालिका का खुले हृदय से आलिंगन करके अभिव्यक्त भी किया है।

(iii) वासवदत्ता के अपने प्रति प्रेम को जानकर नायक की आनन्दातिरेक की अभिव्यक्ति अमृत के सागर में डूबने के माध्यम से पूर्णतया सटीकरूप से की गयी है।

(iv) प्रस्तुत काव्य में कवि की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि वह उपमानों के माध्यम में हृदय में स्थित विचारों, भावों तथा अभिप्रायों को प्रदर्शित करने में पूर्णतया सफल रहे हैं।

(सूर्यास्तवर्णनम्)

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि सुबन्धु सूर्यास्त का मन–भावन वर्णन, चित्रात्मक शैली में सर्वथा मौलिक कल्पनाओं के साथ करते हुए कहते हैं कि–

(72) अथ वासरताम्रचूडचूडाचक्राकारः चक्रवाक–हृदयसङ्क्रमितसन्तापतयेव मन्दिमानमुद्वहन्, अस्तगिरि–मन्दारस्तबकसुन्दरः, सिन्दूरराजिरंजितसुरराजकुम्भिकुम्भ–विभ्रमं बिभ्राणः, ताण्डवचण्डवेगोच्चलितधूर्जटिजटाजूट–मुकुटबद्धबन्धुरविकटवासुकिभोगमणिताटंकसनाभिमण्डलः, सन्ध्यासन्धिनीसरसयावकपत्रचारुः, वारुणीवारविलासिन्य–रुणमणिकुण्डलकान्तिः, कालकरवालकृत्तवासरमहिषस्कन्ध–चक्राकारः? मधुरमधुपूर्णकपाल इव गगनकपालिनः, अम्लानकुसुमस्तबक इव नभः श्रियः, पुष्पगुच्छ इव गगनाशोकतरोः, कनकदर्पण इव प्रतीचीविलासिन्याः, बलभद्र इव वारुणीसंगतः सरागश्च, दुर्विध इव परित्यक्तवसुः सविषादश्च, शाक्यवंश इव रक्तांशुकधरः, सूरिरिव संज्ञोपेतः, भगवान् दिनमणिरपराकूपारपयसि तरलतरंगवेगोच्चलित–विद्रुम विटपाकृतिर्ममज्ज।

पदच्छेद– अथ वासर–ताम्रचूड–चूडा–चक्राकारः चक्रवाक–हृदय–सङ्क्रमित–सन्तापतया इव मन्दिमानम् उद्वहन्, अस्तगिरि–मन्दार–स्तबक– सुन्दरः, सिन्दूर–राजि–रंजित–सुरराज–कुम्भि–कुम्भ–विभ्रमम् बिभ्राणः, ताण्डव–चण्ड–वेग–उच्चलित–धूर्जटि–जटाजूट–मुकुट–बद्ध–बन्धुर–विकट–वासुकि–भोग–मणि–ताटंक–सनाभि(तुल्य)–मण्डलः,सन्ध्या–सन्धिनी– सरस–यावक–पत्र–चारुः, वारुणी–वारविलासिनि–अरुण–मणि–कुण्डल–कान्तिः,काल–करवाल–कृत्त–वासर–महिष–स्कन्ध–चक्र–आकारः,मधुर–मधु–पूर्ण–कपालः इव गगन–कपालिनः, अम्लान–कुसुम–स्तबकः इव नभः श्रियः, पुष्पगुच्छः इव गगन–अशोकतरोः, कनक–दर्पणः

इव प्रतीची–विलासिन्याः, बलभद्रः इव वारुणी–संगतः सरागः च, दुर्विधः इव परित्यक्त–वसुः सविषादः च, शाक्यवंशः इव रक्त–अंशुक-धरः, सूरिः इव संज्ञा–उपेतः, भगवान् दिनमणिः अपरा–कूपार–पयसि तरल–तरंग–वेग–उच्चलित–विद्रुम–विटप–आकृतिः ममज्ज।

अनुवाद–इसके बाद सूर्य पश्चिम दिशा में अस्त हो गया, तब उसकी आकृति दिनरूपी मुर्गे(ताम्रचूड़) की कलगी के समान, (रूपक, उपमा) चक्राकार हो रही थी तथा वह चक्रवाक पक्षी के हृदय में सन्ताप को संक्रमित कर देने के कारण मानो मन्दता को धारण कर रहा था (उत्प्रेक्षा)। वह अस्ताचलरूपी मन्दार वृक्ष के पुष्पों के गुच्छे के समान सुन्दर लग रहा था (रूपक, उपमा)। सिन्दूर की पंक्ति से रंगे हुए इन्द्र के हाथी के गण्डस्थल की शोभा को धारण कर रहा था। उसका मण्डल ताण्डव नृत्य करते हुए अत्यन्त वेग के कारण ढीले हुए भगवान् शंकर के जटाजूटरूपी मुकुट में लगी हुई मनोरम और विशाल वासुकि नामक नाग की मणिरूपी कर्णाभूषण के समान प्रतीत हो रहा था(रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा)।

सन्ध्यारूपी वेश्या के सरस लाक्षा से निर्मित तिलक के समान मनोहर प्रतीत हो रहा था (रूपक, उपमा)। उसकी कान्ति पश्चिम दिशारूपी गणिका के लाल वर्ण के कुण्डल के समान (रूपक, उपमा) तथा कालरूपी तलवार द्वारा काटे गए, दिनरूपी भैंसे के गोलाकार कन्धे के समान थी (रूपक, उपमा)। उस समय वह आकाशरूपी कापालिक के मधुर मद्य से भरे हुए कपाल के समान लग रहा था (रूपक, उपमा) तथा पश्चिम दिशारूपी सुन्दरी के स्वर्ण द्वारा बनाए गए दर्पण के समान प्रतीत हो रहा था(रूपक, उपमा)।

मद्यपान में संलग्न रक्तवर्ण बलराम के समान पश्चिम दिशा से संयुक्त और लालिमा से सम्पन्न था। धनी तथा दुःखी निर्धन व्यक्ति के समान, किरणों से विहीन एवं मेघों से आच्छादित था (उपमा)। लाल वस्त्र को धारण करने वाले बौद्ध व्यक्ति के समान वह भी रक्तिम

किरणों से सम्पन्न था (उपमा)। **बुद्धि तथा ज्ञान से युक्त विद्वान् के समान**(उपमा), **वह अपनी पत्नी संज्ञा से युक्त था। इस अवसर पर उसकी आकृति पश्चिम समुद्र के जल में चंचल तरंगों के वेग से ऊपर आए हुए प्रवाल की शाखा के समान थी**(उपमा) ।

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने अस्ताचल की ओर जा रहे सूर्य के आकार की उपमा दिनरूपी मुर्गे की चक्राकार कलगी से, तेज की मन्दता की सम्भावना चक्रवाक पक्षी के हृदय में सन्ताप को संक्रमित कर देने की सम्भावना से की है। साथ ही, इसे मन्दार वृक्ष के पुष्प के गुच्छ के समान, सिन्दूर की पंक्ति से सजाए हुए ऐरावत के गण्डस्थल के समान, नृत्य करते हुए महादेव के जटाजूट में स्थित वासुकि की मणिरूपी कान के आभूषण के समान, सन्ध्यारूपी वेश्या के लाल कुण्डल के समान, कालरूपी तलवार से काटे गए दिनरूपी भैंसे के गोलाकार कन्धे के समान[1], कापालिक के मदिरा से भरे कपाल के समान, आकाश–लक्ष्मी के सरस पुष्पगुच्छ के समान, पश्चिम दिशारूपी नायिका के स्वर्ण निर्मित दर्पण के समान, पश्चिम दिशारूपी नायिका से सम्बद्ध मद्यपान कर रहे बलराम के समान, अपनी पत्नी संज्ञा से युक्त के समान, धनहीन तथा दरिद्र व्यक्ति के समान किरण तथा मेघों से घिरा हुआ बताया है। साथ ही, उसकी आकृति इस समय समुद्र की चंचल तरंगों के वेग से ऊपर आए हुए प्रवाल की गोलाकार शाखाओं के समान प्रतीत हो रही थी।

विशेष–(i) यहाँ मुख्य वाक्य है कि– 'उसके बाद पश्चिम दिशा में सूर्य डूब गया', शेष सभी उसके विशेषण उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षारूप में प्रयुक्त हुए हैं।

---

[1]. प्रस्तुत उपमा से कवि के समय में समाज में दी जाने वाली भैंसे की बलि की भी प्रतीति हो रही है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **वारुणी**– मदिरा, पश्चिम दिशा। **राग**- लालिमा, लाल रंग। **वसु**– धन, किरण। **विषाद**– दुःखी, मेघ। **अंशुक**- वस्त्र, किरण। **संज्ञा**– बुद्धि, चेतना, ज्ञान, सूर्य पत्नी।

(iii) प्रस्तुत अंश कवि की उत्कृष्ट कल्पनाशक्ति का श्रेष्ठ निदर्शन कहा जा सकता है।

(सन्ध्यावर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि सन्ध्याकाल का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(73) ततः क्रमेण च रजोविलुण्ठितोत्थितकुलायार्थिपरस्परकलहविकलकलविंककुलकलकलवाचालशिखरेषु शिखरिषु, वसतिसाकांक्षेषु ध्वाङ्क्षेषु, अनवरतदह्यमानकालागुरुधूपपरिमलोद्‌गारेषु वासागारेषु, दूर्वांचिततटिनीतटनिविष्टविदग्धजनप्रस्तूमानकथाश्रवणोत्सुकशिशुजनकलकलरवनिवारणक्रुद्धेषु वृद्धेषु, आलोलिकातरलरसनाभिः कथितबहुकथाभिर्जरतीभिरतिलघुकरताडनजनितसुखे ताभिरनुगते शिशयिषमाणे शिशुजने, विरचितकन्दर्पमुद्रासु क्षुद्रासु, कामुकजनानुबध्यमानदासीजनविविधाश्लीलवचनशतविरसीकृतश्रुतिषु सन्ध्यावन्दनोपविष्टेषु शिष्टेषु, रोमन्थमन्थरकुरंगकुटुम्बकाध्यास्यमानभ्रदिष्ठगौष्ठीनपृष्ठासु अरण्यस्थलीषु, निद्राविद्राणद्रोणकाककुलकलितकुलायेषु ग्रामतरुनिचयेषु, कापेयविकलकपिकुलकलितेष्वारामतरुषु, निर्जिगमिषति जरत्तरुकोटरकुटीरकुटुम्बिनि कौशिककुले, तिमिरतर्जननिर्गतासु दहनप्रविष्टदिनकरकरशाखास्विव प्रस्फुरन्तीषु दीपलेखासु, मुखरितधनुषि वर्षति शरनिकरमशेषसांसारिकशेमुषीमुषि मकरध्वजे.....।

पदच्छेद– ततः क्रमेण च रजः विलुण्ठित–उत्थित–कुलाय-अर्थि–परस्पर–कलह–विकल–कलविंक–कुल–कल–कल–वाचाल–शिख

रेषु शिखरिषु, वसति–साकांक्षेषु ध्वाङ्क्षेषु, अनवरत–दह्यमान–काला–अगुरु–धूप–परिमल–उद्गारेषु वास–आगारेषु, दूर्वांचित–तटिनी–तट–निविष्ट–विदग्ध–जन–प्रस्तूमान–कथा–श्रवण–उत्सुक–शिशुजन–कल–कल–रव–निवारण–क्रुद्धेषु वृद्धेषु, आलोलिका–तरल–रसनाभिः कथित–बहु–कथाभिः जरतीभिः अति–लघु–कर–ताडन–जनित–सुखे ताभिः अनुगते शिशयिषमाणे शिशुजने, विरचित–कन्दर्प–मुद्रासु क्षुद्रासु, कामुक–जना–अनुबध्यमान–दासी–जन–विविध–अश्लील–वचन–शत–वि–रसीकृत–श्रुतिषु सन्ध्या–वन्दन–उपविष्टेषु शिष्टेषु, रोमन्थ–मन्थर–कुरंग–कुटुम्बक–अध्यास्यमान–भ्रदिष्ठ–गौष्ठीन–पृष्ठासु अरण्य–स्थलीषु, निद्रा–विद्राण–द्रोण–काक–कुल–कलित–कुलायेषु ग्राम–तरु–निचयेषु, कापेय–विकल–कपि–कुल–कलितेषु आराम–तरुषु, निर्जिगमिषति, जरत् तरु–कोटर–कुटीर–कुटुम्बिनि कौशिक–कुले, तिमिर–तर्जन–निर्गतासु दहन–प्रविष्ट–दिनकर–कर–शाखासु इव प्रस्फुरन्तीषु दीप–लेखासु, मुखरित–धनुषि वर्षति शर–निकरम् अशेष–सांसारिक–शेमुषी–मुषि–मकरध्वजे... ।

अनुवाद– उसके पश्चात् क्रमशः सन्ध्या देवी दिखायी पड़ी, जिसमें वृक्षों की चोटियों पर धूल में लेटकर, फिर से उठकर अपने घोंसले में पहले प्रवेश करने के लिए आपस में कलह करते हुए चिड़ियों का समूह कलकल की ध्वनि से शब्दायमान था। कौए अपने घोंसलों में जाने के इच्छुक थे। वासगृह निरन्तर जलते हुए काले अगरु की सुगन्ध से पूर्णरूप से भरे हुए थे। दूब से रमणीय नदी के तट पर बैठे हुए विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की जाती हुई कथा को सुनने के लिए उत्सुक बालकों द्वारा किए जा रहे कोलाहल से क्रुद्ध होकर बूढ़ों द्वारा रोका जा रहा था।

लोरियाँ कहने के लिए चंचल जीभ वाली और अनेक प्रकार की कथाओं को कहती हुई, बूढ़ी स्त्रियों द्वारा धीरे–धीरे हाथ से थपथपाए जाने से उत्पन्न होने वाले सुख का अनुभव करते हुए शिशु

सोने का प्रयास कर रहे थे। वेश्याएँ कामदेव की विभिन्न मुद्राओं को बना रही थीं। कामुकों द्वारा घिरी हुई दासियों द्वारा कहे गए अनेक प्रकार के अश्लील वचनों को सुनकर सन्ध्यावन्दन में बैठे हुए सभ्य लोगों के कान अनेक प्रकार से कष्ट का अनुभव कर रहे थे।

वन में जुगाली करने के कारण शिथिल मृगों के समूहों के बैठने के कारण, गायों के बैठने के स्थान गीले हो रहे थे। ग्रामीण-वृक्षों पर सोने के लिए आए हुए, कौओं के समूह घोंसले बना रहे थे। उपवन के वृक्ष, क्रीड़ा में मग्न वानर–समूह से व्याप्त थे। पुराने वृक्षों की खोखररूपी घरों (रूपक) में रहने वाले, उल्लू बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे। अन्धकार का तिरस्कार करने के लिए निकली हुई दीपकों की लौ, अग्नि में प्रविष्ट सूर्य की किरणों के समान (उपमा) चमक रही थीं। अपने धनुष की टंकार के साथ कामदेव, सभी संसारीजनों की बुद्धि को हरण करने के लिए बाणों की वर्षा कर रहा था। (उत्प्रेक्षा, मानवीकरण)

'चन्द्रिका'– कवि इस तथ्य से पूर्णतया अवगत है कि सूर्य के अस्त होने के बाद सन्ध्याकाल का आगमन होता है, जिसका अत्यधिक सुन्दर वर्णन उपर्युक्त गद्यखण्ड में किया गया है, क्योंकि यहाँ सन्ध्या काल में पशु–पक्षियों तथा व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेष्टाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है, जिनमें, चिड़ियों, कौओं, उल्लूओं, मृगों, गायों, विद्वानों, वृद्ध, वृद्धाओं, बालकों, वेश्याओं, कामुकों, शिष्ट जनों, वानरों, दीपक की शिखाओं तथा कामदेव आदि का वर्णन प्रमुख है, प्रस्तुत वर्णन को महाकवि की सूक्ष्म–दृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है।

विशेष–(i) तात्कालिक समाज के प्रत्येक पक्ष का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है, जिसमें सायंकाल में नदी के हरी दूब से युक्त तट पर बैठकर विद्वान् लोग वृद्धों तथा बच्चों को कहानियाँ सुनाते थे,

किन्तु बच्चों द्वारा कोलाहल करने पर उन्हें वृद्धों द्वारा डाँटा जा रहा था।

(ii) उपमा, रूपक, श्लेष तथा उत्प्रेक्षालंकारों का सुन्दर एवं चित्ताकर्षक प्रयोग हुआ है।

अवतरणिका– इसप्रकार सन्ध्याकाल का वर्णन करने के बाद कवि उसी अवसर पर दूसरे लोगों एवं अन्य प्राणियों की गतिविधियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(74) **सुरतारम्भाकल्पशोभिनि शम्भलीभाषितभाजि भजति भूषां भुजिष्याजने, सैरन्ध्रीबध्यमानरशनाकलाप–जल्पाकजघनस्थलासु जनीषु, विश्रान्तकथानुबन्धतया प्रवर्त–मानानेकजनगृहगमनत्वरेषु चत्वरेषु, समासादितकुक्कुटेषु किरातगृहनिष्कुटेषु, कृतयष्टिसमारोहणेषु बर्हिणेषु, विहित–सन्ध्यासमयव्यवस्थेषु गृहस्थेषु, सपदि सङ्कोचोदंचदवांच–दुच्चकेसरकोटिसङ्कटकुशेशयोदरकोटरकुटीरकुटिलशायिनि षड्चरणचक्रे, अनेनैव पथा भगवता भानुमता गन्तव्यमिति सर्वतः पट्टमयैर्वसनैः परिवृता मणिकुट्टिमालिरिव विरचिता वरुणेन रवेः, कालकरवालकृत्तस्य दिवसमहिषस्य रुधिरधारेव विद्रुमलतेव चरमार्णवस्य, रक्तकमलिनीव गगनतटाकस्य, कांचनकेतुरिव कन्दर्परथस्य, मंजिष्ठारागारुणपातकेव गगनहर्म्यतलस्य, लक्ष्मीरिव स्वयंवरगृहीतपीताम्बरा, भिक्षुकीव तारानुरक्ता, रक्ताम्बरधारिणी, वारमुख्येव पल्लवानुरक्ता, कामिनीव कालेयाताम्रपयोधरा, बभ्रुरिव कपिलतारका भगवती सन्ध्या समदृश्यत।**

पदच्छेद– सुरत–आरम्भ–आकल्प–शोभिनि शम्भली–भाषित–भाजि भजति भूषाम् भुजिष्याजने, सैरन्ध्री–बध्यमान–रशना–कलाप–जल्पाक–जघन–स्थलासु जनीषु,विश्रान्त–कथा–अनुबन्धतया प्रवर्तमान–

अनेक–जन–गृह–गमन–त्वरेषु चत्वरेषु, समासादित–कुक्कुटेषु किरात–गृह–निष्कुटेषु, कृत–यष्टि–समारोहणेषु बर्हिणेषु, विहित–सन्ध्या–समय–व्यवस्थेषु गृहस्थेषु, सपदि सङ्कोच–उदंचद् अवांचद् उच्च–केसर–कोटि–सङ्कट–कुशेशय–उदर–कोटर–कुटीर–कुटिल–शायिनि षड्–चरण–चक्रे, अनेन एव पथा भगवता भानुमता गन्तव्यम् इति, सर्वतः पट्टमयैः वसनैः परिवृता मणि–कुट्टिमालिः इव विरचिता वरुणेन रवेः, काल–करवाल–कृत्तस्य दिवस–महिषस्य रुधिर–धारा इव विद्रुम–लता इव चरम–अर्णवस्य, रक्त–कमलिनी इव गगन–तटाकस्य, कांचन–केतुः इव कन्दर्प–रथस्य, मंजिष्ठा–राग–अरुण–पातका इव गगन–हर्म्य–तलस्य, लक्ष्मीः इव स्वयंवर–गृहीत–पीताम्बरा, भिक्षुकी इव तारा–अनुरक्ता, रक्त–अम्बर–धारिणी, वार–मुख्या इव पल्लव–अनुरक्ता, कामिनी इव कालेय–आताम्र–पयोधरा, बभ्रुः इव कपिल–तारका भगवती सन्ध्या समदृश्यत।

अनुवाद– उस समय स्वच्छन्द युवतियाँ कुट्टिनियों की बात मानकर, सुरतोचित वेष तथा आभूषणों को धारण कर रही थीं। प्रसाधिकाओं द्वारा बाँधी गयी मेखलाएँ, वधुओं के जघनस्थलों पर शब्द कर रहीं थीं। चौराहों तथा आंगन में कथाओं की समाप्ति पर अनेक कथा कहने वाले कथावाचक अपने घर पर जाने की शीघ्रता कर रहे थे।

किरातों के घरों के पास वन में मुर्गे इकट्ठे हो रहे थे। मोर अपनी वासयष्टियों पर बैठ रहे थे। गृहस्थी लोग अपनी सन्ध्याकालीन व्यवस्थाओं को सम्पादित कर रहे थे। शीघ्र ही संकुचित होकर नीचे की ओर झुके हुए उन्नत केसरों के अग्रभाग से भरे हुए कमलों के मध्यभागरूपी घर में भ्रमर कठिनता से सो पा रहे थे (रूपक)। सूर्य भगवान् इसी मार्ग से जाएँगे, मानो यह सोच कर ही वरुण ने सूर्य के

चारों ओर रत्नों से जड़े हुए फर्श के समान, उसे पट्टमय वस्त्रों द्वारा बना रखा था(उपमा, उत्प्रेक्षा)।

उस समय सन्ध्या मानो कालरूपी तलवार से काटे हुए दिन रूपी भैंसे के रक्त की धारा के समान (रूपक, उपमा), पश्चिम समुद्र की प्रवालरूपी लता के समान(रूपक, उपमा), आकाशरूपी सरोवर की लाल कमलिनी के समान(रूपक, उपमा), कामदेव के रथ की स्वर्णमयी पताका के समान सुशोभित हो रही थी(उपमा)। स्वयंवर में भगवान् विष्णु का वरण करने के समान (उपमा)उसने आकाश को पीतवर्ण का बना दिया था।

बुद्धदेव में अनुरक्त एवं लाल वस्त्र धारण करने वाली तारा नामक भिक्षुकी के समान (उपमा) वह नक्षत्र मण्डल को रक्तवर्ण बनाने वाली तथा लाल रंग के आकाश को धारण कर रही थी। कामुक जनों में अनुरक्त वेश्या के समान (उपमा) वह पल्लवों से रक्त वर्ण की हो रही थी। कुंकुम के लेप के कारण रक्त स्तनों वाली स्त्री के समान (उपमा) वह केसर के समान लाल मेघों से युक्त थी। पीली पुतली वाली नकुली के समान (उपमा)वह पीले रंग के नक्षत्रों से सम्पन्न थी।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत अंश में कवि ने स्वच्छन्द गणिकाओं तथा उन्हें निर्देशित करने वाली कुट्टनियों, रमण के लिए तैयार हो रही वधुओं, चौराहों या आंगनों में कथा कहने वाले लोगों, मयूरों, मुर्गों, गृहस्थों, भ्रमरों आदि की सूक्ष्म गतिविधियों का सुन्दर, स्वाभाविक एवं हृदयग्राही वर्णन किया है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **पीताम्बरा**– पीले वस्त्र वाली लक्ष्मी, पीले आकाश वाली। **तारा**–बुद्ध की पत्नी, नक्षत्र–मण्डल। रक्ताम्बर– लाल वस्त्र, रक्त वर्ण आकाश। **पल्लव**– कामुक, कोमल पत्ते। **कालेय**– कुंकुम लेप, केसर। **पयोधर**– मेघ, स्तन। **तारक**– नेत्रों की पुतली, नक्षत्र।

(तिमिरवर्णनम्)

अवतरणिका– सन्ध्याकाल के बाद फैलने वाले अन्धकार का चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(75) ततः क्षणेन क्षणदानुरागचतुरासु सन्ध्यास्विव वेश्यासु, तुलाधारशून्यायां पुण्यवीथिकायामिव दिवि, घनघटमानदलपुटासु पुटकिनीषु, तिमिरप्रतिहतेष्विव तत इतः परिभ्रमत्सु कमलसरसि मधुकरनिकरेषु, विकलकुररी-कूजितच्छलेन रविविरहविधुरासु विलपन्तीष्विव सरोजिनीषु, प्रतिफलितसन्ध्यारागरज्यमानसलिलस्थितासु पतिविनाश-हृत्पीडया, दहनप्रविष्टास्विव कमलिनीषु, गणक इव नक्षत्र-सूचके प्रदोषे...... ।

पदच्छेद– ततः क्षणेन क्षणदा–अनुराग–चतुरासु सन्ध्यासु इव वेश्यासु, तुलाधार–शून्यायाम् पुण्य–वीथिकायाम् इव दिवि, घन-घटमान–दल–पुटासु पुटकिनीषु, तिमिर–प्रतिहतेषु इव ततः इतः परि-भ्रमत्सु, कमल–सरसि मधुकर–निकरेषु, विकल–कुररी–कूजित–छलेन रवि–विरह–विधुरासु विलपन्तीषु इव सरोजिनीषु, प्रतिफलित–सन्ध्या-राग–रज्यमान–सलिल–स्थितासु पति–विनाश–हृत्–पीडया, दहन-प्रविष्टासु इव कमलिनीषु, गणकः इव नक्षत्रसूचके[1] प्रदोषे...... ।

अनुवाद– उसके बाद क्षणभर में ही चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो गया और उस समय रात्रि को अनुरंजित करने में निपुण सन्ध्या के समान क्षणिक प्रेम प्रदर्शित करने में कुशल वेश्याएँ उपस्थित हो गयीं। कमल–सरोवर में कमलिनियों की पंखुड़ियाँ अत्यधिक दृढ़ता से संकुचित हो रही थीं। रतौंधी से पीड़ित व्यक्ति के समान(उपमा) भ्रमरों के समूह इधर–उधर घूम रहे थे। व्याकुल चक्रवाकी के व्याज से

---

[1]. महाकवि का ज्योतिष विषयक ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।

कुमुदिनियाँ सूर्य के डूबने से दुःखी होकर मानो विलाप कर रही थीं(उत्प्रेक्षा)। सन्ध्याकाल की लालिमा से शोभायमान जल में स्थित कमलिनियाँ मानो सूर्य के वियोग में अग्नि में प्रवेश कर रही थीं (उत्प्रेक्षा)। नक्षत्रों के शुभ–अशुभ फलों का कथन करने वाले ज्योतिषी के समान (उपमा) सायंकाल नक्षत्रों को प्रकाशित कर रहा था।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **क्षणदा**– रात्रि, क्षणिक। **तुलाधार**– तराजू को धारण करने वाला वैश्य, सूर्य। **तारक**– तारकासुर, नक्षत्र। **तिमिरप्रतिहत**– रतौंधी का रोगी, अन्धकार से पीड़ित। **सूचक**– सूचित करने वाला, प्रकाशित करने वाला।

(ii) अन्धकार होने पर वेश्याओं, कमलिनियों, भ्रमरों की गतिविधियों के आरम्भ होने का उल्लेख हुआ है।

(iii) कमलिनियों का मानवीकरण करते हुए चक्रवाक के कूजन में अपने प्रियतम सूर्य के विरह की व्यथा से विलाप करना तथा उनके अग्नि में प्रवेश होने विषयक कल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

(iv) इसीप्रकार सायंकाल का मानवीकरण करके उसमें नक्षत्रों के शुभाशुभ का कथन करने वाले ज्योतिषी की उत्प्रेक्षा भी सुन्दर कही जा सकती है।

अवतरणिका– इसी तिमिर का वर्णन करते हुए महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(76)हरकण्ठकालिमसनाभि, दैत्यबलमिव प्रकट–तारकम्, भारतसमरमिव वर्धमानोलूकशकुनिकलकलम्, धृष्टद्युम्नवीर्यमिव कुण्ठितद्रोणप्रभावम्, नन्दनवनमिव संचरत् कौशिकम्, कृष्णवर्त्मज्वलनमिव निखिलकाष्ठापहारकम्, सगर्भमिव घनतरपाषाणकर्कशासु गिरितटीषु, सचक्षुरिव सुप्तप्रबुद्धसिंहनयनच्छविच्छटाकपिलेषु सानुषु सजीवमिव

तमोमणिभिः, संवर्धितमिवाग्निहोत्रधूमलेखाभिः, मांसलितमिव कामिनीकेशपाशसंस्कारागुरुधूमपटलैः, उद्दीपितमिव घनतरनिलीनमधुकरपटलमेचकितपेचकिकपोलतलगलित–दानधाराशीकरैः, पुंजीकृतमिव विततमालकाननच्छटा–च्छायासु, लीयमानमिव कज्जलरसश्यामभोगिभोगेषु, प्रावरणमिव रजनीपांसुलायाः,पलितौषधमिव वृद्धवारविलासि–न्याः, अपत्यमिव रजन्याः, सुहृदिव कलिकालस्य, मित्रमिव दुर्जनहृदयस्य, बौद्धदर्शनमिव प्रत्यक्षद्रव्यमपह्नुवानं तिमिर–मुदजृम्भत।

पदच्छेद– हर–कण्ठ–कालिम–सनाभि–दैत्य–बलम् इव प्रकट–तारकम्, भारत–समरम् इव वर्धमान–उलूक–शकुनि–कल–कलम्, धृष्टद्युम्न–वीर्यम् इव कुण्ठित–द्रोण–प्रभावम्, नन्दन–वनम् इव संचरत्–कौशिकम्, कृष्णवर्त्म–ज्वलनम् इव निखिल–काष्ठ–अपहारकम्, सगर्भम् इव घनतर–पाषाण–कर्कशासु गिरि–तटीषु, सचक्षुः इव सुप्त–प्रबुद्ध–सिंह–नयन–छवि–छटा–कपिलेषु सानुषु सजीवम् इव तमोमणिभिः, संवर्धितम् इव अग्निहोत्र–धूम–लेखाभिः, मांसलितम् इव कामिनी–केश–पाश–संस्कार–अगुरु–धूम–पटलैः, उद्दीपितम् इव घनतर–निलीन–मधु–कर–पटल–मेचकित–पेचकि–कपोल–तल–गलित–दान–धारा–शीकरैः, पुंजीकृतम् इव वितत–तमाल–कानन–छटा–छायासु, लीयमानम् इव कज्जल–रस–श्याम–भोगि–भोगेषु, प्रावरणम् इव रजनी–पांसुलायाः, पलित–ओषधम् इव वृद्ध–वार–विलासिन्याः, अपत्यम् इव रजन्याः, सुहृद् इव कलि–कालस्य, मित्रम् इव दुर्जन–हृदयस्य, बौद्ध–दर्शनम् इव प्रत्यक्ष–द्रव्यम् अपह्नुवानम् तिमिरम् उदजृम्भत। (उपमा)

अनुवाद– वह अन्धकार महादेव के गले की कालिमा के समान था (उपमा), **जो तारकासुर से युक्त दैत्यों की सेना के समान द्योतित होते हुए नक्षत्रों से युक्त था**(उपमा)। **शकुनि तथा उसके पुत्र उलूक के बढ़ते हुए कोलाहल से युक्त महाभारत के युद्ध के समान**(उपमा)

उल्लुओं के बढ़ते हुए कोलाहल से सम्पन्न था । द्रोणाचार्य के प्रभाव को कुण्ठित करने वाली, धृष्टद्युम्न की वीरता के समान, कौओं के प्रभाव को कुण्ठित करने वाला था (उपमा)।

विचरण करते हुए इन्द्रयुक्त नन्दन वन के समान, घूमते हुए उल्लुओं वाला था(उपमा)। सभीप्रकार के ईंधनों को भस्म कर देने वाली, अग्नि की लपटों के समान सम्पूर्ण दिशाओं को आच्छादित करने वाला था(उपमा)। विशाल पत्थरों के कारण कठोर पर्वत कन्दराओं में बढ़े हुए के समान था(उपमा)। मानो सोकर उठे हुए सिंहों के नेत्रों की छटा के समान पीले हुए पर्वतों के शिखररूपी नेत्रों वाला था(उपमा, उत्प्रेक्षा)।

नीलमणि से मानो सजीव जैसा था(उत्प्रेक्षा)। अग्निहोत्र की धूमलेखाओं से मानो बढ़ा हुआ था(उत्प्रेक्षा)। कामिनियों के केशों को सुगन्धित करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले अगरु की सुगन्धों से मानो परिपुष्ट था(उत्प्रेक्षा)। सघनरूप में बैठे हुए भ्रमरसमूह के कारण काले हुए हाथियों के गण्डस्थल के बहते हुए मदजल के प्रवाह के कणों से मानो बढ़ा हुआ था(उत्प्रेक्षा)। दूर तक फैले हुए तमाल वन की सुन्दर छायाओं में मानो इकट्ठा हो गया था(उत्प्रेक्षा)। काजल के रस के समान (उपमा) काले सर्पों के शरीर में मानो विलीन सा हो गया था(उत्प्रेक्षा)। रात्रिरूपी अभिसारिका का मानो नीला दुपट्टा था(उत्प्रेक्षा)। मानो वृद्ध वेश्याओं के श्वेत बालों को काला करने के लिए ओषधि था(उत्प्रेक्षा)। (यहाँ तक उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य दर्शनीय है)

रात्रि के पुत्र के समान, कलियुग के मित्र के समान, दुर्जनों के हृदय के मित्रवत्, प्रत्यक्ष वस्तुओं को स्वीकार न करने वाले बौद्धदर्शन के समान (उपमा) सामने दिखायी देने वाली सभी वस्तुओं को आच्छा-दित करने वाला था। (यहाँ उपमालंकार का प्रयोग हुआ है)

'चन्द्रिका'– अनेक उपमानों के माध्यम से संसार की सभी वस्तुओं को आच्छादित करने वाले अन्धकार की गहनता का विशेषरूप से उल्लेख करते हुए उसे रात्रि का पुत्र, कलियुग तथा दुर्जनों के हृदय का मित्र बताते हुए, कवि द्वारा बौद्धदर्शन की आलोचना उपमा के माध्यम से सुन्दर रूप में की गयी है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **काष्ठा**– दिशा, ईंधन, लकड़ी।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि अन्धकार की घनता वाले स्थानों का वर्णन उत्प्रेक्षायुक्त आलंकारिक भाषा में करते हुए पुनः कहते हैं कि–

(77) **मुदितमिव मत्तमातङ्गमनोहरगण्डमण्डले फलितमिवातिसान्द्रबहलच्छदतमालकानने, परिस्फुरितमिवा-तिकान्तकान्ताजघनतरकेशपाशसंहतौ, उन्मीलितमिवेन्द्र-नीलरश्मिषु, अतिशयमांसलितमिवावटतटेषु, साटोपमिव स्फुटपाटवोत्कटविशंकटानेकविटपिविटपोत्कटस्फुटकुसुम-पुटपिहितपदषट्पदावलिषु, घनतरघोरदन्तिघस्मरविषधर-भोगभासुरम्, मदभरमत्तदन्तिदन्तद्युतितर्जनजर्जरितम्, दिवाकरोदयारम्भणमिव सङ्कुचत्कुवलयम्, असतां महत्त्व-मिव तिरस्कृतसकलान्तरम्, निमीलन्नीलोत्पलव्याजरचितां-जलिपुटेन नमदिवागतं निशापतिं तिमिरमजायत।**

पदच्छेद– मुदितम् इव मत्त–मातङ्ग–मनोहर–गण्डमण्डले फलितम् इव अतिसान्द्र–बहल–छद–तमाल–कानने, परिस्फुरितम् इव अतिकान्त–कान्ता–जघनतर–केशपाश–संहतौ, उन्मीलितम् इव इन्द्र-नील–रश्मिषु, अतिशय–मांसलितम् इव अवट–तटेषु, साटोपम् इव स्फुट– पाटव–उत्कट–विशंकट–अनेक–विटपि–विटप–उत्कट–स्फुट-कुसुम–पुट–पिहित–पद–षट्पद–अवलिषु, घनतर–घोर–दन्ति–घस्मर-विषधर–भोग–भासुरम्, मदभर–मत्त–दन्ति–दन्त–द्युति–तर्जन–जर्जरितम्, दिवाकर–उदय–आरम्भणम् इव सङ्कुचत्–कुवलयम्, असताम् महत्त्वम्

इव तिरस्कृत–सकल–अन्तरम्, निमीलन् नीलोत्पल–व्याज–रचिताम् जलि–पुटेन नमत् इव आगतम् निशापतिम् तिमिरम् अजायत।

अनुवाद– उत्पन्न हुआ वह अन्धकार मानो मतवाले हाथियों के मदजल के कारण मनोहर गण्डस्थलों पर प्रफुल्लित हो रहा था। अत्यधिक घने पत्तों से युक्त तमाल वन के समान मानो फलित हो रहा था। रमणियों के अत्यधिक सुन्दर घने केशकलाप में मानो प्रकाशित हो रहा था। इन्द्रनीलमणि की कान्ति में मानो देदीप्यमान हो रहा था। गड्ढ़ों में मानो अत्यधिक परिपुष्ट हो रहा था। अत्यन्त दृढ़ता के साथ खड़े विशाल वृक्षों की शाखाओं में लगे हुए खिले हुए पुष्पों में फँसे हुए पैरों वाले भ्रमरों के समूह में मानो गर्व के साथ विद्यमान था।

वह मानो बलिष्ठ, भयंकर, हाथियों को खाने वाले(दन्तिघस्मर) सर्पों के शरीर के समान उज्ज्वल था। मतवाले हाथियों के दाँत की चमक से मानो शिथिल बनाया जा रहा था। कमलिनियों को संकुचित करने वाले सूर्य के समान सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को संकुचित करने वाला था। सम्पूर्ण विचारों को तिरस्कृत कर देने वाले दुर्जनों के महत्त्व के समान सभी वस्तुओं के भेद (अन्तर) को समाप्त करने वाला था, जो बन्द होते हुए नीलकमल के व्याज से हाथों को जोड़कर मानो चन्द्रमा को प्रणाम कर रहा था। (उत्प्रेक्षा)

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) अन्धकार का मानवीकरण करने में कवि की परिकल्पना दर्शनीय है। यत्र–तत्र उपमा एवं सम्पूर्ण अंश में उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **कुवलय**– कमलिनी, पृथ्वीमण्डल। **अन्तर**– विद्वानों के विचार, भेद।

(रात्रौ नक्षत्रवर्णनम्)

अवतरणिका—रात्रि में घने अन्धकार के फैलने के बाद दिखायी देने वाले नक्षत्रों की शोभा का चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि कहते हैं कि—

(78) अथ क्षणेनैव सन्ध्याताण्डवाडम्बरोच्चलितमहानटजटाजूटकूटकुटिलस्खलनविवर्तितजह्नुकन्यावारिधाराबिन्दव इव विकीर्णाः, दुर्भरधरणिभारभुग्नभीमदिङ्मत्तमातङ्गमण्डलकरविमुक्तशीकरच्छटा इव तताः, अतिदवीयोनभस्तलभ्रमणखिन्नदिनकरतुरङ्गमास्यविवरान्तफेनस्तबका इव विस्तीर्णा, गगनमहासरः कुमुदसन्दोहसन्देहदायिनः, विश्वं गणयतो विधातुः शशिकठिनीखण्डेन तमोमषीश्यामेऽजिन इव वियति संसारस्यातिशून्यत्वात् शून्यबिन्दव इव विलिखिताः, जगत् त्रयविजिगीषाविनिर्गतस्य मकरकेतो रतिकरविकीर्णा इव लाजांजलयः, गुलिकास्त्रगुलिका इव विक्षिप्ताः पुष्पधनुषः, वियदम्बुराशिफेनस्तबका इव वितताः, रतिविरचिता गगनांगणे आतर्पणपंचाङ्गुलय इव, व्योमतललक्ष्मीहारमुक्तानिकरा इव विशीर्णाः, हरकोपानलदग्धकामचिताचक्रादिन्दोर्वात्यावेशविप्रकीर्णाः, कामकीकसखण्डा इव, तिमिरोद्गमधूमधूमलसन्ध्यानलपरितप्तगगनकटाहभज्जमानस्फुटितलाजानुकारिण्यस्तारा व्यराजन्त। एताभिः श्वित्रीव वियदशोभत।

पदच्छेद— अथ क्षणेन एव सन्ध्या—ताण्डव—आडम्बर—उच्चलित—महानट—जटाजूट—कूट—कुटिल—स्खलन—विवर्तित—जह्नुकन्या—वारि—धारा—बिन्दवः इव विकीर्णाः, दुर्भर—धरणि—भार—भुग्न—भीम—दिङ्—मत्त—मातङ्ग—मण्डल—कर—विमुक्त—शीकर—छटा इव तताः, अति—दवीयः[1]

---

[1] . दवीयश्च दविष्ठं च सुदूरं इत्यमरः।

नभस्तल– भ्रमण–खिन्न–दिनकर–तुरङ्गम् आस्य–विवरान्त–फेन–स्तबकाः इव विस्तीर्णाः, गगन–महासरः कुमुद–सन्दोह–सन्देह–दायिनः, विश्वम् गणयतः विधातुः शशिकठिनी–खण्डेन तमः मषी–श्यामे अजिने इव वियति संसारस्य अतिशून्यत्वात् शून्यबिन्दवः इव विलिखिताः, जगत् त्रय–विजिगीषा–विनिर्गतस्य मकरकेतोः रति–कर–विकीर्णाः इव लाजा–अंजलयः, गुलिका–अस्त्रगुलिकाः इव विक्षिप्ताः पुष्पधनुषः, वियद् अम्बुराशि–फेन–स्तबकाः इव वितताः, रति–विरचिताः गगनांगणे आतर्पण–पंच–अङ्गुलयः इव, व्योमतल–लक्ष्मी–हार–मुक्ता–निकराः इव विशीर्णाः, हर–कोप–अनल–दग्ध–काम–चिता–चक्राद् इन्दोः वात्या–आवेश–विप्रकीर्णाः, काम–कीकस[1]–खण्डा इव, तिमिर–उद्गम–धूम–धूमल–सन्ध्या–अनल–परितप्त–गगन–कटाह–भज्जमान–स्फुटित–लाजा–अनुकारिण्यः तारा व्यराजन्त। एताभिः श्वित्री[2] इव वियद् अशोभत।

अनुवाद– इसके बाद उसी क्षण आकाश में विशेषरूप से तारे सुशोभित होने लगे, जो मानो सन्ध्याकाल में ताण्डव नृत्य में हिलते हुए भगवान् शंकर के जटाजूट के अग्रभाग से तिरछे गिरने के कारण सम्भ्रान्त गंगा के जलप्रवाह की बूँदों के समान (उपमा)चारों ओर फैले हुए थे।(उत्प्रेक्षा)

जो सहन न करने योग्य पृथ्वी के भार के कारण झुके हुए भयंकर दिग्गजों के समूह की सूँड से ऊपर की ओर फैंके जल–कणों के समान मानो इधर–उधर बिखरे पड़े थे। (उत्प्रेक्षा)

अत्यधिक विशाल आकाश–मण्डल में घूमने से थके हुए सूर्य के घोडों के मुख–विवर से निकले हुए फेन के गुच्छों के समान मानो फैले हुए थे।

आकाशरूपी सरोवर में कुमुदों के समूह का सन्देह उत्पन्न कर रहे थे। संसार की गणना करते हुए ब्रह्मा के चन्द्रमारूपी खड़िया के

---

[1]. कीकसं कुल्यमस्थि चेति द्वयोरमरः।
[2]. कोठो मण्डलकं कुष्ठं श्वित्र इत्यमरः।

टुकड़े से अन्धकाररूपी स्याही के माध्यम से काले चर्म के समान आकाश के ऊपर संसार की निस्सारता होने से लिखे गए मानो शून्य लगा दिए गए थे।

तीनों लोकों पर विजय पाने के लिए निकले हुए, कामदेव के ऊपर रति ने मानो अपने हाथों से लाजाओं को बिखेर दिया हो।

मानो कामदेव की गुलेल (धनुष) से छोड़ी गईं छोटी-छोटी गोलियाँ हों। आकाशरूपी समुद्र में फैले हुए मानो फेन के समूह हों।

आकाशरूपी चौराहे पर रति द्वारा बनायी गयी मंगललेप की मानो पाँच अंगुलियाँ हों।

गगनतल की लक्ष्मी के हार की मुक्तामणियाँ मानो इधर-उधर बिखर गयी हों।

भगवान् शंकर की क्रोधरूपी अग्नि से जले हुए कामदेव की गोलाकार चितारूपी चन्द्रमा से वायु के समूह द्वारा बिखेरी गयीं कामदेव की अस्थियाँ हों।[1]

उत्पन्न हुए अन्धकाररूपी धुएँ से मानो काले बनाए गए हों, सन्ध्यारूपी अग्नि से तपाए गए, आकाशरूपी कड़ाह में भूने जाने से फूटे हुए लाजाओं का अनुकरण करने वाले हों।

इन तारों के साथ आकाश कुष्ठ रोगी के समान प्रतीत हो रहा था।

'चन्द्रिका'– कवि ने यहाँ रात्रि के गहन अन्धकार के सौन्दर्य को विभिन्न तलस्पर्शी सम्भावनाओं एवं उपमाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, जिनमें शिव के सिर पर स्थित गंगा के जल की बिन्दुओं, पृथ्वी के भार से झुके तथा थके हुए दिग्गजों द्वारा सूँड़ से

---

[1]. महाकवि का वैशिष्ट्य है कि वे उपमा-प्रवाह प्रसंग में सुन्दर वर्णन में भी बीभत्स की परवाह नहीं करते हैं। इसी क्रम में आगे नक्षत्र खचित आकाश को कुष्ठ रोगी तथा कामदेव की बिखरी हुई हड्डियाँ तथा आकाश को कुष्ठ का रोगी बताया गया है, जिसे कवि के उपमाविषयक दोष के रूप में भी देखा जा सकता है।

फैंके गए जल–कणों, सूर्य के खिन्न घोड़ों के मुख के गिरे झागों के गुच्छों, विधाता द्वारा संसार की गणना हेतु आकाशपटल पर लगाए गए शून्यतासूचक बिन्दुओं, कामदेव की पत्नी द्वारा मांगलिक दृष्टि से बिखेरी गयी लाजाओं, काम–धनुष की फैंकी गयी गुलिकाओं, आकाश रूपी समुद्र के फेन–समूहों, रति द्वारा चौराहे पर लगाई गयी पाँच अंगुलियों के चिह्नों, आकाशलक्ष्मी के हार की बिखरी हुई मुक्ता–मणियों, कामदेव की चन्द्रमारूपी गोलाकार चिता से वायु द्वारा बिखेरी गयी अस्थियों, आकाशरूपी कड़ाहे में भूनी गयी लाजाओं आदि सभी कल्पनाएँ अत्यन्त मनमोहक रही हैं।

विशेष–(i) उल्लेखनीय है कि महाकवि को उपमानरूप में 'कामदेव' अत्यधिक प्रिय रहा है। उपर्युक्त खण्ड में भी उन्होंने इसकी अनेकशः उपमानरूप में परिकल्पना की है।

(ii) उत्प्रेक्षा, उपमा एवं रूपक अलंकारों के माध्यम से अन्धकार का मानवीकरण करते हुए उनमें गंगा के फैले हुए जल–बिन्दु आदि का परिकल्पनाएँ मनमोहक रही हैं।

अवतरणिका– इसप्रकार रात्रि के अन्धकार में आकाश में प्रदीप्त हो रहे तारों की शोभा का वर्णन करने के बाद महाकवि पुनः गहन अन्धकार के ही फैलने के अवसर पर विभिन्न प्राणियों के क्रियाकलापों के विषय में सुन्दर कल्पनाओं के माध्यम से कहते हैं–

(79) ततो दीर्घोच्छ्वासरचनाकुलं सुश्लेषवक्त्रघटना पटु सत्कविवचनमिव चक्रवाकमिथुनमतीवाखिद्यत। कमलिनीवनसंचरणलग्नमकरन्दबिन्दुसन्दोहलुब्धमुग्धमुखरमधु करमालाशबलगात्रम्, कालपाशेनेव मूर्तिमद्रामशापेनेवा कृष्यमाणं चक्रवाकमिथुनं विजघटे। रविविरहविधुरायाः कमलिन्या हृदयमिव द्विधा पपाट चक्रवाकमिथुनम्। आगमिष्यतो हिमकरदयितस्य पार्श्वे संचरन्ती कुमुदिन्या भ्रमरमाला दूतीवालक्ष्यत। तारकानयनजलबिन्दुभिरस्तं

गतस्य दिवाकरदयितस्य शोकादिव ककुभो व्यरुदन्। भास्वतो निजदयितस्य विरहादभिनवकिंजल्कराजिव्याजेन शोकानलमुर्मुरो नलिनीकोशहृदये जज्वाल।

ततो रविरश्मिदावाग्निभस्मीकृतनभोवनमषीराशि रिव, श्रुतिवचनमिव क्षपितदिगम्बरदर्शनम्, कृष्णरूपमपि तिरस्कृतविश्वरूपभावविशेषम्, सद्योद्रावितराजतपटद्रवप्रवाह इव शार्वरमन्धतमसमजृम्भत।

पदच्छेद– ततः दीर्घ–उच्छ्वास–रचना–कुलम् सुश्लेष–वक्त्र–घटना–पटु–सत्कवि–वचनम्[1] इव चक्रवाक–मिथुनम् अतीव अखिद्यत। कमलिनी–वन–संचरण–लग्न–मकरन्द–बिन्दु–सन्दोह–लुब्ध–मुग्ध–मुखर–मधुकर–माला–शबल–गात्रम्, काल–पाशेन इव मूर्तिमद् राम–शापेन इव आकृष्यमाणम् चक्रवाक–मिथुनम् विजघटे। रवि–विरह–विधुरायाः कमलिन्याः हृदयम् इव द्विधा पपाट चक्रवाक–मिथुनम्। आगमिष्यतः हिमकर–दयितस्य पार्श्वे संचरन्ती कुमुदिन्याः भ्रमर–माला दूती इव अलक्ष्यत। तारका–नयन–जल–बिन्दुभिः अस्तंगतस्य दिवाकर–दयितस्य शोकाद् इव ककुभः व्यरुदन्। भास्वतः निज–दयितस्य विरहाद् अभिनव–किंजल्क–राजि–व्याजेन शोक–अनल–मुर्मुरः नलिनी–कोश–हृदये जज्वाल।

ततः रवि–रश्मि–दावाग्नि–भस्मीकृत–नभोवन– मषी–राशिः इव, श्रुति–वचनम् इव क्षपित–दिगम्बर–दर्शनम्, कृष्ण–रूपम् अपि तिरस्कृत–विश्वरूप–भाव–विशेषम्, सद्यः द्रावित–राजत–पट–द्रव–प्रवाहः इव शार्वरम् अन्धतमसम् अजृम्भत।

अनुवाद– तत्पश्चात् लम्बे–लम्बे उच्छ्वासों की रचना से युक्त सुन्दर, श्लेष एवं 'वक्त्र' नामक छन्दयुक्त रचना में निपुण श्रेष्ठ कवि के समान (उपमा), **उस समय लम्बी–लम्बी श्वास लेने से व्याकुल,**

---

[1]. प्रस्तुत अंश में कवि ने लम्बे–लम्बे उच्छ्वास, श्लेष तथा वक्त्र छन्द युक्त रचना करने वाले कवि को ही 'सत्कवि' की श्रेणी में माना है।

सुन्दर आलिंगन एवं चुम्बन में निपुण चक्रवाक–मिथुन अत्यधिक खिन्न हो रहा था। कमलिनी के वन में घूमने के कारण लगे हुए पराग–कणों के समूह के इच्छुक, रमणीय तथा गुँजार करते हुए भ्रमर–समूह से व्याप्त शरीर वाले चक्रवाकों का युगल मूर्तिमान् राम के शाप के समान यमराज के पाश से आकृष्ट होकर मानो अलग हो गया था। इसके अतिरिक्त सूर्य के वियोग में व्याकुल कमलिनी के हृदय के समान, चक्रवाक–मिथुन मानो दो भागों में बँट गया था।

कुमुदिनी के पास में घूमती हुई भ्रमर–पंक्ति, आने वाले चन्द्रमा रूपी प्रियजन की दूती के समान प्रतीत हो रही थी। दिशाएँ, अस्त हुए सूर्यरूपी प्रियतम के शोक में मानो नक्षत्ररूपी आँसू बहाते हुए रो रही थी। अपने प्रियतम सूर्य के विरह के कारण कमलिनी के कोशरूपी हृदय में नए पराग कणों के समूह के व्याज से शोकरूपी तुषाग्नि प्रज्वलित हो रही थी।

उसके बाद सूर्य की किरणरूपी दावाग्नि से भस्मीभूत हुई आकाशरूपी वन की राख के स्याहीरूपी ढेर के समान(रूपक, उपमा), जैन दर्शन का खण्डन करने वाले वेदवाक्य के समान(उपमा), आकाश तथा दिशाओं के देखने की सामर्थ्य को विनष्ट करने वाला, जो अन्धकार कृष्ण होते हुए भी विश्वरूपात्मकता की उत्कृष्टता को तिरस्कृत करने वाला था, (परिहार) जो काला होते हुए भी अलग–अलग आकार एवं वर्ण वाले पदार्थों के भेद को समाप्त करने वाला था, जो उसी क्षण पिघले हुए काले अभ्रक के प्रवाह के समान था।

'चन्द्रिका'–यहाँ कवि ने चक्रवाक मिथुन की रात्रि के अन्धकार में खिन्नता, प्रियतमा चक्रवाकी से चक्रवाक का अलग हो जाना, कुमुदिनी के पास में घूमती हुई भ्रमर–माला की चन्द्रमा की दूती के रूप में परिकल्पना, अस्त हुए सूर्यरूपी प्रियतम के शोक में दिशाओं का नक्षत्ररूपी आँसुओं को बहाना, वियोगी कमलिनी के कोशरूपी हृदय में स्थित परागकणों के रूप में जलना, आकाश तथा दिशाओं के दर्शन

का लुप्त हो जाना, संसार के विभिन्न आकार तथा पदार्थों के भेद को समाप्त कर देना आदि सभी परिकल्पनाएँ, उपमाएँ सहृदय को प्रमुदित करने वाली कही जा सकती हैं।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यांश से महाकवि की वेदों के प्रति आस्था तथा जैन धर्म की प्रति अनास्था की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) महाकवि को प्रकृति–चित्रण में चक्रवाक पक्षी विशेष प्रिय रहा है। यही कारण है कि प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर इसकी सूक्ष्म गतिविधियों का अवसर मिलते ही सूक्ष्म–वर्णन किया गया है। प्रस्तुत गद्यांश इसका सुन्दर निदर्शन है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **उच्छ्वास**– निःश्वास, अध्याय। **श्लेष**- अलंकार, आलिंगन। **वक्त्र**–छन्द, मुख। **घटना**– निर्मिति, चुम्बन। **दिगम्बर**– दिशा एवं आकाश, जैन दर्शन।

(iv) पिघले हुए काले अभ्रक का उल्लेख करने से कवि का रसायन–विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(v) उपर्युक्त अंश में उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लेष, रूपक एवं विरोधाभास अलंकारों के माध्यम से सुन्दर भावाभिव्यक्ति की गयी है।

(चन्द्रोदयवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार रात्रि के अन्धकार का विस्तृत एवं मनमोहक वर्णन करने के बाद, महाकवि उसके बाद होने वाले चन्द्रोदय का चित्र प्रस्तुत करते हुए उसमें अनेकानेक सुन्दर हृदय को स्पर्श करने वाली परिकल्पनाओं को प्रस्तुत करते हैं–

(80) **अथ क्षणेन क्षणदाराजकन्याकन्दुक इव, कन्दर्पकनकदर्पण इव, उदयगिरिबालमन्दारपुष्पस्तबक इव, प्राचीललनाललामललाटतटघटितबन्धूककुसुमतिलकचक्राकारः, कनककुण्डलमिव नभः श्रियः, दिग्वधूप्रसाधिकाहस्त–स्रस्तालक्तकपिण्ड इव शातकुम्भकुम्भ इव गगनसौधतलस्य, प्रस्थानमंगलकलश इव त्रिभुवनविजयविनिर्गतस्य मकर–**

केतोः, कन्दर्पकार्तस्वरतृणमुखकान्तितस्करः, प्राच्यशैलशिख-राग्रप्ररूढजपाकुसुमच्छविः,

पदच्छेद– अथ क्षणेन क्षणदा–राजकन्या–कन्दुकः[1] इव, कन्दर्प–कनक–दर्पणः इव, उदयगिरि–बाल–मन्दार–पुष्प–स्तबकः इव, प्राची–ललना–ललाम–ललाट–तट–घटित–बन्धूक–कुसुम–तिलक–चक्राकारः, कनक–कुण्डलम् इव, नभः श्रियः, दिक्–वधू–प्रसाधिका–हस्त–स्रस्त–आलक्तक–पिण्डः इव, शातकुम्भ–कुम्भः इव, गगन–सौध–तलस्य, प्रस्थान–मंगल–कलशः इव, त्रिभुवन–विजय–विनिर्गतस्य मकरकेतोः, कन्दर्प–कार्तस्वर–तृण–मुख–कान्ति–तस्करः, प्राच्य–शैल–शिखर–अग्र–प्ररूढ–जपा–कुसुम–छविः,

अनुवाद– **तत्पश्चात् उसी क्षण रात्रिरूपी राजकुमारी की गेंद के समान**(रूपक, उपमा), **कामदेव के स्वर्णनिर्मित दर्पण के समान, उदयाचलरूपी मन्दार वृक्ष के पुष्प के गुच्छे के समान**(रूपक, उपमा), **पूर्व दिशारूपी युवती के ललाट मण्डल पर लगे हुए बन्धूक पुष्प के तिलक के समान गोलाकार**(रूपक, उपमा), **आकाशरूपी लक्ष्मी के स्वर्णनिर्मित कुण्डल के समान**(रूपक, उपमा),

दिशारूपी वधुओं की सजावट करने वाली स्त्री के हाथों से गिरे हुए लाक्षापिण्ड के समान(रूपक, उपमा), **आकाशरूपी प्रासाद के स्वर्णनिर्मित कलश के समान**(रूपक, उपमा), **तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के लिए निकले हुए कामदेव के प्रस्थान के समय के मंगल–कलश के समान, कामदेव के स्वर्णनिर्मित बाण के अग्रभाग की कान्ति को चुराने वाला, पूर्व दिशारूपी पर्वत के अग्र भाग पर चढ़ाए हुए जटामासी पुष्प की शोभा से युक्त,** (रूपक, उपमा)

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत अंश में उदित हुए चन्द्रमा के विषय में कवि ने सभी उपमाएँ अत्यन्त सुन्दर प्रस्तुत की है, जिनमें इसे राजकुमारी की गेंद, कामदेव का सोने से बना दर्पण, मन्दार पुष्प–

---

[1]. गेन्दुकः कन्दुक इत्यमरः।

गुच्छ, दिशारूपी ललना के मस्तक पर बन्धूक पुष्प का तिलक, लाक्षा-पिण्ड, आकाशरूपी महल का स्वर्णनिर्मित कलश, कामदेव का मंगल कलश, उसके स्वर्णनिर्मित बाण का अग्रभाग, दिशारूपी पर्वत के शिखर पर उगा हुआ जपाकुसुम आदि सभी परिकल्पनाएँ निश्चय ही मनमोहक बन पड़ी हैं।

विशेष–(i) महाकवि ने चन्द्रोदय का वर्णन करने के लिए मानो तलस्पर्शी उपमानों की झड़ी ही लगा दी है, जो उनके उर्वर कवित्व को ही पुष्ट करता है।

(ii) उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि कुछ अन्य मनोहारिणी उपमाओं को प्रस्तुत करते हुए चन्द्रमा की लालिमा (राग) के कुछ कम होने के विषय में भी कहते हैं कि–

(81) **स्वच्छकुंकुमपिण्डपूर्णपात्रमिव निशाविलासिन्याः कुंकुमारुणैकस्तनकलश इव आखण्डलाङ्गनायाः, गगन-गामिविद्याधरीकरतलावस्थितलीलाशुकपंजर इव, पूर्वाचल-शिखरविश्रान्तकिन्नरमिथुनरक्तवस्त्रकंचुकितवीणालाबुरिव, गरुड़ इव हरिणाधिष्ठितः, राम इव लक्ष्मणान्वितः, वानरेन्द्र इव अनुरक्ततारः, वृषभ इव रोहिणीप्रियः, सुराजेव रक्त-मण्डलः, जाम्बवानिव ऋक्षपरिवृतो रजनीपतिरुदयमा-ससाद।**

ततः कामिनीहृदयसङ्क्रामित इव, चक्राङ्ग-नानयनयुगलपीत इव रक्तकुमुदकोशालीढ इव क्षीणतां जगाम क्षणदाकरगतो रागः।

पदच्छेद– स्वच्छ–कुंकुम–पिण्ड–पूर्ण–पात्रम् इव निशा-विलासिन्याः कुंकुम–अरुण–एक–स्तन–कलशः इव आखण्डल–अङ्ग-नायाः, गगन–गामि–विद्याधरी करतल–अवस्थित–लीला–शुकपंजरः इव,

पूर्वाचल–शिखर–विश्रान्त–किन्नर–मिथुन–रक्त–वस्त्र–कंचुकित–वीणा–आलाबुः इव, गरुड़ः इव हरिण–अधिष्ठितः, रामः इव लक्ष्मण–अन्वितः, वानरेन्द्रः इव अनुरक्त–तारः, वृषभः इव रोहिणी–प्रियः, सुराजा इव रक्त–मण्डलः,जाम्बवान् इव ऋक्ष–परिवृतः रजनीपतिः उदयम् आससाद।

ततः कामिनी–हृदय–सङ्क्रामितः इव, चक्राङ्गना–नयन–युगल–पीतः इव, रक्त–कुमुद–कोश–आलीढः इव, क्षीणताम् जगाम क्षणदा–कर–गतः रागः।

अनुवाद– रात्रिरूपी नायिका के निर्मल कुंकुम से रंगे हुए एक स्तनरूपी कलश के समान, आकाश में प्रस्थान करने वाली विद्याधरी की हथेली पर रखे हुए लीलाशुक[1] के पिंजरे के समान, उदयाचल के शिखर पर आराम करते हुए किन्नर युगल के लाल वस्त्र से ढ़की हुई वीणा की तुम्बी के समान, विष्णु के सुशोभित गरुड़ के समान मृगचिह्न से लांछित, लक्ष्मण से युक्त राम के समान कलंक से अंकित, अपनी पत्नी तारा में अनुरक्त बालि के समान तारा में अनुरागयुक्त, अनुरक्त प्रजाओं वाले राजा के समान, लाल मण्डल से युक्त, भालुओं (ऋक्ष) से घिरे हुए जाम्बवान् के समान अनेक नक्षत्रों (ऋक्ष) से घिरा हुआ चन्द्रमा उदित हुआ। (उपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है)

तत्पश्चात् उस चन्द्रमा का राग उसीप्रकार अत्यधिक क्षीण हो गया, मानो रमणियों के हृदय में संक्रमित हो गया हो(उत्प्रेक्षा), मानो चक्रवाकियों के दोनों नेत्रों द्वारा पी लिया गया हो(उत्प्रेक्षा), मानो लाल कुमुदों की कलियों द्वारा चाट लिया गया हो। (उत्प्रेक्षा)

'चन्द्रिका'– इसी क्रम में यहाँ पूर्व दिशारूपी नायिका का कुंमुम के पिण्ड से पूर्णरूप से भरा पात्र, उसी का कुंकुम से रंगा गया एक स्तन–कलश, आकाशचारी विद्याधरी के हाथ पर रखा लीलाशुक का

---

[1]. प्राचीन समय में महलों में भी तोतों पिंजरे में रखकर पाला जाता था, यहाँ उसी ओर 'लीलाशुक' कहकर संकेत किया गया है।

पिंजरा, उदयाचल पर आराम करते हुए किन्नरयुगल की लाल वस्त्र के ढ़की हुई वीणा की तुम्बि आदि उपमान भी दर्शनीय हैं।

साथ ही, यहाँ उसके लाल मण्डल को प्रजा में अनुरक्त राजा के समान बताना, चन्द्रमा के आसपास स्थित नक्षत्रों में किया गया भालुओं से घिरे हुए जाम्बवान् का चिन्तन भी वस्तुतः स्पृहणीय है। इसी क्रम में कवि ने चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी तथा उसमें स्थित कलंक को भी विस्मृत नहीं किया है।

अन्त में चन्द्रमा की लालिमा के कम होने के सम्बन्ध में कवि द्वारा की गयी सम्भावनाएँ, मानो उसका कमलिनियों के हृदयों में सक्रमित होना, चक्रवाकियों द्वारा उसे पिया जाना, लाल कुमुदिनियों की कलियों द्वारा चाटा जाना भी मनमोहक रही हैं और महाकवि की अद्भुत काव्यात्मक प्रतिभा को सिद्ध करती हैं।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **हरि**– विष्णु, मृगचिह्न। **लक्ष्मण**– व्यक्ति विशेष, कलंक। **तार**– तारा नक्षत्र, बृहस्पति पत्नी तारा। **रोहिणी**– गाय, चन्द्रमा की पत्नी। **रक्त**– अनुक्त, लाल। **ऋक्ष**– भालू, नक्षत्र।

अवतरणिका– लालिमा के समाप्त होने के बाद के चन्द्रमा के सौन्दर्य का वर्णन अनेक प्रकार की परिकल्पनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए महाकवि सुबन्धु पुनः कहते हैं कि–

(82) अनन्तरं शर्वरी व्रजाङ्गनाविष्कृतनूतननवनीत स्वस्तिक इव कुसुमकेतोर्मुखच्छायामुद्रित इव मुकुरः, श्वेतातपत्रमिव मकरकेतोः, दन्तपालिचक्रमिव वियन्महाखड्गस्य, श्वेतचामरमिव मदनमहाराजस्य, बालपुलिनमिव निशायमुनायाः, स्फाटिकलिंगमिव गगनमहातापसस्य, अण्डमिव कालोरगस्य, कम्बुरिव नभोमहार्णवस्य, स्फाटिककमण्डलुरिव नभोव्रतिनः, चैत्यमिव मदनारिदग्धस्य मकरकेतोः, चिताचक्रमिव कलंककालांगारशबलं संकल्पजन्मनः,

पुण्डरीकमिव गगनगामिगंगायाः, फेनपुंज इव गगन–महार्णवस्य, पारदपिण्ड इव कालधातुवादिनः, राजतकलश इव दूर्वाप्रवालशबलो मनोभवाभिषेकस्य, श्वेतचक्रमिव कन्दर्परथस्य, चूडामणिरिव उदयगिरिनागराजस्य, श्वेत–पारावत इव अम्बरमहाप्रासादस्य, गगनसरिद्धौतसिन्दूरं कुम्भस्थलमिवैरावतस्य, भुग्नशृंगपुराणगोमुण्डखण्ड इव ताराश्वेतगोधूमशालिनो नभः क्षेत्रस्य, मलयजपिण्डपाण्डुर–राजततालवृन्तमिव सिद्धांगनाहस्तविस्रस्तम्, क्षीणरागो भगवानुडुपतिरुज्जगाम।

यश्च पुण्डरीकं लोकलोचनमधुकराणाम्, शयनीय–सैकतं चित्तराजहंसानाम्, स्फाटिकव्यजनं विरहवह्नीनाम्, श्वेतशाणचक्रं मन्मथसायकानाम्।

पदच्छेद– अनन्तरम् शर्वरी व्रजाङ्गना–आविष्कृत–नूतन–नवनीत–स्वस्तिकः इव, कुसुमकेतोः मुख–छाया–मुद्रितः इव मुकुरः, श्वेत–आतपत्रम् इव मकरकेतोः, दन्त–पालि–चक्रम् इव वियत्– महा–खड्गरय, श्वेत–चामरम् इव मदन–महाराजस्य, बाल–पुलिनम् इव निशा–यमुनायाः, स्फाटिक–लिंगम् इव गगन–महातापसस्य, अण्डम् इव काल–उरगस्य, कम्बुः इव नभः–महा–अर्णवस्य, स्फाटिक–कमण्डलुः इव नभोव्रतिनः, चैत्यम् इव मदन–अरिदग्धस्य मकरकेतोः, चिता–चक्रम् इव कलंक–काला–अंगार–शबलम् संकल्प–जन्मनः, पुण्डरीकम् इव गगन–गामि–गंगायाः, फेन–पुंजः इव गगन–महार्णवस्य, पारद–पिण्डः इव काल–धातु–वादिनः[1], राजत–कलशः इव दूर्वा–प्रवाल–शबलः मनोभव–अभिषेकस्य, श्वेत–चक्रम् इव कन्दर्प–रथस्य, चूडामणिः इव उदय–गिरि–नागराजस्य, श्वेत–पारावतः इव अम्बर–महाप्रासादस्य, गगन–सरित्–धौत–सिन्दूरम् कुम्भस्थलम् इव ऐरावतस्य, भुग्न–शृंग– पुराण–गोमुण्ड–खण्डः इव तारा–श्वेत–गोधूम–शालिनः नभः क्षेत्रस्य, मलयज–

---

[1]. महाकवि का रसायन–शास्त्र विषयक ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।

पिण्ड–पाण्डुर–राजत–तालवृन्तम् इव सिद्धांगना–हस्त–विस्रस्तम्, क्षीण-राग: भगवान् उडुपति: उज्जगाम।

य: च पुण्डरीकम् लोक–लोचन–मधुकराणाम्, शयनीय–सैकतम् चित्त–राजहंसानाम्, स्फाटिक–व्यजनम् विरह–वह्नीनाम्, श्वेत–शाण-चक्रम् मन्मथ–सायकानाम्।

अनुवाद– **उसके बाद रात्रिरूपी गोपी द्वारा निकाले गए नूतन मक्खन के पिण्ड के समान**(रूपक, उपमा), **कामदेव की मुख की कान्ति से प्रतिबिम्बित दर्पण के समान**(रूपक, उपमा), **कामदेव के श्वेत छाते के समान, आकाशरूपी तलवार की गोलाकार हाथीदाँत से निर्मित मूठ के समान**(रूपक, उपमा), **कामदेवरूपी सम्राट् के श्वेत चामर के समान** (रूपक, उपमा), **रात्रिरूपी कालिन्दी के छोटे से बालुका पिण्ड के समान**(रूपक, उपमा), **आकाशरूपी महातपस्वी के स्फटिक निर्मित शिवलिंग के समान**(रूपक, उपमा), **कालरूपी सर्प के अण्डे के समान, आकाशरूपी महासागर के शंख के समान**(रूपक, उपमा),

आकाशरूपी संन्यासी के स्फटिक द्वारा बनाए गए कमण्डलु के समान(रूपक, उपमा), **शंकर द्वारा जलाए गए कामदेव के स्मारक के समान, कामदेव की कलंकरूपी कोयले से व्याप्त गोलाकार चिता के समान**[1](रूपक, उपमा), **आकाशगंगा के श्वेत कमल के समान, आकाश रूपी महासागर की फेनराशि के समान** (रूपक, उपमा), **कालरूपी रसायनज्ञ के पारदपिण्ड के समान**[2], **कामदेव के अभिषेक के लिए स्थापित दूब की पत्तियों से व्याप्त चाँदी के घड़े के समान**[3] (रूपक, उपमा), **कामदेव के रथ के श्वेत पहिए के समान**(उपमा), **उदयाचल**

---

[1]. महाकवि सुबन्धु ने चिता की कल्पना सर्वत्र गोलाकार रूप में ही की है, ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के समय अन्तिम संस्कार करने के लिए चिता का निर्माण गोलाकाररूप में भी किया जाता था।

[2]. महाकवि का रसायन–विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

[3]. महाकवि का मांगलिक कार्यों तथा उसके उपादानों के विषय में भी गहन ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।

रूपी नागराज की मुकुटमणि के समान(रूपक, उपमा), आकाशरूपी महाप्रासाद के श्वेत कबूतर के समान(रूपक, उपमा), ऐरावत के आकाशगंगा में धो दिए गए सिन्दूर वाले गण्डस्थल के समान(उपमा), नक्षत्ररूपी गोधूम से सुशोभित आकाशरूपी खेत के टूटे हुए सींग वाले पुराने गोशीर्ष के टुकड़े के समान(रूपक, उपमा), सिद्धांगना के हाथ से छूटे हुए चन्दन–पंक से श्वेत तथा चाँदी से निर्मित पंखे के समान (रूपक, उपमा), क्षीण हुई लालिमा वाले चन्द्रदेव उदित हो गए।

जो वस्तुतः संसार के नेत्ररूपी भ्रमरों के लिए कमल, चित्तरूपी राजहंसों के लिए शय्यारूपी तट, विरहरूपी अग्नियों के लिए स्फटिक द्वारा निर्मित पंखा एवं कामरूपी बाणों के लिए श्वेत शाणफलक थे।[1]

'चन्द्रिका'– यहाँ पर क्षीण हुई लालिमा वाले चन्द्रमा उदित हुए इतना ही कथ्य है, जिसे उपमाओं तथा रूपक के माध्यम से कवि ने अपने चिन्तन को अत्यन्त सुन्दरता प्रदान कर दी है।

साथ ही, लालिमा से रहित श्वेत चन्द्रमा को ताजे मक्खन, **कामदेव** की कान्ति से युक्त दर्पण, कामदेव का श्वेत छाता, उसके रथ का श्वेतचक्र, हाथी दाँत से बनायी गयी विशाल तलवार की मूठ, महाराज कामदेव का श्वेत चँवर, कामदेव का स्मारक, उसकी गोलाकार चिता, यमुना का बालूकामय तट, स्फटिक निर्मित शिवलिंग, कालसर्प का अण्डा, महासागर का शंख, स्फटिक निर्मित कमण्डलु, मन्दाकिनी का श्वेत कमल, महासरोवर का फेन–पुंज, पारद–पिण्ड, चाँदी का कलश, नागराज की चूड़ामणि, श्वेत कबूतर, चाँदी से बना हुआ पंखा, कमल, शय्या तट, स्फटिक मणि–निर्मित पंखा तथा बाणों को तेज करने वाला शाणफलक इत्यादि तलस्पर्शी उपमानों के रूप में प्रस्तुत किया है।

---

[1]. बाण को तीक्ष्ण करने के लिए उसे विशेष प्रकार के पत्थर पर घिसा जाता था। उसे ही यहाँ शाणफलक संज्ञा प्रदान की गयी है। आज भी गाँवों में चाकू आदि की धार को तेज करने के लिए पत्थर पर घिसा जाता है।

इसीप्रकार उत्प्रेक्षा के माध्यम से रात्रि में गोपी की, आकाश में तलवार की, तपस्वी की, विशाल सागर की, महासरोवर की, प्रासाद की, खेत की, कामदेव में राजा की, रात्रि में यमुना की, काल में सर्प की, महान् रसायनज्ञ की, कलंक में कोयले की, उदयाचल में नागराज की, नक्षत्रों में श्वेत गेहूँ की, नेत्रों में भ्रमरों की, चित्तों में राजहंस की, तट में शय्या की सुन्दर परिकल्पना भी की गयी है।

विशेष–(i)उपर्युक्त गद्यांश में कवि की उत्प्रेक्षा तथा उपमाओं के प्रयोग की उत्कृष्ट सामर्थ्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) महाकवि को उपमानरूप में कामदेव अत्यधिक प्रिय रहा था, उक्त गद्यखण्ड इस कथ्य का प्रमाण है, क्योंकि यहाँ अधिकांश उपमान कामदेव से सम्बन्धित ही प्रयुक्त हुए हैं।

(iii) वस्तुतः कवि का उपमान विषयक चिन्तन इतना अधिक विस्तृत, सूक्ष्म एवं गम्भीर है कि इस पर स्वतन्त्ररूप से प्रबन्ध ही लिखा जा सकता है।

(दूतीनां द्व्यर्थकसंवादवर्णनम्)

अवतरणिका– तत्पश्चात् चन्द्रोदय के बाद रात्रिकाल में होने वाली सांसारिक गतिविधियों के विषय में महाकवि कहते हैं कि–

(83) अत्रान्तरे अभिसारिकासार्थप्रेषितानां प्रियतमान् प्रति दूतीनां द्व्यर्थाः सप्रपंचाः विकारभंगुराः संवादा बभूवुः।

पदच्छेद– अत्रान्तरे अभिसारिका–सार्थ–प्रेषितानाम् प्रियतमान् प्रति दूतीनाम् द्व्यर्थाः सप्रपंचाः विकार–भंगुराः संवादाः बभूवुः।

अनुवाद– **इसी बीच प्रियतमों के पास में अभिसारिकाओं के समूहों द्वारा भेजी गयी, दूतियों के दो अर्थों वाले, कामविकार को अभिव्यक्त करने वाले, विस्तारयुक्त, वार्तालाप(संवाद) आरम्भ हो गए।**

'चन्द्रिका'– महाकवि का समय ऐश्वर्य से सम्पन्न उन्मुक्त भोग–विलास का युग था, जिसमें रात्रि के समय अनेक अभिसारिकाएँ अपने रूठे हुए प्रियतमों को मनाने के लिए उनके पास दूतियों को

भेजती थीं, दूतियों की विशेषता थी कि वे श्लेष के माध्यम दो अर्थ वाली शब्दावली से नायक की प्रशंसा भी कर देती थीं तथा उसे उलाहना भी दे देती थी, जिसका चित्रण आगे गद्यखण्ड संख्या–101 तक किया गया है। इस अंश में कवि की श्लिष्ट आलंकारिक भाषा का उत्कृष्ट रूप भी देखा जा सकता है।

विशेष–(i) यहाँ 'लोकलोचनमधुकराणाम्' में रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है, इसीप्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

(ii) 'श्वेत–शाण–चक्रम्' से अभिप्राय यहाँ बाण को घिसकर तेज करने वाले श्वेत शाणरूपी पत्थर से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि आज भी चक्राकार यन्त्र **'शाण'** पर चढ़ाकर तथा विशिष्ट प्रकार के पत्थर पर भी किसी धातु की वस्तु, 'बाण', 'चाकू' आदि को घिसकर उसकी धार को तेज किया जाता है।

अवतरणिका– इसके पश्चात् महाकवि श्लेष के माध्यम से दूतियों द्वारा किए गए दो अर्थ वाले वार्तालाप के विषय में विस्तारपूर्वक कहते हैं कि–

(84) अवस्त्री कृतमात्मानं नाकलयसि तत्त्वतः कान्त!

पदच्छेद– अवस्त्री कृतम् आत्मानम् न आकलयसि तत्त्वतः कान्त!

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **हे प्रियतम! स्त्रीरूप में परिवर्तित स्वयं को पहचानिए और उस** (नायिका) **की रक्षा कीजिए।**

(ii) (निन्दा पक्ष में) **हे कष्ट देने वाले** (कान्त)! **पौरुषविहीन तुम तो स्वयं को यथार्थरूप से पहचान ही नहीं पा रहे हो।**

'चन्द्रिका'– (क) जिसप्रकार स्त्री अपने परिवार में मातामही, माता, बहन तथा पत्नी के रूप में सभी के जीवन की रक्षा करने वाली उसका भरण–पोषण करने वाली होती है। वैसे ही जिसका जीवन केवल आपके ही अधीन है, जो आपके अत्यन्त अनुकूल आचरण करने

वाली है, हर समय आपका ही चिन्तन करती रहती है, इन सभी बातों को भलीप्रकार समझते हुए, आपको उस नायिका की रक्षा स्त्रीरूप में परिवर्तित होकर करनी चाहिए।

(ख) नायिका को हमेशा ही अपने व्यवहार से कष्ट देने वाले, पौरुष से रहित तुम थोड़ा अपने व्यवहार पर भी विचार करो। सच्चा प्रेम करने वाली नायिका को छोड़कर तुम दुष्चरित्रा कुलटाओं के चक्कर में पड़ गए हो, जिन्होंने तुम्हारा सब कुछ लूटकर तुम्हें वस्त्र विहीन कर दिया है, इसलिए इस सब स्थिति को भलीप्रकार समझते हुए अनुचित आचरण मत करो।

विशेष–(i) उल्लेखनीय है कि यहाँ प्रयुक्त वार्तालाप में प्रथम प्रत्यक्ष अर्थ प्रशंसा के लिए प्रयुक्त हुआ है, जबकि दूसरा निन्दारूप अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाला है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **अवस्त्रीकृत**–स्त्रीरूप में परिवर्तित, वस्त्रहीन। **कान्त**– प्रियतम, कष्ट देने वाला।

(iii) कवि की प्रत्यक्षर श्लेषमय कृति की निर्मिति विषयक चाह को भी इस वार्तालाप के माध्यम से पूरा किया गया है।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(85) प्रस्तर इव क्रूरोऽसि न चाकर्षक–चुम्बकद्रावकेष्वेकोऽसि, भ्रामकोऽसि परं कितव!

पदच्छेद– प्रस्तरः इव क्रूरः न असि च आकर्षक–चुम्बक–द्रावकेषु एकः असि, भ्रामकः असि परम् कितव!

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **हे सरल हृदय! तुम पत्थर के समान कठोर नहीं हो एवं आकृष्ट करने वाले, चुम्बन के लिए प्रेरित करने वाले तथा देखने मात्र से कृतार्थ करने वाले लोगों में तुम ही मनोरम तथा अनुपम हो।**

(ii) (निन्दा पक्ष में) **हे धूर्त! तुम तो पत्थर के समान कठोर हृदय वाले हो, तुम तो आकर्षक, चुम्बक तथा द्रावक नायकों में से कोई एक भी तो नहीं हो, तुम तो केवल प्रतारणा देने वाले ही हो।**

'चन्द्रिका'– (क) हे सरल हृदय! निश्चय ही तुम पत्थर के समान कठोर हृदय वाले नहीं हो। तुम तो आकर्षित करने वालों, चुम्बन के लिए प्रेरित करने वालों तथा देखने मात्र से कृतार्थ करने वाले लोगों में अग्रणी, मन को सर्वथा लुभाने वाले तथा अनुपम हो।

(ख) हे दुष्ट! तुम तो वास्तव में सभी के सुखों को विनष्ट करने वाले पत्थर हृदय हो तथा आकर्षित करने वाले, चुम्बक स्वरूप, दृष्टिमात्र से कृतार्थ करने वाले नायकों में से तुममें एक भी विशेषता नहीं है, अपितु तुम तो केवल प्रतारणा प्रदान करने वाले ही हो, तुमने तो नायिका को परनारी सम्बन्धरूप अपने दुर्व्यवहार से हमेशा ही पीड़ा प्रदान की है।

विशेष–(i) यहाँ पर प्रशंसापरक अर्थ करते हुए दूसरे वाक्य में प्रयुक्त 'नञ्' का कितव के साथ अन्वय करते हुए, जो धूर्त नहीं हैं अर्थात् सरल। (न कितव, इति)

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **आकर्ष**– नायक भेद, आकर्षित करने वाला। **चुम्बक**–चुम्बन के लिए प्रेरित करने वाला, नायक भेद। **द्रावक**– देखने मात्र से ही कृतार्थ करने वाला, नायक भेद। **भ्रामक**– मन को अच्छा लगने वाला, प्रताडित करने वाला।

(iii) कामकुशल नायक के चार भेदों का उल्लेख हुआ है–

अ) कामकलाकौशलेन यो नारीमाकर्षयति, स **आकर्षकः**।

ब) रतिकौशलेन यश्चुम्बति स **चुम्बकः**।

स) औषधिविशेषयोगेन कुचादिमर्दनेन वा यः कठिनकामिनीं द्रावयति। स **द्रावकः**।

द)अन्यासक्तो यो अन्यनारीं भ्रामयति प्रतारयति स **भ्रामकः**।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(86) धर्मार्थान्यप्रयुक्तः क्षेपणिक इव मुधावाहित-तरवारिस्त्वमसि।

पदच्छेद– धर्म–अर्थानि अप्रयुक्तः क्षेपणिकः इव मुधा–अवाहित-तरवारिः[1] त्वम् असि।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **जो नाविक, राजा की आज्ञा से बिना पैसा लिए ही सामान्य जनों को भी नदी पार करा देता है, तुम भी वैसे ही धर्म के लिए दूसरों के कामों में लगे रहते हो, तुम तो व्यर्थ ही तलवार को धारण करते हो, क्योंकि इससे किसी के ऊपर तुम प्रहार तो करते नहीं हो, इसप्रकार के धार्मिक प्रवृत्ति वाले होते हुए भी तुम नायिका की उपेक्षा भला कैसे कर सकते हो? यह समझ से बाहर है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **हे अधर्मी! नायिका को प्रणयकाल में जो तुमने प्रेमपूर्ण वाक्य कहे थे, उन सभी को तो तुमने व्यर्थ कर दिया है।**

'चन्द्रिका'– (क) तुम तो ऐसे नाविक के समान हो, जो राजा आदि की आज्ञा से या धार्मिक प्रवृत्ति वाला होने से स्वेच्छा से बिना पैसा लिए ही सभी लोगों को नाव द्वारा नदी पार करा देता है। इसलिए तुम भी मानो परोपकार के लिए दूसरों के ही कामों में लगे रहते हो।

यद्यपि तुम क्षत्रिय हो तथा तलवार धारण करते हो, किन्तु तुम्हारा इसे धारण करना व्यर्थ है, क्योंकि इससे तुम किसी के ऊपर प्रहार तो करते नहीं हो। इसलिए इसप्रकार के परोपकारी तथा धार्मिक वृत्ति का होते हुए भी तुम भला उस नायिका की उपेक्षा कैसे कर सकते हो? यह बात मेरे समझ में बिल्कुल भी नहीं आ रही है।

(ख) तुम तो वास्तव में धर्म तथा अर्थ से भिन्न केवल काम या अधर्म में ही सर्वथा आसक्त रहने वाले अधर्मी हो, क्योंकि तुमने जो वचन नायिका से प्रणय की स्थिति में कहे थे, उन सभी को तो तुमने

---

[1]. तरवारिर्मतः खड्ग इति।

पूरी तरह व्यर्थ की कर दिया है अर्थात् भुला दिया है। यह तुम जैसे क्षत्रिय के लिए शोभा नहीं देता है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **धर्मार्थान्यप्रयुक्तः**– दूसरों द्वारा धर्म में लगा हुआ, धर्म अर्थ से अन्य अर्थात् अधर्म में लगा। **तरवारि**– तलवार, प्रेमपूर्ण वचन।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(87) सखेदमिव तां मनसा चिन्तयसि दुर्लभाम्।

पदच्छेद– सखेदम्[1] इव ताम् मनसा चिन्तयसि दुर्लभाम्।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **तुम्हारी पत्नी, रूप–शील आदि में अद्भुत है, जिसे तुम मेरे द्वारा स्मरण कराए जाने पर भी अत्यन्त खेदपूर्वक याद कर रहे हो, यह प्रसन्नता का विषय है कि तुम उसे अब कभी भी नहीं छोड़ोगे।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **तुम तो परायी स्त्री को अपनी स्त्री के समान याद कर रहे हो, यह तो वस्तुतः तुम्हारी अज्ञानता ही है, क्योंकि उसका तो तुम्हें प्राप्त होना अत्यधिक कठिन है।**

'चन्द्रिका'– (क) तुम तो पत्नी के प्रति आचरण करने में सदाचारी तथा सौन्दर्यादि में भी अद्भुत हो, क्योंकि तुम मेरे द्वारा याद दिलाने के बाद अत्यन्त पश्चात्तापपूर्वक उस नायिका को स्मरण कर रहे हो अर्थात् मेरे स्मरण दिलाने पर तुम्हें अपने किए पर पश्चात्ताप हो रहा है। यह प्रसन्नता का विषय है, मुझे आशा है कि अब याद आने पर तुम उसे नहीं छोड़ोगे।

(ख) जिस परायी स्त्री को अपनी पत्नी के समान तुम याद कर रहे हो, यह तो तुम्हारी मूर्खता ही है, क्योंकि इस अनुकूल नायिका का परित्याग करके तुम उस परस्त्री को प्राप्त करने की कल्पना कर रहे हो, वह तुम्हें कभी भी नहीं मिल सकेगी।

---

[1]. दं कलत्रे बुधैः प्रोक्तं छेदे दाने च दातरि, इत्येकाक्षरकोशः।
दः शुद्धे दोऽवदाते च दातरि च्छेददानयोः, इति विश्वप्रकाशः।

विशेष–(i) इस सभी द्वयर्थक संवाद में श्लेष अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है, जिसका आगे पुनरावृत्ति भय से बार–बार उल्लेख नहीं किया जाएगा।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **सखेदम्**– खेद के साथ, नासमझी, **दुर्लभा**– दुर्लभ स्त्री, रूप, शील आदि में असाधारण।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(88) सत्त्वसारचितो यो रिपुमण्डलाग्रतो निर्वृति-मुपेत्य तिष्ठति।

पदच्छेद– सत्त्व–सारचितः यः रिपु–मण्डल–अग्रतः निर्वृतिम् उपेत्य तिष्ठति।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **जो व्यक्ति शत्रु की तलवार के समक्ष धैर्यपूर्वक स्थिर रहता है, वह सत्त्वगुण सम्पन्न होता है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **जो व्यक्ति शत्रुओं के समूह के सामने भी दूसरी स्त्री में आसक्त रहता है, वह तो वस्तुतः उपहास के योग्य ही है।**

'चन्द्रिका'– (क) जो व्यक्ति शत्रु की तलवार के समक्ष अत्यन्त धैर्य धारण करते हुए स्थिर बना रहता है, वही वस्तुतः धैर्यवान् महान् मनस्वी तथा सत्त्वगुण से सम्पन्न होता है अर्थात् नायिका के साथ अभिसरण में भयभीत न होना, तुम्हारे जैसे मनस्वी के लिए उचित ही है, क्योंकि यह तो तुम्हारे धैर्य का ही सूचक है।

(ख) शत्रु के समक्ष होते हुए भी जो व्यक्ति दूसरी स्त्री में आसक्त होकर विचरण करता है, वह वस्तुतः उपहास का पात्र बनता है अर्थात् परस्त्री में आसक्त होने कारण तुम सभी के उपहास के पात्र बन गए हो, यह तुम्हारे लिए लेशमात्र भी शोभादायक नहीं है।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद– **सत्त्वसारचितः**– सत्त्वगुण सम्पन्न, तु **असारचितः**– उपहास योग्य। **रिपुमण्डल**– शत्रु की तलवार, शत्रुओं का समूह। **निवृत्ति**– धैर्य, **अनिवृति**– परस्त्री।

(iii) **उपेत्य**– उप+ √इण्(गतौ)+ल्यप्, प्राप्त करके।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(89) स खलु वीरः प्रतिपक्षस्य यः सम्प्रहारतः कुंजरान्नयति।

पदच्छेद– सः खलु वीरः प्रतिपक्षस्य यः सम्प्रहारतः कुंजरान् नयति।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **वही व्यक्ति वस्तुतः वीर है, जो शत्रुओं के हाथियों को जीतकर अपने वश में कर लेता है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में)**जो व्यक्ति सुरतक्रीड़ा में शत्रु की स्त्रियों को दुर्बलता प्राप्त करा देता है, वह निश्चय ही मद्यपान करने वाला ही हो सकता है।**

'चन्द्रिका'– (क) वही व्यक्ति वस्तुतः वीर होता है, जो युद्ध में शत्रुओं के हाथियों पर विजय प्राप्त कर लेता है अथवा जो व्यक्ति रति क्रिया में अपनी निपुणता से स्त्री को अपने वश में कर लेता है, वही वस्तुतः काम–कुशल होता है अर्थात् मेरी सखी नायिका की सुरत–क्रिया की प्रबल आकांक्षा है, उसे प्रचण्ड–सुरत के माध्यम से तुम अपने वश में कर लो।

(ख) जो व्यक्ति अपने शत्रु की स्त्रियों में प्रचण्ड सुरत–क्रिया का प्रयोग करके उन्हें दुर्बल बना देता है, वह तो निश्चय ही मदिरा पान करने वाला ही हो सकता है, अन्य कोई नहीं।

विशेष–(i) मदिरा को स्तम्भन–क्रिया को सम्पादित करने वाला कहा गया है। सामान्यरूप से प्रचण्ड रति–क्रिया से पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक प्रसन्नता, किन्तु दुर्बलता को अनुभव करती है, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **वीर**– मद्य पीने वाला, पराक्रमी। **प्रतिपक्ष**– दूसरों के, शत्रु के। **सम्प्रहारतः**– रति–क्रिया, युद्ध में प्रहार करते हुए। **कुंजर**– हाथी, पत्नी को दुर्बल।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(90) धृतोरुकरवालसंचयोऽपि परमकाण्ड एव सम्पतन्महापदं विग्रहेण लभते।

पदच्छेद– धृत–उरु–करवाल–संचयः अपि परम् अकाण्डे एव सम्पतन् महापदम् विग्रहेण[1] लभते।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **नायिका की जंघा, हाथ तथा केशपाश को स्पर्श करने वाला व्यक्ति, उचित समय पर नायिका से संयुक्त होकर महती प्रशंसा को प्राप्त करता है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **जिसप्रकार विशाल तलवार के समूह को धारण करने वाला व्यक्ति असमय में ही शत्रु के समीप जाता हुआ महान् विपत्ति को प्राप्त कर लेता है, उसीप्रकार जंघा, हाथ तथा केश कलाप से सम्पन्न होते हुए भी असमय में दूसरी नायिका के साथ अभिसार करता हुआ व्यक्ति विपत्ति में पड़ जाता है।**

'चन्द्रिका'– (क) जो व्यक्ति स्त्री के जघन प्रदेश, हाथ (भग नासा) एवं केशपाशों (योनिकेशों) अथवा उसके केशपाशों का स्पर्श करते हुए रति–क्रिया से पहले उसे द्रवित कर लेता है, उसके बाद ही उचित समय पर नायिका के साथ संभोग करता है, वही वस्तुतः कामकला में निपुण होता है और वैसा ही तुम भी करते हो, यही कारण है कि वह नायिका तुम पर नौछावर है।

(ख) जिसप्रकार विशाल तलवार से युक्त होते हुए भी यदि व्यक्ति अनुपयुक्त अवसर पर युद्ध में शत्रु के सामने चला जाता है, निश्चय ही वह विपत्ति में पड़ जाता है, वैसे ही जंघा, हाथ एवं सुन्दर केशों को धारण करने वाला व्यक्ति भी नायिका के पति की उपस्थिति में उसके घर पर जाकर विपत्तिग्रस्त हो जाता है। इसलिए तुम्हारा किसी दूसरी नायिका के पास उसके पति की उपस्थिति में जाना उचित नहीं है।

---

[1]. **विग्रहो** युधि विस्तारे प्रविभागशरीरयोः, इति हैमः।

विशेष–(i) प्रस्तुत अंश से महाकवि का कामशास्त्र में पूर्णरूप से निपुण होना भी सिद्ध हो रहा है, क्योंकि स्त्री के साथ रति–क्रिया से पूर्व उसके महत्त्वपूर्ण अंगों को स्पर्श करने से उसका द्रवित होना अत्यन्त आवश्यक है, तभी स्त्री–पुरुष दोनों पूर्णतया तृप्ति या संतुष्टि को प्राप्त करते हैं।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **महापद**– प्रशंसा, महान् आपत्ति। **विग्रह**– शरीर, युद्ध। **धृत**– धारण करने वाला, स्पर्श करने वाला। **करवाल**– हाथ और बाल, तलवार।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(91) **राजसेन राजसे नरहितो रहितो ध्रुवम्।**

पदच्छेद– राजसेन राजसे नरहितः रहितः ध्रुवम्।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **तुम रजोगुण** (क्रोध) **से विहीन और अनुकूल जनों से युक्त हो, इसलिए निश्चय ही तुम सभी के द्वारा प्रशंसित होते हो।**

(ii) (निन्दा पक्ष में) **तुम वस्तुतः क्रोधी स्वभाव के हो, इसलिए तुमने नायिका को छोड़ दिया है। इसीलिए तुम सभी के द्वारा तिरस्कृत हो रहे हो।**

'चन्द्रिका'– (क) तुम वस्तुतः क्रोध से रहित हो एवं सभी लोग तुम्हारे अनुकूल ही आचरण करते हैं, इसीलिए तुम सभी के द्वारा प्रशंसा किए जाते हो। नायिका की अनुकूलता का भी यही कारण है, इसलिए तुम नायिका के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हुए अभिसरण का आनन्द प्राप्त करो।

(ख) वस्तुस्थिति तो यह है कि तुम अत्यन्त क्रोधी हो, जिसके कारण तुम्हें नायिका ने छोड़ दिया है। इतना ही नहीं, तुम तो अपने इसी क्रोध के कारण सभी स्थानों पर अपमान एवं तिरस्कार को प्राप्त करते हो। इसलिए तुम्हें सर्वप्रथम अपने इस क्रोध का परित्याग करना चाहिए।

विशेष–(i) रजोगुण से अभिप्राय यहाँ 'क्रोध' से ग्रहण करना चाहिए। यह शाश्वत तथ्य है कि क्रोधी व्यक्ति को कोई भी पसन्द नहीं करता है।

(ii) नायिका द्वारा त्यागे जाने में क्रोध को ही कारण बताया गया है। वस्तुतः क्रोध व्यक्ति के विवेक का हरण कर लेता है, इसके कारण व्यक्ति सभी जगह अपमानित भी होता है।

(iii) 'राजस','राजसे' तथा 'रहितो' 'रहितो' पदों की एकाधिक बार आवृत्ति होने से यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(92) **विशारदा शारदाभुविशदा विशदात्मनीन-महिमानमहिमानरक्षणक्षमा क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता च वचसि।**

पदच्छेद– विशारदा शारद् आभु–विशदा विशद–आत्मनीन-महिमानमहिमानरक्षणक्षमा क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता च वचसि।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **हे पृथ्वी के तिलकरूप श्रेष्ठ पुरुष! तुम तो शरद्कालीन मेघ के समान निर्मल, स्पष्ट, हितकारी, पृथ्वी के समान विशाल, अपनी महिमा की रक्षा करने में समर्थ, अन्तःकरण में बुद्धि, धैर्य तथा वाणी में सत्यता के लिए संसार में विख्यात हो। इसप्रकार के गुणों से युक्त होते हुए भी तुम्हारा हमारी सखी की उपेक्षा करना ठीक नहीं है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **हे मूर्ख! स्वच्छ स्थान पर शयन न करने वाले, स्वार्थी, अभिमानी, पृथ्वी की सम्पत्ति की रक्षा न करने वाले, स्वयं को ही सम्पूर्ण पृथ्वी पर श्रेष्ठ समझने वाले, दुर्बुद्धि! तुम तो वाणी में असत्यता के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रख्यात हो। इसीलिए तुम हमारी सखी की उपेक्षा कर रहे हो, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।**

'चन्द्रिका'– (क) हे पृथ्वी के तिलकरूप सर्वश्रेष्ठ पुरुष! तुम तो शरद्काल के प्रगल्भ निर्मल मेघ के समान, पूर्णतया पापरहित हो तथा अपने लिए हित करने वाले एवं सम्पूर्ण पृथ्वी के समान अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में समर्थ हो। तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णतया शुद्ध तथा पवित्र है। तुम्हारी बुद्धि धीरता से युक्त है। तुम वाणी में सत्यता के लिए सम्पूर्ण संसार में प्रख्यात हो। इसप्रकार के उत्कृष्ट गुणों से युक्त होते हुए भी तुम हमारी सखी की उपेक्षा कर रहे हो, यह तो उचित नहीं है। उसके साथ तुम्हें अपने गुणों के अनुरूप प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

(ख) हे मूर्ख! स्वच्छ स्थान पर न सोने वाले अपवित्र, कपटी, केवल अपने ही हित को पूरा करने वाले स्वार्थी, अहंकार करने वाले, पृथ्वी की सम्पत्ति का विनाश करने वाले तथा अपने आपको सम्पूर्ण पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ मानने वाले, तुम्हारे अन्तःकरण में वस्तुतः बुद्धि का पूर्णरूप से अभाव है। हे दुर्बुद्धि! तुम तो असत्य भाषण के लिए सारी पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो, इसलिए तुम्हारे द्वारा नायिका की इसप्रकार उपेक्षा किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त शारदा–शारदा, विशदा–विशदा, महिमान–महिमान, क्षमा–क्षमा, धीरता–धीरता और भूतता–भूतता पदों का एकाधिक बार प्रयोग होने के कारण यमक अलंकार का चमत्कार विद्यमान है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **विशारदा**–प्रगल्भ, (विशारद) मूर्ख। **शारदा–भुविशदा**– स्वच्छ स्थान पर शयन न करने वाले (अशादा–भुवि–शद), कपटी, शरद्कालीन मेघरहित आकाश के समान निर्मल। **विशदात्मनी**– केवल अपना हित चाहने वाले स्वार्थी (विशदात्मनीन), अपवित्र (अविशद् आत्मनीन)। **महिमानमहिमानरक्षणक्षमा**– पृथ्वी के समान विशाल अपनी महिमा की रक्षा करने में समर्थ, पृथ्वी की सम्पत्ति की रक्षा न करने वाले। **क्षमातिलक**– पृथ्वी पर तिलकरूप, श्रेष्ठ (क्षमा–

तिलक–धीरत), अपने आपको पृथ्वी पर श्रेष्ठ मानने वाले, **धीरता**–बुद्धियुक्त, बुद्धि से रहित (अधीरता)। **भूतता**–पृथ्वी पर प्रसिद्ध, (अभूतता) असत्यता, झूठ।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(93) **साहसेन सा हसेन कमला कमलालया यया जिता, सा त्वदर्पणा दर्पणाकारविमलाशया शयाब्ज-निर्जितकिसलया सलयांगुलिरिवविभ्रमेण विभ्रमेण गवाक्ष-शलाकाविवरं लोकयन्ती लोकयन्त्रितविनाशा विना शापमनुभवति दुःखानि।**

पदच्छेद– साहसेन सा हसेन कमला कमलालया यया जिता, सा तु अदर्पणा दर्पण–आकार–विमल–आशयाशया–अब्ज–निर्जित-किसलया सलयांगुलिः इव विभ्रमेण विभ्रमेण गवाक्ष–शलाका–विवरम् लोकयन्ती लोक–यन्त्रित–विनाशा विना शापम् अनुभवति दुःखानि।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **कमल में रहने वाली लक्ष्मी भी विलासपूर्वक स्मितमात्र से ही जिस नायिका द्वारा तिरस्कृत कर दी गयी है। दर्पण के समान स्वच्छ अन्तःकरण वाली, विलासपूर्वक अपनी अंगुलियों पर मानो सबको नचाने वाली, वह तुम्हारे आने के संदेह से गवाक्ष की शलाकाओं के बीच में बाहर की ओर देखती रहती है। तुम्हारे प्रति पूर्णरूप से समर्पित वह नायिका, सखियों द्वारा समझाए जाने पर किसी प्रकार अपने जीवन को धारण किए हुए है। ऐसी वह किसी के शाप के बिना ही तुम्हारे वियोग विषयक दुःख को धारण कर रही है।**

(ii) (निन्दा पक्ष में) **हे निष्ठुर! अपनी विलासपूर्ण मुस्कान से कमल में निवास करने वाली, लक्ष्मी का भी तिरस्कार करने वाली, दर्पण के समान अत्यधिक स्वच्छ अन्तःकरण को धारण करने वाली, अपने हाथरूपी कमल द्वारा नए–नए पत्तों को भी तिरस्कृत करने वाली, अपनी अंगुलियों को विलासपूर्वक नचाने वाली, तुम्हारे आने के**

भ्रम के कारण खिड़की की शलाकाओं के बीच से बाहर की ओर देखने वाली, स्वयं को तुम्हारे प्रति पूर्णतया समर्पित कर देने वाली, वह नायिका किसी शाप के अभाव में भी तुम्हारी विरहाग्नि में जल रही है, यह तो तुम्हारा सौभाग्य ही है, किन्तु तुम तो फिर भी उसकी उपेक्षा ही कर रहे हो। (यह तो वस्तुतः तुम्हारी मूर्खता ही है)

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष–(i) महाकवि को उपमानरूप में लक्ष्मी अत्यधिक प्रिय रही है, इसीलिए यहाँ भी इसका उपमानरूप में प्रयोग किया गया है।

(ii) कमला–कमला इन दो पदों के एकाधिक बार प्रयोग होने से यहाँ यमक अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(94) **जीवनायक जीवनाय कमिव नाश्रयति सुभगम्।**

पदच्छेद– जीवनायक जीवनाय कमिव न आश्रयति सुभगम्।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **हे जीवन की रक्षा करने वाले! वह नायिका तुम्हारे अलावा किसी भी पौरुषसम्पन्न व्यक्ति को अपना आश्रय नहीं बनाएगी।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **हे प्राणों का अपहरण करने वाले! तुम ही एक मात्र पौरुषसम्पन्न नहीं हो। इसलिए वह नायिका किसी को भी अपना आश्रय बना लेगी।**

'चन्द्रिका'– (क) हे नायिका को जीवन प्रदान करने वाले! वह तुम्हारे अतिरिक्त किसी दूसरे पौरुष सम्पन्न सुन्दर व्यक्ति को भी अपना आश्रय नहीं बनाएगी, यह सुनिश्चित है, क्योंकि वह केवल तुम्हें ही चाहती है, किसी दूसरे के प्रति उसका लेशमात्र भी चिन्तन नहीं है।

(ख) हे नायिका के प्राणों का अपहरण करने वाले, प्राण–हारक! क्योंकि तुम तो पौरुष सम्पन्न ही नहीं हो, इसलिए वह नायिका

अपने जीवन की रक्षा करने के लिए किसी भी दूसरे पौरुष सम्पन्न व्यक्ति को अपना आश्रय बना लेगी।

विशेष–(i) **द्व्यर्थक** पद–**जीवनायक**– जीवन प्रदान करने वाले, जीवन का हरण करने वाले।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(95) अन्यास्तावदासतामहमेव दासतां पुरतो भजामि, मैत्र्यतो मैत्र्यतोऽस्तु।

पदच्छेद– अन्याः तावद् असताम् अहम् एव दासताम् पुरतः भजामि, मैत्र्यतः मैत्र्यतः अस्तु।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **दूसरी स्त्रियों की बात छोड़ो, मैं ही सबसे पहले तुम्हारी दासता को स्वीकार करती हूँ। हमारा सौहार्द्र बना रहे।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **हे दूसरी स्त्री से तिरस्कृत! तुम तो कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हो, क्योंकि पहले से ही तुम तो दूसरों के दास बने हुए हो, तुम्हारे साथ भले ही मेरा शत्रुता का भाव हो जाए, मैं तो अब अपनी सखी की ही मित्रभाव से सेवा करूँगी।**

'चन्द्रिका'– (क) दूसरी स्त्रियों की बात तो मैं नहीं करती हूँ उनकी बात तो छोड़ ही दो। हाँ, मैं तो पहले सौहार्द्र को दृष्टि में रखते हुए, तुम्हारे दासत्व को स्वीकार करती हूँ। इसलिए मैं ही अब तुम्हारे सभी कामों को पूरा करूँगी। हम दोनों के बीच में यह मित्र भाव इसीप्रकार बना रहे।

(ख) हे दूसरी स्त्री द्वारा तिरस्कृत! तुम तो अब कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हो, क्योंकि तुमने तो काम ही ऐसा किया है। तुम तो पहले ही दुष्ट लोगों के दास बने हुए हो। इसलिए उन्हीं का कहना मानते हो। तुम भले ही मेरे शत्रु हो जाओ, मैंने तो निश्चय किया है कि अब` मैं अपनी सखी की ही समर्पित 'मित्रभाव' से सेवा करूँगी।

विशेष–(i) मैत्र्यतोऽमैत्र्यतो भिन्न अर्थ वाले दो पदों के एक साथ प्रयोग होने से यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii)**द्व्यर्थक** पद– **असताम् दास**– दुर्जनों के दास, **आसताम्**– बैठी रहें। **मैत्र्यतः**– मित्रता का भाव, सौहार्द्र। **अमैत्र्यतः**– अमित्रता का भाव, शत्रुता। **अन्यास्तावदासताम्**–दूसरी स्त्रियाँ भले ही बैठी रहें, दूसरी स्त्रियों से तिरस्कृत (अन्यास्त)।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(96) **अंजसारतः सारतः किमपि कन्दर्पकं दर्पकं न चेत्तनोषि, विशेषतोऽविशेषतः स्थिरमेव मरणम्।**

पदच्छेद– अंजसारतः सारतः किम् अपि कन्दर्पकम् दर्पकम् न चेत् तनोषि, विशेषतः अविशेषतः स्थिरम् एव मरणम्।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **यदि तुम शीघ्र ही उस नायिका से सहवास नहीं करोगे, तो तुम दोनों की ही मृत्यु सुनिश्चित है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **यदि उस नायिका के प्रति अनुरक्त तुम उसके साथ सहवास नहीं करोगे, तो तुम दोनों का ही मरण निश्चित है, इससे तुम्हें एक ओर तो स्त्री–हत्या का पाप लगेगा, दूसरी ओर तुम आत्म–हत्या के भागी भी बनोगे।**

'चन्द्रिका'– (क) वह नायिका तुम्हारे प्रति पूर्णरूप से अनुरक्त है तथा तुम भी उससे हृदय से प्रेम करते हो। इसलिए यदि तुमने उसके साथ शीघ्र ही वेगपूर्वक सहवास नहीं किया तो वह निश्चय ही अपने प्राणों को त्याग देगी और उसके बाद उसके वियोग को सहन न कर पाने वाले तुम्हारी मृत्यु भी सुनिश्चित है।

(ख) यदि तुम उस नायिका के साथ रमण नहीं करते हो, तो वह अवश्य ही मृत्यु का वरण कर लेगी तथा बाद में स्वयं भी मर जाने के कारण, तुम्हें जहाँ एक ओर स्त्री–हत्या का पाप लगेगा, वहीं दूसरी ओर तुम आत्महत्या के दोष के भी भागी बन जाओगे।

विशेष– (i) कामशास्त्र के अनुसार कुछ स्त्रियाँ मन्दरति से प्रेम करती हैं, तो कुछ स्त्रियों को तीव्र वेग के साथ रमण अच्छा लगता है। यहाँ नायिका तीव्रवेग के साथ सहवास ही इच्छुक है।

(ii) यमक एवं श्लेष का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **अंजसारतः**– शीघ्रता से वेग के साथ, अननुरक्त तुम शीघ्र ही।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(97) **शठधियां शोधन यशोधन प्रेमहार्यामहार्या समासोत्कटाक्षैः कटाक्षैराविर्भूतदास्यास्तदास्याः परिजनाः।**

पदच्छेद– शठधियाम् शोधनः यशोधनः प्रेम–हार्याम् अहार्या समासोत्कटाक्षैः कटाक्षैः आविर्भूत–दास्याः तदास्याः परिजनाः।

अनुवाद–(i) (प्रशंसा पक्ष में) **हे दुष्ट बुद्धि वालों की दुष्टता को दूर करने वाले ! यशरूपी धन से सम्पन्न! अत्यधिक कुशल, लक्ष्मी से युक्त, वह नायिका अपने अभिलाष को अभिव्यक्त करने वाले, शृंगारिक नेत्रों के कटाक्षमात्र से प्रेम के वशीभूत होने के योग्य है, उस समय तुम दोनों का प्रेम देखकर उसके परिजन स्वतः ही दास्यभाव को ग्रहण कर लेंगे।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **हे दुष्ट, बुद्धिहीन, यश से शून्य, लक्ष्मी से पूर्णतया रहित! अनुपम वह नायिका तो अभिलाष को प्रदर्शित करने वाले शृंगारिक नेत्रों के कटाक्षों से ही प्रेम के वश में होने योग्य है, धन आदि से उसे वश में नहीं किया जा सकता है, तब तो उसके परिजन भी उसके दास्यभाव को प्राप्त कर लेंगे अर्थात् वह जैसा कहेगी वैसा ही वे सब भी करेंगे।**

'चन्द्रिका'– (क) हे दुष्ट बुद्धि लोगों की दुष्टता को दूर करने वाले, हे यशरूपी धन से युक्त, ऐश्वर्य सम्पन्न! अत्यधिक निपुण वह नायिका तो अपने भावों को प्रकट करने वाली मनोरम शृंगारिक चेष्टाओं, कटाक्षादि से ही तुम्हारे वश में हो जाएगी, इसके लिए तुम्हें

अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं होगी तथा उस नायिका के तुम्हारे वश में होने पर उसके परिवार के लोग तो स्वतः ही तुम्हारे वश में हो जाएँगे अर्थात् तुम्हारे प्रति उसके भावों को देखकर, वे तुम दोनों के प्रेम का विरोध नहीं करेंगे।

(ख) हे नीच! बुद्धिहीन, कलंकी, लक्ष्मी से सर्वथा रहित, अनुपम वह नायिका तो वस्तुतः थोड़े से ही प्रेमपूर्ण व्यवहार,शृंगारिक कटाक्षादि द्वारा ही वश में की जा सकती है, उसके लिए कोई धनादि की आवश्यकता नहीं है। उसके बाद तो उसके परिवार के लोग भी उसकी दासता को स्वीकार करते हुए उसके कथनानुसार ही करेंगे।

विशेष–(i) ऐसा प्रतीत होता है कि नायिका के 'मान' के अवसर पर नायक द्वारा उसके साथ क्रोधपूर्वक व्यवहार किया गया है, तभी उसकी सखी द्वारा ऐसा कहा है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **शठधियां शोधन**– दुष्टों की बुद्धि से दुष्टता को दूर करने वाले, दुष्ट (शठ), बुद्धिहीन (धियां शोधन), **यशोधन**– यश रूपी धन से युक्त, यश से शून्य(यशसा अधन)।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(98) **कमलाकृतिनारीणां कमलाकृति नारीणां भवता मुखं च मलिनितम्।**

पदच्छेद– कमलाकृतिनारीणाम् कमलाकृतिः नारीणाम् भवता मुखम् च मलिनितम्।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **कमल के समान कोमल, शरीर से अपने शत्रुओं को जीतकर, आपने शत्रुओं के मुख को तथा अपने में अनुरक्त रमणियों के कमल के समान मुख, दोनों को ही मलिन कर दिया है।**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **कमल के समान अपने मुख से शत्रुओं की लक्ष्मी को जीतकर तुमने शत्रुओं का मुख तो मलिन किया ही है, किन्तु**

अपने में अनुरक्त कामिनियों के कमल के समान मुखों को भी अपने विरह की अग्नि से मलिन कर दिया है।

'चन्द्रिका'–(क) कमल के समान कोमल अपने शरीर के माध्यम से अपने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके जहाँ एक ओर शत्रुओं के मुखों को आपने मलिन किया है, वही दूसरी ओर युद्ध में निरन्तर लगे रहने से अपने में अनुराग करने वाली प्रमदाओं के मुखरूपी सुन्दर कमलों को भी मलिन कर दिया है, क्योंकि तुम्हारे वियोग में दिन–रात रोते–रोते उनके मुख मलिन हो गए हैं।

(ख) तुमने अपने कमल के समान आकृति सम्पन्न अपने मुख से शत्रुओं की लक्ष्मी को अपने वश में करके उनका मुख मलिन कर दिया है, किन्तु तुमने तो अपने में अनुराग रखने वाली कामिनियों के कमल के समान मुखों को भी अपने विरह के कारण, सन्तुष्ट न करते हुए मलिन ही किया है, जिसे प्रशंसारूप में नहीं देखा जा सकता है।

विशेष–(i) शत्रुओं की लक्ष्मी को जीतने से उसके प्रति अनुराग भाव के कारण ईर्ष्यावश (सोतिया डाह) राजा की प्रेमिकाओं के मुखों के मलिन होने रूप अर्थ की भी प्रतीति हो रही है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद–**नारीणाम्**– न अरीणाम्–स्त्रीणाम्, प्रमदानाम्, शत्रूणाम्।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(99) **विश्वस्य विश्वस्य व्यवस्थां समासाद्य समासाद्यनेककालं संगीतसंगी तनुषे तनुषे कमनंगस्य पुष्पेषु पुष्पेषु रुजा तरसा जातरसा मन्दाक्षमन्दा क्षणं भ्रमन्ती मुह्यति।**

पदच्छेद– विश्वस्य विश्वस्य व्यवस्थाम् समासाद्य समासाद्यने-ककालम् संगीतसंगी तनुषे तनुषे कमनंगस्य पुष्पेषु पुष्पेषु रुजा तरसा जातरसा मन्दाक्षमन्दा क्षणम् भ्रमन्ती मुह्यति।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) संसार की लौकिक व्यवस्थाओं का विश्वास करके, बहुत समय तक आपने नायिका का साथ दिया। इस समय कामपीड़ा के कारण लज्जाविहीन, किसी भी वस्तु के प्रति प्रेम न रखती हुई तथा पुष्पों पर क्षणमात्र के लिए लेटती हुई वह मूर्च्छित हो जाती है। हे कामदेव के समान संगीत में रमण करने वाले! तुम तो अपने शरीर को धारण करने के लिए सुखों का विस्तार कर रहे हो, कुछ उसके दुःख को दूर करने के विषय में भी विचार करो।

(ii)(निन्दा पक्ष में) मैं तुम्हें कभी भी नहीं छोड़ूँगा, अपनी इस प्रतिज्ञा पर विश्वास कराके तुमने सामान्यरूप से प्राप्त न कर सकने योग्य नायिका को प्राप्त तो कर लिया, इस समय वह तुम्हारे विरह से दुःखी होकर पुष्पों की शय्या पर भी पीड़ा से मुक्त नहीं हो पा रही है तथा वेगपूर्वक शयनस्थान पर लेटी हुई है। वह मूर्ख तथा भ्रमित होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है। इधर तुम संगीत में रमण करते हुए अपने शरीर की काम–विषयक व्यथा में वृद्धि कर रहे हो, इसलिए समझदारी तो इसी में है कि उसके साथ रमण करके उसे भी सुखी करो तथा स्वयं भी सुखी हो जाओ।

'चन्द्रिका'–(क) प्रेमपूर्ण दाम्पत्य ही सांसारिक विधान है, इसी पर विश्वास करके तुमने लम्बे समय तक नायिका का साथ दिया, किन्तु अब जबकि वह तुम्हारे वियोग में किसी भी वस्तु से प्रेम न करते हुए, अपनी विरह वेदना को दूर करने के लिए लज्जाविहीन होकर बलपूर्वक शयन करते हुए मूर्छित हो जाती है, ऐसे समय में हे कामदेव के समान सुन्दर! यहाँ पर तुम तो संगीत में डूबकर अपने को सुखी बना रहे हो, थोड़ा उसकी पीड़ा को भी समझते हुए उसे दूर करने का प्रयास करो अर्थात् वह तुम्हारे लिए कामपीड़ा को भोग रही है, उसके साथ रमण करते हुए, उसे भी सुखी कर दो और स्वयं भी आनन्द का अनुभव करो।

(ख) 'मैं कभी भी तुम्हारा परित्याग नहीं करूँगा', इसप्रकार प्रतिज्ञा करके सरलता से प्राप्त न होने वाली उस नायिका को तो तुमने प्राप्त कर लिया, अब वह तुम्हारे विरह में व्यथित होकर अपनी पीड़ा को दूर करने के लिए पुष्पों पर वेगपूर्वक लेटती रहती है, उसने संसार की सभी वस्तुओं के प्रति अपने लगाव को समाप्त कर दिया है और वह मूर्ख! अपने विरह के कारण भ्रमित एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही है और इधर तुम उसे भूलकर संगीत के आनन्द में आकण्ठ डूबे हुए हो, ऐसा करके तो तुम स्वयं के साथ–साथ उसकी पीड़ा को भी बढ़ा रहे हो, यह तो वस्तुतः तुम्हारी मूर्खता ही है।

विशेष–(i) नायिका के साथ लम्बे समय तक रहने के बाद उसे छोड़कर संगीत में डूबे हुए नायक के प्रति सखी दूती की उक्ति है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **व्यवस्था**– नियम, प्रतिज्ञा। **समासादि**–प्राप्त कर ली गयी, साथ रहे। **तनुषे**– विस्तार कर रहे हो, शरीर के लिए। **पुष्पेषु रुजा**– कामपीड़ा से, पुष्पों की पीड़ा द्वारा। **अजातरसा**– किसी भी वस्तु में प्रेम न करने वाली, वेगपूर्वक (तरसा), शयन करने वाली (जातरसा)। **मन्दाक्षमन्दा**– लज्जारहित, मूर्ख। **भ्रमन्ती**– लेटती हुई, भ्रमित होकर। **मुह्यति**– मूर्च्छित होना, किंकर्तव्यविमूढ़ होना।

(iii) श्लेष एवं यमक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(100) **कामधुराधरेण का मधुराधरेण युक्ता रजोराजविशेषकेण विशेषकेण मुखेन्दुना तव हृदि लग्ना–भ्रदिमाकरेण करेण स्वेदबिन्दुपयोधरेण पयोधरेण वक्षःफलकांचनेन जितानाविलकांचनेन।**

पदच्छेद– कामधुराधरेण का मधुराधरेण युक्ता रजोराजविशेषकेण विशेषकेण मुखेन्दुना तव हृदि लग्ना भ्रदिमाकरेण करेण

स्वेद–बिन्दु–पयोधरेण पयोधरेण वक्षः फलकांचनेन जितानाविल–कांचनेन[1]।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **काम को बढ़ाने वाले, मन को हरने वाले अधर से काम में वृद्धि करने वाले, तिलकयुक्त मुखरूपी चन्द्रमा से कोमलता के खान स्वरूप(आकर) हाथ द्वारा, सात्त्विकभाव के कारण उत्पन्न होने वाली स्वेद की बूँदों वाले विशाल स्तन से एवं निर्मल स्वर्ण के समान वक्षःस्थल से युक्त किस रमणी ने तुम्हें अपने वश में कर लिया है?**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **तुम जैसे निकृष्ट अधर युक्त, कुरूप होने के कारण काम को उद्दीप्त नहीं करने वाले, कठोरता की खान, कुष्ठ रोग से युक्त, मेघ के समान कृष्णवर्ण, वक्षःस्थल पर लटकने वाले स्वर्णनिर्मित हार से युक्त, तुम्हारे प्रति भला कौन सुन्दरी अनुराग करेगी? यह तो तुम अपना सौभाग्य ही समझो कि वह नायिका तुम्हें चाहती है।**

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) वह निश्चय ही अत्यधिक सुन्दरी है, जो तुम जैसे रसिक व्यक्ति को भी उसने अपने वश में कर लिया है।

इसके विपरीत **निन्दा अर्थ में**– इसे तो तुम अपना सौभाग्य ही मानो कि वह सुन्दरी तुम्हें चाहती है, अन्यथा कौन स्त्री भला तुम जैसे कुरूप को पसन्द करेगी?

(ii) **द्व्यर्थक** पद–**कामधुरा**– काम को धारण करने वाली, **कामधुराधरेण**– काम को उद्दीप्त करने वाले। **अधर**– निकृष्ट, नीचे का ओष्ठ। **रजोराजविशेषकेण**– काम में वृद्धि करने वाले, **अरजोराजविशेषकेण**– कुरूपता के कारण काम को उत्पन्न न करने वाले। **भ्रदिम**– कोमलता, **अभ्रदिम**– कठोरता। **श्वेदबिन्दु**– कोढ़ के श्वेत चिह्न, पसीने की बूँदें। **पयोधर**– मेघ, स्तन। **अंचन**– युक्त, **कांचन**– स्वर्ण।

---

[1] कांचनं चम्पके हेम्नीति विश्वः।

(iii) योग्यतावश यदि दो वस्तुओं का सम्बन्ध लोकसम्मत प्रदर्शित किया जाए तो 'सम' अलंकार होता है। नायिका की योग्यता के कारण ही नायक का उसकी ओर आकर्षित होना वर्णित होने से यहाँ 'सम' अलंकार का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है।

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(101) **कामदारुणमदारुणनेत्रा स्मरमयं रमयन्तं भवन्तमदयं मदयन्ती परमकमितारं परमकमितारं वांछति हारिणा हारिणा स्तनकुम्भेन हारिणाक्षिरुचिहारिणा चक्षुषा च।**

पदच्छेद– काम–दारुण–मद–अरुण–नेत्रा स्मरमयम् रमयन्तम् भवन्तम् अदयम् मदयन्ती परमकमितारम् परमकमितारम् वांछति हारिणा हारिणा स्तन–कुम्भेन हारिण–अक्षि–रुचि–हारिणा चक्षुषा च।

अनुवाद– (i) (प्रशंसा पक्ष में) **हार को धारण करने वाले, मनोहर स्तनरूपी कलश से युक्त, मृग के नेत्रों के समान शोभा सम्पन्न, सरस नेत्रों वाली वह कौन कामिनी है, जो मद्यपान के मद से लाल न होने वाले, कामदेव के समान रमण करने वाले, अत्यधिक कामुक आपको प्रसन्न करती हुई, दूसरे अकामुक तथा निर्दयी को चाहती है?**

(ii)(निन्दा पक्ष में) **हे धनादि के अहंकार से परिपूरित, सूर्य के समान सन्ताप देने वाले, हे मदिरापान से मतवाली आँखों वाले, स्वर्ण के हार को धारण करने वाले! मनोहर स्तनरूपी कलश और मृगों के नेत्रों की शोभा के समान शोभायुक्त सरस नेत्रों वाली, वह भला कौन सुन्दरी है? जो कामविकार से रहित, अग्नि के समान निर्दयी, कामभाव से सर्वथा रहित तुम्हें जल्दी से चाहेगी?**

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष–(i)श्लेष, यमक तथा सम अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय बन पड़ा है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद–**अमद+अरुण**– मद्यपान से लाल न होने वाले, **मदारुण**– मद से लाल होने वाले(श्लेष)। **स्मर**– काम, अस्मर– काम से रहित। **रमयन्तम्**– रमण करने वाले, अग्नि का प्रसार करने वाले। **अकमितारम्**– अरसिक, कमितारम्–कामुक।

(कन्दर्पकेतुमनःस्थितिवर्णनम्)

अवतरणिका– इसीक्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(102) **अनन्तरं दुग्धार्णवनिमग्नमिव, स्फाटिकगृह–प्रविष्टमिव, श्वेतद्वीपनिविष्टमिव जगदामुमुदे।**

पदच्छेद– अनन्तरम् दुग्ध–अर्णव–निमग्नम् इव, स्फाटिक–गृह–प्रविष्टम् इव, श्वेत–द्वीप–निविष्टम् इव जगद् आमुमुदे।

अनुवाद– इसके बाद कन्दर्पकेतु संसाररूपी क्षीरसागर में डूबा हुआ सा, स्फटिकमणि से निर्मित घर में प्रविष्ट हुआ सा, श्वेतद्वीप में स्थित हुआ सा, सम्पूर्णरूप से (आ–समन्तात्) **आनन्दित होने लगा।**

'चन्द्रिका'– चन्द्रोदय के बाद इसप्रकार नगर में होने वाली कामोद्दीपक चर्चाओं को सुनते हुए, प्रियतमा से शीघ्र ही मिलने की आशा में नगर में प्रवेश करता हुआ कन्दर्पकेतु, अपनी प्रियतमा वासवदत्ता की मधुरस्मृति में खोया हुआ मानो संसाररूपी अमृत सरोवर में डूबा हुआ, स्फटिक मणि द्वारा बनाए गए घर में मानो प्रवेश किया हुआ, असीम आनन्द प्रदान करने वाले 'श्वेत' नामक द्वीप विशेष में स्थित हुआ सा परम आनन्द का अनुभव करने लगा।

विशेष–(i) नायक की आनन्दमयी मनःस्थिति का सटीक चित्र प्रस्तुत करने का कवि ने सफल प्रयास किया है, जिससे उनके प्रेमी मनोविज्ञान–विशेषज्ञ होने की पुष्टि भी हो रही है।

(वासवदत्तानिवासभवनवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि अत्यन्त रमणीय प्राकृतिक वातावरण में वासवदत्ता के भवन में तमालिका तथा मकरन्द के साथ कन्दर्पकेतु के प्रवेश का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

(103) ततः क्रमेण च विघटनमानदलपुटकुमुदकाननकोशमकरन्दबिन्दुसन्दोहसान्द्रनिष्यन्दास्वादमुदितमधुकरकुलकलरुतमुखरितदिगन्ते चन्द्रिकापानभरालसचकोरकामिनीभिरभिनन्दितागमने सुरतभरपरिश्रमखिन्नपुलिन्दराजसुन्दरीस्वेदजलकणिकापहारिणि प्रवाति सायन्तने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति कन्दर्पकेतुस्तमालिकामकरन्दसहायो वासवदत्तानगरमयासीत्।

पदच्छेद– ततः क्रमेण च विघटनमान–दल–पुट–कुमुद–कानन–कोश–मकरन्द–बिन्दु–सन्दोह–सान्द्र–निष्यन्द–आस्वाद–मुदित–मधुकर–कुल–कल–रुत–मुखरित–दिगन्ते चन्द्रिका–पान–भर–आलस–चकोर–कामिनीभिः अभिनन्दित–आगमने सुरत–भर–परिश्रम–खिन्न–पुलिन्दराज–सुन्दरी–स्वेद–जल–कणिका–अपहारिणि प्रवाति सायन्तने तनीयसि निशा–निश्वास–निभे नभस्वति कन्दर्पकेतुः तमालिका–मकरन्द–सहायः वासवदत्ता–नगरम् अयासीत्।

अनुवाद– उसके बाद कन्दर्पकेतु ने खिली हुई पंखुडियों वाले, कुमुदवन की कलियों से निकले हुए गीले परागकणों के समूह के आस्वादन से प्रसन्न, भ्रमरसमूह के गुंजार से शब्दायमान दिशाओं वाले, चन्द्रिका का पान करने से अलसायी हुई चक्रवाकियों द्वारा वायु का अभिनन्दन किए जाने वाले, रतिक्रीड़ा के परिश्रम से खिन्न हुई पुलिन्दराज की रमणियों के स्वेद के कणों को वायु द्वारा सुखाए जाने वाले, रात्रिरूपी नायिका के निःश्वास के समान मन्दगति से बहती हुई वायु वाले, वासवदत्ता के नगर में तमालिका एवं मकरन्द के साथ प्रवेश किया।

'चन्द्रिका'– वासवदत्ता के नगर में प्रवेश करने के अवसर पर विद्यमान प्राकृतिक वातावरण का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

इस समय पूर्णतया विकसित पंखुड़ियों वाले कुमुदवन की कलियों से निकले हुए गीले पराग के कणों के समूह का आस्वादन करने के कारण आनन्दित भ्रमरों के समूह के गुँजार से सभी दिशाएँ गूँज रही थीं।

रातभर चन्द्रिका के पान के भार से आलस्ययुक्त चकोरियाँ इस सुगन्धित वायु का मानो स्वागत कर रही थीं। इस समय सुरतव्यापार की थकान के कारण खिन्न हुई शबरों के स्वामी की सुन्दरियों के पसीने की बूँदों को सुखाने वाला रात्रिरूपी नायिका के निःश्वास के समान धीमी गति से बहने वाला सायंकालीन वायु बह रहा था।

विशेष–(i) सुगन्ध से आनन्दित मदमस्त भ्रमरों के गुंजन तथा सुगन्धित मन्द–मन्द बहते हुए वायु का सुन्दर चित्रण किया गया है।

(ii) 'निशानिश्वाससन्निभे' में रूपक अलंकार का मनभावन प्रयोग दर्शनीय है।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि वासवदत्ता के निवास–भवन का विस्तार से वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(104) अथ स प्रविश्य कटकैकदेशे विनिर्मितम्, अभ्रंलिहशिखरेण, सुधाधवलेन, एकान्तरनिविष्टकनकमुक्ता–मरकत पद्मरागच्छलेन, वासवदत्तादर्शनार्थमवस्थितदेवता–गणेनेव सालयेन परिगतम्, अनिलोल्लासिताभिर्नभस्तरुकुसुम मंजरीभिरिव तर्जयन्तीभिरिव, गगनपुरश्रियं पताकाभिरुप–शोभमानम् ...।

पदच्छेद–अथ स प्रविश्य कटक–एकदेशे विनिर्मितम्, अभ्रंलिह–शिखरेण, सुधा–धवलेन, एकान्तर–निविष्ट–कनक–मुक्ता–मरकत–पद्म–राग–छलेन, वासवदत्ता–दर्शनार्थम् अवस्थित–देवता–गणेन इव साल–

वलयेन परिगतम्, अनिल–उल्लासिताभिः नभस्तरु–कुसुम–मंजरीभिः इव तर्जयन्तीभिः इव, गगन–पुर–श्रियम् पताकाभिः उप–शोभमानम् ...।

अनुवाद– इसके पश्चात् प्रवेश करके उस कन्दर्पकेतु ने राजधानी के एक भाग में बने हुए, आकाश को छूने वाले शिखरों से युक्त, चूने आदि की पुताई से शुभ्र, एक–एक के अन्तर पर जड़े हुए स्वर्ण, मोती, नीलमणि, पद्मराग मणि के कारण मानो वासवदत्ता को देखने के लिए आए हुए देवों के समूह से युक्त, प्राकार–मण्डल से घिरे हुए, वायु द्वारा हिलायी गयी आकाशरूपी वृक्ष की पुष्पमंजरी के समान, अमरावती की शोभा को तिरस्कृत करती हुई, पताकाओं से सुशोभित..

'चन्द्रिका'– नगर में प्रवेश करने के बाद कन्दर्पकेतु ने वासवदत्ता के अद्भुत भवन को देखा, जिसका निर्माण राजधानी के एक भाग में किया हुआ था, जिस महल में एक–एक के अन्तर पर मोती, स्वर्ण, नीलमणि तथा पद्मराग मणियों को जड़ा गया था, जिन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे– वासवदत्ता के दर्शन करने के लिए सभी देवगण उपस्थित हो गए हों।

इसके अतिरिक्त चार दिवारी से घिरा हुआ यह महल आकाश रूपी वृक्ष की पुष्पमंजरी से समान प्रतीत होने वाली पताकाओं से सुसज्जित था, जो देवताओं के राजा इन्द्र की राजधानी 'अमरावती' की सुन्दरता को भी तिरस्कृत कर रही थी।

विशेष–(i) वासवदत्ता के नगर के ऐश्वर्यमय चित्र की प्रस्तुति अत्यन्त मनोहारी बन पड़ी है।

(ii) विभिन्न प्रकार की मणियों में देवताओं के नेत्रों की परिकल्पना भी सुन्दर एवं मनमोहक है।

(iii) वासवदत्ता के भवन की सम्पत्ति का विस्तृत वर्णन करने से उदात्त अलंकार को प्रयोग भी हुआ है।[1]

---

1. उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। काव्यप्रकाश–10/115।

अवतरणिका— इसी क्रम में महाकवि फिर से कहते हैं कि—

(105)कनकशिलापट्टांगणप्रसृताभिः, कर्पूरकुंकुम–चन्दनैलालवंगपरिमलवाहिनीभिः, तटनिकटस्फाटिकशिलापट्ट सुखनिषण्णनिद्रायमाणाज्ञानश्वेतपारावताभिः, प्रभ्रश्यत्तट–विटपिकुसुमस्तबकितसलिलाभिः, अनवरतमज्जदुन्मज्ज–द्युवतिजनघनजघनास्फालनोच्छ्वसितशीकरनिकरस्नपित–तीरवेदिकाभिः, कर्पूरपूरविरचितपुलिनतलनिषण्णनिनदा–नुमीयमानराजहंसाभिः, विकचनीलोत्पलकाननदर्शिताकाण्ड–चक्रवाकतिमिरशंकाभिः, युवतीभिरिव सपयोधराभिः, सुग्रीव–युद्धप्रवृत्तिभिरिव कीलालस्नपितकुम्भकर्णाभिः, सागरकूल–भूमिभिरिव सुन्दरीपादपरागशबलाभिः, नवनृपतिचित्त–वृत्तिभिरिव कुल्यापमानकारिणीभिः, अनेकाभिर्नदीभिरुप–शोभितम्...।

पदच्छेद— कनक–शिलापट्ट–आंगण–प्रसृताभिः, कर्पूर–कुंकुम–चन्दन–ऐला–लवंग–परिमल–वाहिनीभिः,तट–निकट–स्फाटिक–शिलापट्ट–सुख–निषण्ण–निद्रायमाणा–अज्ञान–श्वेत–पारावताभिः, प्रभ्रश्यत् तट–विटपि–कुसुम–स्तबकित–सलिलाभिः,अनवरत–मज्जत् उन्मज्जत् युवति–जन–घन–जघन–आस्फालन–उच्छ्वसित–शीकर–निकर–स्नपित–तीर–वेदिकाभिः,कर्पूर–पूर–विरचित–पुलिन–तल–निषण्ण–निनद–अनुमीय–मान–राजहंसाभिः,विकच–नीलोत्पल–कानन–दर्शित–अकाण्ड–चक्रवाक–तिमिर–शंकाभिः, युवतीभिः इव सपयोधराभिः, सुग्रीव–युद्ध–प्रवृत्तिभिः इव कीलाल–स्नपित–कुम्भकर्णाभिः, सागरकूल–भूमिभिः इव सुन्दरी– पाद–पराग–शबलाभिः, नव–नृपति–चित्तवृत्तिभिः इव कुल्या–अपमान–कारिणीभिः, अनेकाभिः नदीभिः उपशोभितम्....।

अनुवाद— स्वर्णनिर्मित शिलाओं से युक्त, कर्पूर, केसर, चन्दन, इलायची, लौंग की सुगन्ध को धारण करने वाली, तट के पास में रखी हुई स्फटिक शिलाओं पर सुखपूर्वक बैठे, सोते हुए, न जान पड़ते हुए

सफेद कबूतरों वाली, तट पर स्थित वृक्षों के गिरते हुए पुष्पों के गुच्छों से युक्त जलों वाली, निरन्तर प्रविष्ट होती हुई और स्नान करके निकलती हुई, रमणियों के विशाल नितम्बों के आघात से उड़ते हुए जल–कणों के समूह से मानो स्नान करती हुई वेदियों वाली, कर्पूर–समूह द्वारा विरचित तटों पर बैठे हुए, राजहंसों के निनाद से अनुमान किए जाने वाली, विकसित नीलकमल के वन के कारण असमय में ही चक्रवाकों को दिखायी पड़ने वाले अन्धकार की शंका कराने वाली,

कामिनियों के समान सुन्दर जलधारा(पयोधर) वाली, सुग्रीव की युद्ध कलाओं के समान, जलों से भीगे हुए कलश के अग्रभाग वाली, सागर की तटवर्ती भूमि के समान, सुन्दरियों की चरणरज से सुशोभित, नए राजा की चित्तवृत्ति के समान, छोटी–छोटी नदियों को तिरस्कृत करने वाली, अनेक नदियों से शोभायमान...

'चन्द्रिका'– वासवदत्ता भवन के पास में ही सोने की शिलाओं से बनाए गए प्रांगण में अनेक कृत्रिम नदियाँ बह रही थीं, जिसके जल को कर्पूर, केसर, चन्दन, इलायची तथा लौंग की गन्ध से सुगन्धित किया गया था। इन नदियों के किनारों पर रखी गयी स्फटिक से निर्मित शिलाओं के ऊपर सुखपूर्वक बैठे हुए सफेद कबूतर एक जैसा शुभ्र रंग होने के कारण दिखायी भी नहीं दे रहे थे।

इसके अतिरिक्त उन नदियों के तट पर स्थित वृक्षों के पुष्पों के गुच्छों के गिरने से उनका जल गुच्छेदार हो रहा था। इसी तट पर एक'वेदिका'भी बनी हुई थी, जो जल में स्नान करने के लिए निरन्तर प्रवेश करके निकलती हुई रमणियों के विशाल जघन स्थलों से टकराकर उछलती हुई जल की बूँदों से मानो स्नान कर रही थीं।

इसीप्रकार उन नदियों के कर्पूर से बनाए गए तटों के ऊपर विराजमान राजहंस अपनी मधुर ध्वनि से ही दिखायी दे पा रहे थे तथा उन नदियों में खिले हुए नीले कमलों के कारण वहाँ स्थित चक्रवाकों को असमय में ही रात्रि की शंका हो रही थी।

इसके अलावा वे नदियाँ सुन्दर स्तनों(पयोधर) के समान सुन्दर जलधाराओं से युक्त थीं तथा रक्त से कुम्भकर्ण को भी भिगो देने वाले सुग्रीव के युद्धकौशल के समान वे सभी जलों से भीगे हुए मंगल-कलश के अग्रभाग से युक्त थीं।

इसीप्रकार सुन्दरी नाम के पौधों के रंग से विभूषित समुद्र की तटभूमि के समान वे सभी सुन्दरियों के चरणों की धूल से युक्त थीं एवं सज्जनों को अपमानित करने वाले नए-नए राजा की चित्तवृत्तियों के समान छोटी (क्षुद्र) नदियों से युक्त थीं।

विशेष-(i) उपर्युक्त अंश में कवि ने वासवदत्ता भवन में पास में बह रही छोटी-छोटी कृत्रिम नदियों का मनमोहक एवं आलंकारिक वर्णन किया गया है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद- **पयोधर**-स्तन, जलधारा। **कीलाल**-जल, रक्त। **कुम्भकर्ण**- राक्षस, कलश का अग्रभाग।

(iii) रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुमान, सन्देह, उदात्त तथा श्लेष अलंकारों का मनभावन प्रयोग किया गया है।

अवतरणिका- इसी क्रम में महाकवि सुबन्धु, वासवदत्ता-भवन के मणि-जटित शिखरों की शोभा के विषय में कहते हैं कि-

(106) **शिखरगतमुक्ताजालव्याजेन पुरयुवतिदर्शन-कुतूहलागतं तारागणमिवोद्वहद्भिः, उपान्तनिलीनाभिः काच-कलशाकृतिमुद्वहन्तीभिः शिखण्डिसंहतिभिरुद्भासितैः प्रासादै-रुपशोभमानम्, क्वचिदनवरतदह्यमानकृष्णागुरुधूमपटलैर्दर्शि-ताकालजलदसन्नाहम्, क्वचिद्गम्भीरमुरजरवाहूतसमदनील-कण्ठम्, सायन्तनसमयमिव पतितलोकलोचनम्, जनकयज्ञ-स्थानमिव दारोत्सुकरामम्, मानुष्यकमिवाभिनन्दितसुरतम्, अरण्यमिवानेकसालशोभितम्, निधानमिव कौतुकस्य, आस्थानमिव शृंगारस्य, कुलगृहमिव सकलविभ्रमाणाम्,**

संकेतस्थानमिव सौन्दर्यस्य, वासवदत्ताभवनं भवनन्दनप्रभावो ददर्श।

पदच्छेद–शिखर–गत–मुक्ता–जाल–व्याजेन पुर–युवति–दर्शन–कुतूहल–आगतम् तारागणम् इव उद्वहद्भिः, उपान्त–निलीनाभिः काच–कलश–आकृतिम् उद्वहन्तीभिः शिखण्डि–संहतिभिः उद्भासितैः प्रासादैः उपशोभमानम्, क्वचिद् अनवरत–दह्यमान–कृष्णा–अगुरु–धूम–पटलैः दर्शित–अकाल–जलद–सन्नाहम्, क्वचिद् गम्भीर–मुरज–रव–आहूत–समद–नीलकण्ठम्, सायन्तन–समयम् इव पतित–लोक–लोचनम्, जनक–यज्ञ–स्थानम् इव दारा–उत्सुक–रामम्, मानुष्यकम् इव अभिनन्दित–सुरतम्, अरण्यम् इव अनेक–साल–शोभितम्, निधानम् इव कौतुकस्य, आस्थानम् इव श्रृंगाररस्य, कुलगृहम् इव सकल–विभ्रमाणाम्, संकेत–स्थानम् इव सौन्दर्यस्य, वासवदत्ता–भवनम् भव–नन्दन–प्रभावः ददर्श।

अनुवाद– **यह भवन शिखरों पर विद्यमान, मुक्तामणियों के जाल के व्याज से नगर की युवतियों के दर्शन करने के लिए उत्सुकतापूर्वक आए हुए, तारों के समूह को मानो धारण करने वाला, पास में बैठी हुई नीली मिट्टी से बनाए गए कलश के समान प्रतीत होती हुई मोरों की पंक्तियों से सुशोभित महलों से अलंकृत था।**

यहाँ कहीं पर निरन्तर जलते हुए काले अगरु के धुएँ के समूह से असमय में ही मेघों का सन्देह उत्पन्न करने वाले, कहीं पर गम्भीर मृदंग की ध्वनि से मयूरों को इक्ट्ठा करने वाले, अस्त होते हुए सूर्य वाले सायंकाल के समान लोगों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाले, पत्नी सीता को ग्रहण करने के उत्सुक राम से युक्त जनक के यज्ञस्थल के समान कामयुक्त कामिनियों वाले,

देवत्व का स्वागत करने वाले व्यक्ति के समान रतिक्रीड़ा का स्वागत करने वाले, अनेक वृक्षों से सुशोभित वन के समान अनेक बुर्जों से शोभायमान, आश्चर्य की निधि के समान सजी हुई राजसभा के

समान, सभीप्रकार के विलासों की उत्पत्ति के समान एवं सुन्दरता के संकेत के समान, कार्तिकेय के समान प्रभावयुक्त कन्दर्पकेतु ने वासवदत्ता के निवासगृह को देखा।

'चन्द्रिका'– उस भवन के शिखरों पर मुक्तामणियों को ही जाल के रूप में जड़ा हुआ था, जिनमें कवि ने नगर की युवतियों के दर्शन के लिए आए हुए तारों के समूह की सुन्दर कल्पना की है, जिस शिखर के पास में ही मोरों की पक्तियाँ बैठी हुई थीं, जो नीली मिट्टी से बनायी गए कलश की पंक्ति के समान प्रतीत हो रही थीं।

उस प्रासाद में प्रत्येक स्थान को सुगन्धित करने के लिए काले अगरु को जलाया गया था, जिसके धुएँ के समूह से असमय में ही मेघों की प्रतीति हो रही थी, यहाँ कहीं पर मृदंगों की ध्वनि को सुनकर मोर इक्ट्ठे हो रहे थे, जो लोगों के नेत्रों को उसीप्रकार अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे, **जैसे**– अस्त होता हुआ सूर्य, देखने वाले व्यक्ति को अकस्मात् अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

इस भवन में स्त्रियाँ अपने प्रियतमों के लिए उसीप्रकार उत्कण्ठित थीं, **जैसे**– राम से सुशोभित जनक के यज्ञस्थल पर, सीता के लिए राम उत्सुक थे। वह भवन उसीप्रकार रतिक्रीड़ा का अभिनन्दन करने वाला था, जिसप्रकार मनुष्यों के समूह देवत्व का अभिनन्दन करते हैं। उसमें अनेक बुर्ज विद्यमान थे, जो अनेक वृक्षों से सुशोभित वन के समान प्रतीत हो रहे थे। वासवदत्ता का वह भवन वस्तुतः आश्चर्य की निधि, श्रृंगार का दरबार, सभी विलासों की उत्पत्ति का स्थान तथा सौन्दर्य के संकेत–स्थान के समान था, जिसे कन्दर्पकेतु ने देखा।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कवि ने अपनी कवित्व शक्ति से वासवदत्ता के निवास–गृह के महिमामण्डन के लिए अनेकानेक रमणीय उपमानों का प्रयोग किया है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **पतित**–अस्त, आकर्षित। **लोक**–सूर्य, लोग। **दारा**– पत्नी सीता, स्त्रियाँ। **रामम्**– राम, प्रियतम। **सुरतम्**– देवत्व, रतिक्रीड़ा। **साल**– वृक्ष, बुर्ज।

(iii) उपर्युक्त अंश के अन्त में कवि ने उपमाओं की झड़ी ही लगा दी है। अतः मालोपमालंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(वासवदत्ताभवने प्रणयपेशलावार्तावर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद वासवदत्ता के भवन में सखियों के मध्य होने वाले हास्य एवं प्रेमपूर्ण वार्तालाप का मनमोहक चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(107) **भद्रे! द्रवसि द्रवसिद्धेरगदिता। चपला च पलायते किमेषा। स्तबकस्तत्र कर्णतः पतितोऽयम्। सुरेखे! सुकपोलरेखे! सुरया सुरयाचिताश्रीस्त्वमसि। मत्ते! कलहे! कलहेमकांचीदामकणितैः स्मरमिवाह्वयसि। मलये! मलयेप्सितं कुरु दृशैवाधिगतासि। कलिके! कलिकेतुमिमां मुखरां मुंच मेखलाम्, शृणुमः कलवल्लकीविरुतम्। मेखला मेखला न भवति, त्वमेव मुखरतया खरतया च त्रपतेऽत्र पतेयमिति नागकुसुमोपहारेषु स्खलन्तीयम्। तव कैतवकैरलम्, कलितो निःश्वासैर्वेपथुरेवाशयं व्यनक्ति। वहतीव हतीरनंलेखे! तव वपुरलसं स्मरसायकानाम्। तव च हारलता पिहिताऽपि हि तायते। उत्कलिके! तवोत्कलिकाबहुले वदने वद नेत्रपयोजकान्ते! किमुपमानमिन्दुरप्यायाति।**

पदच्छेद– भद्रे! द्रवसि द्रव–सिद्धेः अगदिता। चपला च पलायते किम् एषा। स्तबकः तत्र कर्णतः पतितः अयम्। सुरेखे! सुकपोल–रेखे! सुरया सुर–याचिता–श्रीः त्वम् असि। मत्ते! कलहे! कल–हेम–कांची–दाम–कणितैः स्मरम् इव आह्वयसि। मलये! मलय–इप्सितम् कुरु दृशा एव अधिगतासि। कलिके! कलिकेतुम् इमाम् मुखराम् मुंच मेखलाम्, शृणुमः कल–वल्लकी–विरुतम्। मेखला मेखला न भवति, त्वम् एव

मुखरतया खरतया च त्रपते, अत्र पतेयम्, इति नाग–कुसुम–उपहारेषु स्खलन्तीयम्। तव कैतव–कैरलम्, कलितः निःश्वासैः वेपथुः एव आशयम् व्यनक्ति।वहति इव हतीः अनंगलेखे!तव वपुः अलसम् स्मर–सायकानाम्। तव च हारलता पिहिता अपि हि तायते। उत्कलिके! तव उत्कलिका–बहुले वदने वद, नेत्र–पयोज–कान्ते! किम् उपमानम् इन्दुः अप्यायाति।

अनुवाद– हे कल्याणि! कहे बिना ही तुम परिहास की पात्र बनने के लिए क्यों दौड़ रही हो? अरे, यह चपला क्यों भाग रही है? तुम्हारे कान से यह पुष्पगुच्छ गिर गया है। हे सुन्दर कपोलों की रेखा वाली! सुरेखे! विष्णु द्वारा चाही गयी लक्ष्मी के समान सुन्दर गमन करने वाली तुम तो देवों द्वारा चाही गयी शोभा से सम्पन्न हो।

हे मतवाली, कलह करने वाली कलहे! इस स्वर्णनिर्मित मेखला के अव्यक्त शब्दों से तो तुम मानो कामदेव को ही बुला रही हो। हे मलये! तुमने अपनी दृष्टि से कामदेव को भी अपने वश में कर लिया है। (या तुम्हारी दृष्टि तो चन्दन के समान मनःताप को दूर करने वाली है।) इसलिए अपने अभीप्सित को पूरा करो।

हे कलिके! अपनी ध्वनि से रतिक्रीड़ा को सूचित करने वाली, इस करधनी को तुम उतार दो, क्योंकि हम लोग तो वीणा की (रतिकाल में तुम्हारे मुख से निकली हुई) मधुर ध्वनि को सुनेंगी।

(इसपर कलिका उत्तर देती है कि–) मेरी मेखला दुष्ट नहीं है, किन्तु तुम ही वाचालता तथा क्रूरता से दुष्टता कर रही हो। यह तो नागकेसर के पुष्पों पर गिरने के डर से लज्जित हो रही है।

(इसपर सखी पुनः कहती है कि–) अरी, तुम्हारा यह छल व्यर्थ ही है, क्योंकि दीर्घ निःश्वासों से युक्त तुम्हारे शरीर का यह कम्पन तुम्हारे आशय को स्पष्टरूप से व्यक्त कर रहा है।

हे काम के लक्षण वाली अनंगलेखे! तुम्हारा यह अलसाया हुआ शरीर मानो कामदेव के बाणों के प्रहार को धारण कर रहा है। वस्त्र से ढ़की हुई तुम्हारी हाररूपी लता, वस्तुतः बाहर निकली जा रही है।

हे कमल के समान नेत्रकान्ति से सम्पन्न,उत्कण्ठित उत्कलिके! अत्यधिक उत्कण्ठा से युक्त, कमल के समान सुन्दर नेत्रों से सम्पन्न, तुम्हारे मुख का उपमान बनने में यह चन्द्रमा क्या समर्थ है?

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में प्रयुक्त सखियों की हँसी ठिठोली के लिए कवि ने संवादात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **सुरया**–सुन्दर गति वाली, देवों द्वारा। **मलय**–कामदेव, चन्दन।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(108) वसतीव सतीव्रते! तव हृदि कोऽपि। शतधा शतधारसारा वाचस्तवानुभूताः। कुन्तलिके! करकाकरकाल-मेघखण्डतुलामयमुपयात्युल्लसितोत्फुल्लमल्लिकामालभारी तव कुन्तलकलापः। केरलिके! पुरगोपुरगोचराः श्रूयन्ते संगीतध्वनयः किमिव कल्पयसि। क्षणमीक्षणमीलनादपि चटुलं चटुलम्पटं सखीजनमायासयसि। सुरते सुरते! स्तन-ताडनेषु यत्सौख्यं लब्धं तत्स्मरता स्मरतापनोदनं दयितेन दयितेन विमुक्तासि। किं मुह्यसि महतो महतो दयितः स्मरति स्म रतिप्रियं तव कौशलम्। नवनिशा– नखराणां नखराणां स्मरजन्यां स्म रजन्यां कुरुते कुरुतेन रुजम्। तव लोचनाभ्यां लोचनाभ्यां प्रीणिताखिलजनेक्षणदेशः क्षणदेशः किं न पीयते।

पदच्छेद–वसति इव सतीव्रते! तव हृदि कः अपि। शतधा शत-धार–सारा वाचः तव अनुभूताः। कुन्तलिके! करका–करकाल–मेघ-खण्ड–तुलामयम् उपयाति उल्लसित– उत्फुल्ल–मल्लिका–मालभारी तव कुन्तल–कलापः। केरलिके! पुर–गोपुर–गोचराः श्रूयन्ते संगीत– ध्वनयः किम् इव कल्पयसि। क्षणम् ईक्षण–मीलनात् अपि चटुलम् चटु–लम्पटम् सखी–जनम् आयासयसि। सुरते, सुरते! स्तन–ताडनेषु यत् सौख्यम्

लब्धम् तत् स्मरता स्मर–ताप–नोदनम् दयितेन दयितेन विमुक्तासि। किम् मुह्यसि महतः महतः दयितः स्मरति स्म रति–प्रियम् तव कौशलम्। नव–निशा–नखराणाम् नखराणाम् स्मरजन्याम् स्म रजन्याम् कुरुते कुरुतेन रुजम्। तव लोचनाभ्याम् लोचनाभ्याम् प्रीणित–अखिल–जन–ईक्षणदेशः क्षणदेशः किम् न पीयते।

अनुवाद– हे सतीव्रते! ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम्हारे हृदय में कोई रह रहा है।(उत्तर) मैंने सैंकड़ों बार वज्र के समान कठोर तुम्हारी इसप्रकार की बातों को सुना है। हे कुन्तलिके! ओलों(करक) के आकार वाली, मेघ के टुकड़े के समान काली, आकर्षक तथा खिली हुई मालतीमाला से युक्त तुम्हारा यह केशपाश सुन्दर प्रतीत हो रहा है।[1]

हे केरलिके! नगर के मुख्य द्वार (गोपुर) पर क्या तुम्हें संगीत की ध्वनियाँ सुनायी पड़ रही हैं? भला क्या सोच रही हो? अपने नेत्रों को क्षण भर के लिए बन्द करके चिन्तन करती हुई, तुम्हारे प्रिय वचनों में आसक्त अपनी सखियों को कष्ट क्यों दे रही हो?

हे सुरते! सुरतकाल में प्रियतम द्वारा कुच–मर्दन करने पर काम के सन्ताप को दूर करने वाले, जिस सुख को तुमने प्राप्त किया है, उसका स्मरण करती हुई प्रियतम द्वारा तुम छोड़ दी गयी हो?

हे सखी! तुम इससे क्यों दुःखी हो रही हो? (क्या तुम भूल गयी?) महान् उत्सवों में भी तुम्हारी सुरत सम्बन्धी निपुणता को तुम्हारा प्रिय स्मरण करता था तथा काम को उत्पन्न करने वाली रातों में नए–नए नखों से तुम्हारे स्तन आदि प्रदेशों पर निशान बनाता था, (इसलिए आज भी वह अवश्य आएगा।) अपने सौन्दर्य से सभी को आनन्दित करने वाले चन्द्रमा या सुख प्रदान करने वाले पति को तुम

---

[1]. ओलों के आकार से अभिप्राय यहाँ घुँघराले बालों से ग्रहण करना चाहिए। वस्तुतः घने, काले, घुँघराले, लम्बे बाल स्त्री की सुन्दरता में कई गुना वृद्धि कर देते हैं।

देखने में समर्थ होने पर भी अपने नेत्रों से क्यों नहीं देख रही हो? (उसके सौन्दर्य का पान क्यों नहीं कर रही हो?)

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में सभी कथन स्त्री–मनोविज्ञान तथा सूक्ष्म काम–शास्त्र पर आधारित प्रयुक्त हुए हैं।

अवतरणिका– इसी प्रसंग में कवि फिर से कहते हैं कि–

(109) **प्रियसखि! मदनमालिनि! बिम्बाधरसंगत्या संगत्यागेच्छया विरागं कुरु मधुमदारुणमालवीकपोलतल–समानो लसमानो रक्तमण्डलतया लतया त्वया को विशेषः? कुरंगिके! कल्पय कुरंगावकेभ्यः शष्पांकुरम्। किशोरिके! कारय किशोरप्रत्यवेक्षाम्। तरलिके! तरलय कृष्णागुरुधूप–पटलम्। कर्पूरिके! पाण्डरय कर्पूरधूलिभिः पयोधरभारम्। मातंगिके! मानय मातंगशिशुयाचनाम्। शशिलेखे! विलिख ललाटपट्टे शशिलेखाम्। केतकिके! संकेतय केतकीमण्डप–दोहदम्। शकुनिके! देहि क्रीड़ाशकुनिभ्य आहाराम्।**

पदच्छेद–प्रियसखि! मदन–मालिनि! बिम्बाधर–संगत्या संग–त्याग–इच्छया विरागम् कुरु मधुमद–अरुण–मालवी–कपोल–तल–समानः लसमानः रक्त–मण्डलतया लतया त्वया कः विशेषः? कुरंगिके! कल्पय कुरंगावकेभ्यः शष्पांकुरम्। किशोरिके! कारय किशोर–प्रत्यवेक्षाम्। तरलिके! तरलय कृष्णा–अगुरु–धूप–पटलम्। कर्पूरिके! पाण्डरय कर्पूर–धूलिभिः पयोधर–भारम्। मातंगिके! मानय मातंग–शिशु–याचनाम्। शशिलेखे! विलिख ललाट–पट्टे शशि–लेखाम्। केतकिके! संकेतय केतकी–मण्डप–दोहदम्। शकुनिके! देहि क्रीड़ा–शकुनिभ्यः आहाराम्।

अनुवाद– कामवासना से युक्त हे प्रिय सखी मदनमालिनि! बिम्बाफल के समान तुम्हारे अधर का पान करने वाले, प्रिय (भ्रमर) से द्वेष न करो, मधुपान से लाल, मालवप्रदेश की युवती के समान कपोलों से सुन्दर, रक्तवर्ण वाली लता और तुममें भला क्या अन्तर है?

हे मृग के नेत्रों के समान नेत्रों वाली कुरंगिके! मृगों के शावकों के लिए कोमल घास के अंकुरों को एकत्र करो। हे अश्व के समान शक्ति सम्पन्न किशोरिके! अश्व के शिशुओं की देखभाल करो। हे चंचल तरलिके! कृष्णागुरु के धुएँ को चारों ओर फैलाओ।

हे कर्पूर के समान शुभ्रवर्ण वाली कर्पूरिके! अपने स्तनों के विस्तार को कर्पूर के कणों से पाण्डुरित करो। हे हाथी के समान मतवाले अंगों वाली मतंगिके! गजशावक की याचना को स्वीकार करो।

हे चन्द्रमा के समान कला से सम्पन्न शशिलेखे! अपने ललाट पटल पर चन्द्रलेखा के आकार के तिलक की रचना करो।

हे केतकी के समान कोमल केतकिके! केतकी मण्डप के दोहद[1] को सूचित करो। हे पक्षियों से युक्त शकुनिके! पालतू पक्षियों को आहार (दाना) प्रदान करो।

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में कवि ने अपने समय के समाज का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है तथा दासियों को उनके काम के अनुसार नामों से ही पुकारा गया है। दूसरे शब्दों में, महाकवि यथा नाम तथा गुण के पक्षधर रहे हैं।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि आगे कहते हैं कि–

(110) मदनमंजरि! मंजीरय लतामण्डपम्। शृङ्गार–मंजरि! कल्पय शृङ्गाररचनाम्। संजीवनिके! वितर जीवंजीवकमिथुनाय मरिचपल्लवम्। पल्लविके! पल्लवय कर्पूरधूलिभिः कृत्रिमकेतकीकाननम्। सहकारमंजरि! सम्मार्जय श्रमोदकबिन्दून् सहकारसौरभव्यजनवातेन। मदनलेखे! विलिख मदनलेखं मलयानिलस्य।

---

[1]. कवियों की मान्यता है कि केतकी तथा अशोक वृक्ष कामिनियों के पादप्रहार एवं मदिरा की कुल्ली से ही पुष्पित होते हैं, जिसकी ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है। इसी क्रिया को 'दोहद' भी कहा जाता है।

पदच्छेद– मदन–मंजरि! मंजीरय लता–मण्डपम्। शृङ्गार-मंजरि! कल्पय शृङ्गार–रचनाम्। संजीवनिके! वितर जीवंजीवक-मिथुनाय मरिच–पल्लवम्। पल्लविके! पल्लवय कर्पूर–धूलिभिः कृत्रिम–केतकी–काननम्। सहकार–मंजरि! सम्मार्जय श्रम–उदक-बिन्दून् सहकार–सौरभ–व्यजन–वातेन। मदनलेखे! विलिख मदनलेखम् मलय–अनिलस्य।

अनुवाद– हे मदनमंजरि! लतामण्डप में भ्रमण करो। हे शृंगार मंजरि! शृंगार रचना का कार्य सम्पन्न करो। हे संजीवनी के समान जीवन प्रदान करने वाली संजीवनिके! जीवंजीवक के युगल के लिए मिर्च के कोमल पत्ते प्रदान करो। हे किसलय के समान कोमल पल्लविके! कृत्रिम केतकी के वन को कर्पूर के धूलि कणों से पल्लव के समान अलंकृत करो।

हे आम्रमंजरी के समान काम को उद्दीप्त करने वाली सहकार-मंजरि! आम्रमंजरी की सुगन्ध से युक्त पंखे की हवा से स्वेद–बिन्दुओं को सुखाओ। हे प्रेमपत्र लिखने में निपुण मदनलेखे! तुम मलयपवन के लिए कामदशा को सूचित करने वाले पत्र को लिखो।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) 'जीवंजीवक' पक्षीविशेष जो मिर्च के कोमल पत्तों को रुचिपूर्वक खाता है। इससे कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) वासवदत्ता के भवन में होने वाले क्रियाकलापों से कवि के समय की सामाजिक स्थिति का सुन्दर, सटीक एवं मनभावन चित्रण किया गया है।

अवतरणिका– इसी क्रम में पुनः महाकवि कहते हैं कि–

(111) मकरिके! मकरांकशोभिते! देहि मृणालांकुरं राजहंसशावकेभ्यः। विलासवति! विलासय मयूरकिशोरकम्। तमालिके! लेपय मलयजरसेन भवनवाटम् कांचनिके!

विकिर कस्तूरिकाद्रवं कांचनमण्डपिकायाम्। प्रवालिके! सेचय घुसृणरसेन बालप्रवालकाननम्, इत्यन्योन्यं प्रणय–पेशलाः प्रमदानामालापकथाः शृण्वन् कन्दर्पकेतुर्मकरन्देन सह तद्भवनं प्राविशत्।

पदच्छेद– मकरिके! मकरांक–शोभिते! देहि मृणाल–अंकुरम् राजहंस–शावकेभ्यः, विलासवति! विलासय मयूर–किशोरकम्, तमालिके! लेपय मलयज–रसेन भवन–वाटम्, कांचनिके! विकिर कस्तूरिका–द्रवम् कांचन–मण्डपिकायाम्। प्रवालिके! सेचय घुसृण–रसेन बाल–प्रवाल–काननम्, इति, अन्योन्यम् प्रणय–पेशलाः प्रमदानाम् आलाप–कथाः शृण्वन् कन्दर्पकेतुः मकरन्देन सह तद् भवनम् प्राविशत्।

अनुवाद– हे कामदेव से सुशोभित मकरिके! राजहंस के शिशुओं के लिए कमलदण्ड के अंकुर प्रदान करो। हे विलासों से युक्त विलासवति! मयूर के शावकों को विलास से सम्पन्न करो (उनके पास जाओ)। हे तमाल वृक्ष की सुगन्ध से युक्त तमालिके! चन्दन रस से घर के मार्ग को लीप दो। हे स्वर्ण के समान कान्ति से सम्पन्न कांचनिके! कांचनमण्डप में कस्तूरी के रस का छिड़काव करो।

हे मूँगे(प्रवाल) के समान मनोहर कान्ति वाली, प्रवालिके! केसर के रस से विद्रुम भवन (केशपाश) को सींच दो। इसप्रकार के प्रेमयुक्त व्यापार विषयक वार्तालाप को सुनते हुए, कन्दर्पकेतु ने मकरन्द के साथ (वासवदत्ता के) उस भवन में प्रवेश किया।

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त सभी दासियों के नाम उनके कार्यों तथा गुणों के आधार पर ही रखे गए हैं, प्रस्तुत सम्पूर्ण काव्य में पात्रों के नामों की भी यही विशेषता रही है।

(ii)प्रस्तुत गद्यांश में महल में दासी सखियों के बीच में हँसी–ठिठोली जैसे शृंगारिक वातावरण को प्रस्तुत किया गया है, जिसे

महाकवि की राजभवन विषयक सूक्ष्मदृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है।

(iii) महलों में मोर, हंस आदि पक्षियों को पालने की भी सूचना प्राप्त हो रही है, जो तात्कालिक सामाजिक परम्परा को सूचित करने वाला है।

(iv) इसके अतिरिक्त राजमहल की समृद्धि को भी प्रदर्शित किया गया है।

(वासवदत्तानिवासभवनप्रशंसा)

अवतरणिका– इसके बाद कन्दर्पकेतु द्वारा अपने मन में की गयी वासवदत्ता के भवन एवं उसके स्वयं के सौन्दर्य की प्रशंसा का उल्लेख करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(112) **अकरोच्च मनसि– अहो भुवनातिशायि सौन्दर्यम्। अहो श्रृंगारकलाकौशलम्। तथा ह्ययं तत्काल–लीलाबहलविरलविमलमालवीदशनकान्तिदन्तिदन्तघटितो मण्डपोऽसावपि कनकशलाकाविनिर्मितयन्त्रपंजरसंयतः क्रीड़ाशुकः इत्यादि परिचिन्तयन् प्रविश्य, व्याकरणेनेव सरक्तपादेन, महाभारतेनेव सुपर्वणा, रामायणेनेव सुन्दर–काण्डारुणा, जङ्घायुगलेन विराजमानाम्, छन्दो–विचितिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्, नक्षत्रविद्यामिव गणनीय–हस्तश्रवणाम्,न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्, बौद्धसंगति–रिवालंकारभूषिताम्, उपनिषदमिवानन्दमेकमुद्योतयन्तीम्, द्विजकुलस्थितिमिव चारुचरणाम्,विन्ध्यगिरिश्रियमिव सुनित–म्बाम्, तारामिव गुरुकलत्रतयोपशोभिताम्, शतकोटियष्टि–मिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, प्रियङ्गुश्यामासखीमिव प्रियदर्शनाम्, ब्रह्मदत्तमहिषीमिव सोमप्रभाम्, दिग्गजकरेणुकामिवानुपमाम्,**

रेवामिव नर्मदाम्, वेलामिव तमालपत्रप्रसाधिताम्, अश्वतर–कन्यामिव मदालसां वासवदत्तां ददर्श।

पदच्छेद–अकरोत् च मनसि– अहो भुवन–अतिशायि सौन्दर्यम्। अहो श्रृंगार–कला–कौशलम्। तथा हि अयम् तत्काल–लीला–बहल–विरल–विमल–मालवी–दशन–कान्ति–दन्ति–दन्त–घटितः मण्डपः असौ अपि कनक–शलाका–विनिर्मित–यन्त्रपंजर–संयतः क्रीड़ा–शुकः इत्यादि परि–चिन्तयन् प्रविश्य, व्याकरणेन इव सरक्त–पादेन, महाभारतेन इव सुपर्वणा, रामायणेन इव सुन्दरकाण्ड–अरुणा, जङ्घा–युगलेन विराजमानाम्, छन्दोविचितिम् इव भ्राजमान–तनु–मध्याम्, नक्षत्र–विद्याम् इव गणनीय–हस्त–श्रवणाम्, न्याय–स्थितिम् इव उद्योतकर–स्वरूपाम्, बौद्ध–संगतिः इव अलंकार–भूषिताम्, उपनिषदम् इव आनन्दम् एकम् उद्योतयन्तीम्, द्विज–कुल–स्थितिम् इव चारु–चरणाम्, विन्ध्य–गिरि–श्रियम् इव सुनितम्बाम्, ताराम् इव गुरुकलत्रतया उपशोभिताम्, शत–कोटि–यष्टिम् इव मुष्टि–ग्राह्य–मध्याम्, प्रियङ्गु–श्यामा–सखीम् इव प्रिय–दर्शनाम्, ब्रह्मदत्त–महिषीम् इव सोम–प्रभाम्, दिग्गज–करेणुकाम् इव अनुपमाम्, रेवाम् इव नर्मदाम्, वेलाम् इव तमाल–पत्र–प्रसाधिताम्, अश्वतर–कन्याम् इव मदालसाम् वासवदत्ताम् ददर्श।

अनुवाद– तब कन्दर्पकेतु ने मन में विचार किया कि–

अहो, इस (महल) का अलौकिक सौन्दर्य। अहो, शृंगारकला की इसकी कुशलता, क्योंकि यह तत्काल क्रीड़ा के लिए उखाड़े हुए, अतः विरल और विमल मालवदेश की रमणियों के दाँतों की कान्ति के समान, हाथी के दाँत द्वारा निर्मित मण्डप में विद्यमान पिंजर, जो वस्तुतः स्वर्ण की शलाकाओं से बनाया गया है, उसी से नियन्त्रित किया गया यह क्रीड़ा–शुक है इत्यादि विचार करते हुए प्रवेश करके,

उस (कन्दर्पकेतु) ने व्याकरण के समान लाक्षारस से रंगे गए पैरों वाली, रामायण के समान सुन्दर अस्थि–जोड़ों की मनोहरता से दोनों जंघाओं से शोभायमान, 'तनुमध्या' नामक छन्द विशेष से

सुशोभित छन्दोविचिति के समान सुन्दर कृश मध्यभाग वाली, सर्वप्रथम गिने जाने वाले हस्त, श्रवण आदि नक्षत्रों से युक्त ज्योतिष–विद्या के समान अनुपम हाथ तथा कानों से युक्त, न्यायवार्तिककार उद्योतकर की प्रतिष्ठा वाले तर्कशास्त्र के समान कान्तिसम्पन्न रूप वाली, अलंकारों से विभूषित धर्मकीर्ति द्वारा विरचित बौद्धसंगति के समान आभूषणों से विभूषित, ब्रह्मानन्द को उत्पन्न करने वाले उपनिषद् के समान अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली,

मनोहर आचरण वाली, ब्राह्मण परम्परा के समान सुन्दर पैरों वाली, शोभन शिखरों वाली विन्ध्याचल की शोभा के समान सुन्दर नितम्बों से युक्त, अरुन्धती नामक नक्षत्र–विशेष से युक्त नक्षत्रों के समान विशाल श्रोणिभार से सुशोभित, मुट्ठी से ग्रहण करने योग्य कमर वाली, नरवाहन दत्त की पत्नी प्रियंगुश्यामा की सखी प्रियदर्शना के समान प्रियदर्शन वाली, ब्रह्मदत्त की रानी के समान चन्द्रमा की कान्ति से युक्त, दिग्गज की पत्नी अनुपमा के समान अनुपम,

विलास क्रीड़ा को देने वाली रेवा के समान विलासरूपी क्रीड़ा के सुख को प्रदान करने वाली, तमाल के पत्तों से शोभायमान सागर के तट के समान तिलक से सुशोभित, अश्वतर की कन्या मदालसा के समान, यौवनमद से अलसायी हुई वासवदत्ता को देखा।

'चन्द्रिका'– यहाँ मुख्य वाक्य यही है कि महल के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कन्दर्पकेतु ने अद्भुत रूप–सम्पन्न वासवदत्ता को देखा। शेष सभी उसके सौन्दर्य विशेषण प्रयुक्त हुए है, जिन्हें कवि ने अपनी सौन्दर्य की पारखी दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

विशेष–(i) नायिका वासवदत्ता की सौन्दर्य विषयक अनेक उपमाओं की सुन्दर प्रस्तुति के कारण मालोपमा का सुन्दर निदर्शन देखा जा सकता है।

(ii) तोते के पिंजरे को भी स्वर्ण की शलाकाओं से निर्मित बताने से राज्य की सुख, समृद्धि तथा अभूतपूर्व ऐश्वर्य की प्रतीति हो रही है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **पर्व**–घुटने, पर्वरूप अध्याय। **सुन्दर–काण्ड**–रामायण में प्रयुक्त अध्याय, शरीर में अस्थि संस्थान की सुन्दरता। **हस्तश्रवण**–ज्योतिष में नक्षत्रों के नाम, हाथ और कान। **उद्योतकर**– न्यायशास्त्र के विद्वान्, देदीप्यमान स्वरूप। **अलंकार**–काव्य में प्रयुक्त अलंकार, आभूषण। **आनन्द**–ब्रह्मानन्द, अलौकिक आनन्द। **चरण**–आचरण, पैर। **नितम्ब**–शिखर, नितम्बप्रदेश। **गुरुकलत्र**–बृहस्पति की पत्नी, विशाल श्रोणिभार। **मध्या**–दण्ड, कमर। **प्रियदर्शना**–नाम विशेष, प्रियदर्शन वाली। **सोमप्रभा**–नाम, चन्द्रमा की कान्ति। **अनुपमा**–नाम, जिसकी कोई उपमा न हो। **नर्मदा**– नदी, विलासक्रीड़ा करने वाली। **तमालपत्र**– वृक्ष विशेष के पत्ते, तिलक। **मदालसा**– नाम, यौवनमद से अलसायी हुई।

(iv) वस्तुतः 'महल में प्रवेश करके कन्दर्पकेतु ने सौन्दर्य की निधिरूप वासवदत्ता को देखा' शेष सभी उपमा के माध्यम से उसके अद्भुत सौन्दर्य का कथन करने वाले विशेषण प्रयुक्त हुए हैं।

(v) उपर्युक्त गद्यखण्ड में शृंगार के अंगरूप में अद्भुत रस का परिपाक भी दर्शनीय है।

(vi) जिसप्रकार व्याकरण शास्त्र में 'तेन रक्तं रागात्' सूत्र का प्रयोग किया जाता है, उसीप्रकार इस वासवदत्ता ने अपने पैरों को लाक्षारस से रंगा हुआ है, यह अभिप्राय है।

(vii) महाकवि का विभिन्न शास्त्रों का गहन अध्ययन भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि यहाँ इतिहास प्रसिद्ध अनेक सुन्दरियों के नामों का उल्लेख करते हुए वासवदत्ता के सौन्दर्य की प्रशंसा की गयी है।

(सखीकथितवासवदत्तावार्तावर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद सखियों द्वारा कहे गए वासवदत्ता विषयक वृत्तान्त का उल्लेख करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(113) **अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबतः कन्दर्पकेतो र्जहार चेतनां मूर्च्छा। तमपि पश्यन्ती वासवदत्ता**

मुमूर्च्छ। अथ मकरन्दसखीजनप्रयत्नाल्लब्धसंज्ञावेतावेका सनमलंचक्रतुः। अथ वासवदत्तायाः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सर्वविस्रम्भपात्रं कलावती नाम सखी कन्दर्पकेतुमुवाच– 'आर्यपुत्र! नायं विस्रम्भकथानामवसरः। अतो लघुतरमेवा–भिधीयते। त्वत् कृते याऽनया वेदनाऽनुभूता, सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजग–पतिर्वा कथकायते, तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रै–रभि लिख्यते कथ्यते वा। त्वयाऽपि राज्यमुज्झितम्। किं बहुना आत्मा संकटे समारोपित एव।

पदच्छेद– अथ ताम् प्रीति–विस्फारितेन चक्षुषा पिबतः कन्दर्पकेतोः जहार चेतनाम् मूर्च्छा। तम् अपि पश्यन्ती वासवदत्ता मुमूर्च्छ। अथ मकरन्द–सखीजन–प्रयत्नात् लब्ध–संज्ञौ एतौ एकासनम् अलंचक्रतुः। अथ वासवदत्तायाः प्राणेभ्यः अपि गरीयसी सर्व–विस्रम्भ–पात्रम् कलावती नाम सखी कन्दर्पकेतुम् उवाच–

'आर्यपुत्र! न अयम् विस्रम्भ–कथानाम् अवसरः। अतः लघुतरम् एव अभिधीयते। त्वत् कृते या अनया वेदना अनुभूता, सा यदि नभः पत्रायते, सागरः मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिः वा कथकायते, तदा किम् अपि कथम् अपि अनेकैः युग–सहस्रैः अभिलिख्यते कथ्यते वा।

त्वया अपि राज्यम् उज्झितम्। किम् बहुना आत्मा संकटे समारोपितः एव।

अनुवाद– इसके बाद अनुराग के कारण विस्फारित नेत्रों से उस वासवदत्ता का पान करते हुए कन्दर्पकेतु चेतना को त्याग कर मूर्च्छित हो गया और उसे देखती हुई वासवदत्ता भी मूर्च्छित हो गयी।

तत्पश्चात् मकरन्द एवं सखियों के प्रयत्नों से होश में लाए हुए, दोनों ही एक आसन पर सुशोभित कर दिए गए। पुनः वासवदत्ता

के प्राणों से भी अधिक अन्तरंग, सभीप्रकार के विश्वास की पात्र, 'कलावती' नामक सखी कन्दर्पकेतु से बोली–

'हे आर्यपुत्र! यह निश्चिन्त बैठकर वार्तालाप करने का अवसर नहीं है। इसीलिए अत्यधिक संक्षेप में कहा जा रहा है। तुम्हारे लिए इस वासवदत्ता ने जो वेदना अनुभव की है, उसे यदि आकाश को कागज बना दिया जाए, सागर को स्याही बना लिया जाए, ब्रह्मा स्वयं लिखने वाले बन जाएँ तथा शेषनाग बोलने वाले हो जाएँ, तो भी अनेक सहस्र युगों में कुछ थोड़ा सा ही लिखा जा सकेगा।'

इसके अतिरिक्त तुमने तो अपना राज्य को भी त्याग दिया है। अधिक क्या कहें, ऐसा करके तुमने स्वयं को ही संकट में डाल लिया है।

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष–(i) वासवदत्ता की सखी द्वारा व्यावहारिक धरातल पर बातों का कथन किया गया है, जिससे उसके उज्ज्वल चरित्र की उद्भावना हुई है।

(ii) वासवदत्ता की प्रेमविषयक वेदना के रम्यणीय चित्र को काव्य–कौशल द्वारा अतिशयोक्ति पूर्ण मनमोहकरूप में प्रस्तुत किया गया है।

(iii) अतिशयोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

अवतरणिका– इसके बाद वासवदत्ता की प्रिय सखी फिर से बोली–

(114) एषाऽस्मत्स्वामिदुहिता प्रभातायां शर्वर्य्यां यौवनातिक्रमदोषशंकिना पित्रा हठेन विद्याधरचक्रवर्तिनो विजयकेतोः पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्येति निश्चिता। अनया चार्ययाऽस्माभिः सह सम्मन्त्र्यालोचितम्– अद्य यदि तं जनमादाय नागच्छति,तमालिका तदावश्यमेवा–श्रयाश आश्रयितव्य इति। सुकृतवशाच्च महाभागः समागतः। तदत्र यत् साम्प्रतं तत्र भवानेव प्रमाणम्, इत्युक्त्वा विरराम।

पदच्छेद– एषा अस्मत् स्वामि–दुहिता प्रभातायाम् शर्वर्य्याम् यौवन–अतिक्रम–दोष–शंकिना पित्रा हठेन विद्याधर–चक्रवर्तिनः विजयकेतोः पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्या, इति निश्चिता। अनया च आर्यया अस्माभिः सह सम्मन्त्र्य आलोचितम्– अद्य यदि तम् जनम् आदाय न आगच्छति तमालिका तदा अवश्यम् एव आश्रयाशः आश्रयितव्य इति। सुकृत–वशात् च महाभागः समागतः। तद् अत्र यत् साम्प्रतम् तत्र भवान् एव प्रमाणम्, इति उक्त्वा विरराम।

अनुवाद– इसके अलावा हमारी यह राजकुमारी, आज प्रातः काल में ही यौवन का उल्लंघन करने का दोष लगने की सम्भावना से इसके पिता द्वारा हठपूर्वक विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु के लिए पाणिग्रहण द्वारा दे दी जाएगी, ऐसा निश्चय किया गया है।

इसलिए इस आर्या द्वारा हमारे साथ मन्त्रणा करके, यह निर्णय किया गया कि–

'यदि आज उस कन्दर्पकेतु को लेकर तमालिका नहीं आती है, तो इसे निश्चय ही अग्नि का आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए।'

अब सौभाग्यवश आप आ गए हैं, इसलिए इस विषय में जो भी उचित हो, उसे करने में आप ही प्रमाण हैं, यह कहकर चुप हो गयी।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड प्रसादगुण तथा वैदर्भी शैली का सुन्दर निदर्शन कहा जा सकता है।

(ii) वासवदत्ता की प्रेमविषयक वेदनातिशय को प्रदर्शित करने के साथ–साथ विद्याधरों के राजा विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु के साथ उसके विवाह का निर्णय करने की सूचना भी दी गयी है।

(नगरान्निर्गमनवर्णनम्)

अवतरणिका– सखी कलावती की बात सुनकर कन्दर्पकेतु द्वारा वासवदत्ता के साथ वहाँ से जाने के निर्णय के विषय में महाकवि कहते हैं कि–

(115)अथ कन्दर्पकेतुर्भीतभीत इव, प्रणयानन्दामृत–सागरलहरीभिराप्लुत इव, भुवनत्रयराज्याभिषिक्त इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य, मकरन्दं वार्तान्वेषणाय तत्रैव नगरे नियुज्य, भुजंगेनेव सदागत्यभिमुखेन सरित्पतिनेव शुक्तिशोभितेन, विन्ध्यविपिनेनेव श्रीवृक्षलांछितेन, हंसेनेव मानसगतिना, अरण्येनेव गण्डशोभितेन, वनस्पतिनेव स्कन्धशोभितेन, वज्रेणेवेन्द्रायुधेन, मनोजवनाम्ना तुरगेण तया सह नगरान्निर्जगाम।

पदच्छेद– अथ कन्दर्पकेतुः भीतभीतः इव, प्रणय–आनन्द–अमृत–सागर–लहरीभिः आप्लुतः इव, भुवन–त्रय–राज्याभिषिक्तः इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य, मकरन्दम् वार्ता–अन्वेषणाय तत्र एव नगरे नियुज्य, भुजंगेन इव सदा–गति–अभिमुखेन, सरित्पतिना इव शुक्ति–शोभितेन, विन्ध्य–विपिनेन इव श्री–वृक्ष–लांछितेन, हंसेन इव मानस–गतिना, अरण्येन इव गण्ड–शोभितेन, वनस्पतिन इव स्कन्ध–शोभितेन, वज्रेण इव इन्द्रायुधेन, मनोजव–नाम्ना तुरगेण तया सह नगरात् निर्–जगाम।

अनुवाद– इसके बाद अत्यधिक डरा हुआ सा, प्रेम से उत्पन्न होने वाले आनन्दरूपी अमृत–सागर की लहरों से सिक्त होता हुआ सा, तीनों लोकों के राज्य पर अभिषिक्त होता हुआ सा कन्दर्पकेतु, अपने मित्र मकरन्द को समाचार जानने के लिए वहीं नगर में नियुक्त करके, वासवदत्ता के साथ विचार–विमर्श करते हुए,

वायु के समक्ष स्थित सर्प के समान, निरन्तर चलने के लिए उत्साहित सीपियों से शोभायमान समुद्र के समान, मस्तक एवं वक्षःस्थल पर स्थित रोमावली से सुशोभित, पीपल के वृक्षों से अलंकृत वन के समान, श्रीवृक्ष अर्थात् हृदय पर चिह्नित 'आवर्त' विशेष से सुशोभित, मानसरोवर की ओर जाने वाले हंस के समान, अत्यधिक वेग

से युक्त गैंड़ों से शोभायमान वन के समान 'गण्ड' नामक अश्वाभूषण से अलंकृत, शाखाओं से अलंकृत वृक्ष के समान सुडौल कन्धे से शोभायमान, इन्द्र के शस्त्र 'वज्र' के समान काली आँखों वाले 'मनोजव' नामक अश्व द्वारा उस वासवदत्ता के साथ नगर से निकल गया।

'चन्द्रिका'– वासवदत्ता की सखी कलावती की बातों को सुनने के बाद कन्दर्पकेतु पहले तो वासवदत्ता को वहाँ से भगा ले जाने के निर्णय से थोड़ा डरा, किन्तु तत्क्षण ही उसके अपने प्रति प्रेम को जानकर वह आनन्दरूपी सागर में डूब गया, उसे लगा कि मानो उसे तीनों लोकों का राज्य ही प्राप्त हो गया हो, तब उसने वासवदत्ता से परामर्श करके, उसे लेकर नगर से बहुत दूर जाने का निर्णय किया और उनके नगर से चले जाने के बाद वहाँ के समाचारों को जानने के लिए अपने मित्र मकरन्द को वहीं नगर में छोड़कर मन के समान वेगपूर्ण गति वाले 'मनोजव' नामक घोड़े से वासवदत्ता के साथ उसके नगर से निकल गया।

विशेष–(i) नायक कन्दर्पकेतु की चारित्रिक विशेषता के रूप में तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता अभिव्यक्त हुई है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **शुक्ति**–सीपी, वक्षस्थल पर स्थित रोमावली। **सदागति**–वायु, निरन्तर चलने वाला। **श्रीवृक्ष**–पीपल का वृक्ष, हृदय पर विद्यमान 'आवर्त' विशेष। **मानस**–मानसरोवर, मन । **गण्ड**–गैंडे, आभूषण। **स्कन्ध**– वृक्ष का तना, कन्धा।

(iii) उपमा (हंसेनेव), रूपक (प्रणयानन्द), श्लेष एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iv) कवि का अश्वशास्त्र विषयक सूक्ष्म ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि यहाँ उत्कृष्ट घोड़े के सभी लक्षणों का उल्लेख किया गया है, जिनमें कन्धों का पुष्ट होना, हृदय पर 'आवर्त', वक्षस्थल पर 'रोमावली' तथा उसका मन के समान गति वाला (मनोजव) होना आदि प्रमुख हैं।

(v) महाकवि के समय में घोड़ों को 'गण्ड' एवं सीपी–निर्मित दूसरे आभूषणों से सजाया जाता था, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है, जो तात्कालिक समाज में अश्व–प्रेम को चित्रित करने वाला है। पुरातनकाल में अश्व एवं हस्तिशास्त्र के भी उल्लेख मिलते हैं।

(श्मशानभूमिवर्णनम्)

अवतरणिका– मनोजव नामक घोड़े द्वारा वासवदत्ता के साथ कुसुमपुर नगर से निकलने पर वे दोनों नगर से चार कोस दूर स्थित श्मशान भूमि में पहुँचे, जिसका वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(116) ततः क्रमेण गव्यूतिमात्रमध्वानं गत्वा, नर–जांगलकवलनाभिलाषमिलितनिःशंककंककुलसंकुलेन, अर्ध–दग्धचिताचक्रसिमसिमायमानवसाविस्रविकटकटतृष्णाचटुल–कटपूतनोत्तालवेतालरवभीषणेन, शूलशिखरारोपितशंकित–वर्णकर्णनासिकच्छेदरुधिरपटलपतितझंकारिकरकोटिकर्पूर–करालकौणपनृत्ततुमुलेन,भस्मरालीकेलिसम्भारभरितभूमिभाग–बीभत्सेन, कटाग्निदह्यमानपटुचटचटन्नृकरोटिटिंकारभैरवेण, विवृतोल्कामुखीमुखज्वलज्ज्वलनज्वालाजटिलेन, आन्त्रतन्तु–प्रोतकपालकलितकुचप्रालम्बडामरडाकिनीगणकृतकुणप–विभागकोलाहलेन, आर्द्रसिरारचितविवाहमंगलप्रतिसरपिशाच मिथुनप्रदक्षिणीक्रियमाण चितानलेन,शूलपाणिनेव कपाला–वलिशिवाबहुभूतिभुजग राजावरुद्धदेहेन, पुरुषातिशयेनेव अनेकमण्डलकृतसेवेन, दण्डकारण्येनेव कबन्धाधिष्ठितेन, चक्रवर्तिनेव अनेकनरेन्द्रपरिवृतेन...।

पदच्छेद– ततः क्रमेण गव्यूति[1]–मात्रम् अध्वानम् गत्वा, नर–जांगल–कवलन–अभिलाष–मिलित–निःशंक–कंक–कुल–संकुलेन, अर्ध–दग्ध–चिता–चक्र–सिमसिमायमान–वसा–विस्र–विकट–कट–तृष्णा–चटु

---

[1]. दूरी मापने की इकाई जिसका अभिप्राय चार कोस से होता है।

ल–कट–पूतना–उत्ताल–वेताल–रव–भीषणेन, शूल–शिखर–आरोपित-शंकित–वर्ण–कर्ण–नासिक–छेद–रुधिर–पटल–पतित–झंकारि–कर–कोटि–कर्पूर–कराल–कौणप–नृत्त–तुमुलेन, भस्म–राली–केलि–सम्भार-भरित–भूमि–भाग–बीभत्सेन, कट–अग्नि–दह्यमान–पटु–चट– चटन् नृ-करोटि– टंकार–भैरवेण, विवृत–उल्का–मुखी–मुख–ज्वलत्–ज्वलन-ज्वाला–जटिलेन, आन्त्र–तन्तु–प्रोत–कपाल–कलित–कुच–प्रालम्ब-डामर– डाकिनी–गण–कृत–कुणप–विभाग–कोलाहलेन, आर्द्र–सिरा-रचित–विवाह–मंगल–प्रतिसर–पिशाच–मिथुन–प्रदक्षिणी–क्रियमाण–चिता अनलेन, शूलपाणिना इव कपाल–अवलि–शिवा–बहु–भूति–भुजग-राज–अवरुद्ध–देहेन, पुरुष–अतिशयेन इव अनेक–मण्डल–कृत–सेवेन, दण्डक–अरण्येन इव कबन्ध–अधिष्ठितेन, चक्रवर्तिना इव अनेक–नरेन्द्र-परिवृतेन.......... ।

अनुवाद– उसके पश्चात् चार कोस (गव्यूति) मात्र चलकर, वह एक श्मशान में पहुँच गया, जो नरमांस खाने की अभिलाषा से एकत्र हुए शंका से रहित 'कंक' नाम के पक्षियों के समूह से व्याप्त था, जो आधी जली हुई चिताओं की सिमसिमाती हुई चर्बी की गन्ध से विकट मृत शरीरों को खाने के लिए चंचल पिशाचों तथा भयंकर वेतालों की ध्वनि से डरावना था, जो शूल–शिखर पर चढ़े हुए चोर के नाक तथा कानों से बहते हुए रक्त के गिरने से छन्–छन् की आवाज़ से युक्त था, जो खप्पर लिए हुए राक्षसों के नृत्य से परिव्याप्त था,

जो मक्खियों के चारों ओर उड़ने से बीभत्स भूमिभाग वाला था, जो काष्ठ की अग्नि में जलती हुई तीव्र चट्–चट् की ध्वनि करती हुई, मनुष्य की खोपड़ी की भीषण ध्वनियों से भरा हुआ था, जो सियारिनियों के खुले हुए मुख में प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त था,

जो अंतड़ियों में गूथे गए कपालों की बनी हुई, स्तनों पर लटकती हुई माला से भयंकर डाकिनियों के समूह द्वारा शवों का

विभाजन करने के लिए होने वाले कोलाहल से भरा हुआ था, जो रक्त से सनी हुई गीली नाड़ियों से निर्मित वैवाहिक मंगलसूत्र बाँधे हुए युवा पिशाच–युगलों द्वारा प्रदक्षिणा की जाती हुई चिता की अग्नि वाला था,

जो कपाल–समूह, पार्वती, प्रचुर भस्म तथा सर्पराज से युक्त शरीर वाले भगवान् शंकर के समान कपाल–समूह, शृगाल, प्रचुर भस्म, तथा सर्पों से व्याप्त भूमियों वाला था, जो अनेक देशवासियों से सेवित राजा के समान, अनेक कुत्तों से भरा हुआ था,

जो 'कबन्ध' नामक राक्षस से युक्त दण्डकारण्य के समान, अनेक धडों (कबन्ध) से युक्त था, जो अनेक राजाओं से घिरे हुए चक्रवर्ती राजा के समान, विष दूर करने वाले अनेक वैद्यों से घिरा हुआ था।

'चन्द्रिका'– महाकवि ने श्मशान का स्वाभाविक वर्णन करते हुए उसे 'कंक' नामक पक्षी विशेष, आधी जलायी गयी चिताओं से सिमसिम करती हुई वसा वाली गन्ध से भयंकर, मरे हुए शरीरों को खाने के लिए इधर–उधर दौड़ते हुए पिशाचों तथा वेतालों के शब्दों से भीषण बताया है। जहाँ पर शूली पर चढ़ाए गए चोर के कान और नासिका के टपकता हुए रक्त, वहाँ स्थित प्रसन्नता से नृत्य करते हुए राक्षसों के हाथ में लिए हुए खप्परों में 'छन्–छन्' की ध्वनि करते हुए उसकी भयावहता में वृद्धि कर रहा था।

वहाँ चारों ओर मक्खियाँ उड़ रही थीं, जिसके कारण वह बीभत्स भूभाग वाला था तथा जलती हुई चिताओं में स्थित खोपड़ियों से 'चट्–चट्' की भयंकर ध्वनि आ रही थी, सियारनियों के खुले मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं। यहाँ शवों का विभाजन करने के लिए आपस में लड़ते हुए भयानक कोलाहल करने वाला डाकिनियों का समूह भी विद्यमान था, जिन्होंने शवों की अंतडियों के समूह से खोपड़ियों के समूह को बाँध कर अपने स्तनों पर माला के रूप में धारण किया हुआ था।

इसके अलावा वहाँ पर पिशाचों के मिथुन शवों की ताजी निकाली गयी नाड़ियों को विवाह के मंगलसूत्र के रूप में धारण करके चिताओं की अग्नि की प्रदक्षिणा करते हुए मानो विवाह संस्कार सम्पन्न कर रहे थे। साथ ही, महादेव के शरीर के समान यह कपालों के समूह, भस्म तथा सर्पों से भरा हुआ था। इसके भूभाग चिता की राख, गिद्ध, कुत्ते, कबन्ध (सिर कटे धड़), विषवैद्य तथा सियारों से व्याप्त थे, जिसके कारण कवि ने इस श्मशान भूमि को कबन्ध राक्षस से युक्त दण्डकारण्य तथा चक्रवर्ती राजा के समान बताया है, जहाँ पर कुत्ते, विष को दूर करने वाले अनेक वैद्य नागरिक रूप में विद्यमान थे।

विशेष–(i) प्रस्तुत प्रेमप्रधान श्रृंगारिक काव्य में भी श्मशान भूमि का वर्णन करके कवि ने जीवन के शाश्वत सत्य को उद्घाटित किया है, जिससे उनके सांसारिक वैराग्यभाव की भी अभिव्यक्ति हो रही है।

(ii) श्मशान का स्वाभाविक भयानक तथा बीभत्स वर्णन करने के कारण यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार तथा भयानक एवं बीभत्स रसों का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) उपर्युक्त गद्यखण्ड की अन्तिम पंक्तियों से प्रतीत होता है, कि उस समय सर्पादि के दंश से लोगों की मृत्यु के कारण विषदोष को दूर करने वाले वैद्य श्मशान में ही उपस्थित होकर उनका उपचार करते थे। अतः वैद्यों के प्रति असम्मान की भावना भी व्यक्त हुई है।

(iv) **द्व्यर्थक** पद– **शिवा**– पार्वती, सियारनी। **भुजगराज**–गिद्ध, सर्पराज। **देह**–भूभाग, शरीर। **मण्डल**–कुत्ते, देशवासी। **कबन्ध**–राक्षस, धड़। **नरेन्द्र**–राजा, विषवैद्य।

(v) श्लेष एवं उपमालंकारों का मनभावन प्रयोग किया गया है।

(विन्ध्याटवीवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद वे कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता दोनों ही विन्ध्याटवी में पहुँच गए, जिसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

(117)श्मशानवाटेन निर्गत्य, निमेषमात्रादेवानेकशतयोजनमध्वानं गत्वा पुनरपि, प्रलयकालवेलामिव समुदितार्कसमूहाम्, नागराज्यस्थितिमिव अनन्तमूलाम्, सुधर्मामिव स्वच्छन्दस्थितकौशिकाम्, सत्पुरुषसेवामिव बहुश्रीफलाढ्याम्, भारतसमरभूमिरिव दूरप्ररूढार्जुनाम्, पुलोमकुलस्थितिमिव सहस्रनेत्रोचितेन्द्राणीम्, शूलपालचित्तवृत्तिमिव फलितगणिकारिकाम्, सज्जनसम्पदमिव विकसिताशोकसरलपुन्नागाम्, शिशुजनलीलामिव कृतधात्रीधृतिम्, क्वचिद्राघवचित्तवृत्तिमिव वैदेहीमयीम्, क्वचित्क्षीरसमुद्रमथनवेलामिव उज्जृम्भमाणामृताम्, क्वचिन्नारायणशक्तिमिव स्वच्छन्दापराजिताम्, क्वचिद्वाल्मीकिसरस्वतीमिव दर्शितेक्ष्वाकुवंशाम्, क्वचिल्लंकामिव बहुपलाशसेविताम्, क्वचित्कुरुसेनामिव अर्जुनशरनिकरपरिवारिताम्, क्वचिन्नारायणमूर्तिमिव बहुरूपाम्, क्वचिद् सुग्रीवसेनामिव पनसचन्दनकुमुदनलसेविताम्, क्वचिदविधवामिव सिन्दूरतिलकभूषिताम् प्रवालाभरणांच क्वचित् कुरुसेनामिव उलूकद्रोणशकुनिसनाथाम्, धार्त्तराष्ट्रान्वितांच ।

अम्लानजातिभूषितामपि विरुद्धवंशाम्, दर्शिताभयामपि विभीषणाम्, सततहितपथ्यामपि प्रवृद्धगुल्माम्, षट्पदव्याकलामपि द्विपदानाकुलाम्, द्विजकुलभूषितामप्यकुलीनवंशाम्, विन्ध्याटवीं प्रविवेश। अनन्तरं तयोर्निद्रामादाय जगाम रजनी।

पदच्छेद– श्मशान–वाटेन निर्गत्य, निमेष–मात्राद् एव अनेक–शत–योजनम् अध्वानम् गत्वा पुनः अपि, प्रलय–काल–वेलाम् इव समुदित–अर्क–समूहाम्, नागराज्य–स्थितिम् इव अनन्त–मूलाम्, सुधर्माम् इव स्वच्छन्द–स्थित–कौशिकाम्, सत्पुरुष–सेवाम् इव बहु–श्री–फल–आढ्याम्, भारत–समर–भूमिः इव दूर–प्ररूढ–अर्जुनाम्, पुलोम–कुल–स्थितिम् इव सहस्र–नेत्र–उचित–इन्द्राणीम्, शूल–पाल–चित्त–वृत्तिम् इव

फलित–गणिकारिकाम्, सज्जन–सम्पदम् इव विकसित–अशोक–सरल–पुन्नागाम्, शिशु–जन–लीलाम् इव कृत–धात्री–धृतिम्, क्वचिद् राघव–चित्तवृत्तिम् इव वैदेहीमयीम्, क्वचित् क्षीर–समुद्र–मथन–वेलाम् इव उज्जृम्भमाण–अमृताम्, क्वचित् नारायण–शक्तिम् इव स्वच्छन्द–अपराजिताम्, क्वचिद् वाल्मीकि–सरस्वतीम् इव दर्शित–इक्ष्वाकु–वंशाम्, क्वचित् लंकाम् इव बहु–पलाश–सेविताम्, क्वचित् कुरुसेनाम् इव अर्जुन–शर–निकर–परिवारिताम्, क्वचित् नारायण–मूर्तिम् इव बहुरूपाम्, क्वचिद् सुग्रीव–सेनाम् इव पनस–चन्दन–कुमुद–नल–सेविताम्, क्वचिद् अविधवाम् इव सिन्दूर–तिलक–भूषिताम् प्रवाल–आभरणाम् च क्वचित् कुरु–सेनाम् इव उलूक–द्रोण–शकुनि–सनाथाम्, धार्त्तराष्ट्र–अन्विताम् च..... ।

अम्लान–जाति–भूषिताम् अपि विरुद्ध–वंशाम्, दर्शित– अभयाम् अपि विभीषणाम्, सतत–हित–पथ्याम् अपि प्रवृद्ध–गुल्माम्, षट्पद –व्याकलाम् अपि द्विपद–अनाकुलाम्, द्विज–कुल–भूषिताम् अपि अकुलीन–वंशाम्, विन्ध्याटवीम् प्रविवेश।

अनन्तरम् तयोः निद्राम् आदाय जगाम रजनी।

अनुवाद– श्मशान मार्ग से निकलकर अत्यल्प समय में ही अनेक सौ कोस मार्ग तय करके, उन्होंने प्रलयकाल की वेला के समान उगे हुए अनेक सूर्यों के समूह से युक्त बहुत से ढाक के वृक्षों के समूह वाली, आदिपुरुष शेषनाग वाली नागराज्य की स्थिति के समान अत्यधिक कन्द–मूल वाली, स्वच्छन्दरूप से विराजमान इन्द्र से युक्त देवसभा के समान उल्लूओं से भरी हुई, अत्यधिक धनवान् सत्पुरुषों की सेवा के समान बहुत से श्रीफलों से युक्त,

अत्यधिक प्रसिद्ध अर्जुन से युक्त महाभारत की युद्धभूमि के समान दूर तक फैले हुए अर्जुन के वृक्षों वाली, इन्द्र के योग्य शची से युक्त पुलोमकुल की स्थिति के समान हजारों मूलों से भरी हुई सिन्धुवार (ओषधि विशेष) नामक वृक्षों से युक्त, गणना विषयक कारिका

के सृजनकर्ता ज्योतिषी 'शूलपाल' की चित्तवृत्ति के समान, श्रीपर्ण नामक वृक्षों को प्रदर्शित करने वाली,

शोक से रहित सज्जन लोगों की सम्पदा के समान अशोक, सरल पीतदारु और नागकेसर के वृक्षों को धारण करने वाली, माता को सुख प्रदान करने वाली बालक्रीड़ा के समान हरीतकी के वृक्षों को धारण करने वाली, सीता से युक्त राम की चित्तवृत्ति के समान पिप्पली के वृक्षों से युक्त, अमृत को निकालने वाले क्षीरसागर के मन्थनकाल के समान विकसित 'घुँघची' नामक लताओं से सम्पन्न, स्वच्छन्द एवं अपराजित नारायण की शक्ति के समान स्वच्छन्दरूप से बहने वाली नदियों से युक्त थी।

जो कहीं पर वाल्मीकि की विद्या के समान तिक्त लौकी तथा बाँस को प्रकट करने वाली थी, जो कहीं पर राक्षसों से सुशोभित लंका के समान पलाश के वृक्षों की अधिकता से शोभायमान थी, जो अर्जुन के बाणों के समूह से व्याप्त कौरवों की सेना के समान अर्जुन नामक वृक्षों तथा नकुलों से भरी हुई थी, जो कहीं पर अनेक रूपों वाली विष्णु की मूर्ति के समान अनेक पशुओं से व्याप्त थी।

जो कहीं पनस, चन्दन, कुमुद, तथा नल नामक बन्दरों से युक्त सुग्रीव की सेना के समान कटहल, चन्दन, कुमुद तथा नरकुल से व्याप्त थी, जो कहीं पर सिन्दूर के तिलक से सुशोभित, बरौनियों से सुन्दर, सुहागिन स्त्री के समान सिन्दूर तथा तिलक नाम के वृक्षों से शोभायमान तथा किसलयों से अलंकृत हो रही थी, जो कहीं पर शकुनि पुत्र उलूक, द्रोणाचार्य, शकुनि तथा धृष्टराष्ट्र के पुत्रों से व्याप्त कौरवों की सेना के समान उल्लू, काले कौए(कोयल) तथा हंसों से भरी हुई थी।

जो उत्तम जाति से सुशोभित होते हुए भी निकृष्ट वंश वाली थी। (विरोध, परिहार) महासहा और मालती नाम के पुष्पों से सुशोभित पक्षियों से व्याप्त बाँसों वाली थी। अभय प्रदर्शित करने वाली होते हुए

भी विशेषरूप से भीषण प्रतीत होने वाली थी। (विरोध, परिहार) **हरीतकी के वृक्षों से युक्त, पक्षियों से भयंकर प्रतीत हो रही थी। निरन्तर हितकारी ओषधि युक्त होते हुए भी रोगों को बढ़ाने वाली थी।** (विरोध, परिहार) **निरन्तर हरीतकी वृक्षों वाली तथा बढ़ी हुई लताओं या झाड़ियों से युक्त थी।**

वह छः पैरों वाली होते हुए भी दो पैरों से रहित थी (विरोध, परिहार–) **भ्रमरों से भरी हुई वह हाथियों के मदजल से व्याप्त थी। वह ब्राह्मणों से अलंकृत होते हुए भी अकुलीन वंश वाली थी** (विरोध, परिहार–) **पक्षियों के समूह से सुशोभित तथा ऊँचे–ऊँचे बाँसों वाली थी।**

तब इसप्रकार की विशेषताओं से युक्त उस विन्ध्याटवी में उन्होंने प्रवेश किया और इसके बाद उन दोनों को निद्रा प्रदान करके, रात्रि ने भी प्रस्थान किया।

'चन्द्रिका'– उपर्युक्त अंश में कवि ने विन्ध्याटवी का उपमानों तथा श्लेष के माध्यम से आलंकारिक वर्णन किया है तथा मुख्यरूप से यहाँ मिलने वाले वृक्ष, लता, जीव–जन्तुओं का विस्तार से वर्णन करते हुए अपने पर्यावरण विषयक प्रेम तथा वनस्पति तथा जीव–विज्ञान विषयक नैपुण्य को भी प्रदर्शित किया है।

तदनुसार– यहाँ पर आक, कन्दमूल, श्रीफल, अर्जुन, सिन्धुवार, श्रीपर्ण, अशोक, पीतदारु, नागकेसर, हरीतकी, पिप्पली, बाँस, पलाश, कटहल, चन्दन, कुमुद, नरकुल, (नकुल), सिन्दूर, तिलक, आदि वृक्षों महासहा, मालती पुष्प वृक्ष तथा गुडुची, तिक्त लौकी लताओं, झाडियों, नदियों, हाथी, सिंह आदि पशुओं उल्लू, कौए, हंस आदि पक्षियों की उपस्थिति को दर्शाया है।

विशेष–(i) सम्पूर्ण विन्ध्याटवी वर्णन प्रसंग में कवि का वनस्पति एवं जीव–विज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) श्लेष, उपमा एवं विरोधाभास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है तथा इनके माध्यम से विन्ध्याटवी के वर्णन को आलंकारिक एवं चमत्कारिक बनाया गया है।

(iii) प्रकृति का मानवीकरण महाकवि सुबन्धु की बहुत बड़ी विशेषता रही है। उपर्युक्त अंश के अन्त में भी उन्होंने रात्रि का मानवीकरण करके इसे सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(iv) ज्योतिषी 'शूलपाल' को गणना विषयक कारिका का आविष्कारक बताया गया है। साथ ही कवि का गहन ज्योतिषीय ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) **द्व्यर्थक** पद– **अर्क**–सूर्य, वृक्ष विशेष। **मूल**–आदिपुरुष, जड़। **कौशिक**–इन्द्र, उल्लू। **श्रीफल**–धन, बिल्व वृक्ष। **अर्जुन**–व्यक्ति नाम, वृक्ष। **इन्द्राणी**–इन्द्र की पत्नी, सिन्धुवार वृक्ष। **गणिका**–वेश्या, गणना। **अशोक**–वृक्ष, शोकरहित। **पुन्नाग**–नागकेसर वृक्ष, सत्पुरुष। **धात्री**–माता, हरीतकी। **वैदेही**–सीता, पिप्पली वृक्ष। **अमृत**–गुडुची लता, अमर करने वाला द्रव पदार्थ। **इक्ष्वाकुवंश**–वंश विशेष, तिक्त लौकी और बांस। **अर्जुन**–वृक्ष विशेष, पात्र विशेष। **रूप**–पशु, रूप। **पनस, चन्दन, कुमुद, नल**–वानरों के नाम, कटहल, चन्दन, कुमुद, नरकुल वृक्ष। **तिलक**–बिन्दी, वृक्ष विशेष। **प्रवाल**–बरौनी, किसलय। **उलूकद्रोण–शकुनि**– योद्धाओं के नाम, उल्लू, कौआ आदि पक्षी। **धृत राष्ट्र**–व्यक्ति विशेष, हंस। **अम्लानजाति**–निर्दोष जाति, महासहा व मालती पुष्पवृक्ष। **विरुद्धवंश**–निकृष्ट कुल, पक्षियों से व्याप्त बाँस। **विभीषण**–विशेषरूप से भयंकर, पक्षियों (वि) से भयंकर। **पथ्य**–ओषधि, हरीतकी। **गुल्म**–रोग विशेष, लता। **षट्पद**–भ्रमर, छः पैर। **द्विपदान**–हाथियों का मदजल, दो पैर नहीं। **द्विज**–पक्षी, ब्राह्मण। **अकुलीनवंश**– ऊँचे बाँस, निकृष्ट कुल।

(प्रातःकालवर्णनम्)

अवतरणिका– विन्ध्याटवी में पहुँचकर वासवदत्ता तथा कन्दर्प-केतु दोनों को ही निद्रा आ गयी, जब उनकी निद्रा टूटी, तो प्रातः काल हो गया था, उसी का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(118) ततः क्रमेण कालकैवर्तेन तमिस्रानायं प्रक्षिप्य गगनमहासरसि सजीवशफरनिकर इवापह्रियमाणे तारागणे, सन्ध्यारक्तांशुके विषमप्ररूढबिसलताशरयन्त्रानुगतशतपत्रपुस्तकसनाथे, मकरन्दबिन्दुसन्दोहनिर्भरपानमत्तमधुकरसान्द्र-मंजुस्वनैः स्वधर्ममिव पठति। विकचकमलाकरभिक्षौ, कृषीव-लेनेव कालेन तिमिरबीजकरेष्विव मधुकरेषु मधुरसकर्दमित-परागपंकेषु घनघट्टमानदलपुटेषु कुमुदाकरक्षेत्रेषूप्यमानेषु, रजोमुर्मुरचूर्णसनाथमधुकरपटलधूमानुगतोद्दण्डपुण्डरीकव्या-जाद् धूपमिव भगवते किरणमालिने प्रयच्छन्त्यां कमलिनी-तापस्याम्........।

पदच्छेद– ततः क्रमेण काल–कैवर्तेन तमिस्रा–आनायम् प्रक्षिप्य गगन–महासरसि सजीव–शफर–निकरः इव अपह्रियमाणे तारागणे, सन्ध्या–रक्त–अंशुके विषम–प्ररूढ–बिस–लता–शर–यन्त्र–अनुगत–शत–पत्र–पुस्तक–सनाथे,मकरन्द–बिन्दु–सन्दोह–निर्भर–पान–मत्त–मधुकर–सान्द्र–मंजु–स्वनैः स्वधर्मम् इव पठति। विकच–कमलाकर–भिक्षौ, कृषीवलेन इव कालेन तिमिर–बीजकरेषु इव मधुकरेषु मधु–रस–कर्दमित–पराग–पंकेषु घन–घट्टमान–दल–पुटेषु कुमुद–आकर–क्षेत्रेषु उप्यमानेषु, रजोमुर्मुर–चूर्ण–सनाथ–मधुकर–पटल–धूम–अनुगत–उद्दण्ड-पुण्डरीक–व्याजाद् धूपम् इव भगवते किरण–मालिने प्रयच्छन्त्याम् कमलिनी–तापस्याम्........।

अनुवाद– उसके बाद मानो क्रमशः कालरूपी धीवर(रूपक) **आकाशरूपी महान् सरोवर में रात्रिरूपी जाल**(रूपक) **को प्रसारित**

करके, तारागणरूपी मछलियों (रूपक) के समूहों को तिरोहित(छिपाना) कर रहा था।

सन्ध्यारूपी लाल वस्त्र(रूपक) में लपेटी गयी, आपस में गुथी हुई किसलयरूपी घोड़ी पर रखी गयी, कमलरूपी सैंकड़ों पृष्ठों वाली पुस्तकों(रूपक) से, विकसित कमल–समूहरूपी संन्यासी(रूपक) पुष्परस के समूह का अत्यन्त पान करने से मतवाले भौंरों की मन्द मधुर गुंजारों के व्याज से अपने धर्म का पारायण कर रहे थे।

कालरूपी किसान(रूपक), पुष्परसरूपी जल (रूपक) से गीले परागरूपी कीचड़(रूपक) वाले तथा भलीप्रकार विकसित पंखुडियों वाले, कुमुद–सरोवररूपी खेत(रूपक) में मानो भ्रमररूपी अन्धकार(रूपक) के बीजों के समूह को बो रहा था(उत्प्रेक्षा)।

परागरूपी मुमुर चूर्ण(रूपक) से युक्त, भ्रमर–समूहरूपी धुएँ के समूह(रूपक) से व्याप्त ऊपर उठे हुए डण्ठलों वाले, लाल कमल के व्याज से भगवान् सूर्य के लिए कमलिनीरूपी तपस्विनी मानो (रूपक) धूप प्रदान कर रही थी (उत्प्रेक्षा)।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत गद्यांश में कवि ने (1) काल में धीवर की, आकाश में महान् सरोवर की, रात्रि में जाल की तारागण में मछलियों के समूहों की कल्पना करते हुए, कालरूपी धीवर द्वारा मछलियों को पकड़ने की बात कही है।

(2) इसीप्रकार दूसरी कल्पना के अन्तर्गत सन्ध्या में लाल वस्त्र का, आपस में गुथे हुए किसलयों में घोड़ी का, कमलों में सैंकड़ों पृष्ठों वाली पुस्तकों का, विकसित कमल–समूहों में संन्यासियों द्वारा पुष्परस के समूह का, अत्यन्त पान करने से मतवाले भौंरों की मन्द मधुर गुंजारों में धर्म के पारायण का मनभावन चिन्तन प्रस्तुत किया है।

अर्थात् जैसे लाल वस्त्र में लपेटी गयी सैंकड़ों पृष्ठों वाली पुस्तक से संन्यासी लोग मन्द मधुर स्वर से धर्म का पारायण करते हैं,

वैसे ही विकसित कमलों के समूहरूपी संन्यासी भ्रमरों के गुंजार के बहाने से धर्म का पारायण कर रहे हैं।

(3) तृतीय कल्पना के अन्तर्गत काल में किसान, पुष्परस में जल का, पराग में कीचड़ का तथा भलीप्रकार विकसित पंखुडियों वाले, कुमुदों के सरोवर में खेत का, भ्रमरों में अन्धकार के बीजों के समूह का आरोप करते हुए उन्हें बोने की बात कही गयी है।

(4) इसीप्रकार चतुर्थ कल्पना में पराग में मुमुर चूर्ण का, भ्रमरों के समूह में धुएँ के समूह का, ऊपर को उठे हुए डण्ठलों वाले लाल कमल में भगवान् सूर्य का तथा कमलिनी में तपस्विनी का आरोप करते हुए उसके द्वारा धूप प्रदान करने का उल्लेख किया गया है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्य में उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों का अद्भुत सौन्दर्य तथा कवि की कल्पनाशक्ति दोनों ही दर्शनीय है।

(ii) यहाँ धीवर, संन्यासी, किसान तथा तपस्विनी के रूपक द्वारा सूर्यादय से पूर्व आकाशीय नक्षत्रों का मनमोहक चित्रण किया गया है। प्रकृति के तत्त्वों का मानवीकरण प्रशंसनीय है।

(iii) उपर्युक्त अंश में कवि का कृषि–विषयक ज्ञान भी अभिव्यंजित हो रहा है।

अवतरणिका– रात्रिकालीन नक्षत्रों के सौन्दर्य का वर्णन करने के पश्चात् महाकवि प्रातःकाल के समय चन्द्रमा के अस्त होने की स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(119) रजनीवधूकरद्वयोच्छलितपतत्प्रभातमुसलाहति-क्षतान्तरे उलूखल इव चन्द्रमण्डले कण्डनविकीर्णेषु तण्डुलेष्विव तारागणेषु उन्मीलत्सु, सन्ध्याताम्रमुखेन वासर-वानरेण नभस्तरुमारोहता शाखाभ्य इव कम्पिताभ्यो दिग्भ्यो विकचप्रसूननिकर इव तारागणे फल इवेन्दुमण्डले च पतति, तारागणशालितण्डुलशबलनभोंऽगणं स्फुरदरुणकिरणचूडा-चक्रचारुवदने वासरकृकवाकौ चरितुमवतरति, मत्संगमा–

दतिप्रवृद्धो वारुणीसंगमाद् द्विजपतिरेष पततीति हसन्त्या-मिवाखण्डलाशायाम्............ ।

पदच्छेद–रजनी–वधू–कर–द्वय–उच्छलित–पतत् प्रभात–मुसल -आहति–क्षत–अन्तरे उलूखल इव चन्द्रमण्डले कण्डन–विकीर्णेषु तण्डुलेषु इव तारागणेषु उन्मीलत्सु, सन्ध्या–ताम्र–मुखेन वासर–वानरेण नभः–तरुम् आरोहता–शाखाभ्यः इव कम्पिताभ्यः दिग्भ्यः विकच–प्रसून–निकरः इव तारागणे फले इव इन्दुमण्डले च पतति, तारा-गण–शालि–तण्डुल–शबल–नभः–अंगणम् स्फुरद् अरुण–किरण–चूडा-चक्र–चारुवदने वासर–कृकवाकौ चरितुम् अवतरति, मत्संगमात् अति-प्रवृद्धः वारुणी–संगमाद् द्विजपतिः एष पतति, इति हसन्त्याम् इव आखण्डल–आशायाम्............ ।

अनुवाद– उस समय मानो रात्रिरूपी वधू (रूपक)के दोनों हाथों से ऊपर–नीचे चलाए जाते हुए, प्रभातरूपी मूसल (रूपक)के आघात से टूटे हुए मध्यभाग वाली ओखली के समान चन्द्रमण्डल में कूटने से फैले हुए चावलों के समान, तारों का समूह प्रकाशित हो रहा था।

मानो सन्ध्या के कारण लाल मुख वाले दिनरूपी वानरों (रूपक) द्वारा आकाशरूपी वृक्ष (रूपक) पर आरूढ़ होकर प्रकम्पित शाखाओं रूपी दिशाओं में खिले हुए पुष्पों के समान तारागणों को तथा फल के समान चन्द्रमण्डल को नीचे गिराया जा रहा था।

मानो तारागणरूपी धान (रूपक) के चावलों से व्याप्त हुए आकाशरूपी आँगन (रूपक) में चमकते हुए सूर्यरूपी शिखाओं (रूपक) से सुन्दर मुख वाला, दिनरूपी कुक्कुट (रूपक) उतर रहा था।

इसीप्रकार मेरे साथ अत्यधिक उन्नति को प्राप्त होकर, यह चन्द्रमा, पश्चिम दिशारूपी मदिरा (रूपक) से साथ में नीचे गिर रहा है, ऐसा विचार कर मानो पूर्वदिशा, चन्द्रमा का उपहास कर रही थी।

'चन्द्रिका'– यहाँ पर रात्रि में वधू का, प्रभात में मूसल का, चन्द्र–मण्डल में ओखली का तथा तारों में चावलों का, दिन में बन्दरों

का, आकाश में वृक्ष एवं आंगण का, दिशाओं में शाखाओं का, तारागण में पुष्पसमूह तथा धान के चावलों का तथा चन्द्रमा में फल का, दिन में मुर्गे का व सूर्य में शिखाओं का, पश्चिम दिशा में मदिरा का, पूर्व दिशा में नायिका का, चन्द्रमा में नायक का आरोप करते हुए अर्थ करना होगा।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में महाकवि सुबन्धु ने पूर्वदिशा का मानवीकरण करते हुए सुन्दर परिकल्पना के साथ भावाभिव्यक्ति की है।

(सूर्योदयवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार चन्द्रमा के अस्त होने पर सूर्योदय का वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(120) अरुणकेसरिकराघातनिहतान्धकारकरीन्द्र-रुधिरधाराभिरिव, उदयगिरिशिखरनिर्झरधौतधातुधाराभिरिव, त्वंगत्तुरंगखरखुरपाटितपद्मरागच्छटाभिरिव, उदयाचलकूट-कोटिप्ररूढजपाकुसुमकान्तिभिरिव, पूर्वगिरिकेसरिकरतला-हतमत्तमातंगोत्तमांगविगलदसृग्धाराप्रसारिणीभिरिव त्रिभुवन-कार्यसम्पादनानुरागरसैरिव रक्तमण्डले.......।

पदच्छेद–अरुण–केसरि–कर–आघात–निहत–अन्धकार–करीन्द्र –रुधिर–धाराभिः इव, उदय–गिरि–शिखर–निर्झर–धौत–धातु– धाराभिः इव, त्वंगत् तुरंग–खर–खुर–पाटित–पद्मराग–छटाभिः इव, उदयाचल–कूट–कोटि–प्ररूढ–जपा–कुसुम–कान्तिभिः इव, पूर्व–गिरि–केसरि–कर–तल–आहत–मत्तमातंग–उत्तमांग–विगलद् असृक्–धारा–प्रसारिणीभिः इव त्रिभुवन–कार्य–सम्पादन–अनुराग–रसैः इव रक्त–मण्डले.......। (उत्प्रेक्षा)

अनुवाद– उस समय उदित होता हुआ सूर्य, मानो आकाशरूपी सिंह (रूपक) के पँजों (हाथों) के प्रहार से मरे हुए अन्धकाररूपी गजराज (रूपक) की रक्त धाराओं से उदयाचल के शिखर पर बहते हुए झरनों से धुली हुई लाल धातुओं की धाराओं के समान, मानो चंचल घोड़ों के तीक्ष्ण खुरों से उखड़ी हुई पद्मराग मणियों की कान्ति

के समान, उदयाचल की चोटी पर उगे हुए जपा पुष्पों की कान्ति के समान, उदयपर्वतरूपी सिंह (रूपक) के पँजों से आहत मतवाले हाथी के मस्तक से टपकती हुई रक्त की धारा के प्रवाहों के माध्यम से, तीनों लोकों को प्रकाशित करने रूप कार्य को सम्पादित करने के लिए अनुरागरूपी रसों (रूपक) से मानो लाल मण्डल वाला हो रहा था। (रूपक, उत्प्रेक्षा)

'चन्द्रिका'– प्रातःकाल में सूर्योदय के अवसर पर उसके लालिमा युक्त मण्डल में कवि अनेक प्रकार से मनोरम सम्भावनाओं की परिकल्पना करता है, जिनमें वह सूर्य के सारथि अरुणरूपी सिंह के पंजे के प्रहार से मरे हुए अन्धकाररूपी हाथी के रक्त की धाराओं के समान लाल मण्डल वाली, उदय पर्वत की चोटियों से बहते हुए झरनों से धुली हुई गेरु आदि धातुओं से लाल धाराओं वाली, दिनभर की यात्रा को पूरा करने के लिए चलने के लिए उत्कण्ठित घोड़ों के खुरों से उखाड़ी गयी पद्मराग की मणियों की कान्ति के समान, उदयाचल के शिखर पर उगे हुए जपा पुष्पों की चमक वाली, उदयाचलरूपी सिंह के पंजों के प्रहार से मतवाले हाथियों के मस्तक से बहती हुई रक्त की धारा के समान प्रवाह से युक्त, तीनों लोकों को आलोकित करने रूप श्रेष्ठ कार्य को सम्पन्न करने के प्रेमरूप रसों के द्वारा इस सूर्य मण्डल लाल होने की रमणीय कल्पनाएँ की गयी हैं।

विशेष–(i) सूर्योदय में उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रस्तुत की गयी कल्पना की उत्कृष्टता अभिव्यक्त हुई है।

(ii) सूर्य के प्रातःकालिक लालिमा–मण्डल में की गयी विशेष रूप से उदयाचल के विषय में कवि की कल्पना, वस्तुतः उनके उर्वर एवं मनोरम चिन्तन को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

अवतरणिका–इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(121) **ताराकुमुदवनग्रहणाय प्रसारितहस्त इव कुंकुमारुणैः किरणैः, कनकदर्पण इव प्राचीविलासिन्याः,**

पूर्वाचलभोगीन्द्रफणामणौ गगनेन्द्रनीलतरुकनककिसलये, नभोनगरप्राग्द्वारकनकपूर्णकुम्भे तप्तलोहकुम्भाकारे, प्राची-कुमारीललाटतटघटितकुंकुमतिलकबिन्दौ, सन्ध्यावाललतैककुसुमे, मंजिष्ठारक्तपट्टसूत्रपिण्डसदृशे, सन्ध्यारुणसूत्र-प्रथितप्राचीवधूकांचीकांचनदीनारचक्र इव, वासरविद्याधर-सिद्धगुलिक इव.......।

पदच्छेद– तारा–कुमुदवन–ग्रहणाय प्रसारित–हस्तः इव कुंकुम–अरुणैः किरणैः, कनक–दर्पणः इव प्राची–विलासिन्याः, पूर्वाचल–भोगीन्द्र–फणा–मणौ गगनेन्द्र–नील–तरु–कनक–किसलये, नभः–नगर–प्राक् द्वार–कनक–पूर्ण–कुम्भे तप्त–लोह–कुम्भ–आकारे, प्राची–कुमारी–ललाट–तट–घटित–कुंकुम–तिलक–बिन्दौ, सन्ध्या–वाल–लता–एक–कुसुमे, मंजिष्ठा–रक्त–पट्ट–सूत्र–पिण्ड–सदृशे, सन्ध्या–अरुण–सूत्र–प्रथित–प्राची–वधू–कांची–कांचन–दीनार–चक्रः इव, वासर–विद्याधर–सिद्ध–गुलिकः इव.......।

अनुवाद– उस समय अपनी कुमकुम के समान लाल किरणों के माध्यम से सूर्य मानो तारोंरूपी कुमुदों के समूह को पकड़ने के लिए हाथ फैलाए हुए था। (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा) मानो वह पूर्व दिशारूपी रमणी का स्वर्ण द्वारा बनाया गया दर्पण हो। (रूपक, उत्प्रेक्षा) मानो उदयाचलरूपी नागराज के फण की मणि हो। (रूपक, उत्प्रेक्षा) मानो आकाशरूपी इन्द्रनील वृक्ष का स्वर्णनिर्मित किसलय हो। (रूपक, उत्प्रेक्षा) मानो आकाशरूपी नगर के पूर्वी द्वार पर स्थापित किया हुआ स्वर्ण कलश हो। मानो तप्त लोहे का कलश हो। (उत्प्रेक्षा)

मानो पूर्व दिशारूपी कुमारी के मस्तक पर बनाया गया कुंकुम का तिलक रूप बिन्दु हो (रूपक, उत्प्रेक्षा)। मानो सन्ध्यारूपी बाललता का एक पुष्प हो (रूपक, उत्प्रेक्षा)। मानो मंजीठे से रंगे हुए लाल वस्त्र के सूत का गोला हो (उत्प्रेक्षा), मानो सन्ध्यारूपी लाल सूत में गूथा हुआ सन्ध्य रूपी वधू की करधनी की स्वर्ण द्वारा बनायी गयी मोहर हो

(रूपक, उत्प्रेक्षा)। **मानो दिनरूपी विद्याधर की सिद्ध की गयी गोली (गुलिका) हो** (रूपक, उत्प्रेक्षा)......

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने आकाश के तारों में कुमुदवन का, सूर्य की किरणों में हाथों का, पूर्व दिशा में रमणी का, कुमारी का, उदयाचल में सर्पराज का, आकाश में इन्द्रनील वृक्ष का, नगर का, दिन में विद्याधर का, प्रातःकालिक सन्ध्या में वधु का तलस्पर्शी आरोप करके प्रातःकाल के सूर्य की लालिमा का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

साथ ही, यहाँ सूर्य के लाल गोले में भी मनोरम कल्पनाओं को चित्रित किया है। **जैसे–** मानो वह स्वर्णरूपी दर्पण हो, सर्पराज के फण की लालमणि हो, वृक्ष का स्वर्णमय किसलय हो, स्वर्ण से भरा हुआ कलश हो या अग्नि में तपे हुए लोहे का कलश हो, कुमकुम का तिलक हो, बाललता का लाल पुष्प हो, लाल रंग में रंगा हुए सूत का गोला हो, मेखला की सोने से बनी मोहर हो, विद्याधर की सिद्ध गुलिका हो, इसप्रकार की विशेषताओं वाला वह सूर्य कुमकुम के समान लाल किरणोंरूपी अपने हाथों को फैलाकर तारोंरूपी कुमुदों के वन को पकडने का प्रयास कर रहा था।

विशेष–(1) प्रस्तुत गद्यखण्ड में कवि ने सूर्य का मनमोहक मानवीकरण किया है।

अवतरणिका– इसप्रकार सूर्योदय की अनेक सुन्दर कल्पनाओं को प्रस्तुत करने के बाद, महाकवि फिर से कहते हैं कि–

(122)कुमार इव संहृततारके, पद्मनाभ इवोल्ल–सितपद्मे, अध्वग इव छायाप्रिये, शक्र इव गोपतौ, उदय–गिरिधातुरागारुणदिग्गजपादतलानुकारिणि विभावरीतिमिर–तस्करे, भगवति भास्करे उदयमारोहति, मांजिष्ठचामर इव दिग्गजेषु, महाभारतसमरभूमिरुधिरोद्गार इव कुरुक्षेत्रेषु, सुरधनुः कान्तिविलेप इव जलदच्छेदेषु, काषायपट इव शाक्याश्रमशाखिशाखासु, कौसुम्भराग इव ध्वजपटपल्लवेषु,

फलपाक इव कर्कन्धूषु, कुंकुमरस इव व्योममहासौधांगणे, संचरदरुणयवनिकापट इव कालनर्तकस्य, बालप्रवाल-भंगारुणे प्रसरति बालातपे.......... ।

पदच्छेद– कुमारः इव संहृत–तारके, पद्मनाभः इव उल्लसित–पद्मे, अध्वगः इव छाया–प्रिये, शक्रः इव गोपतौ, उदयगिरि–धातु–राग–अरुण–दिग्गज–पाद–तल–अनुकारिणि विभावरी–तिमिर–तस्करे, भग-वति भास्करे उदयम् आरोहति, मांजिष्ठ–चामरः इव दिग्गजेषु, महाभारत–समर–भूमि–रुधिर–उद्गारः इव कुरुक्षेत्रेषु, सुरधनुः कान्ति-विलेपः इव जलद–छेदेषु, काषाय–पटः इव शाक्य–आश्रम– शाखि-शाखासु, कौसुम्भरागः इव ध्वजपट–पल्लवेषु, फलपाकः इव कर्कन्धूषु, कुंकुमरसः इव व्योम–महा–सौध–अंगणे, संचरद्–अरुण–यवनिका–पटः इव कालनर्तकस्य, बाल–प्रवाल–भंग–अरुणे प्रसरति बालातपे.......... ।

अनुवाद– उस समय वह सूर्य तारकासुर का संहार करने वाले कार्तिकेय के समान (उपमा) तारों का संहार कर रहा था। लक्ष्मी को आनन्दित करने वाले विष्णु के समान (उपमा) कमलों को विकसित कर रहा था। वृक्षों की छाया से प्रेम करने वाले पथिक के समान(उपमा), अपनी पत्नी 'छाया' से प्रेम कर रहा था। स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के समान (उपमा) किरणों का स्वामी था। उदयाचल पर स्थित गेरु आदि धातुओं की लालिमा के द्वारा लाल हुए दिग्गजों के पादतलों का अनुकरण कर रहा था।

इसप्रकार रात्रि के अन्धकार को चुराने वाले, भगवान् भास्कर के उदयाचल पर आरोहण करने पर, उस समय दिग्गजों के मंजीठे के रंग के चामर के समान(उपमा), कुरुक्षेत्र में महाभारत की युद्धभूमि से निकले हुए रक्त के फव्वारे के समान(उपमा), मेघखण्डों के इन्द्रधनुष की शोभा वाले लेप के समान(उपमा), आश्रमों के वृक्षों की शाखाओं पर सूखने के लिए बौद्धों द्वारा डाले गए लाल वस्त्रों के समान(उपमा), पताका के वस्त्ररूपी पल्लवों पर केसर के राग के समान(उपमा), पके

हुए बेर के फलों के समान(उपमा), **आकाशरूपी आँगन के कुंकुम रस के समान**(रूपक, उपमा), **कालरूपी नर्तक के विचरण करते हुए लाल यवनिका के वस्त्र के समान** (रूपक, उपमा) **तथा कटी हुई नयी कोपल के समान**(उपमा) **प्रातःकालीन धूप** (बालातप) **फैल रही थी।**

'चन्द्रिका'– यहाँ सूर्य की उपमा कार्तिकेय से देते हुए उसे तारकासुररूपी तारों का संहार करने वाला एवं लक्ष्मी को आनन्द प्रदान करने वाला विष्णु कहा है, जो लक्ष्मी के निवास स्थान कमलों को विकसित कर रहा था।

उसे छाया[1] नामक पत्नी का स्वामी ऐसा पथिक बताया है, जो धूप से संतप्त होकर छाया से प्रेम करता है। किरणों (गो) के स्वामी उसे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के समान बताया है। उदयाचल पर स्थित गेरु आदि लाल धातुओं से जिनके पैरों के तलवे लाल हो गए हैं, ऐसे दिशाओं की रक्षा करने वाले दिग्गज हाथियों के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उदित होने वाले भगवान् सूर्य को यहाँ अन्धकार को चुराने वाला कहा गया है।

इसके बाद प्रातःकालीन धूप के विषय में कवि कल्पना करते हैं कि– यह मानो दिशाओं की रक्षा करने वाले हाथियों के मंजिष्ठा रंग में रंगा हुआ चामर हो, महाभारत काल में कुरुक्षेत्र की भूमि से निकला हुआ रक्त का प्रवाह हो, मेघ के खण्डों पर मानो इन्द्रधनुष की कान्ति का लेप कर दिया हो, मानो बौद्धों के आश्रमों के वृक्षों की शाखाओं पर सूखाने के लिए डाले गए कषाय रंग में रंगे हुए वस्त्र हों।

ध्वजा के वस्त्ररूपी पल्लव को मानो केसर के रंग से रंग दिया गया हो। पका हुआ बेर का फल हो, आकाशरूपी आंगन में बिखेरा हुआ कुमकुम का रस हो, कालरूपी नर्तक का चलता–फिरता लाल यवनिका का वस्त्र हो, नई–नई काटी गयी कोपल हो।

---

[1] सूर्य–पत्नी 'छाया' के विस्तार के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

विशेष–(i) प्रातःकालीन सूर्य तथा उसकी लालिमा युक्त धूप के विषय में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा के माध्यम से सुन्दर भावाभिव्यक्ति की गयी है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **पद्मा**–लक्ष्मी, कमलिनी। **छाया**–सूर्य पत्नी, छाया। **गो**–किरण, स्वर्ग, पृथ्वी।

(iii) विशेषरूप से ग्रीष्म ऋतु में मार्ग में चलते हुए पथिक को छाया अत्यधिक प्रिय लगती है। इसलिए कवि इस उपमान के विषय में पथिक के मनोविज्ञान से भी सुपरिचित रहा है।

अवतरणिका–इसीप्रकार के सुरम्य वातावरण में नायक कन्दर्प-केतु के गहरी निद्रा में सोने की बात का कथन करते हुए महाकवि तात्कालिक रमणीय वातावरण का चित्र प्रस्तुत करते हैं–

(123) **क्षणेन च चाटुचटुलचक्रवाकहृदयशोक-सन्तापहरणादिव दहनसमर्पिततेजः प्रवेशादिव दिननाथ-कान्तोपलसंगादिव उष्णिमानमुष्णरश्मेराश्रयति रश्मिसंचये कन्दर्पकेतुः सर्वरात्रजागरणपरवशाहारशून्यशरीरतया निश्चे-तनोऽनेकयोजनशताध्वभ्रमणखिन्नो वासवदत्तयाप्येवंविधया सह लतागृहे मन्दमारुतान्दोलितकुसुमपरिमललुब्धामुग्ध-परिभ्रमद् भ्रमरझंकारमनोहरे तत्कालागतया निद्रया गृहीतो निस्पन्दकरणग्रामः सुष्वाप।**

पदच्छेद– क्षणेन च चाटु–चटुल–चक्रवाक–हृदय–शोक–सन्ताप –हरणात् इव, दहन–समर्पित–तेजः प्रवेशात् इव, दिननाथ-कान्तोपल–संगात् इव, उष्णिमानम् उष्णरश्मेः आश्रयति रश्मिसंचये, कन्दर्पकेतुः सर्व–रात्र–जागरण–परवश–आहार–शून्य– शरीरतया निश्चेतनः अनेक–योजन–शत–अध्व–भ्रमण–खिन्नः, वासवदत्तया अपि एवम् विधया सह लतागृहे मन्दमारुता आन्दोलित– कुसुम–परिमल-लुब्ध–आमुग्ध–परिभ्रमत् भ्रमर–झंकार–मनोहरे तत्काल–आगतया निद्रया गृहीतः निस्पन्द–करण–ग्रामः सुष्वाप।

अनुवाद– उसी क्षण मानो प्रियवचनों द्वारा चक्रवाक के हृदय के शोकरूपी सन्ताप को हरण करने से, मानो सायंकाल में ही अग्नि को सौंपे गए, अपने तेज[1] के फिर से प्रवेश करने से, मानो सूर्यकान्त मणि के सान्निध्य से सूर्य की उष्णता को प्राप्त करने वाली किरणों के फैलने पर कन्दर्पकेतु, सम्पूर्ण रात्रि भर जागने तथा भोजन ग्रहण न करने से दुर्बल हुए शरीर वाला होने तथा अनेक सैकडों कोस मार्ग के चलने से थके होने से (खिन्न) निश्चेतन होकर, मन्दपवन द्वारा हिलते हुए पुष्पों की सुगन्ध के लोभी इधर–उधर मँडराते हुए, मतवाले भौंरों की गुंजार से मनोहर लतामण्डप में उसी क्षण आयी हुई निद्रा का आश्रय बना लिए जाने पर निश्चेष्ट इन्द्रियसमूह के साथ सो गया।

'चन्द्रिका'– सर्वप्रथम यहाँ कवि नायक की थकान के कारणों का उल्लेख करता है, जिसके कारण वह गहरी निद्रा में निश्चेष्ट इन्द्रियों वाला होकर सो गया। (1) मानो यह कन्दर्पकेतु रातभर अपने प्रिय वचनों द्वारा विलग हुए चक्रवाक[2] के शोक से संतप्त हृदय को सांत्वना देता रहा हो। कुछ भी न खाने–पीने से शरीर के दुर्बल होने के कारण, सैंकड़ों कोस का मार्ग निरन्तर पार करने के कारण कन्दर्पकेतु थकी हुई वासवदत्ता के साथ अत्यधिक थका होने से मानो सूर्यकान्त मणि के सान्निध्य से सूर्य की उष्णता को प्राप्त करने वाली किरणों के चारों ओर फैलने पर, धीमी–धीमी वायु द्वारा हिलाए जाते हुए पुष्पों की सुगन्ध के लोभी भौंरों की मधुर गुँजाररूपी संगीत से लताकुँज में तुरन्त आयी हुई, निद्रारूपी प्रिया का आश्रय बनाकर सभी इन्द्रियों के निश्चेष्ट होने के कारण सो गया।

---

[1]. शास्त्रीय मान्यता के अनुसार रात्रिकाल में सूर्य अपना तेज अग्नि को समर्पित कर देता है।

[2]. चक्रवाक पक्षी महाकवि को अत्यधिक प्रिय है। यही कारण है कि इस काव्य में पद–पद उन्होंने इसकी उपमान आदि के रूप में चर्चा की है। इसकी विशेषता है कि यह रात्रि में अपनी प्रिया से चकवी से अलग हो जाता है और ये दोनों एक दूसरे को पुकारते रहते हैं, प्रातः होने पर ही इनका मिलन होता है।

विशेष–(i) भौंरों की गुँजार ने यहाँ मधुर संगीत का काम किया है, जिसके कारण थका हुआ नायक शीघ्र ही निद्रा के आगोश में समा गया है, निद्रा का मानवीकरण भी हुआ है।

(ii)'निश्चेष्ट इन्द्रिय समूह' से अभिप्राय 'अत्यधिक गहन निद्रा' से ग्रहण करना चाहिए।

(कन्दर्पकेतुविलापवर्णनम्)

अवतरणिका– तब दोपहर होने के बाद निद्रा के टूटने पर अपने पास में प्रियतमा वासवदत्ता को न पाकर, नायक कन्दर्पकेतु की शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही स्थितियों का चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(124) ततो वाणिजीव प्रसारिताम्बरे, महादावानल इव सक– लकाष्ठोद्दीपिनि, कल्पवृक्ष इव सर्वाशाप्रसाधके, पतंगमण्डले मध्यं नभःस्थलमारूढे, कन्दर्पकेतुः प्रबुद्धः, प्रियया विना कृतं लतागृहमवलोक्य उत्थाय च तत इतो दत्तदृष्टिः, क्षणं विटपिषु, क्षणं लतान्तरेषु, क्षणमधः कूपेषु, क्षणमूर्ध्वं तरुशिखरेषु, क्षणं शुष्कपर्णराशिषु, क्षणमाकाशतले, क्षणं दिक्षु, क्षणं विदिक्षु च भ्रमन्ननवरतविरहानलदह्यमान– हृदयो विललाप।

हा प्रिये! वासवदत्ते! देहि मे दर्शनम्। कृतं परिहासेन। अन्तर्हिताऽसि। त्वत्कृते यानि दुःखान्यनुभूतानि तेषां त्वमेव प्रमाणम्। हा प्रियसखे! मकरन्द! पश्य मे दैवदुर्विलसितम्। किं पूर्वं मया कृतमनवदातं कर्म। अहो, दुर्विपाका नियतिः। अहो, दूरतिक्रमा कालगतिः।

अहो, ग्रहाणामतिकटुकटाक्षपातनम्। अहो, विसदृश– फलता गुरुजनाशिषाम्, अहो, दुः स्वप्नानां दुर्निमित्तानांच फलम्। सर्वथा न किंचिदगोचरो भवितव्यतानाम्। किं न सम्यगागमिता विद्याः। किं यथावदनाराधिता गुरवः। किं

नोपासिता वह्नयः। किं नामाधिक्षिप्ता भूदेवाः। किं न प्रदक्षिणीकृताः सुरभयः। किं न कृतं शरणागतेष्वभयम्।

पदच्छेद– ततः वाणिजि इव प्रसारित–अम्बरे, महादावानले इव सकल–काष्ठ–उद्दीपिनि, कल्पवृक्षे इव सर्व–आशा–प्रसाधके, पतंगमण्डले मध्यम् नभःस्थलम् आरूढे, कन्दर्पकेतुः प्रबुद्धः, प्रियया विना कृतम् लता–गृहम् अवलोक्य उत्थाय च, ततः इतः दत्तदृष्टिः, क्षणम् विटपिषु, क्षणम् लता–अन्तरेषु, क्षणम् अधः कूपेषु, क्षणम् उर्ध्वम् तरु–शिखरेषु, क्षणम् शुष्क–पर्ण–राशिषु, क्षणम् आकाशतले, क्षणम् दिक्षु, क्षणम् विदिक्षु च भ्रमन् अनवरत–विरह–अनल–दह्यमान–हृदयः विललाप।

हा प्रिये! वासवदत्ते! देहि मे दर्शनम्। कृतम् परिहासेन। अन्तर्हिता असि। त्वत् कृते यानि दुःखानि अनुभूतानि तेषाम् त्वम् एव प्रमाणम्। हा प्रियसखे! मकरन्द! पश्य मे दैवदुर्विलसितम्। किम् पूर्वम् मया कृतम्, अनवदातम् कर्म। अहो, दुर्विपाकाः नियतिः। अहो, दूरतिक्रमा कालगतिः।

अहो, ग्रहाणाम् अति–कटु–कटाक्ष–पातनम्। अहो, विसदृश–फलता गुरुजन–आशिषाम्, अहो, दुःस्वप्नानाम् दुर्निमित्तानाम् च फलम्। सर्वथा न किंचित् अगोचरः भवितव्यतानाम्। किम् न सम्यक् आगमिताः विद्याः। किम् यथावत् अनाराधिता गुरवः। किम् न उपासिता वह्नयः। किम् नाम अधिक्षिप्ताः भूदेवाः। किम् न प्रदक्षिणीकृताः सुरभयः। किम् न कृतम् शरणागतेषु अभयम्।

अनुवाद– उसके बाद ग्राहकों के लिए वस्त्रों को फैला देने वाले वणिक् के समान(उपमा), आकाश को विस्तार देने वाले, सभी प्रकार की लकड़ियों को जला डालने वाले अग्नि के समान(उपमा), सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, सभी दिशाओं को अलंकृत करने वाले सूर्यमण्डल के आकाश के बीच में आरूढ़ होने पर,

जगा हुआ कन्दर्पकेतु प्रिया से शून्य लतागृह को देखकर और उठकर, इधर–उधर दृष्टि दौड़ाकर, क्षणभर के लिए झाडियों में, कुछ

देर लताओं के मध्य, कुछ क्षण के लिए नीचे कुओं में, क्षणभर के लिए ऊपर वृक्षों की शिखरों पर, क्षणभर सूखे पत्तों के ढेर में, कुछ देर आकाशपटल पर, क्षणभर के लिए दिशा–प्रदिशाओं में दृष्टि डालकर, घूमता हुआ निरन्तर विरह की अग्नि में जलते हुए हृदय वाला होकर विलाप करने लगा–

हा प्रिये! हा वासवदत्ते! मुझे दर्शन दो, इस परिहास से बस करो, तुम छिप गयी हो, मैंने तुम्हारे लिए जिन दुःखों को सहन किया है, उनमें तुम ही प्रमाण हो।

हा प्रिय मित्र मकरन्द! मेरे भाग्य का दुष्ट खेल देखो, मैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौन सा पाप किया था? जो यह भाग्य विपरीत फल देने वाला हो गया है, अहो! भाग्य का यह कैसा दुष्परिणाम है? अहो! भाग्य की गति वास्तव में अनुल्लंघनीय है, हाय, यह तो ग्रहों का तिरछा दृष्टिपात ही है।

अहो, गुरुजनों के आशीर्वादों की यह विपरीत फलता ही है, अहो, यह दुःस्वप्नों तथा अपशकुनों का ही फल है, वस्तुतः भवितव्यता के लिए कुछ भी पूर्णरूप से अज्ञात नहीं है।

क्या मेरे द्वारा विद्याओं को ठीक प्रकार से नहीं पढ़ा गया? क्या गुरुजन भलीप्रकार पूजित नहीं हुए? क्या अग्नियों की आराधना ठीक से नहीं की गयी? क्या मेरे द्वारा भूदेवों (ब्राह्मणों) का तिरस्कार किया गया है? क्या गायों (सुरभि) की प्रदक्षिणा नहीं की गयी? क्या शरण में आए हुए लोगों को भयरहित नहीं किया गया?

'चन्द्रिका'– उसके बाद सूर्य के आकाश के मध्यभाग में आरूढ़ होने पर कन्दर्पकेतु की निद्रा भंग हुई, तो उसने अपने पास में वासवदत्ता को न पाकर इधर–उधर खोजना आरम्भ किया और अत्यधिक खोजने पर भी जब वह नहीं मिली तो वियोग के भय से अनेक प्रकार से प्रलाप करने लगा, जिसका कवि ने यहाँ हृदयद्रावक प्रस्तुतीकरण किया है।

आरम्भ में सप्तमी विभक्ति एक वचन में पतंगमण्डल अर्थात् सूर्यमण्डल के विशेषणों का उपमा के माध्यम से प्रयोग किया है, जिसे सूर्य की आकाश में चारो ओर फैली हुई धूप अर्थात् किरणें ग्राहकों को बेचने के लिए वणिक् द्वारा फैलाए गए वस्त्रों के समान प्रतीत हो रही थी। सभी प्रकार के काष्ठों को जला डालने वाले महान् दावानल के समान दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाली थी, सभी आकांक्षाओं को पूरा करने वाले कल्पवृक्ष के समान सम्पूर्ण दिशाओं को सुशोभित करने वाले सूर्यमण्डल के इसप्रकार आकाश के मध्य में चढ़ जाने पर अर्थात् मध्याह्न होने पर कन्दर्पकेतु जाग गया।

उठने के बाद उसने लतागृह को अपनी प्रिया से रहित देखा, तब सर्वप्रथम उसे इधर-उधर खोजा, न मिलने पर वृक्षों तथा उनके शिखरों, लताओं, कुओं, सूखे पत्तों के झुण्डों, आकाश में, सभी दिशाओं एवं उपदिशाओं मे खोजा तथा न मिलने पर निरन्तर उसके विरह की अग्नि में दग्ध होता हुआ संतप्त हृदय से विलाप करने लगा।

शेष स्पष्ट है, जिसमें उसने दूसरी अनेक सम्भावनाओं को प्रदर्शित करते हुए अपने दुष्कर्मों, भाग्यों, काल की गति, ग्रहों, दुःस्वप्नों आदि अनेक कारणों को ही सम्भावना रूप में इस वियोगरूप भयानक कष्ट का मुख्य कारण माना है

विशेष-(i) उपर्युक्त अंश में महाकवि के ग्रहों से जुड़े हुए ज्योतिष सम्बन्धी भाग्यवादी दृष्टिकोण की तलस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) उपमा एवं श्लेष अलंकार के माध्यम से सुन्दर भावाभि-व्यक्ति हुई है।

(iii) वासवदत्ता के वियोग में कन्दर्पकेतु के हृदयद्रावक विलाप में करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(iv)**द्व्यर्थक** पद-**अम्बर**- वस्त्र,आकाश। **काष्ठ**-दिशा, लकड़ी। **आशा**-दिशा, उम्मीद।

(वनमार्गवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार अनेक प्रकार से विलाप करने वाले कन्दर्पकेतु का चित्रण करने के बाद महाकवि, प्राण त्यागने की इच्छा से दक्षिण दिशा के वन में प्रस्थान करने पर वनमार्ग में स्थित प्रकृति का मनभावन चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(125) इति बहुविधं विलपन्, मरणेच्छुर्दक्षिणेन काननं निर्गत्य, नव्यनडनलदनलिनीनिचुलपिचुलवंजुलसरलविदु–लवकुलचिरबिल्वबहुलेन, प्रचुरविरचितविविधोटजकुटज–रुद्धोपकण्ठेन, सोत्कण्ठभृंगराजरसितसुन्दरसुन्दरीवनेन, विततवेत्रव्रततिवातावरणतरुणवरुणस्कन्धसन्नद्धभृङ्गरो–लेन, गोलाङ्गूलभग्नमधुपटलरसासारशीकरसिक्त तरुतलेन, प्रवृद्धनारिकेलकंकेलिराजतालीतालतमालहिन्तालपूगपुन्नाग–केसरनागकेसरवनेन,घनसारमल्लिकाकेतकीकोविदारमन्दार–जम्बूबीजपूरजम्बीरगुल्मगहनेन,पवनसंवाहितानेकपनसविट–पिविटपेन, अप्रत्यूहदात्यूहकुहरितभरितनदीतटनिकुंजपुंजेन, पुंजिताकुण्ठकण्ठकलकण्ठाध्यासितसहकारपल्लवेन, चपल–कुलायकुक्कुटकुटुम्बाध्युषितोत्कटानेकविटपेन, कोरकनि–कुरम्बरोमांचितकुरबकराजिना,रक्ताशोकपल्लवलावण्यविलि–प्यमानदशदिशा, प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसर–धूसरितपरिसरेण, परागपुंजपिंजरसिन्दुवारमंजरीरज्यमान–मधुकरमंजुशिंजितजनितजनमुदा,लवंगचम्पकमधूकतमाल–लोध्रकर्णिकारकदम्बकेन,मदजलमेचकितगण्डकाषमुचुकुन्द–काण्डकथ्यमाननिःशंककरिकरटविकटकण्डूतिना, कतिपय–दिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटरेण,चटकसंचार्यमाण–चटुलवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटुना, सहचरीसहचरण–चंचुरचकोरचुंचुना, शैलेयसुगन्धितशिलातलसुखशयितशश–

शिशुराशिना, शेफालिकाशिफाविवरविस्रब्धविवर्तमानगौधेर–राशिना,निरातंकरंकुनिकरेण,निराकुलनकुलकुलकेलिना,कल–कोकिलकुलकवलितसहकारकलिकोद्गमेन, सहकाराराम–रोमन्थायमानचमरीयूथेन,हारिस्नीड़गिरिनितम्बनिर्झरनिनाद–श्रवणनिद्रानन्दमन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभिध्वनिना, समासन्नकिन्नरो गीतश्रवणरममाणरुरुविसरेण, कुहरितहरि–द्राद्रवरज्यमानवराहपोतपोत्रपालिना, गुंजाकुंजपुंजितजालक–जातेन, दंशदशनकुपितकपिपोतपेटकनखकोटिपाटितपाटली पुटकीटसंकटेन, कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटा–पाटितमत्तमातंगकुम्भस्थलरुधिरच्छटाच्छुरितचारुकेसरभार–भासुरकेसरिकदम्बेन, महासागरकच्छोपान्तेन कतिपयदूर–मध्वानं गत्वा..... ।

पदच्छेद–इति बहुविधम् विलपन्, मरण–इच्छुः दक्षिणेन काननम् निर्गत्य, नव्य–नड–नलद–नलिनी–निचुल–पिचुल–वंजुल–सरल–विदुल–वकुल–चिरबिल्व–बहुलेन, प्रचुर–विरचित–विविध–उटज–कुटजरुद्ध–उपकण्ठेन, सोत्कण्ठ–भृंगराज–रसित–सुन्दर–सुन्दरी–वनेन, वितत–वेत्र–व्रतति–वातावरण–तरुण–वरुण–स्कन्ध–सन्नद्ध–भृङ्गरोलेन, गोला–ङ्गूल–भग्न–मधु–पटल–रस–आसार–शीकर–सिक्त–तरु–तलेन,प्रवृद्ध–नारिकेल–कंकेलि–राजत–आली–ताल–तमाल–हिन्ताल–पूग–पुन्नाग–केसर–नागकेसर–वनेन, घनसार मल्लिका–केतकी–कोविदार–मन्दार–जम्बू–बीजपूर–जम्बीर–गुल्म–गहनेन, पवन–संवाहित–अनेक–पनस–विटपि–विटपेन, अप्रत्यूह–दात्यूह–कुहरित–भरित–नदीतट–निकुंज–पुंजेन, पुंजिता–कुण्ठ–कण्ठ–कल–कण्ठ–अध्यासित–सहकार–पल्लवेन, चपल–कुलाय–कुक्कुट–कुटुम्ब–अध्युषित–उत्कट–अनेकविटपेन, कोरक निकुरम्ब–रोमांचित–कुरबक–राजिना, रक्त–अशोक–पल्लव–लावण्य–विलिप्यमान–दश–दिशा, प्रविकसित–केसर–कुसुम–केसर–रजोविसर–धूसरित–परिसरेण, पराग–पुंज–पिंजर–सिन्दुवार–मंजरी–रज्यमान–

(वनमार्गवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार अनेक प्रकार से विलाप करने वाले कन्दर्पकेतु का चित्रण करने के बाद महाकवि, प्राण त्यागने की इच्छा से दक्षिण दिशा के वन में प्रस्थान करने पर वनमार्ग में स्थित प्रकृति का मनभावन चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(125) इति बहुविधं विलपन्, मरणेच्छुर्दक्षिणेन काननं निर्गत्य, नव्यनडनलदनलिनीनिचुलपिचुलवंजुलसरलविदुलवकुलचिरबिल्वबहुलेन, प्रचुरविरचितविविधोटजकुटजरुद्धोपकण्ठेन, सोत्कण्ठभृंगराजरसितसुन्दरसुन्दरीवनेन, विततवेत्रव्रततिवातावरणतरुणवरुणस्कन्धसन्नद्धभृङ्गरोलेन, गोलाङ्गूलभग्नमधुपटलरसासारशीकरसिक्त तरुतलेन, प्रवृद्धनारिकेलकंकेलिराजतालीतालतमालहिन्तालपूगपुन्नागकेसरनागकेसरवनेन,घनसारमल्लिकाकेतकीकोविदारमन्दारजम्बूबीजपूरजम्बीरगुल्मगहनेन,पवनसंवाहितानेकपनसविटपिविटपेन, अप्रत्यूहदात्यूहकुहरितभरितनदीतटनिकुंजपुंजेन, पुंजिताकुण्ठकण्ठकलकण्ठाध्यासितसहकारपल्लवेन, चपलकुलायकुक्कुटकुटुम्बाध्युषितोत्कटानेकविटपेन, कोरकनिकुरम्बरोमांचितकुरबकराजिना,रक्ताशोकपल्लवलावण्यविलिप्यमानदशदिशा, प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसरधूसरितपरिसरेण, परागपुंजपिंजरसिन्दुवारमंजरीरज्यमानमधुकरमंजुशिंजितजनितजनमुदा,लवंगचम्पकमधूकतमाललोध्रकर्णिकारकदम्बकेन,मदजलमेचकितगण्डकाषमुचुकुन्दकाण्डकथ्यमाननिःशंककरिकरटविकटकण्डूतिना, कतिपयदिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटरेण,चटकसंचार्यमाणचटुलवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटुना, सहचरीसहचरणचंचुरचकोरचुंचुना, शैलेयसुगन्धितशिलातलसुखशयितशश–

शिशुराशिना, शेफालिकाशिफाविवरविस्रब्धविवर्तमानगौधेर–राशिना,निरातंकरंकुनिकरेण,निराकुलनकुलकुलकेलिना,कल–कोकिलकुलकवलितसहकारकलिकोद्गमेन, सहकाराराम–रोमन्थायमानचमरीयूथेन,हारिसनीड़गिरिनितम्बनिर्झरनिनाद–श्रवणनिद्रानन्दमन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभिध्वनिना, समासन्नकिन्नरो गीतश्रवणरममाणरुरुविसरेण, कुहरितहरि–द्राद्रवरज्यमानवराहपोतपोत्रपालिना, गुंजाकुंजपुंजितजालक–जातेन, दंशदशनकुपितकपिपोतपेटकनखकोटिपाटितपाटली पुटकीटसंकटेन, कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटा–पातितमत्तमातंगकुम्भस्थलरुधिरच्छटाच्छुरितचारुकेसरभार–भासुरकेसरिकदम्बेन, महासागरकच्छोपान्तेन कतिपयदूर–मध्वानं गत्वा..... ।

पदच्छेद–इति बहुविधम् विलपन्, मरण–इच्छुः दक्षिणेन काननम् निर्गत्य, नव्य–नड–नलद–नलिनी–निचुल–पिचुल–वंजुल–सरल–विदुल –वकुल–चिरबिल्व–बहुलेन, प्रचुर–विरचित–विविध–उटज–कुटजरुद्ध–उपकण्ठेन, सोत्कण्ठ–भृंगराज–रसित–सुन्दर–सुन्दरी–वनेन, वितत–वेत्र–व्रतति–वातावरण–तरुण–वरुण–स्कन्ध–सन्नद्ध–भृङ्गरोलेन, गोला –ङ्गूल–भग्न–मधु–पटल–रस–आसार–शीकर–सिक्त–तरु–तलेन,प्रवृद्ध –नारिकेल–कंकेलि–राजत–आली–ताल–तमाल–हिन्ताल–पूग–पुन्नाग–केसर–नागकेसर–वनेन, घनसार मल्लिका–केतकी–कोविदार–मन्दार–जम्बू–बीजपूर–जम्बीर–गुल्म–गहनेन, पवन–संवाहित–अनेक–पनस–विटपि–विटपेन, अप्रत्यूह–दात्यूह–कुहरित–भरित–नदीतट–निकुंज–पुंजेन, पुंजिता–कुण्ठ–कण्ठ–कल–कण्ठ–अध्यासित–सहकार–पल्लवेन, चपल–कुलाय–कुक्कुट–कुटुम्ब–अध्युषित–उत्कट–अनेकविटपेन, कोरक निकुरम्ब–रोमांचित–कुरबक–राजिना, रक्त–अशोक–पल्लव–लावण्य–विलिप्यमान–दश–दिशा, प्रविकसित–केसर–कुसुम–केसर–रजोविसर–धूसरित–परिसरेण, पराग–पुंज–पिंजर–सिन्दुवार–मंजरी–रज्यमान–

मधुकर–मंजु–शिंजित–जनित–जन–मुदा, लवंग–चम्पक–मधूक–तमाल–लोध्र–कर्णिकार–कदम्बकेन, मदजल–मेचकित–गण्डकाष–मुचुकुन्द–काण्ड–कथ्यमान–निःशंक–करि–करट–विकट–कण्डूतिना, कतिपय–दिवस–प्रसूत–कुक्कुटी–कुटीकृत–कुटज–कोटरेण, चटक–संचार्यमाण–चटुल–वाचाट–चाटकैः अक्रियमाण–चाटुना, सहचरी–सहचरण–चंचुर–चकोर–चुंचुना, शैलेय–सुगन्धित–शिलातल–सुख–शयित–शश–शिशु–राशिना, शेफालिका–शिफा–विवर–विस्रब्ध–विवर्तमान–गौधेर–राशिना, निरातंक–रंकु–निकरेण, निराकुलन–कुलकुल–केलिना, कल–कोकिल–कुल–कवलित–सहकार–कलिका–उद्‌गमेन, सहकार–आराम–रोमन्था–यमान–चमरी–यूथेन, हारि–सनीड़–गिरि–नितम्ब–निर्झर–निनाद–श्रवण–निद्रा–आनन्द–मन्दायमान–करिकुल–कर्णताल–दुन्दुभि–ध्वनिना, समासन्न–किन्नरः गीत–श्रवण–रममाण–रुरु–विसरेण, कुहरित–हरिद्रा–द्रव–रज्यमान–वराह–पोत–पोत्र[1]–पालिना, गुंजा–कुंज–पुंजित–जालक[2]–जातेन, दंश–दशन–कुपित–कपि–पोत–पेटक–नख–कोटि–पाटित–पाटली–पुट–कीट–संकटेन, कुलिश–शिखर–खर–नखर–प्रचय–प्रचण्ड–चपेटा–पाटित–मत्त–मातंग–कुम्भस्थल–रुधिर–छटा–छुरित–चारु–केसरभार–भासुर–केसरि–कदम्बेन, महासागर–कच्छ–उपान्तेन कतिपय दूरम् अध्वानम् गत्वा......।

अनुवाद– इसप्रकार अनेक तरह से विलाप करता हुआ, मरने की इच्छा वाला वह, वन के दक्षिण भाग में निकलकर, नूतन हरे–भरे नरकुल, उशीर, कमलिनी, बेंत, सई, अशोक, वकुल, करंज तथा बेल आदि वृक्षों से भरे हुए, प्रचुरता से बनी हुई अनेक प्रकार की पर्ण शाखाओं में उत्पन्न हुए गिरि मल्लिकाओं से परिपूरित पास के भाग वाले, उत्कण्ठित भ्रमरों की गुंजार से मनोहर, सुन्दरी नामक वृक्ष से युक्त वन वाले, फैली हुई बेंत की लताओं के समूह से आच्छादित,

---

[1]. पोत्रं वक्त्रं मुखाग्रं च शूकरस्य हलस्य च। इति विश्वप्रकाशः।

[2]. जालकः कथितो घोङ्घः कारुड़ी चापि जालकः। इत्युत्पलिनी।

नूतन वरुण नामक वृक्ष विशेष की शाखाओं पर बैठे हुए भ्रमर–समूह वाले, बन्दरों द्वारा तोड़े गए शहद के छत्तों से टपकते हुए मधुरस की बूँदों से गीले वृक्षों के अधःभाग वाले, बढ़े हुए नारियल, अशोक, क्रमुक, तमाल, हिन्ताल, सुपारी, केसर, बकुल और नागकेसर के वनों से युक्त, घनसार, मल्लिका, केतकी, कचनार, मन्दार, जामुन, बीजपूर तथा जम्बीर के पुष्प–गुच्छों की सघनता वाले, वायु द्वारा प्रकम्पित अनेक कटहल के वृक्षों की शाखाओं से सम्पन्न, निर्विघ्न किए जाते हुए 'जलकाक' नामक पक्षियों की कुहुकुहु की ध्वनि से भरे हुए,

नदियों के तट पर स्थित निकुँजों के समूह से युक्त, एक साथ, निर्विघ्न स्वर वाली कोयलों के भरे हुए आम्रमंजरियों वाले, अपने–अपने घोंसलों में चंचल कुक्कुटों के समूह से युक्त अनेक विशाल वृक्षों से युक्त, कलियों से रोमांचित 'कुरबक' नाम के वक्षों के समूह से सम्पन्न, लाल अशोक के पल्लवों के लावण्य से दसों दिशाओं में व्याप्त,

अत्यधिक विकसित केसर के पुष्प के परागकणों के समूह से पाण्डुवर्ण वाले प्रान्तभाग से युक्त, परागसमूह से पीले हुए सिन्दुवार की मंजरियों से रंगे हुए भ्रमरों के अव्यक्त और मधुर गुंजार से उत्पन्न प्रसन्नता वाले, लौंग, चम्पक, मधूक, तमाल, लोध्र, कर्णिकार के समूहों से व्याप्त, मदजल से काले हुए गण्डस्थल के रगड़ने वाले भाग के मुचुकन्द नाम के वृक्ष की शाखा से सूचित निःशंक हाथियों के गण्डस्थल की अत्यधिक खुजली से युक्त,

कुछ ही दिन पूर्व उत्पन्न हुए कुक्कुटियों द्वारा बनाए गए, आश्रय स्थलों से युक्त, कुटज वृक्षों के खोखरों से सम्पन्न, गौरय्या द्वारा इधर–उधर संचरण किए जाते हुए, वाचाल गौरय्या के नर बच्चों द्वारा चाटुकारी के वचनों से युक्त, सहचरी के साथ भ्रमण करने में कुशल चकोरों के लिए प्रसिद्ध, शिलाजीत की सुगन्ध से सुवासित शिलातल पर सुख से शयन करते हुए खरगोश के शिशुओं के समूह

से युक्त, शेफालिका नाम के वृक्ष की जटाओं के छिद्रों में निश्चिन्त होकर बैठे हुए गोह के बच्चों के समूह से युक्त,

निर्भय होकर क्रीड़ा करते हुए नेवलों के समूह वाले, निश्चिन्त होकर विचरण करते हुए रंक नामक मृग विशेष के समूह से युक्त, निर्भीकतापूर्वक मनोहर कोयलों द्वारा खाए जाते हुए आम्र की कलियों के उद्गम वाले, आम्र के वनों में जुगाली करते हुए चमरी मृगों के समूहों से युक्त, मन का हरण करने वाले, पास में स्थित पर्वतीय ढलान पर स्थित झरनों की ध्वनि को सुनने से निद्रा के आनन्द के कारण अलसाए हुए हाथियों के समूह के कर्णरूपी तालों से होती हुई दुन्दुभि के समान ध्वनि से युक्त,

पास में ही विद्यमान किन्नरियों के गीतों को सुनने से आनन्दित रुरु मृगों से भरे हुए, छेद की गयी हरिद्रा के रस से शूकर के शावकों के पीली थूथड़ी वाले, घुँघची की झाडियों में इक्ट्ठे हुए बिडालसमूह से युक्त, मधुमक्खियों के काटने से कुपित हुए वानर शावकों के समूह के तीक्ष्ण नखों के अग्रभाग के समूह से नोंचकर कीटसमूह से भरे हुए पाटली के वृक्षों वाले,

वज्र की धार के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण नखों के प्रचण्ड प्रहार से विक्षत हुए मतवाले हाथियों के गण्डस्थल से बहते हुए रुधिर की शोभा से चमकते हुए आयालों से दीप्यमान सिंहों के समूह वाले[1],

महासागर के जलमग्न प्रदेश से कुछ ही दूर स्थित मार्ग को पार करके, कन्दर्पकेतु ने एक समुद्र देखा।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश से महाकवि का वृक्ष, लता, फल एवं पुष्प आदि वनस्पतियों से सम्बन्धित सूक्ष्म एवं अद्भुत ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

---

[1]. इसप्रकार की कल्पना कवि ने प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर की है।

(ii) विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं, मृगों के अनेक प्रकारों के उल्लेख से महाकवि का गहनज्ञान अर्थात् प्राणि–विज्ञान की सुन्दर एवं प्रशंसनीय अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्ष का भी महाकवि ने अत्यन्त स्वाभाविक तथा मनोहारी वर्णन उक्त गद्यखण्ड में किया है, अतः प्रकृति विषयक गहनप्रेम भी प्रदर्शित हुआ है।

(सागरतटवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार विलाप करता हुआ कन्दर्पकेतु वन में घूमते हुए सागर के किनारे पहुँच गया, उसी का वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(126)अतिचपलवीचिप्रचयप्रहतप्रपाततया, ताण्डवोद्दण्डदोर्दण्डषण्डखण्डपरशुविडम्बनापण्डितम्, वारुणविजयपताकाभिरिव, शेषकुलनिर्मोकमंजुमंजरीभिरिव, सुधासहचरीभिरिव, ज्योत्स्नासहोदरीभिरिव, शशांकमण्डलपरिशेषपरमाणुसन्ततिभिरिव,लक्ष्मीलीलातर्पणधाराभिरिव, जलदेवताचन्दनविच्छित्तिभिरिव, फेनराजिभिरुपान्तरमणीयम्, अपरमिव गगनतलमवनितलमवतीर्णम्, अच्छजलादुच्छलच्छीकरनिकरेण नभश्चारान् मुक्ताफलैरिव विलोभयन्तम्, अभयाभ्यर्थनागतानेकसपक्षक्षितिधरभरितकुक्षिभागम्, सगरसुतविसरसमुत्खातम्, वडवामुखगतवारिजातम्, सुरपत्युपात्तपारिजातम्, अभिजातमणिरत्नाकरम्, करिमकरकुलसंकुलम्, शकुलकुलकवलनाभिलाषसंचरन्नक्रचक्रम्, स्तिमिततिमिंगिलकुलम्, कदलीवनवनपालीपालितैलालवलीलवंगमातुलुंगगुल्मगहनम्, ऊर्मिमारुतमर्मरिततरलतरोत्तालतालीदलचकितजलमानुषमिथुनमृदितनिलीनतलिनशैवालम्, प्रवालांकुरकोटिपाटितमुखस्विन्नशंखनखखरशिखाविलिखितटलेखम्, खगेश्वरगोत्रपत्ररथपटलकलिलसलिलम्.....।

पदच्छेद– अति–चपल–वीचि–प्रचय–प्रहत–प्रपाततया, ताण्डव–उद्दण्ड–दोर्दण्ड–षण्ड–खण्ड–परशु–विडम्बना–पण्डितम्, वारुण–विजय –पताकाभिः इव, शेषकुल–निर्मोक–मंजु–मंजरीभिः इव, सुधा–सहचरीभिः इव, ज्योत्स्ना–सहोदरीभिः इव, शशांक–मण्डल–परिशेष–परमाणु–सन्ततिभिः इव, लक्ष्मी–लीला–तर्पण–धाराभिः इव, जल–देवता–चन्दन–विच्छित्तिभिः इव, फेनराजिभिः उपान्त–रमणीयम्, अपरम् इव गगनतलम् अवनितलम् अवतीर्णम्, अच्छ–जलात् उच्छल–शीकर–निकरेण नभ–श्चारान् मुक्ताफलैः इव विलोभयन्तम्, अभय–अभ्यर्थना–आगत–अनेक–सपक्ष–क्षितिधर–भरित–कुक्षि–भागम्,सगर–सुत–विसर–समुत्खातम्,वडवा –मुख–गत–वारिजातम्, सुरपति–उपात्त–पारिजातम्, अभिजात–मणि–रत्नाकरम्, करि–मकर–कुल–संकुलम्, शकुल–कुल–कवलन–अभिलाष –संचरन् नक्र–चक्रम्, स्तिमित–तिमिंगिल–कुलम्, कदली–वन–वनपाली–पालित–ऐला–लवली–लवंग–मातुलुंग–गुल्म–गहनम्, ऊर्मि–मारुत–मर्मरित–तरलतर–उत्ताल–तालीदल–चकित–जल–मानुष–मिथुन –मृदित–निलीन–तलिन–शैवालम्,
प्रवाल–अंकुर–कोटि–पाटित–मुख–स्विन्न–शंख–नख–खर–शिखा–वि–लिखित–तट–लेखम्, खगेश्वर–गोत्र–पत्ररथ–पटल–कलिल–सलिलम्..।

अनुवाद– जो समुद्र अत्यधिक चंचल तरंगों के समूह द्वारा आघात किए जाते हुए, तटों के कारण ताण्डव नृत्य में उद्धत भुजाओं से युक्त, भगवान् शंकर का अनुकरण करने में निपुण था, जो वरुणदेव की विजय पताकाओं, शेषनाग के परिवार की केचुलियों की मनोहर राशियों से युक्त अमृत की सहचरियों के समान, चाँदनी के सगी बहनों के समान, चन्द्रमण्डल के निर्माण के पश्चात् शेष बचे हुए, परमाणुओं के समूह के समान, लक्ष्मी के लिए बनाए गए मंगल को उत्पन्न करने वाले लेप की धाराओं के समान,

जलदेवियों के ललाट पर लगे हुए, चन्दन की कान्तियों के समान, फेन के समूह से रमणीय प्रान्तभाग से युक्त, भूमण्डल पर उतरे

हुए जलकणों के समूह से मानो आकाश में भ्रमण करने वाले विद्याधर आदि को मोतियों से लुभाने वाला, (उत्प्रेक्षा) अभयदान के लिए आए हुए अनेक पंखों वाले पर्वतों से भरे हुए अन्तःभाग से सम्पन्न, सगर के पुत्रों द्वारा खोदा गया, वडवानल के मुख में प्रवेश करते हुए जलों वाला, जिसका पारिजात वृक्ष इन्द्र द्वारा ग्रहण कर लिया गया था, जो शुद्ध मणि तथा रत्नों की खान था,

जो जल में रहने वाले हाथी तथा मकरों से युक्त था, जो शकुल नाम के पक्षियों से समूह को खाने की इच्छा से विचरण करते हुए नक्रों वाला था, जो निश्चल तिमि एवं तिमिंगिल के समूह से भरा हुआ था, जो कदली वन की रक्षिता द्वारा पालन की गयी, इलायची, लवली लता विशेष, लौंग, विजौरा तथा निम्बू के गुल्मों से घना था,

जो तरंगों की वायु के स्पर्श से मर्मर ध्वनि करने वाले, हिलते हुए ऊँचे ताड़ के पत्तों के कारण चकित जलमानुषों के जोड़ों द्वारा मर्दन किए गए, भूमि पर बैठी हुई शैवाल से सम्पन्न था, जो विद्रुमों के अग्रभाग के विदीर्ण होने से खिन्न छोटे–छोटे शंखों के तीक्ष्ण अग्रभाग से क्षत–विक्षत तट–रेखा वाला था, जो पक्षीराज गरुड़ के वंश में उत्पन्न पक्षियों के समूह से व्याप्त जल से युक्त था।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है, किन्तु प्रस्तुत गद्यांश में कवि ने समुद्र सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों का उल्लेख करके इसके ऐतिहा–सिक पक्ष को उदघाटित करते हुए, इसमें रहने वाले जीव, जन्तु, पौधे, रत्नादि के विषय में विस्तार से कथन किया है, जिससे महाकवि की समुद्र विषयक गहन जानकारी का अनुमान भी सहृदय को सहज ही हो जाता है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि निश्चय ही कवि ने समुद्र का अत्यन्त निकट से लम्बे समय तक अवलोकन किया था।

विशेष–(i) प्रकृति का मानवीकरण करके उसका जीवन्त चित्रण महाकवि की महती विशेषता रही है, उसी क्रम में यहाँ पर समुद्र का मानवीकरण किया गया है।

(ii) उपर्युक्त प्रकृति चित्रण में कवि का अद्भुत वर्णन–कौशल तथा कल्पनाशीलता भी प्रदर्शित हुई है।

(iii) **समुत्खातम्**– खनु अवदारणे, सम्+उत्+ √खन्+क्त,

(iv) महाकवि का सामुद्रिक जीवों तथा वनस्पतियों का गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(v) **द्व्यर्थक** पद– **विष**–जल, जहर। **वृद्ध**–बूढ़ा, फैला हुआ।

अवतरणिका– इसी क्रम में समुद्र–वर्णन करते हुए महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(127) अद्याप्यनिर्मुक्तमन्दरमथनसंस्कारमिवावर्त–भ्रान्तिभिः, सापस्मारमिव सितफेनसंचयैः, ससुरामोदमिव वेलावकुलपरिमलैः, सरोषमिव गर्जितैः, सखेदमिव नाग–निःश्वासैः, सभ्रूभंगमिव तरंगैः, सालानस्तम्भमिव रामसेतुना, कुम्भीनसीकुक्षिमिव लवणोत्पत्तिस्थानम्, व्याकरणमिव विततस्त्रीनदीकृत्यबहुलम्, राजकुलमिव दृश्यमानमहापात्रम्, हस्तिबन्धमिव वारिगतानेकनागमुच्यमानशूत्कारम्,विश्वामित्र–पुत्रवर्गमिव अम्भोजचामरमत्स्योपशोभितम्, सत्पुरुषमिव गोत्राश्रयम्, साधु मिवाच्युतस्थितिरमणीयम्, सुनृपमिव सज्जनक्रमकरम्, कृतमन्युमिव करतोयाप्लुतमुखम्, विरहिणमिव चन्दनोदकसिक्तम्, विलासनमिव नर्मदानुगतम्, राशिमिव समीनकुलीरम्, शृङ्गारिणमिव अनेकमुक्ता–लङ्कृतम्, उद्धृतकालकूटमपि प्रकटितविषराशिम्, अति–वृद्धमपि सुन्दरीपरिवृत्तकण्ठम्, सुरोत्पत्तिस्थानमपि असुरा–धिष्ठितम्, जलनिधिमपश्यत्।

पदच्छेद– अद्य अपि अनिर्मुक्त–मन्दर–मथन–संस्कारम् इव आवर्त–भ्रान्तिभिः, सापस्मारम् इव सित–फेन–संचयैः, ससुरा–आमोदम् इव वेला–वकुल–परिमलैः, सरोषम् इव गर्जितैः, सखेदम् इव नाग–निःश्वासैः, सभ्रूभंगम् इव तरंगैः, सालान–स्तम्भम् इव राम–सेतुना, कुम्भीनसी–कुक्षिम् इव लवण–उत्पत्ति–स्थानम्, व्याकरणम् इव वितत–स्त्री–नदी–कृत्यबहुलम्[1], राजकुलम् इव दृश्यमान–महापात्रम्, हस्ति–बन्धम् इव वारि–गत–अनेक–नाग–मुच्यमान–शूत्कारम्, विश्वामित्र–पुत्र–वर्गम् इव अम्भोज–चामर–मत्स्य–उपशोभितम्, सत्पुरुषम् इव गोत्र–आश्रयम्, साधुम् इव अच्युत–स्थिति–रमणीयम्, सुनृपम् इव सज्जन–क्रम–करम्, कृत–मन्युम् इव करतोय–आप्लुत–मुखम्, विरहिणम् इव चन्दन–उदक–सिक्तम्, विलासनम् इव नर्मदा–अनुगतम्, राशिम् इव समीन–कुलीरम्, शृङ्गारिणम् इव अनेक–मुक्ता–अलङ्कृतम्, उद्धृत–कालकूटम् अपि प्रकटित–विष–राशिम्, अतिवृद्धम् अपि सुन्दरी–परिवृत्त–कण्ठम्, सुर–उत्पत्ति–स्थानम् अपि असुर–अधिष्ठितम्, जल–निधिम् अपश्यत्।

अनुवाद– जो आज भी आवर्त अर्थात् चक्करों के कारण मानो मन्दराचल द्वारा मथे जाने के संस्कार से युक्त है, जो शुभ्रफेन के समूहों से मिरगी के रोगी[2] के समान प्रतीत हो रहा था(उपमा), जो तट पर खिले हुए वकुल के पुष्पों की गन्ध से सुरा की गन्ध के समान (उपमा) था, गर्जनों से क्रोधित सा, सर्पों के निःश्वास के कारण खिन्न सा, तरंगों में भौं चढ़ाए हुआ सा, रामेश्वर सेतु के कारण हाथी बाँधने के खम्भे के समान(उपमा), लवणासुर को उत्पन्न करने वाली, कुम्भीनसी[3] की कुक्षि के समान(उपमा), नमक की उत्पत्ति का स्थान था,

---

1. महाकवि के व्याकरण विषयक गहन ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है।
2. महाकवि का आयुर्वेद विषयक ज्ञान प्रदर्शित हुआ है।
3. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

जो विस्तृत स्त्री, नदी एवं कृतसंज्ञा की अधिकता से परिव्याप्त व्याकरण के समान[1], पत्नीरूप नदियों के कार्य से युक्त था, जो दिखायी पड़ते हुए महामन्त्री वाले राजपरिवार के समान(उपमा), दिखायी पड़ते हुए महापात्र से युक्त था, जो मदजल युक्त अनेक हाथियों द्वारा किए गए चिंघाड़ से युक्त हाथी–शाला के समान जल के मध्य में स्थित अनेक सर्पों द्वारा किए गए फूत्कार से व्याप्त था,

जो अम्भोज, चामर तथा मत्स्य नामक पुत्रों से युक्त विश्वामित्र के पुत्र मण्डल के समान(उपमा) शैवाल एवं मत्स्यों से सुशोभित था, जो कुल के आश्रयभूत सज्जन व्यक्ति के समान(उपमा), पर्वतों का आश्रय स्थल था, जो विष्णु के निवास के कारण रमणीय तपस्वी के समान मर्यादा में स्थित रहने के कारण रमणीय था,

जो सज्जनों की व्यवस्था करने वाले श्रेष्ठ राजा के समान नक्र एवं मकर से शोभायमान था, जो हाथ में विद्यमान जल से बार–बार मुँह धोने वाले व्यक्ति के समान (उपमा) करतोया नामक नदी से सीचे जाते हुए संगमस्थल से व्याप्त था, जो चन्दन जल से सींचे गए विरही व्यक्ति के समान चन्दन जल से सुवासित था, जो विदूषक से सम्पन्न विलासी व्यक्ति के समान, मर्यादा नामक नदी से अनुगमन किया जाने वाला था, जो मीन एवं कुलीर नामक राशियों से युक्त राशि के समान, मत्स्य एवं केकड़ों से भरा हुआ था,[2] जो अनेक मोतियों से सुशोभित शृंगारी व्यक्ति के समान, अनेक प्रकार के मोतियों से शोभायमान था,

(इसके बाद कवि ने विरोध के माध्यम से समुद्र का प्रभावी वर्णन किया है)

---

[1]. इसप्रकार के अनेक अंश इस काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे महाकवि के व्याकरण विषयक गहन ज्ञान की स्पष्ट प्रतीति हो रही है।

[2]. इसीप्रकार के अंश प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे महाकवि सुबन्धु के ज्योतिष विषयक गहन ज्ञान की पुष्टि होती है।

जो कालकूट नामक विष के निकाल दिए जाने पर भी विष समुदाय को प्रकट करने वाला था, (विरोध, परिहार–) अर्थात् जो कालकूट से सर्वथा रहित जलराशि को प्रकट करने वाला था, जो अत्यधिक वृद्ध होते हुए भी सुन्दर रमणियों से लिपटे हुए कण्ठ वाला था, (विरोध, परिहार–) अर्थात् जो अत्यधिक विस्तार से युक्त सुन्दरी नाम के वृक्षों से आवृत्त भागों वाला था, जो देवों का उत्पत्ति स्थान होते हुए भी राक्षसों का आश्रय स्थल था(विरोध, परिहार–) अर्थात् जो सुरा का उत्पत्ति स्थल एवं राक्षसों का आश्रय स्थान था।

इसप्रकार के समुद्र को कन्दर्पकेतु ने देखा।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा एवं विरोधाभास अलंकारों के माध्यम से विचाराभिव्यक्ति की गयी है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **सुर**–देवता, मदिरा।

(कन्दर्पकेतुकृत–मृत्युनिश्चय–वर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद समुद्र को देखकर नायक कन्दर्पकेतु ने मन में विचार किया कि–

(128) **अचिन्तयच्च– अहो मे कृतापकारेणापि विधिनोपकृतिरेव कृताः यदयं लोचनगोचरतां नीतः समुद्रः। तदत्र देहमुत्सृज्य प्रियाविरहाग्निं निर्वापयामि। यद्यप्यनातुरस्य देहत्यागो न विहितस्तथापि कार्यः। न खलु सर्वः सर्वं कार्यमेव करोति। असारे संसारे केन किं नाम न कृतम्।**

पदच्छेद– अचिन्तयत् च– अहो मे कृत अपकारेण अपि विधिना उपकृतिः एव कृताः, यत् अयम् लोचन–गोचरताम् नीतः समुद्रः। तद अत्र देहम् उत्सृज्य प्रिया–विरह–अग्निम् निर्वापयामि। यद्यपि अनातुरस्य देहत्यागः न विहितः तथा अपि कार्यः। न खलु सर्वः सर्वम् कार्यम् एव करोति। असारे संसारे केन किम् नाम न कृतम्?

अनुवाद– और तब उसने सोचा– अहो, अपकार करते हुए भाग्य द्वारा मेरा उपकार ही किया गया है, जो यह समुद्र मुझे दृष्टिगत हुआ है। इसलिए यहाँ अपने शरीर का परित्याग करके, प्रियतमा की विरहरूपी अग्नि को शान्त कर लेता हूँ। यद्यपि स्वस्थ व्यक्ति के लिए शरीर का त्याग करना शास्त्रों द्वारा विहित नहीं है, किन्तु फिर भी मुझे यह कर ही लेना चाहिए, क्योंकि सभी लोग शास्त्रों में बताए गए कामों को नहीं करते हैं। इतना ही नहीं, इस निःसार संसार में भला किसके द्वारा कौन सा (शास्त्रनिषिद्ध) कार्य नहीं किया गया है?

'चन्द्रिका'– समुद्र को देखकर नायक कन्दर्पकेतु अत्यन्त प्रसन्न होता है तथा मरने का निर्णय करके अपने सभी दुःखों से छुटकारा पाना चाहता है, इसी क्रम में वह अपने दुर्भाग्य की भी प्रशंसा करता है, क्योंकि उसने उसे समुद्र के समीप लाकर मरने का अवसर प्रदान किया है, किन्तु वह इस बात से भी पूर्णरूप से अवगत है कि–

आत्महत्या करना शास्त्रसम्मत कर्म नहीं है, फिर भी अपने कष्टों के अन्त की कोई सम्भावना न देखते हुए वह इसे न्यायोचित ही ठहराने का प्रयास करता है, जिसके विषय में आगे उल्लेख किया गया है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में नायक का सकारात्मक चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि समुद्र को देखकर उसने अपने दुर्भाग्य की भी सराहना की है। वस्तुतः आज इसके माध्यम से उसके सभी दुःखों का अन्त हो जाएगा।

(ii) प्रस्तुत गद्यांश में नायक ने आत्महत्या के विषय में चिन्तन करने के साथ–साथ इसके औचित्य के बारे में विचार किया है, जिससे कवि के चिन्तनशील व्यक्तित्व की भी अभिव्यक्ति हुई है।

अवतरणिका– इसके पश्चात् नायक मन में पूर्वकाल के उन लोगों के विषय में विचार करता है, जिन्होंने समर्थ होते हुए भी शास्त्र निषिद्ध कर्मों को ही निष्पादित किया–

(129) तथाहि– गुरुदारहरणं द्विजराजोऽकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। नहुषः परकलत्रदोहदी भुजंगतामयासीत्। ययातिर्विहितब्राह्मणीपाणिग्रहणः पपात। स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तु–वधनिर्घणता। पुरुकुत्सः कुत्सित एवाभवत्। कुवलया–श्वोऽश्वतरकन्यामपि जगाम। नृगः कृकलासतामगमत्। नलः कलिनाऽभिभूतः। संवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथोऽपीष्टरामोन्मादेन मृत्युमवाप।कार्तवीर्यो गोब्राह्मण–पीडया पंचत्वमयासीत्। शन्तनुरतिव्यसनाद्विललाप। युधिष्ठिरः समरशिरसि सत्यमुत्ससर्ज। तदित्थं नास्त्येव जगत्यकलंकः कोऽपि। तदहमपि देहमुत्सृजामि।

पदच्छेद– गुरु–दार–हरणम् द्विजराजः अकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मण–धन–तृष्णया विननाश। नहुषः पर–कलत्र–दोहदी भुजंगताम् अयासीत्। ययातिः विहित–ब्राह्मणी–पाणिग्रहणः पपात स्त्रीमयः एव अभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तु–वध–निर्घणता। पुरुकुत्सः कुत्सितः एव अभवत्। कुवलयाश्वः अश्वतर–कन्याम् अपि जगाम। नृगः कृकलासताम् अगमत्। नलः कलिना अभिभूतः। संवरणः मित्र–दुहितरि विक्लवताम् अगात्। दशरथः अपि इष्ट–राम–उन्मादेन मृत्युम् अवाप। कार्तवीर्यः गो–ब्राह्मण–पीडया पंचत्वम् अयासीत्। शन्तनुः अति–व्यसनाद् विललाप। युधिष्ठिरः समर–शिरसि सत्यम् उत्ससर्ज। तत् इत्थम् न अस्ति एव जगति अकलंकः कः अपि। तत् अहम् अपि देहम् उत्सृजामि।

अनुवाद– जैसे– चन्द्रमा ने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया। पुरुरवा नाम का राजा ब्राह्मण–धन की तृष्णा से विनष्ट हो गया। इन्द्र की पत्नी की कामना करने वाले, नहुष नाम के राजा ने सर्पत्व को प्राप्त किया, ब्राह्मण की पुत्री शुक्र की कन्या देवयानी से विवाह करने वाला ययाति नामक राजा पतित हो गया, जबकि सुद्युम्न तो स्त्री ही बन गया।

इसके अतिरिक्त सोमक नाम के राजा की अपने पुत्र 'जन्तु' की वध विषयक निर्दयता संसार में प्रसिद्ध ही है। पुरुकुत्स नामक राजा भी निन्दित हो गया। कुवलयाश्व ने अश्वतर नाम की नागकन्या मदालसा से अभिसार किया। नृग नामक राजा गिरगिट हो गया। निषध का राजा नल कलियुग द्वारा अभिभूत कर लिया गया। संवरण नामक राजा सूर्य की पुत्री तपती से लिए व्याकुल हुआ। राम के पिता दशरथ ने अपने अभीष्ट राम के उन्माद में मृत्यु को प्राप्त किया।

इसीप्रकार सहस्रबाहु गायों एवं ब्राह्मणों को पीड़ित करने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ। शन्तनु नामक राजा अत्यधिक व्यसनों के कारण विलाप करने लगा। पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने युद्धाग्र में सत्य को ही छोड़ दिया। अतः संसार में कोई भी निष्कलंक नहीं है, इसलिए मैं (शास्त्रविहित न होने पर) भी अपने शरीर को ही छोड़ दूँगा।

'चन्द्रिका'– इसप्रकार चन्द्रमा, पुरुरवा, नहुष, ययाति, सुद्युम्न, सोमक, पुरुकुत्स, कुवलयाश्व, नृग, निषध, संवरण, दशरथ, सहस्रबाहु, शन्तनु, युधिष्ठिर[1] कुल पन्द्रह ऐतिहासिक लोगों के चरित्र के विषय में कन्दर्पकेतु ने विचार किया, जिन्होंने शास्त्र के विपरीत आचरण किया।

इसलिए इस सम्पूर्ण संसार में वस्तुतः कोई भी निष्कलंक नहीं है, इसलिए भले ही आत्महत्या करना शास्त्र सम्मत नहीं है, किन्तु फिर भी मैं आज अपने दुःखों के पहाड़ से मुक्ति पाने के लिए समुद्र में डूबकर अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा, यह निश्चय किया।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में कन्दर्पकेतु नहुष, ययाति, सुद्युम्न, सोमक, नृग और कार्तवीर्य आदि कुल पन्द्रह इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिन्होंने शास्त्र विरुद्ध कार्यों को सम्पन्न किया, इससे महाकवि के रामायण, पुराण, महाभारत आदि में प्रयुक्त आख्यानों के गहन अध्ययन की पुष्टि होती है।

1. इन सभी राजाओं से सम्बन्धित आख्यानों के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(ii) **द्व्यर्थक** पद— **दर**— भय, शंख। **पद्मराग**—मणि, कमल की लालिमा। **विद्रुमलता**—पक्षियों से युक्त, लताओं से सम्पन्न। **मुक्तोपेतम**— मुक्ति को प्राप्त, मोतियों से युक्त।

अवतरणिका— इसप्रकार वासवदत्ता के वियोग में कन्दर्पकेतु द्वारा समुद्र में डूबकर, आत्महत्या का निर्णय करने के बाद की स्थिति के विषय में महाकवि कहते हैं कि—

(130) इति विचिन्त्य कुररखरनखरशिखरखण्डित- पृथुरोमशल्यसंकुलम्, संकलितजलनकुलोच्चारशारम्,क्रोष्टु- कुलोत्सृष्टविकटकर्कटककर्परपरम्परापरिगतप्रान्तम्, अति- तरलजलरयलुलितचटुलशफरकुलकवलनकृतमतिनिभृतबक- शकुनिनिवहधवलितपरिसरम्,अतिचपलजलकपिकुलविहरण- ललितसलिलकणनिकरपरिमिलनशिशिरिततमालतलम्, अनु- दिननिपतदतितरुणवनमहिषगवलशिखरविलिखितविषम- तटम्, अनवरतचरदसितमुखचरणविहगनिवहमधुरनिनदमुख- रितम्, अहिमकरकरनिकररुचिरजलमनुजगणशयनमृदित- तटधरणीतलम्, अतिबहलमदजलशबलकरटतटकरिशत- निपतितमधुकरनिकरविरुतिरतिकरम्, अतिजवनपवनविधु- तजलधिजलविघटननिपतितमणिगणपरिगतपरिसरम्, जल- निधिजलगतभुजगनिर्मुक्तनिर्मोकपट्टम्, दर्पणमिव वसुन्धरायाः स्फटिककुट्टिममिव वरुणस्य, कमलवनमिव सपद्मरागम्, वनप्रदेशमिव सविद्रुमलतम्, कातरमिव सदरम्, विष्णुमि- वानेकमुक्तोपेतम्, पुलिनतलमाससाद।

पदच्छेद— इति विचिन्त्य कुरर—खर—नखर—शिखर—खण्डित— पृथु—रोम—शल्य—संकुलम्,संकलित—जल—नकुल—उच्चार—शारम्, क्रोष्टु— कुल—उत्सृष्ट—विकट—कर्कटक—कर्पर—परम्परा—परिगत—प्रान्तम्, अति— तरल—जल—रय—लुलित—चटुल—शफर—कुल—कवलन—कृतम् अति— निभृत—बक—शकुनि—निवह—धवलित—परिसरम्,अति—चपल—जल—कपि—

इसके अतिरिक्त सोमक नाम के राजा की अपने पुत्र 'जन्तु' की वध विषयक निर्दयता संसार में प्रसिद्ध ही है। पुरुकुत्स नामक राजा भी निन्दित हो गया। कुवलयाश्व ने अश्वतर नाम की नागकन्या मदालसा से अभिसार किया। नृग नामक राजा गिरगिट हो गया। निषध का राजा नल कलियुग द्वारा अभिभूत कर लिया गया। संवरण नामक राजा सूर्य की पुत्री तपती से लिए व्याकुल हुआ। राम के पिता दशरथ ने अपने अभीष्ट राम के उन्माद में मृत्यु को प्राप्त किया।

इसीप्रकार सहस्रबाहु गायों एवं ब्राह्मणों को पीड़ित करने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ। शन्तनु नामक राजा अत्यधिक व्यसनों के कारण विलाप करने लगा। पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने युद्धाग्र में सत्य को ही छोड़ दिया। अतः संसार में कोई भी निष्कलंक नहीं है, इसलिए मैं (शास्त्रविहित न होने पर) भी अपने शरीर को ही छोड़ दूँगा।

'चन्द्रिका'– इसप्रकार चन्द्रमा, पुरुरवा, नहुष, ययाति, सुद्युम्न, सोमक, पुरुकुत्स, कुवलयाश्व, नृग, निषध, संवरण, दशरथ, सहस्रबाहु, शन्तनु, युधिष्ठिर[1] कुल पन्द्रह ऐतिहासिक लोगों के चरित्र के विषय में कन्दर्पकेतु ने विचार किया, जिन्होंने शास्त्र के विपरीत आचरण किया।

इसलिए इस सम्पूर्ण संसार में वस्तुतः कोई भी निष्कलंक नहीं है, इसलिए भले ही आत्महत्या करना शास्त्र सम्मत नहीं है, किन्तु फिर भी मैं आज अपने दुःखों के पहाड़ से मुक्ति पाने के लिए समुद्र में डूबकर अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा, यह निश्चय किया।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में कन्दर्पकेतु नहुष, ययाति, सुद्युम्न, सोमक, नृग और कार्तवीर्य आदि कुल पन्द्रह इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिन्होंने शास्त्र विरुद्ध कार्यों को सम्पन्न किया, इससे महाकवि के रामायण, पुराण, महाभारत आदि में प्रयुक्त आख्यानों के गहन अध्ययन की पुष्टि होती है।

---

[1]. इन सभी राजाओं से सम्बन्धित आख्यानों के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **दर**– भय, शंख। **पद्मराग**–मणि, कमल की लालिमा। **विद्रुमलता**–पक्षियों से युक्त, लताओं से सम्पन्न। **मुक्तोपेतम**–मुक्ति को प्राप्त, मोतियों से युक्त।

अवतरणिका– इसप्रकार वासवदत्ता के वियोग में कन्दर्पकेतु द्वारा समुद्र में डूबकर, आत्महत्या का निर्णय करने के बाद की स्थिति के विषय में महाकवि कहते हैं कि–

(130) इति विचिन्त्य कुररखरनखरशिखरखण्डित–पृथुरोमशल्यसंकुलम्, संकलितजलनकुलोच्चारशारम्,क्रोष्टु–कुलोत्सृष्टविकटकर्कटककर्परपरम्परापरिगतप्रान्तम्, अति–तरलजलरयलुलितचटुलशफरकुलकवलनकृतमतिनिभृतबक–शकुनिनिवहधवलितपरिसरम्,अतिचपलजलकपिकुलविहरण–ललितसलिलकणनिकरपरिमिलनशिशिरिततमालतलम्, अनु–दिननिपतदतितरुणवनमहिषगवलशिखरविलिखितविषम–तटम्, अनवरतचरदसितमुखचरणविहगनिवहमधुरनिनदमुख–रितम्, अहिमकरकरनिकररुचिरजलमनुजगणशयनमृदित–तटधरणीतलम्, अतिबहलमदजलशबलकरटतटकरिशत–निपतितमधुकरनिकरविरुतिरतिकरम्, अतिजवनपवनविधु–तजलधिजलविघटननिपतितमणिगणपरिगतपरिसरम्, जल–निधिजलगतभुजगनिर्मुक्तनिर्मोकपट्टम्, दर्पणमिव वसुन्धरायाः स्फटिककुट्टिममिव वरुणस्य, कमलवनमिव सपद्मरागम्, वनप्रदेशमिव सविद्रुमलतम्, कातरमिव सदरम्, विष्णुमि–वानेकमुक्तोपेतम्, पुलिनतलमाससाद।

पदच्छेद– इति विचिन्त्य कुरर–खर–नखर–शिखर–खण्डित–पृथु–रोम–शल्य–संकुलम्,संकलित–जल–नकुल–उच्चार–शारम्, क्रोष्टु–कुल–उत्सृष्ट–विकट–कर्कटक–कर्पर–परम्परा–परिगत–प्रान्तम्, अति–तरल–जल–रय–लुलित–चटुल–शफर–कुल–कवलन–कृतम् अति–निभृत–बक–शकुनि–निवह–धवलित–परिसरम्,अति–चपल–जल–कपि–

कुल–विहरण–ललित–सलिल–कण–निकर–परिमिलन–शिशिरित–तमाल–तलम्, अनुदिन–निपतत्–अति–तरुण–वन–महिष–गवल[1]– शिखर–विलिखित–विषम–तटम्, अनवरत–चरत् असित–मुख–चरण–विहग–निवह–मधुर–निनद–मुखरितम्, अहिमकर–कर–निकर–रुचिर–जल–मनुज–गण–शयन–मृदित–तट–धरणी–तलम्, अति–बहल–मद– जल–शबल–करट[2]– तट–करि–शत–निपतित–मधुकर–निकर–विरुति–रति–करम्,अति–जवन–पवन–विधुत–जलधि–जल–विघटन–निपतित–मणि–गण–परिगत–परिसरम्,जलनिधि–जल–गत–भुजग–निर्–मुक्त–निर्मोक–पट्टम्, दर्पणम् इव वसुन्धरायाः स्फटिक–कुट्टिमम् इव वरुणस्य, कमल–वनम् इव सपद्म–रागम्,वन–प्रदेशम् इव सविद्रुम–लतम्, कातरम् इव सदरम्, विष्णुम् इव अनेक–मुक्ता–उपेतम्, पुलिनतलम् आससाद।

अनुवाद– इसप्रकार विचारकर यह सागर के तट पर पहुँचा, जो चक्रवाक के तीक्ष्ण नखों के अग्रभाग से विदारित की गयी, बड़ी–बड़ी मछलियों के टुकड़ों से व्याप्त था, जो एकत्रित हुए ऊदबिलाओं की विष्ठा(उच्चार) से युक्त था, जो श्रृगालों के समूह द्वारा परित्यक्त विकट केकड़ों के कपालों से व्याप्त प्रान्तप्रदेश वाला था, जो अत्यधिक चंचल जल के वेग से चमकती हुई मछलियों के समूह को खाने के इच्छा से शान्तरूप में विराजमान बगुले तथा पक्षियों के समूह से धवल परिसर वाला था,

जो अत्यन्त चंचल जल–वानरों के समूह के विचरण करने के कारण उठे हुए जल–कणों के समूह से मिलने से शीतल हुए तमाल के तल से युक्त था, जो प्रतिदिन आने वाने तरुण जंगली भैंसों के सींगों के अग्रिम भाग से खोदे जाने से असमान तट भाग वाला था, जो निरन्तर घूमते हुए काले मुख तथा चोंच वाले राजहंसों के समूह

---

1 . गवलं महिषं श्रृंगमित्यमरः।

2 . काकेभगण्डौ करटावित्यमरः।

'कट' यह पाठ भी मिलता है, अर्थ में भिन्नता नहीं है।

की मधुरध्वनि से मुखरित था, जो सूर्य की किरणों के समूह से रुचिर तथा जलमानुषों के समूह के शयन के कारण कोमल पृथ्वीतल से युक्त था, जो प्रचुर मात्रा वाले मदजल से युक्त कपोलस्थल वाले सैंकड़ों हाथियों पर बैठे हुए भ्रमरों के समूह के गुंजार से आनन्द प्रदान करने वाला था,

जो अत्यधिक वेग के कारण चलते हुए वायु से कम्पित समुद्र के जल की बड़ी–बड़ी लहरों के टकराने से निकले हुए मणियों के समूह से व्याप्त परिसर से सम्पन्न था, जो समुद्र के जल में विद्यमान सर्पों द्वारा परित्यक्त केचुलियों से भरा पड़ा था, जो पृथिवी के दर्पण के समान था, जो वरुण के स्फटिक निर्मित फर्श के समान था, जो कमल की लालिमा से युक्त, कमल के वन के समान, पद्मराग मणियों से युक्त था, जो पक्षियों तथा लताओं से युक्त वनप्रदेश के समान विद्रुम लताओं वाला था, जो भय से युक्त कायर के समान शंखों से भरा पड़ा था, जो मुक्ति को प्राप्त हुए अनेक प्राणियों से युक्त विष्णु के समान अनेक मोतियों से सम्पन्न था। (इसप्रकार की विशेषताओं वाले सागर के तट पर कन्दर्पकेतु गया।)

'चन्द्रिका'– उपर्युक्त अंश में कवि ने समुद्र का सटीक वर्णन किया है तथा यहाँ उपलब्ध होने वाले जीव, वनस्पति आदि, जिनमें चक्रवाक, ऊदबिलाव, श्रृगाल, बगुले आदि मछलियों के लोभी अन्य पक्षी, जल–वानर, जंगली भैंसे, राजहंस, जल–मानुष, हाथी, भ्रमर, वेगवान् वायु, सर्प एवं उनकी कैंचुली, पद्मराग मणि, विद्रुम अर्थात् मूँगे की लता और मोतियों का अत्यन्त स्वाभाविक, प्रत्यक्ष के समान चित्रण किया है। यहाँ कवि की कल्पनाशक्ति तथा वर्णन क्षमता दोनों ही वस्तुतः अपने उत्कृष्टरूप में प्रदर्शित हुए हैं।

विशेष–(i) समुद्र तट का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण करने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) उपमा एवं श्लेष अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) समुद्र वर्णन में एकत्रित हुए चक्रवाक द्वारा अपने तीक्ष्ण नाखूनों से विदीर्ण की गयी मरी हुई बड़ी–बड़ी मछलियों के टुकड़ों तथा ऊदबिलाओं की विष्ठा का उल्लेख करने से बीभत्सरस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(आकाशवाणीवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद सर्वप्रथम उसने समुद्र में स्नान किया और उसके बाद आत्महत्या हेतु समुद्र में उतरना आरम्भ किया, इसी का वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(131)ततः कृतस्नानादिसकलकृत्यो जलनिधिजलम–वतरितुमारेभे, शरीरत्यागाय। अथ सानुग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयंकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिंशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत्–

'आर्य कन्दर्पकेतो! पुनरपि तव प्रियया संगति–र्भविष्यत्यचिरेण तद्विरम मरणव्यवसायात्' इति।'

सोऽपि तदुपश्रुत्य मरणारम्भाद्विरराम। ततः प्रियासमागमाशया शरीरस्थितिहेतुमशनं चिकीर्षुः कच्छोपान्तवनं जगाम। अथ तत इतः परिभ्रमन्, फलमूलादिना वने वर्तयन्, कियन्तं कालं निनाय कन्दर्पकेतुः।

पदच्छेद– ततः कृत–स्नान–आदि–सकल–कृत्यः जलनिधि–जलम् अवतरितुम् आरेभे, शरीर–त्यागाय। अथ सानुग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयंकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिंशुमारेषु आकाश–सरस्वती समुदचरत्– 'आर्य कन्दर्पकेतो! पुनः अपि तव प्रियया संगतिः भविष्यति अचिरेण, तत् विरम, मरण–व्यवसायात्' इति, सः अपि तत् उपश्रुत्य मरण–आरम्भात् विरराम।

ततः प्रिया–समागम–आशया शरीर–स्थिति–हेतुम् अशनम् चिकीर्षुः, कच्छ–उपान्त–वनम् जगाम। अथ ततः इतः परिभ्रमन्, फल–मूलादिना वने वर्तयन्, कियन्तम् कालम् निनाय कन्दर्पकेतुः।

अनुवाद– उसके पश्चात् स्नान आदि दैनिक कर्मों को सम्पादित करके, शरीर को त्यागने के लिए कन्दर्पकेतु ने समुद्र के जल में उतरना आरम्भ किया, तब ग्राहों के अनुग्रह से युक्त हो जाने पर, मत्स्यों द्वारा मत्सरता का त्याग कर दिए जाने पर, कछुओं द्वारा उसे खाने की इच्छा से रहित होने पर, नक्रों द्वारा क्रूरतारहित होने पर, मकरों के भयंकरता विहीन होने पर, जल–गजों के मारण रहित होने पर, आकाशवाणी ने कहा कि–

'आर्य कन्दर्पकेतु! शीघ्र ही तुम्हारा मिलन प्रियतमा से होगा, इसलिए मरने से रुक जाओ।'

उसे सुनकर वह भी मरने के प्रयास से रुक गया। उसके बाद प्रिया के समागम की आशा से शरीर धारण करने के लिए कुछ खाने हेतु वह कच्छ प्रदेश के पास में ही एक वन में गया। तत्पश्चात् इधर उधर घूमते हुए फल–मूल आदि खाकर वन में ही कन्दर्पकेतु ने कुछ समय व्यतीत किया।

'चन्द्रिका'– इसके बाद समुद्र में स्थित सभी ग्राह, बड़े–बड़े मत्स्य, कछुए, नक्र, मकर तथा जल–हस्तियों द्वारा अपने हिंसकभाव का परित्याग करके अत्यन्त अनुकम्पायुक्त होने पर आकाशवाणी ने उसे आत्महत्या करने से रोक दिया, जिसपर विश्वास करके कन्दर्पकेतु ने मरने का विचार त्याग दिया और भविष्य में प्रिया से मिलने की आशा में शरीर को जीवित रखने के लिए वन में उपलब्ध फल–मूल को खाकर वह वन प्रदेश में इधर–उधर घूमते हुए समय व्यतीत करने लगा।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में आकाशवाणी के प्रयोग में शृंगार के अंगरूप में अद्भुत रस का परिपाक हुआ है।

(ii) भयंकर समुद्री जीवों द्वारा अपने हिंसकभाव का परित्याग करने के कारण नायक कन्दर्पकेतु के पुण्यों तथा नायिका से भावी–मिलन की सूचना भी अभिव्यंजित हुई है।

(iii) आकाशवाणी को सुनकर मरने के विचार का परित्याग करने से आकाशवाणी की सत्यता पर दृढ़ विश्वास की अभिव्यक्ति से नायक के व्यक्तित्त्व की विशेषता भी अभिव्यक्त हुई है।

(वर्षाकालवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार अपनी प्रिया वासवदत्ता से पुनर्मिलन की आशा में कन्दर्पकेतु उसी वन में इधर–उधर भटकता रहा, इसी बीच वर्षाकाल आ गया, जिसका सुन्दर तथा मनोहारी वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(132) एकदा कतिपयमासापगमे काकलीगायन इव समृद्धनिम्नगानदः, सन्ध्यासमय इव नर्तितनीलकण्ठः,कुमार–मयूर इव समारुढशरजन्मा, महातपस्वीव प्रशमितरजःप्रसरः, तापस इव धृतजलदकरकः, प्रलयकाल इव दर्शितानेक–तरणिविभ्रमः, निरुपद्रवकाननोद्देश इव घनोत्सेकितसारंगः, रेवतीकरपल्लव इव हलिधृतिकरः, लंकेश्वर इव समेघनादः, विन्ध्य इव घनश्यामः, युवतिजन इव पीनपयोधरः, समा–जगाम वर्षासमयः।

पदच्छेद– एकदा कतिपय–मास–अपगमे काकली–गायन इव समृद्ध–निम्नगा–नदः, सन्ध्या–समयः इव नर्तित–नील–कण्ठः, कुमार–मयूरः इव समारुढ–शर–जन्मा, महा–तपस्वी इव प्रशमित–रजःप्रसरः, तापसः इव धृत–जलद–करकः, प्रलयकालः इव दर्शित–अनेक–तरणि–विभ्रमः, निरुपद्रव–कानन–उद्देशः इव घन–उत्सेकित–सारंगः, रेवती–कर–पल्लवः इव हलि–धृतिकरः, लंकेश्वरः इव समेघनादः, विन्ध्यः इव घनश्यामः, युवतिजनः इव पीनपयोधरः, समाजगाम वर्षा–समयः।

अनुवाद– कुछ मास व्यतीत हो जाने पर एक बार वर्षाकाल आ गया, जो सुन्दर तथा गम्भीर काकली गायन[1] के समान(उपमा) समृद्ध जल वाली नदियों तथा नदों से सम्पन्न था, जो नृत्य करते हुए भगवान् शंकर के सन्ध्याकाल के समान(उपमा), नाचते हुए मोरों वाला था, जो आरूढ़ हुए कार्तिकेय के वाहन मोर के समान (उपमा) उत्पन्न हुए अत्यधिक सरकण्डों वाला था, जो रजोगुण पर नियन्त्रण करने वाले महातपस्वी के समान(उपमा) शान्त धूल के कणों से युक्त था, जो कमण्डलु धारण करने वाले तपस्वी के समान(उपमा), बादलों तथा ओलों को धारण करने वाला था,

जो अनेक सूर्यों को प्रदीप्त करने वाले, प्रलयकाल के समान (उपमा) अनेक नौकाओं के विलास को प्रदर्शित कर रहा था, सघन तथा उन्माद से भरे हुए हरिणों से युक्त, जो शान्त वन के समान (उपमा) मेघों द्वारा उत्कण्ठित मोरों से सम्पन्न था, जो बलराम को सन्तुष्ट करने वाले रेवती के हाथरूपी पल्लव से समान(उपमा), किसानों को धैर्य प्रदान करने वाला था, जो अपने पुत्र मेघनाद से सम्पन्न रावण की गर्जना के समान(उपमा) मेघों के गर्जन से युक्त था, जो कृष्णवर्ण वाले विन्ध्याचल के समान(उपमा) नीले वर्ण वाला था, जो पुष्ट स्तनों वाली रमणी के समान(उपमा) विशाल बादलों से भरा हुआ था, (इसप्रकार का वर्षाकाल आ गया।)

'चन्द्रिका'– इसप्रकार प्रिया वासवदत्ता से पुनर्मिलन की आशा में कन्दर्पकेतु ने वन में ही भटकते हुए कुछ समय बिता दिया और तभी वर्षाकाल आ गया। इसी का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

यह वर्षाकाल गम्भीर गान का प्रवर्तन करने वाले 'काकली' नामक गायन के समान नदी एवं बड़े–बड़े नदों से युक्त था। इसमें

[1]. इसप्रकार के उल्लेखों से महाकवि का संगीत विषयक गहनज्ञान भी अभिव्यक्त हो रहा है।

अनेक मोर वैसे ही नृत्य करते रहते थे, **जैसे–** सन्ध्याकाल में महादेव नृत्य करते हैं। इस वर्षा के समय में सरकण्डों से उत्पन्न होने वाले कार्तिकेय के वाहन मोरों की अधिकता के साथ–साथ सरकण्डे अत्यधिक उत्पन्न हो गए थे। महातपस्वी जिसप्रकार रजोगुण पर विजय प्राप्त कर लेता है, वैसे ही इस समय में रज अर्थात् धूल के कण पूरी तरह शान्त हो गए थे।

यह वर्षाकाल कमण्डलु को धारण करने वाले तपस्वी के समान बादलों तथा ओलों को धारण करने वाला था, जिसप्रकार अनेक सूर्यों को प्रकाशित करने वाले प्रलयकाल में अनेक नौकाओं का विलास प्रकट होता है, वैसे ही इसमें अनेक मदमस्त हरिण तथा मेघों को देखकर उत्कण्ठित मोरों का बाहुल्य था। इसके अतिरिक्त इसमें कृषक अत्यधिक धैर्य का अनुभव कर रहे थे तथा यह काले, घने बादलों के भयंकर गर्जन से युक्त था। शेष स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपमा एवं श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है। महाकवि ने यहाँ श्लेष की महिमा से उपमाओं को प्रस्तुत करते हुए वर्षाकाल की मनोरम भावाभिव्यक्ति की है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **निम्नगानद**–गम्भीर गान के प्रवर्तक, नदी एवं नदों वाले। **नीलकण्ठ**–शिव, मोर। **शरजन्मा**–कार्तिकेय, शरकण्डों वाला। **रजस्**–रजोगुण, धूलिकण। **जलदकरक**–बादल तथा ओले, कमण्डलु। **तरणि**–सूर्य, नौका। **सारंग**–हरिण, मोर। **हलि**–बलराम, किसान। **मेघनाद**–मेघ की गर्जन, राक्षस विशेष। **पयोधर**– बादल, स्तन।

(iii) मोरों की प्रमुखता वाले वर्षाकाल में मोरों के मनोविज्ञान को महाकवि ने अत्यन्त सुन्दर शैली में चित्रित किया गया है।

(iv) वर्षाकाल में सर्वाधिक सन्तोष तथा प्रसन्नता कृषक को होती है, उसका भी कवि ने यहाँ उल्लेख किया है।

(v) श्लेष के माध्यम से पयोधरों अर्थात् बादलों की उपमा युवतियों के पयोधरों अर्थात् पुष्ट स्तनों से दी गयी है, जो अत्यन्त मनमोहक बन पड़ी है।

अवतरणिका– इसप्रकार वर्षाकाल का चित्रात्मक वर्णन करने के बाद, महाकवि उसी समय प्रकट हुए इन्द्रधनुष का मनोरम चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(इन्द्रधनुषवर्णनम्)

(133) विभिन्नमेघनीलोत्पलकानननीले क्रीडासरसीव नभसि स्मरस्य कनकरत्ननौकेव, जलदकाललक्ष्मीमातंग– कन्यानर्तनरज्जुरिव, नभः सौधतोरणरत्नमालिकेव, प्रवसता निदाघेन दिवः पयोधरे स्मरणाय दत्ता नखपदावलिरिव, गगनलक्ष्मीबन्धुररशनामालेव,नभोमन्दारसुन्दरकलिकेव, रति– नखमार्जन रत्नशलाकेव, रत्नमयी विलासयष्टिरिव कुसुम– केतोरिन्द्रधनु– र्लता रराज।

पदच्छेद– विभिन्न–मेघ–नीलोत्पल–कानन–नीले क्रीडा–सरसि इव नभसि स्मरस्य कनक–रत्न–नौका इव, जलद–काल–लक्ष्मी–मातंग–कन्या–नर्तन–रज्जुः इव[1], नभः सौध–तोरण–रत्न–मालिका इव, प्रवसता निदाघेन दिवः पयोधरे स्मरणाय दत्ता नख–पदावलिः इव, गगन–लक्ष्मी–बन्धुर–रशना–माला इव, नभः–मन्दार–सुन्दर–कलिका इव, रति–नख–मार्जन–रत्न–शलाका इव, रत्नमयी विलास–यष्टिः इव कुसुम–केतोः इन्द्रधनुः–लता रराज।

अनुवाद– **उसी समय इन्द्रधनुषरूपी लता** (रूपक) **सुशोभित होने लगी, जो मानो अनेक मेघरूपी नीलकमल** (रूपक,उत्प्रेक्षा) **के वन के कारण नीलवर्ण हुए क्रीड़ा सरोवर के समान आकाश में कामदेव की**

---

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि के समय में मतंग कन्याओं द्वारा रस्सी पर चलने तथा नृत्य करने जैसे खेलों से लोगों का मनोरंजन करने की प्रतीति हो रही है।

अनेक मोर वैसे ही नृत्य करते रहते थे, **जैसे**– सन्ध्याकाल में महादेव नृत्य करते हैं। इस वर्षा के समय में सरकण्डों से उत्पन्न होने वाले कार्तिकेय के वाहन मोरों की अधिकता के साथ–साथ सरकण्डे अत्यधिक उत्पन्न हो गए थे। महातपस्वी जिसप्रकार रजोगुण पर विजय प्राप्त कर लेता है, वैसे ही इस समय में रज अर्थात् धूल के कण पूरी तरह शान्त हो गए थे।

यह वर्षाकाल कमण्डलु को धारण करने वाले तपस्वी के समान बादलों तथा ओलों को धारण करने वाला था, जिसप्रकार अनेक सूर्यों को प्रकाशित करने वाले प्रलयकाल में अनेक नौकाओं का विलास प्रकट होता है, वैसे ही इसमें अनेक मदमस्त हरिण तथा मेघों को देखकर उत्कण्ठित मोरों का बाहुल्य था। इसके अतिरिक्त इसमें कृषक अत्यधिक धैर्य का अनुभव कर रहे थे तथा यह काले, घने बादलों के भयंकर गर्जन से युक्त था। शेष स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपमा एवं श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है। महाकवि ने यहाँ श्लेष की महिमा से उपमाओं को प्रस्तुत करते हुए वर्षाकाल की मनोरम भावाभिव्यक्ति की है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **निम्नगानद**–गम्भीर गान के प्रवर्तक, नदी एवं नदों वाले। **नीलकण्ठ**–शिव, मोर। **शरजन्मा**–कार्तिकेय, शरकण्डों वाला। **रजस्**–रजोगुण, धूलिकण। **जलदकरक**–बादल तथा ओले, कमण्डलु। **तरणि**–सूर्य, नौका। **सारंग**–हरिण, मोर। **हलि**–बलराम, किसान। **मेघनाद**–मेघ की गर्जन, राक्षस विशेष। **पयोधर**– बादल, स्तन।

(iii) मोरों की प्रमुखता वाले वर्षाकाल में मोरों के मनोविज्ञान को महाकवि ने अत्यन्त सुन्दर शैली में चित्रित किया गया है।

(iv) वर्षाकाल में सर्वाधिक सन्तोष तथा प्रसन्नता कृषक को होती है, उसका भी कवि ने यहाँ उल्लेख किया है।

(v) श्लेष के माध्यम से पयोधरों अर्थात् बादलों की उपमा युवतियों के पयोधरों अर्थात् पुष्ट स्तनों से दी गयी है, जो अत्यन्त मनमोहक बन पड़ी है।

अवतरणिका– इसप्रकार वर्षाकाल का चित्रात्मक वर्णन करने के बाद, महाकवि उसी समय प्रकट हुए इन्द्रधनुष का मनोरम चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(इन्द्रधनुषवर्णनम्)

(133) **विभिन्नमेघनीलोत्पलकानननीले क्रीडासरसीव नभसि स्मरस्य कनकरत्ननौकेव, जलदकाललक्ष्मीमातंग–कन्यानर्तनरज्जुरिव, नभः सौधतोरणरत्नमालिकेव, प्रवसता निदाघेन दिवः पयोधरे स्मरणाय दत्ता नखपदावलिरिव, गगनलक्ष्मीबन्धुररशनामालेव,नभोमन्दारसुन्दरकलिकेव, रति–नखमार्जन रत्नशलाकेव, रत्नमयी विलासयष्टिरिव कुसुम–केतोरिन्द्रधनु– र्लता रराज।**

पदच्छेद– विभिन्न–मेघ–नीलोत्पल–कानन–नीले क्रीडा–सरसि इव नभसि स्मरस्य कनक–रत्न–नौका इव, जलद–काल–लक्ष्मी–मातंग–कन्या–नर्तन–रज्जुः इव[1], नभः सौध–तोरण–रत्न–मालिका इव, प्रवसता निदाघेन दिवः पयोधरे स्मरणाय दत्ता नख–पदावलिः इव, गगन–लक्ष्मी–बन्धुर–रशना–माला इव, नभः–मन्दार–सुन्दर–कलिका इव, रति–नख–मार्जन–रत्न–शलाका इव, रत्नमयी विलास–यष्टिः इव कुसुम–केतोः इन्द्रधनुः–लता रराज।

अनुवाद– **उसी समय इन्द्रधनुषरूपी लता** (रूपक) **सुशोभित होने लगी, जो मानो अनेक मेघरूपी नीलकमल** (रूपक,उत्प्रेक्षा) **के वन के कारण नीलवर्ण हुए क्रीड़ा सरोवर के समान आकाश में कामदेव की**

---

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि के समय में मतंग कन्याओं द्वारा रस्सी पर चलने तथा नृत्य करने जैसे खेलों से लोगों का मनोरंजन करने की प्रतीति हो रही है।

रत्नजटित नौका हो, जो मानो वर्षाकाल की शोभारूपी चाण्डाल कन्या के नाचने की रस्सी हो,[1] (रूपक,उत्प्रेक्षा) **जो मानो आकाशरूपी प्रासाद के तोरण के रत्नों से जड़ी हुई माला हो**(रूपक,उत्प्रेक्षा), **जो मानो आकाशरूपी नायक द्वारा स्मरण दिलाने के लिए आकाशरूपी नायिका के मेघरूपी स्तनों पर दी गयी नखक्षत की पंक्ति हो**(रूपक,उत्प्रेक्षा),

जो मानो आकाशरूपी लक्ष्मी की मनोरम करधनी की माला हो (रूपक,उत्प्रेक्षा), **जो मानो आकाशरूपी मन्दार वृक्ष की सुन्दर कली हो, जो मानो रति के नाखून को साफ करने वाली रत्नजटित शलाका हो** (उत्प्रेक्षा), **जो मानो कामदेव की रत्नमयी घूमने की विलास की छड़ी हो** (उत्प्रेक्षा) ।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत अंश में कवि ने इन्द्रधनुष में लता का, कामदेव की स्वर्णनिर्मित एवं रत्नों से जड़ी नौका का, मतंग कन्या की नृत्य करने वाली रस्सी का, आकाशरूपी प्रासाद के तोरण की रत्नों से जड़ी माला का, यात्रा में दूर देश जा रहे ग्रीष्मरूपी नायक की यादगार के लिए आकाशरूपी नायिका के स्तनों पर अंकित नखक्षत की पंक्ति का, आकाशरूपी लक्ष्मी की मेखला (करधनी) माला का, आकाशरूपी मन्दार के वृक्ष की सुन्दर कली का तथा कामदेव की पत्नी रति के नाखूनों को साफ करने वाली रत्नों से जड़ी हुई शलाका का और कामदेव की रत्नों से जड़ी हुई विलास छड़ी का मनभावन आरोप किया गया है।

विशेष–(i) वर्षाकाल की चर्चा हो तथा इन्द्रधनुष को भूल जाएँ, ऐसा भला कैसे सम्भव है? इसी दृष्टि से हम यहाँ इन्द्रधनुष में की गयी कवि की मनोरम कल्पनाओं को, उनके उर्वर कविहृदय के रूप में देख सकते हैं।

---

[1]. इसप्रकार के उल्लेखों से कवि ने अपने समाज की परम्पराओं के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं।

(ii) नाखूनों को साफ करने के लिए रत्नजटित सोने की शलाकाओं के उल्लेख से तात्कालिक समाज की समृद्धि के साथ–साथ कवि का आयुर्वेद विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि कवि इस तथ्य से परिचित है कि नाखूनों में स्थित मैल के उदर में जाने से व्यक्ति बीमार पड़ सकता है। इसीलिए यहाँ नाखूनों को रत्नजटित शलाका से साफ करने की बात कही गयी है।

(iii) रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों के माध्यम से कवि ने मनभावन सुन्दर कल्पनाओं को प्रस्तुत करके सहृदय सामाजिक को आह्लादित करने का सुन्दर एवं प्रशंसनीय प्रयास किया है।

(विद्युत्वर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद वर्षावर्णन के ही क्रम में महाकवि वर्षाकाल का मानवीकरण करते हुए उसमें प्रदीप्त होने वाली आकाशीय विद्युत् आदि के विषय में सुन्दर वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(134)अतितृष्णावेगपीतजलनिधिजलशंखमानां बला–काच्छलादुद्वमन्निवादृश्यत जलधरनिकरः। पीतहरितैः कृष्ण–केदारिकाकोष्ठिकासु समुत्पतद्भिर्दर्दुरशिशुकैर्जातुषैर्नयद्यूतैरिव चिक्रीड विद्युता समं घनकालः। रविदीपकज्ज्वलितमेघनि–कषोपले मेघसमयस्वर्णकारकर्षितस्वर्णरेखेव तडिदशोभत। विरहिणां हृदयं विदारयितुं कृतं करपत्रमिव कुसुमायुधस्य केतकीपुष्पमभासत। जलददारुणि लोलतडिल्लताकरपत्रदा–रिते पवनवेगनिर्धूताश्चूर्णनिकरा इव जलकणा बभुः। विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव, खरपवनवेगभ्रमितघन–रट्टघट्टनसंचूर्णिततारानिकरा इव, त्रिभुवनविजिगीषोर्मकरध्व–जस्य प्रस्थानलाजांजलय इव, करका व्यराजन्त। नवशाद्वलं सेन्द्रगोपं महीमहिलायाः शुकांगश्यामलं लाक्षारसांकितं स्त–नोत्तरीयमिवालक्ष्यत।

पदच्छेद– अति–तृष्णा–आवेग–पीत–जलनिधि–जल–शंख–मानाम् बलाका–छलात् उद्वमन् इव अदृश्यत जलधर–निकरः। पीत–हरितैः कृष्णके–दारिका–कोष्ठिकासु समुत्पतद्भिः दर्दुर–शिशुकैः जातुषैः नय–द्यूतैः इव चिक्रीड विद्युता समम् घनकालः। रवि–दीपक–ज्वलित–मेघ–निकष–उपले मेघ–समय–स्वर्णकार–कर्षित–स्वर्ण–रेखा इव तडित् अशोभत। विरहिणाम् हृदयम् विदारयितुम् कृतम् करपत्रम् इव कुसुम–आयुधस्य केतकी–पुष्पम् अभासत। जलद–दारुणि– लोल–तडित्–लता–करपत्र–दारिते पवन–वेग–निर्धूताः चूर्ण–निकराः इव जलकणाः बभुः। विच्छिन्न–दिक्–वधू–हार–मुक्ता–निकराः इव, खर–पवन–वेग–भ्रमित–घन–रट्ट–घट्टन–संचूर्णित–तारा–निकराः इव, त्रिभुवन–विजिगीषोः मकरध्वजस्य प्रस्थान–लाजा–अंजलय इव, करका व्यराजन्त। नव–शाद्वलम् सेन्द्र–गोपम् मही–महिलायाः शुक–अंग–श्यामलम् लाक्षारस–अंकितम् स्तन–उत्तरीयम् इव अलक्ष्यत।

अनुवाद– उस समय अत्यन्त तृष्णा (प्यास)**के आवेग के कारण मानो मेघ ने समुद्र के जल को पीने के साथ ही जल में विद्यमान शंखों को भी पी लिया हो**(उत्प्रेक्षा), **जिन्हें अब वह मेघ के नीचे उड़ती हुई बगुलियों के बहाने से वमन द्वारा बाहर निकाल रहा हो,**[1] **जो वर्षाकाल, मानो नीले वर्ण वाली क्यारीरूपी कोष्ठिकाओं में उछलते हुए, पीले तथा हरे रंग के मेंढ़कों के बच्चों से लाख–निर्मित मोहरों से विद्युत् के साथ जुआ खेल रहा हो** (रूपक,उत्प्रेक्षा) **तथा सूर्यरूपी दीपक से काली की हुई मेघरूपी कसौटी के पत्थर पर मानो वर्षाकाल रूपी स्वर्णकार द्वारा खींची गयी स्वर्ण की रेखा के समान बिजली सुशोभित हो रही थी**(रूपक,उत्प्रेक्षा) **तथा विरही जनों के हृदय को**

---

[1]. प्रस्तुत अंश से महाकवि का आयुर्वेद विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि यही शास्त्र, अनुपयुक्त या हानिकारक वस्तु को खाए जाने पर वमन का निर्देश प्रदान करता है।

विदीर्ण करने के लिए, कामदेव के आरे के समान मानो केतकी का पुष्प भी विकसित हो रहा था(उपमा,उत्प्रेक्षा) ।

जो मानो विद्युल्लतारूपी आरे से काटे गए मेघरूपी काष्ठ पर वायु के वेग से उड़ाए हुए बुरादे के समान जल की बूँदें शोभायमान हो रही थीं (रूपक,उत्प्रेक्षा) तथा ओले, मानो दिशारूपी वधुओं के हार के टूटे हुए मोतियों के समूह के समान (उपमा,रूपक,उत्प्रेक्षा) तथा वे मानो तेज वायु के वेग से उड़ते हुए मेघरूपी चक्की में पीसे जाने के कारण चूर्ण बनाए गए, तारों के समूह के समान एवं तीनों लोकों पर विजय की इच्छा करने वाले कामदेव के प्रस्थान के समय मांगलिक लाजाओं (खील) की अंजलि के समान प्रतीत हो रहे थे (उपमा, रूपक,उत्प्रेक्षा)।

इसके अलावा वीर वधूटी से भरे हुए नई दूब के मैदान मानो पृथिवीरूपी रमणी के लाक्षारस से अंकित तोतों के पंखों के समान, हरे वर्ण के स्तनों को ढ़कने वाले दुपट्टे के समान दिखायी दे रहे थे (उपमा, रूपक,उत्प्रेक्षा)।

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने वर्षाकाल में आकाश में छाए हुए काले मेघों के नीचे उड़ते हुए बगुलों में मेघों का मानवीकरण करते हुए सुन्दर कल्पना की है। तदनुसार– बादलों ने अत्यधिक प्यास से व्याकुल होकर समुद्र का जल जल्दीबाजी में वहाँ स्थित शंखों के साथ अत्यधिक पी लिया, जिसे अब वे नीचे उड़ती हुई बगुलियों के बहाने से उलटी करके बाहर निकाल रहे हैं।

इसके अलावा इसी अवसर पर मेढ़कों में जुए के पासों की कल्पना करना भी तलस्पर्शी बन पड़ा है। तदनुसार–नीले रंग की क्यारीरूपी कोष्ठिकाओं में इधर–उधर उछलते हुए पीले तथा हरे रंग के मेंढकों के बच्चे मानो लाख से बनी हुई जुआ खेलने की मोहरें हों, जिनके माध्यम से वर्षाकाल बिजली के साथ जुआ खेल रहा हो।

तीसरी कल्पना में मेघ को कसौटी का पत्थर माना गया है, जिसे सूर्यरूपी दीपक द्वारा काजल वमन से अत्यधिक काला किया गया है, जिसपर वर्षाकाल रूपी स्वर्णकार द्वारा स्वर्ण की शुद्धता जानने के लिए आकाशीय बिजलीरूपी स्वर्ण की रेखा खींची गयी है।

इसीप्रकार वर्षाकाल में खिलने वाले केतकी के पुष्पों में कामदेव के आरे की कल्पना करते हुए कवि ने इसे विरही लोगों के हृदयों को चीरने वाला बताया है। बादल से गिरने वाले जल के कणों में कवि ने यहाँ मेघरूपी लकड़ी पर चंचल विद्युल्लतारूपी आरे से काटे गए बुरादे के टुकड़ों के रूप में देखा है, जो इस अवसर पर चलने वाले वायु के वेग के कारण आकाश में इधर–उधर उड़ाए जा रहे हैं।

इसीप्रकार आगे वर्षाकाल में गिरने वाले ओलों में दिशारूपी वधुओं के हार के टूटे हुए मोतियों के समूह की, बादलरूपी चक्की में पीसे जाने से चूर्ण बने हुए तारों के समूह की, जो तेज वायु के वेग के कारण इधर–उधर फैल रहे हैं, कल्पना की है एवं तीनों लोकों को जीतने की आकांक्षा से विजय–यात्रा के लिए निकलने वाले कामदेव के ऊपर रति द्वारा डाले गए मांगलिक खीलों की, इसप्रकार कुल तीन मनोहारी परिकल्पनाएँ की हैं।

इसी क्रम में वीरवधूटी से युक्त नयी–नयी दूब घास के मैदानों में कवि, पृथ्वीरूपी स्त्री के स्तनों को ढ़कने के लिए लाक्षारस से चिह्नित तोतों के पंखों के समान हरे रंग के दुपट्टे की मनोहारिणी कल्पना भी करते हैं, जो वस्तुतः सहृदय सामाजिक को आह्लादित करने वाली और कवि की सुन्दर कल्पनाशक्ति की परिचायक है।

विशेष–(i) 'श्यामल' पद यहाँ तोते के पंखों के समान दूब के हल्के हरे रंग के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(ii) प्राचीन समय में भी मांगलिक कार्यों में धान को भूनने पर उसकी खीली हुई लाजाओं का प्रयोग किया जाता था, जिसकी ओर महाकवि ने यहाँ संकेत किया है, लोग ऐसा आज भी करते हैं।

(iii) उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(iv) स्वर्णकार सोने की शुद्धता को परखने के लिए कसौटी के पत्थर पर सोने से लकीर खींचते हैं, उसी को आधार बनाकर यहाँ महाकवि द्वारा सुन्दर कल्पना की गयी है।

(v) उपर्युक्त सभी वर्णन वस्तुतः कवि के स्वयं अनुभूत होने के साथ–साथ उनकी सूक्ष्म–दृष्टि और प्रकृतिप्रेम के परिचायक भी हैं।

(शरत्कालवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार वर्षाकाल के व्यतीत होने पर शरद् काल का मनोहारी वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(135) मेघकुम्भसलिलैः पृथिवीनायिकां स्नापयित्वा प्रावृट्चेटिकायां गतायां स्वच्छमम्बरं दर्शयन्ती शरच्चेटिका समाजगाम।

अनन्तरमखंजखंजरीटे, अकुंजितक्रोंचसंचरे, निर्भर–भरद्वाजद्विजवाचाटविटपिविटपे, पटुतरप्रभप्रभाते, उद्भ्रा–न्तशुककुलकलकलसंकुलकलमकेदारे, प्रवेशितवेशराजहंसे, कंसारातिदेहद्युतिद्युतले, हंसतूलतुलितजरज्जलमुचि, सान्द्री–कृतेन्दुमहसि, गामुकजनमृदितमधुतृणवीरुधि, सरससार–सरसितसारकासारे, कशेरुककन्दलुब्धपोत्रिपात्रोत्खातसर–स्तटभागे, चकितचातके, संचरन्मत्स्यपुत्रिपटलमधुरध्वनि–विहितमुदि, कदर्थितकदम्बे, प्रसृतबिसप्रसूने, विरलवारिदे, तारतरतारके, वारुणीतिलकचन्द्रमसि, स्वादुतरसलिले, स्फुरितशफरचक्रकवलननिभृतबकानीके, मूकमण्डूकमण्डले, संकोचितकंचुकिनि, कांचनच्छेदगौरगोधूमशालिशालिनि, उत्क्रोशदूत्क्रोशे, सुरभिसौगन्धिकगन्धहारिहरिणाश्वे, दरद–लितकुमुदामोदिनि, कौमुदीकृतमुदि, निर्बर्हबर्हिणि, कूजत् कोयष्टिके, धृतधृति, धार्तराष्ट्रे, हृष्टकलमगोपिका गीताकर्णन सुखितमृगयूथे, कथीकृतयूथिके, ग्लायमानमालतीमुकुले,

बन्धूकबान्धवे, विसूत्रितसौत्रामधनुषि, स्मेरकाश्मीररजः पिंजरितदशदिशि, विकस्वरकमले,

शरत्समयारम्भे विभृम्भमाणे कन्दर्पकेतुरितस्ततः परिभ्रमन् कांचिच्छिलापुत्रिकां मम प्रियानुकारिणीति करेण पस्पर्श।

पदच्छेद–मेघ–कुम्भ–सलिलैः पृथिवी–नायिकाम् स्नापयित्वा प्रावृट्–चेटिकायाम् गतायाम् स्वच्छम् अम्बरम् दर्शयन्ती शरद्–चेटिका समाजगाम।

अनन्तरम् अखंज–खंजरीटे, अकुंजित–क्रौंच– संचरे, निर्भर–भरद्वाज–द्विज–वाचाट–विटपि–विटपे, पटुतर–प्रभ–प्रभाते, उद्–भ्रान्त–शुककुल–कलकल–संकुल–कलम–केदारे, प्रवेशित–वेश–राज–हंसे, कंस–आराति–देह–द्युति–द्युतले, हंस–तूल–तुलित–जरत्–जल–मुचि, सान्द्रीकृत–इन्दु–महसि, गामुक–जन–मृदित–मधु–तृण–वीरुधि, सरस–सार–सरसित–सार–कासारे[1], कशेरुक–कन्द–लुब्ध–पोत्रि–पात्र–उत्खात–सरः–तट–भागे, चकित–चातके, संचरन् मत्स्य–पुत्रि–पटल–मधुर–ध्वनि–विहित–मुदि, कदर्थित–कदम्बे[2], प्रसृत–बिस– प्रसूने, विरल–वारिदे, तारतर–तारके, वारुणी–तिलक–चन्द्रमसि, स्वादु–तर–सलिले, स्फुरित–शफर–चक्र–कवलन–निभृत–बकानीके, मूक–मण्डूक–मण्डले, संकोचित–कंचुकिनि, कांचन–छेद–गौर–गोधूम–शालि–शालिनि, उत्क्रोशत् उत्क्रोशे, सुरभि–सौगन्धिक–गन्ध–हारि–हरिणाश्वे[3], दर–दलित–कुमुद–आमोदिनि, कौमुदी–कृत–मुदि, निर्बर्ह–बर्हिणि, कूजत् कोयष्टिके, धृत–धृति धार्तराष्ट्रे, हृष्ट–कलम–गोपिका–गीत–आकर्णन–सुखित–मृग–यूथे, कथी–कृत–यूथिके, ग्लायमान–मालती–मुकुले, बन्धूक

---

1. कासारः सरसी सर इत्यमरः।
2. यहाँ 'कादम्ब' पाठभेद भी मिलता है, तब इसका अर्थ 'कलहंस' होगा। (क) कदम्बो नीपवृक्षः । (ख) कादम्बः कलहंसः स्यादित्यमरः।
3. (क) हरिणाश्वो वायुः। (ख) पृषदश्वो गन्धवह इत्यमरः।

–बान्धवे, विसूत्रित–सौत्राम–धनुषि, स्मेर–काश्मीर–रजः पिंजरित–दश–दिशि, विकस्वर[1]–कमले, शरत् समय–आरम्भे विभृम्भमाणे

कन्दर्पकेतुः इतस्ततः परिभ्रमन् कांचित् शिला–पुत्रिकाम् मम प्रिया–अनुकारिणि, इति करेण पस्पर्श।

अनुवाद– इसके बाद, मेघरूपी कलश के जल से पृथिवीरूपी नायिका को स्नान करके, वर्षारूपी सेविका के चले जाने पर मानो स्वच्छ आकाशरूपी वस्त्र लेकर शरद्‌रूपी दूसरी दासी आ गयी।

जब खंजरीट पक्षी स्वेच्छापूर्वक विहार कर रहे थे, क्रौंचों द्वारा निर्बाधरूप से विचरण करने पर, भरद्वाज पक्षियों के कलरव से वृक्षों की शाखाओं के अत्यन्त मुखरित होने पर, प्रभातकाल के प्रभा से अत्यधिक भरा हुआ होने पर, उड़ते हुए तोतों के समूह के कलरव से धान के खेतों के परिपूरित होने पर, राजहंसों द्वारा अपने–अपने पूर्व स्थानों पर पहुँच जाने पर, आकाश–मण्डल के कृष्ण के शरीर के समान कान्ति से युक्त होने पर, वृष्टि करने वाले मेघों के हंसों के समान शुभ्रवर्ण होने पर, चन्द्रमा की किरणों के स्वच्छ होने पर,

पथिकों द्वारा गन्ने तोड़े जाने पर, सरोवरों के सारसों की मधुर ध्वनि से युक्त होने पर, मोथे के प्रेमी सूकरों द्वारा अपनी थूथड़ी द्वारा सरोवरों के तट से उसे खोदे जाने पर, चातकों के भयभीत होने पर, विचरण करते हुए मत्स्य पुत्रिका नामक पक्षियों की मधुर ध्वनि से प्रसन्नता की अभिव्यक्ति किए जाने पर, कदम्ब के वृक्षों के शोभा से रहित हो जाने पर, शंखों से द्वेष करने वाले कमल के पुष्पों के विकसित होने पर, मेघों के विरल होने पर,

तारों के अत्यधिक चमकदार होने पर, पश्चिम दिशा के तिलक के समान चन्द्रमा के विद्यमान होने पर, जलों के अत्यधिक मधुर होने पर, इधर–उधर घूमती हुई मछलियों को खाने के लिए बगुलों के ध्यानावस्थित होने पर, मेंढ़कों के समूह के ध्वनि से रहित होने पर,

---

[1]. विकासी तु विकस्वर इत्यमरः।

सर्पों के संकुचित हो जाने पर, गेहूँ की पीली बालियों के स्वर्ण के टुकड़ों के समान बनने पर, क्रौंच पक्षियों के अत्यधिक चिल्लाने पर, वायु द्वारा सुगन्धित श्वेत कमल की गन्ध को धारण करने पर,

कुछ ही खिले हुए कुमुदों की सुगन्ध के चारों ओर फैलने पर, चाँदनी द्वारा प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने पर, मोरों के पंखविहीन होने पर, टिटिहिरियों के कूजने पर, धृतराष्ट्र नामक हंस विशेष के धैर्य धारण करने पर, फसलों की रक्षा करने वाली स्त्रियो के गीत सुनने के कारण मृगों के समूहों के आनन्दित होने पर, जूही के नाममात्र अवशिष्ट रह जाने पर, मालती की कलियों के मुरझा जाने पर, इन्द्रधनुष के विनष्ट होने पर, विकसित केसर के पराग द्वारा दसों दिशाओं के पीले होने पर, कमलों के विकसित होने अर्थात् शरद्काल आरम्भ होने पर इधर–उधर घूमते हुए,

कन्दर्पकेतु ने किसी पत्थर द्वारा बनायी गयी मूर्ति का, यह समझकर हाथ से स्पर्श किया कि– 'यह तो मेरी प्रियतमा वासवदत्ता के समान ही है।'

'चन्द्रिका'– प्रकृति का जीवन्त वर्णन करते हुए कवि ने यहाँ वर्षाकाल के जाने तथा उसके बाद शरद्काल के आने में सुन्दर कल्पना की है। तदनुसार– मानो वर्षारूपी दासी ने पृथिवीरूपी नायिका को मेघरूपी कलश के जल के माध्यम से स्नान कराया और वह चली गयी। स्नान के बाद शरद्रूपी दूसरी दासी आकाशरूपी निर्मल वस्त्र लेकर पृथिवीरूपी नायिका को पहनाने के लिए आ गयी।

इसके बाद कवि शरद्ऋतु में आनन्दित होने वाले खंजरीट, क्रौंच, तोतों, राजहंस, सारस, मत्स्यपुत्रिका(पक्षी विशेष),बगुलों, मेढ़कों, टिटहरी, धृतराष्ट्र(हंस विशेष), चातक, सूअर तथा मोर आदि जीवों पर पड़ने वाले शरद् के प्रभाव का सुन्दर चित्रण करते हैं।

साथ ही इस ऋतु में विकसित होने वाले पुष्पों जूही, केसर, बन्धूक, कमल, कुमुद की प्रसन्नता को अभिव्यक्ति प्रदान की है। साथ

ही, बादल, आकाश, जल, चन्द्रमा, पथिक, कदम्ब, गेहूँ, सरोवर, वायु, चाँदनी, खेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियों, जूही, मालती, इन्द्रधनुष आदि पर इस ऋतु के पड़ने वाले प्रभावों को अपनी सूक्ष्मेक्षिका से चित्रित किया है, ये सभी वर्णन कवि की राष्ट्रीय–भावना तथा उनके प्रकृति–प्रेम को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। शेष स्पष्ट है।

इसी अवसर पर कन्दर्पकेतु ने एक स्थान पर अपनी प्रिया वासवदत्ता की आकृति से मिलती–जुलती पत्थर की मूर्ति को देखा तथा उत्सुकतावश उसका स्पर्श किया।

विशेष–(i) महाकवि का विविध प्रकार के पशु, पक्षी तथा जीवों आदि प्राणियों एवं पुष्पादि वनस्पतियों की शरद्कालिक गतिविधियों का गहन परिचय होने से सभी वर्णनों में प्राणि–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान एवं ऋतु–विज्ञान विषयक गहनज्ञान की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) प्रस्तुत गद्यखण्ड के आरम्भ में कवि ने पृथिवी में नायिका का, मेघ में कलश के जल का, वर्षा तथा शरद् ऋतु में दासियों का स्वच्छ आकाश में निर्मल–वस्त्र का तलस्पर्शी आरोप किया है, जिससे रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का भी सौन्दर्य दर्शनीय है।

(कन्दर्पकेतुवासवदत्ता–पुनर्मिलनवर्णनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार के शरद्काल में इधर–उधर घूमते हुए वन में ही एक स्थान पर वासवदत्ता के समान पत्थर की मूर्ति को देखा तथा उसका स्पर्श करने के बाद की स्थिति का सुन्दर वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(136) **अथ सा स्पृष्टमात्रैव शिलाभावमुत्सृज्य वासवदत्तास्वरूपं प्रपेदे। तामवलोक्य कन्दर्पकेतुरमृतार्णव–मग्न इव सुचिरमालिंग्य, 'प्रिये वासवदत्ते! किमेतत्' इति पप्रच्छ।**

पदच्छेद– अथ सा स्पृष्ट–मात्रा एव शिलाभावम् उत्सृज्य वासवदत्ता–स्वरूपम् प्रपेदे। ताम् अवलोक्य कन्दर्पकेतुः अमृत–अर्णव–मग्नः इव सुचिरम् आलिंग्य, 'प्रिये वासवदत्ते! किम् एतत्' इति पप्रच्छ।

अनुवाद– इसके पश्चात् स्पर्श करने मात्र से ही वह अपने पाषाणभाव का परित्याग करके, वासवदत्ता के स्वरूप को प्राप्त हो गयी। उसे देखकर कन्दर्पकेतु ने मानो अमृत के सागर में निमग्न होते हुए, (उत्प्रेक्षा)बहुत देर तक उसका आलिंगन करके, हे प्रिये वासवदत्ते! यह क्या है? इसप्रकार पूछा।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) अद्भुत रस का अंग रूप में परिपाक हुआ है।

(ii) इतने लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने के बाद अकस्मात् अपने समक्ष प्रियतमा को देखकर नायक की मनःस्थिति तथा प्रसन्न्ता–तिरेक को कवि द्वारा चित्रात्मकरूप में अमृतसागर में निमज्जन रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

(वासवदत्ताकथितवृत्तान्तवर्णनम्)

अवतरणिका–इसप्रकार कन्दर्पकेतु द्वारा पूछे जाने पर, वासव–दत्ता द्वारा बताए गए सम्पूर्ण घटनाक्रम का कथन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(137) सा तु दीर्घमुष्णं च निश्वस्य प्रत्युवाच– आर्यपुत्र! अपुण्याया मन्दभाग्याया मम कृते महाभागो भवान् उत्सृष्टराज्य एकाकी परिभ्रमन् प्राकृतजन इव अवाङ्मनस–गोचरं दुःखमनुबभूव।

उपवासादिना तृषातुरे भवति निद्राश्रान्ते प्रथम–प्रबुद्धाऽहं भवतः फलमूलादिकमाहरिष्यामीति विचिन्त्य फलाद्यन्वेषणाय वने नल्वमात्रमगच्छम्।

पदच्छेद– अथ सा स्पृष्ट–मात्रा एव शिलाभावम् उत्सृज्य वासवदत्ता–स्वरूपम् प्रपेदे। ताम् अवलोक्य कन्दर्पकेतुः अमृत–अर्णव–मग्नः इव सुचिरम् आलिंग्य, 'प्रिये वासवदत्ते! किम् एतत्' इति पप्रच्छ।

अनुवाद– इसके पश्चात् स्पर्श करने मात्र से ही वह अपने पाषाणभाव का परित्याग करके, वासवदत्ता के स्वरूप को प्राप्त हो गयी। उसे देखकर कन्दर्पकेतु ने मानो अमृत के सागर में निमग्न होते हुए, (उत्प्रेक्षा)बहुत देर तक उसका आलिंगन करके, हे प्रिये वासवदत्ते! यह क्या है? इसप्रकार पूछा।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) अद्भुत रस का अंग रूप में परिपाक हुआ है।

(ii) इतने लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने के बाद अकस्मात् अपने समक्ष प्रियतमा को देखकर नायक की मनःस्थिति तथा प्रसन्न्ता–तिरेक को कवि द्वारा चित्रात्मकरूप में अमृतसागर में निमज्जन रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

(वासवदत्ताकथितवृत्तान्तवर्णनम्)

अवतरणिका–इसप्रकार कन्दर्पकेतु द्वारा पूछे जाने पर, वासव–दत्ता द्वारा बताए गए सम्पूर्ण घटनाक्रम का कथन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(137) सा तु दीर्घमुष्णं च निश्वस्य प्रत्युवाच– आर्यपुत्र! अपुण्याया मन्दभाग्याया मम कृते महाभागो भवान् उत्सृष्टराज्य एकाकी परिभ्रमन् प्राकृतजन इव अवाङ्मनस–गोचरं दुःखमनुबभूव।

उपवासादिना तृषातुरे भवति निद्राश्रान्ते प्रथम–प्रबुद्धाऽहं भवतः फलमूलादिकमाहरिष्यामीति विचिन्त्य फलाद्यन्वेषणाय वने नल्वमात्रमगच्छम्।

पदच्छेद– सा तु दीर्घम् उष्णम् च निश्वस्य प्रत्युवाच– आर्य–पुत्र! अपुण्यायाः मन्द–भाग्यायाः मम कृते महाभागः भवान् उत्सृष्ट–राज्यः एकाकी परिभ्रमन् प्राकृत–जनः इव अवाङ्–मनस–गोचरम् दुःखम् अनुबभूव।

उपवास–आदिना तृषा–आतुरे भवति निद्रा–श्रान्ते प्रथम–प्रबुद्धा अहम् भवतः फल–मूल–आदिकम् आहरिष्यामि, इति विचिन्त्य फलादि अन्वेषणाय वने नल्व–मात्रम् अगच्छम्।

अनुवाद– तब उस वासवदत्ता ने गहरी लम्बी, गर्मश्वास लेकर कहा कि– 'आर्यपुत्र! मुझ पापिनी और अभागिनी के लिए अत्यधिक भाग्यशाली आपने राज्य का परित्याग करके, अकेले वन में घूमते हुए सामान्य व्यक्ति की वाणी तथा मन से भी न जानने योग्य अत्यधिक दुःखों को सहन किया है।

उपवास आदि द्वारा प्यास से व्याकुल आपके सो जाने पर पहले जगी हुई मैं, 'आपके लिए कुछ फल–मूलादि ले आऊँ' ऐसा विचारकर फलादि खोजने के लिए वन में चार सौ हाथ की लम्बाई (नल्व) मात्र निकल गयी।'

'चन्द्रिका'– स्पष्ट है।

विशेष– (i) प्रस्तुत गद्यखण्ड में नायिका की नायक के प्रति प्रेमपूर्ण भावनाओं तथा पत्नी के दायित्वों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) उपर्युक्त अंश में दूरीवाचक 'नल्व' शब्द का प्रयोग कवि को गणितशास्त्र से अभिज्ञ सिद्ध करता है।

अवतरणिका– इसी क्रम में पुनः महाकवि कहते हैं कि–

(138) अथ क्षणेन तरुगुल्मान्तरितं सेनानिवेशं दृष्ट्वा 'किमयं ममान्वेषणाय तातस्य व्यूहः समायातः। आहो–स्विदार्यपुत्रस्येति चिन्तयन्तीं मां चारकथितोदन्तो दूरा–त्किरातसेनापतिर्धावति स्म। ततोऽन्यः किरातसेनापति–

स्तादृश एव तथाभूतया सेनयाऽन्वितो मृगयां गतः, सोऽपि चश्रुत्वा धावति स्म।

पदच्छेद– अथ क्षणेन तरु–गुल्म–अन्तरितम् सेना–निवेशम् दृष्ट्वा 'किम् अयम् मम अन्वेषणाय तातस्य व्यूहः समायातः?' आहोस्वित् आर्यपुत्रस्य', इति चिन्तयन्तीम् माम् चार[1]–कथित–उदन्तः दूरात् किरात– सेनापतिः धावति स्म। ततः अन्यः किरात–सेनापतिः तादृशः एव तथा– भूतया सेनया–अन्वितः मृगयाम् गतः, सः अपि च श्रुत्वा धावति स्म।

अनुवाद– इसके बाद, कुछ ही क्षण में वृक्षों तथा झाड़ियों में छिपी हुई सेना के पड़ाव को देखकर, क्या यह मुझे खोजने के लिए पिताश्री की सेना आयी है? इसप्रकार चिन्तन करती हुई मुझे पाने के लिए, गुप्तचरों द्वारा समाचार प्राप्त करके, दूर से ही भीलों का सेनापति मेरी ओर दौड़ते हुए आ रहा था। इसके अतिरिक्त वहीं पर उसी प्रकार की सेना से युक्त, दूसरा किरात–सेनापति शिकार खेलने के लिए निकला था, वह भी उसे सुनकर मेरी ओर दौड़ा।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

अवतरणिका– इसी क्रम में महाकवि पुनः कहते हैं कि–

(139) **अनन्तरं चिन्तितं मया यद्यहमार्यपुत्राय कथयामि तदा स एकाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ च कथयामि तदेभिरहं घातनीयेति चिन्ताक्षण एव एकामिषलुब्धयोरिव गृध्रयोः तयोर्युद्धमासीत्।**

पदच्छेद– अनन्तरम् चिन्तितम् मया यदि अहम् आर्य–पुत्राय कथयामि, तदा सः एकाकी एभिः एव हन्तव्यः, अथ च कथयामि तद

---

[1] . चारश्च गूढपुरुष इत्यमरः। उदन्तः–वृत्तान्तः । चारेण गूढपुरुषेण कथिता वार्ता वृत्तान्तो यस्मै।

एभिः अहम् घातनीया, इति चिन्ता–क्षणे एव एक–आमिषलुब्धयोः इव गृध्रयोः तयोः युद्धम् आसीत्।

अनुवाद– इसके पश्चात् मैंने सोचा– 'यदि मैं आर्यपुत्र से रक्षा के लिए कहती हूँ, तो वे अकेले होने से इनके द्वारा मार दिए जाएँगे और यदि नहीं कहती हूँ, तो इनके द्वारा मैं मार दी जाऊँगी।'

मेरे द्वारा इसप्रकार चिन्तन किए जाते हुए ही मांस के एक टुकड़े के लिए लोभी दो गिद्धों के समान(उपमा) **उन दोनों किरात सेनापतियों में युद्ध आरम्भ हो गया।**

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत गद्यखण्ड के अन्त में वासवदत्ता को प्राप्त करने के लिए दो किरात–सेनापतियों में युद्ध करने के सम्बन्ध में, मांस के टुकड़े के लिए आपस में लड़ने वाले दो गिद्धों से दी गयी उपमा अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं मनोरम बन पड़ी है।

(किरातयोः युद्धवर्णनम्)

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि सुबन्धु उन दोनों किरात सेनापतियों के बीच में होने वाले भयावह युद्ध का चित्रात्मक वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(140) **ततः प्रवृत्तशरासारदुर्दिनस्थगितदिनकरकिरणे, रणकर्मविशारदद्विरदकरदूरोत्क्षिप्तखड्गधरसुभटाश्लिष्यमाण–विद्याधरविभ्रमे, समरदर्शनसंचरदनेकनभश्चरचारणरचितचक्र–वाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विपपदसमाप्तपिशाचिका कर्णोलूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशी कभीरूणि, प्रस्कन्नक्लीवजने, रणोद्यतजितकाशिनि रणखले, शृङ्गालिकाश्रृगालप्रार्थनीयेष्वामिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टे–**

ष्विव, विश्वत्रदुर्भगेष्विव, शरीरेष्वनास्थां कलयन्तः, समं द्विषतां धनुषांच जीवाकर्षणं योधाश्चक्रुः।

पदच्छेद– ततः प्रवृत्त–शर–आसार–दुर्दिन–स्थगित–दिनकर–किरणे, रण–कर्म–विशारद–द्विरद–कर–दूर–उत्क्षिप्त–खड्ग–धर–सुभट–आश्लिष्यमाण–विद्याधर–विभ्रमे, समर–दर्शन–संचरत् अनेक–नभश्चर–चारण–रचित–चक्रवाले, चरत् चारु–भट–खड्ग–खण्डित–द्विप–पद–समाप्त–पिशाचिका–कर्णा–उलूखल–आभरणे, कौतुक–आकृष्ट–जन–कृत–वदन–नान्दीके, कान्दिशीक[1]–भीरूणि, प्रस्कन्न–क्लीव–जने, रण–उद्यत–जित–काशिनि रण–खले, शृङ्गालिका शृगाल–प्रार्थनीयेषु अमिष–पिण्डेषु इव, जिह्मग–दष्टेषु इव, विश्वत्र–दुर्भगेषु इव, शरीरेषु अनास्थाम् कलयन्तः, समम् द्विषताम् धनुषाम् च जीवा–आकर्षणम् योधाः चक्रुः।

अनुवाद– उसके बाद, बाणों की वर्षारूपी जलों (रूपक) **की वृष्टि के अन्धकार से रुकी हुई सूर्य की किरणों वाले, युद्धकार्य में कुशल हाथियों के समूह द्वारा दूर फेंके गए खड्ग वाले योद्धाओं द्वारा, विद्याधरों का भ्रम उत्पन्न करने पर, युद्ध को देखने के लिए घूमते हुए, अनेक आकाश में विचरण करने वाले गन्धर्वादिकों के एकत्र होने पर, युद्धभूमि में घूमते हुए निपुण योद्धाओं की तलवार से कटे हुए हाथियों के पैरों से पिशाचिनियों के ओखली के समान** (उपमा) **कर्णाभूषण को धारण करने पर,**

आश्चर्य से आकृष्ट हुए लोगों द्वारा मुख से ध्वनि किए जाने पर, कायरों के लिए भयानक, धैर्यरहित लोगों को पलायन कराने वाला, योद्धाओं को युद्धरूपी उलूखल (रूपक) **में युद्ध के लिए उद्यत करने वाला, सियार तथा सियारिनियों को मांसपिण्ड के समान अभिलषित,**

---

[1]. कान्दिशीको भयपलायितः। कान्दिशीको भयद्रुत इत्यमरः।

सर्प द्वारा काटे गए, कोढ़ के कारण स्पर्श न करने योग्य शरीरों में अनादरभाव प्रकट करते हुए, उस युद्ध में योद्धा लोग एक साथ ही शत्रुओं के प्राणों का हरण तथा धनुष की प्रत्यंचा को खींचकर (अद्भुत) **युद्ध कर रहे थे।**(अतिशयोक्ति)

'चन्द्रिका'– यहाँ योद्धाओं द्वारा चलाए गए बाणों की सघनता को प्रदर्शित करने के लिए, सूर्य की किरणों को ढ़क देने वाले वर्षारूपी दुर्दिन की कल्पना, युद्ध के लिए प्रशिक्षित किए गए हाथियों द्वारा खड्ग को धारण करने वाले दुर्दान्त योद्धाओं को भी अपनी सूँड से उठाकर दूर फैंकने वाले विद्याधरों का भ्रम, युद्ध देखने के लिए तमाशबीन के रूप में आकाश में घूमते हुए अनेक नभचरों का चारो ओर इकट्ठा होना।

इसीप्रकार कुशल योद्धाओं की तीक्ष्ण तलवार से काटे गए हाथियों के पैरों को पिशाचिनियों द्वारा ओखली के समान कानों के आभूषणों के रूप में धारण करना, आश्चर्यजनक युद्ध होने से लोगों द्वारा अनेक प्रकार की ध्वनियाँ निकालना आदि का उल्लेख करते हुए कवि ने अपने युद्ध–वर्णन की कुशलता को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

इसी क्रम में युद्ध के वैशिष्ट्य का कथन करते हुए इसे कायरों के लिए भयानक, धैर्यहीनों के लिए पलायन करने वाला, योद्धाओं के लिए युद्ध में ओखली की कल्पना, गीदड़ तथा गीदड़नियों के लिए मांस–पिण्ड की चाहना रखने वाला, सर्प द्वारा काटे गए के समान लोगों के प्राणों को हरने वाला, कोढ़ी व्यक्ति के प्रति अस्पृश्य होने की भावना के समान शत्रुओं के शरीरों के प्रति अनादर भाव प्रकट करते हुए, अनायास ही उनके प्राणों को हरण करने वाला बताया है, जिसमें कुशल योद्धा इधर तो धनुष की प्रत्यंचा को खींचते थे और उसी क्षण उधर शत्रु योद्धा अपने प्राण त्याग देते थे।

विशेष– (i) उपमा एवं रूपक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने युद्ध के दृश्यों को साक्षात्‌रूप से देखा था, तभी उन्होंने इसका इतना सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन किया है।

अवतरणिका– इसी क्रम में पुनः महाकवि युद्धक्षेत्र में स्थित विशाल हाथियों का आलंकारिक वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(141) **तत्र त्यागिन इव दानवन्तो मार्गणसम्पातं सहन्तः, समृद्धविलासिन इव शृङ्गारोपशोभिताः सहेम–कक्ष्याश्च, सदारामा इव कदलीराजिताः सद्विजाश्च, निशानिवहा इव नक्षत्रमालोपशोभिताः, शरद्दिवसा इव समुल्लसत्पद्मा महामृगा बभुः।**

पदच्छेद– तत्र त्यागिनः इव दानवन्तः मार्गण–सम्पातम् सहन्तः, समृद्ध–विलासिनः इव शृङ्गार–उपशोभिताः स–हेमकक्ष्याः च, सदा–आरामाः इव कदली–राजिताः सद्विजाः च, निशा–निवहाः इव नक्षत्र–माला–उपशोभिताः, शरद्–दिवसाः इव समुल्लसत् पद्माः महामृगाः बभुः।

अनुवाद– उस युद्ध में याचकों के समूह को सहन करते हुए दानी एवं त्यागी व्यक्ति के समान, हाथी बाणों की वर्षा को सहन करते हुए मदजल से युक्त थे, जो सजावट से सुशोभित, स्वर्ण की कांची से युक्त विलासी लोगों के समान, सिन्दूर से शोभायमान, सुनहरे जेवरबन्द से सम्पन्न थे, जो केले से सुशोभित, पक्षियों से सम्पन्न सुन्दर उपवन के समान, पताकाओं से सुशोभित तथा दाँतों से युक्त थे, जो विकसित कमलों वाले, शरद्‌कालीन दिन के समान चमकते हुए अवस्थासूचक बिन्दुओं से शोभायमान थे।

'चन्द्रिका'– इस युद्धभूमि में बाणों की वर्षा को सहन करने में समर्थ सभी हाथी युवक थे, क्योंकि इनके गण्डस्थलों से मद बह रहा

था, इसमें कवि ने उनके त्यागी (बाणों को शरीर द्वारा ग्रहण न करने से) और (मदजल के बहाने से) दानी होने की सुन्दर कल्पना की है।

उन हाथियों ने मस्तक पर सिन्दूर(विजय–तिलक) तथा सुनहरे जेवरबन्दों को धारण किया हुआ था, जिनमें यहाँ सजावट आदि से युक्त, स्वर्ण की मेखला को बाँधे हुए विलासी जनों की कल्पना की है। इसीप्रकार ये हाथी विशाल दाँतों तथा पताकाओं से युक्त थे, जिनमें कवि ने केलों से सुशोभित पक्षियों से युक्त सुन्दर उपवन की परिकल्पना की है। इसके अलावा उन्होंने तारों की पंक्ति से शोभायमान रात्रियों के समान मोतियों की माला को धारण किया हुआ था। साथ ही, इनके शरीर पर शरद्कालीन दिनों में खिले हुए कमलों के समान इनकी अवस्था की सूचना देने वाले बिन्दुओं को भी लगाया गया था।

विशेष–(i) महाकवि का हस्तिशास्त्र विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही, यहाँ बाणों की वर्षा में याचकों के समूह की, उन्हें सहन करने वाले हाथियों द्वारा मदजल प्रवाहित करने से उनमें दानी और त्यागी व्यक्ति की सुन्दर कल्पना की गयी है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **दानवन्तः**–दानी, मदजल युक्त। **मार्गण**–याचक, बाण। **शृंगार**–सिन्दूर, सजाना। **हेमकक्ष्य**– सुवर्ण की मेखला, सुनहरे जेवरबन्द। **कदली**–केला, पताका। **द्विज**–दाँत, पक्षी। **नक्षत्र माला**–तारों की पंक्ति, मोतियों की माला। **समुल्लसत्पद्मा**–विकसित कमल, अवस्था को सूचित करने वाले बिन्दुओं से सुशोभित।

(iii) उपमा एवं श्लेष अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) हाथियों को हमेशा ही अनेक प्रकार से सजाधजा कर रखने की प्राचीन परम्परा का उल्लेख हुआ है, उनके मस्तक पर सिन्दूर का प्रयोग तो उन्हें सजाने के लिए आज भी किया जाता है।

अवतरणिका– इसप्रकार युद्धस्थल पर हाथियों का वर्णन करने के बाद महाकवि युद्धभूमि में शक्तिशाली घोड़ों का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(142) उत्कुपिता इव क्षमां मुंचन्तः, पयोधय इवावर्तशोभिनः सोर्मयश्च, उद्यानोद्देशा इव समल्लिकाक्षाः, कुलालगृहा इव अभिनवभाण्डहारिणः, रत्नाकरा इव सदेवमणयः, लेखा इव सेन्द्रायुधवृद्धयः, क्षीबा इव पानभूषितास्तुरंगमा विरेजुः।

पदच्छेद– उत्कुपिताः इव क्षमाम् मुंचन्तः, पयोधयः इव आवर्त–शोभिनः स–ऊर्मयः च, उद्यान–उद्देशाः इव समल्लिकाक्षाः, कुलाल–गृहाः इव अभिनव–भाण्ड–हारिणः, रत्नाकराः इव सदेव–मणयः, लेखाः इव सेन्द्र–आयुध–वृद्धयः, क्षीबाः इव पान–भूषिताः तुरंगमाः विरेजुः।

अनुवाद– युद्धस्थल पर विराजमान घोड़े क्षमा का त्याग कर देने वाले क्रोधित व्यक्ति के समान, दौड़ते हुए पृथ्वी को छोड़ देते थे, जो भँवरों से सुशोभित लहरों से युक्त समुद्र के समान, भँवरी से सुशोभित, वेगयुक्त थे, जो मल्लिकाक्ष नामक हंस विशेष से युक्त उपवन की भूमियों के समान मल्लिकाक्ष नामक शुभ्र नेत्रों वाले अश्व विशेषों से सम्पन्न थे, जो नए–नए मिट्टी के बर्तनों से भरे हुए कुम्हारों के समान नए जेवर धारण किए हुए थे,

जो कौस्तुभमणि से युक्त सागरों के समान, गलप्रदेश में आवर्त विशेष से युक्त थे, जो इन्द्रायुध से सुरक्षित देवों के समान इन्द्रधनुष नामक काले नेत्रों वाले अश्व विशेष से वृद्धि को प्राप्त थे, जो पृथ्वी पर लोटने वाले लोगों से युक्त मद्यभूमि के समान रक्षकों से सुशोभित थे।

'चन्द्रिका'– युद्धभूमि में उछल–उछल कर दौड़ते हुए घोड़ों में क्षमारहित क्रुद्ध व्यक्ति की कल्पना की है। शेष अंश में श्रेष्ठ घोड़ों चिह्नों उनका भँवरी युक्त, सफेद आँखों वाला (मल्लिकाक्ष), इन्द्रायुध

नामक काली आँखों वाला एवं गले में आवर्त विशेष से युक्त होना तथा जेवरों (घोड़ों के आभूषण) से सजाने का उल्लेख करते हुए श्लेष तथा उपमाओं के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की है। अन्त में उनके रक्षक योद्धाओं के मृत्यु होने या घायल होने के बाद भूमि पर लोटने की बात का कथन भी मदिरापान करके जमीन पर लोटने वाले लोगों से युक्त मद्यपभूमि से तुलना करते हुए किया गया है।

विशेष–(i) महाकवि के अश्व–शास्त्र[1] विषयक ज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) **द्व्यर्थक पद– क्षमा**–पृथिवी, माफ करना। **आवर्त**–भँवरी बालों की घुमावदार स्थिति, जल की घुमावदार स्थिति। **ऊर्मि**–तरंग, वेग। **मल्लिकाक्ष**–हंस विशेष, श्वेत आँखों वाले श्रेष्ठ घोड़े। भाण्ड–बर्तन, सजाने के जेवर। **देवमणि**–कौस्तुभ मणि, गले में स्थित आवर्त विशेष। **इन्द्रायुध**–इन्द्रधनुष, वज्र। **पानभूषित**–रक्षकों से सुशोभित, मदिरापान कर भूमि पर लोटने वाले लोगों से युक्त। (पान+भू+उषित)

अवतरणिका– इसप्रकार किरात सेनापतियों की सेनाओं में हस्ति तथा अश्वों का वर्णन करने के बाद, युद्धभूमि में कबन्धों अर्थात् सिर कटे हुए शरीरों (धड़ों) का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(143) **कर्णाभ्यां श्रुतपरपरिवादाभ्याम्, खलोदय–साधुविपत्तिसाक्षिभ्यामक्षिभ्याम्, अस्थानेऽपि नमता मूर्ध्ना कीर्तयता चाकीर्तनीयान्यास्येन च वियुक्तोऽहं दिष्ट्येति हर्षादिव ननर्त चिरं कबन्धः।**

पदच्छेद– कर्णाभ्याम् श्रुत–पर–परिवादाभ्याम्, खल–उदय–साधु–विपत्ति–साक्षिभ्याम् अक्षिभ्याम्, अस्थाने अपि नमता मूर्ध्ना कीर्तयता

---

[1] पुरातन काल में अश्व एवं हस्ति को आधार बनाकर स्वतन्त्ररूप से शास्त्रों की रचना की गयी थी, ऐसा संस्कृत ग्रन्थों में उल्लेख भी मिलता है।

च अकीर्तनीयानि आस्येन च वियुक्तः अहम् दिष्ट्या, इति हर्षात् इव ननर्त, चिरम् कबन्धः।

अनुवाद– **योद्धाओं के सिर विहीन शरीर** (कबन्ध), **दूसरों की निन्दा सुनने वाले कानों, दुष्टों के उदय तथा सज्जनों की विपत्ति के साक्षी नेत्रों, अनुचित स्थानों पर भी झुकने वाले मस्तकों एवं न कहने योग्य बात को भी कहने वाले मुखों से, सौभाग्यवश मैं छूट गया हूँ, इसी खुशी में मानो बहुत देर तक नृत्य कर रहे थे।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत अंश में कवि ने युद्धभूमि में योद्धाओं के सिर कटने के बाद, उसके धड़ द्वारा किए गए नृत्यों में चिन्तन को सुन्दररूप में प्रस्तुत किया है। तदनुसार–

कबन्ध सोच रहा है कि अच्छा हुआ मेरे ऊपर से सिर अलग हो गया। अब मैं दूसरों की निन्दा नहीं सुन सकूँगा, दुष्टों की उन्नति तथा सज्जनों की आपत्ति को नहीं देखूँगा। मुझे अब अनुचित स्थानों पर अपने सिर का झुकाना भी नहीं पड़ेगा तथा न कहने योग्य बात को भी कहना नहीं पड़ेगा। यही सोच–सोचकर मानो वे कबन्ध युद्धभूमि में नाच रहे हैं।

विशेष–(i) उपर्युक्त गद्यखण्ड से महाकवि के व्यक्तित्व एवं उनके पवित्र विचारों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) सिर के अलग होने पर भी व्यक्ति का धड़ रक्त के गर्म रहने तथा इससे पूर्व में की जा रही क्रिया के अनुसार गति करता रहता है, यहाँ उसी क्रिया में कवि ने नृत्य करने तथा दूसरे चिन्तन की मनभावन परिकल्पना की है।

अवतरणिका– इसके बाद युद्धभूमि के दृश्य को उपस्थित करते हुए वहाँ उड़ रही धूल का मनोहारी एवं चित्रात्मक वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(144) ततः कृतपरिहासेनेव चक्षुः पिदधता, परापवादश्रवणभीरुणेव श्रोत्रवृत्ति स्थगयता, सोन्मादेनेव वायुवेगविक्षिप्तेन, पलितंकरणेनेव सुरयोषिताम्, अन्धकरणेनेव योधानाम्, तिमिरेणेव समरप्रदोषस्य, पतितेनेव विमुक्तगोत्रेण, मीमांस– कदर्शनेनेव तिरस्कृतदिगम्बरदर्शनेन, सत्पुरुषेणेव विष्णुपदावलम्बिना, कुनृपतिनेव नक्षत्रपथगामिना, कलिंगे–नेव कृतधूम्यारुचिना, राजसेनेव व्यवहितसत्त्वेन, अविनीते–नेव समुद्धतेन, असज्जनेनेव पिहितसत्पथेन, रणजेन रजोजातेन विजजृम्भे।

पदच्छेद– ततः कृत–परिहासेन इव चक्षुः पिदधता, पर–अपवाद–श्रवण–भीरुणा इव श्रोत्रवृत्तिः स्थगयता, स–उन्मादेन इव वायु–वेग–विक्षिप्तेन, पलितम् करणेन इव सुर–योषिताम्, अन्ध–करणेन इव योधानाम्, तिमिरेण इव समर–प्रदोषस्य, पतितेन इव विमुक्त–गोत्रेण, मीमांसक–दर्शनेन इव तिरस्कृत–दिगम्बर–दर्शनेन, सत्पुरुषेण इव विष्णु–पद–अवलम्बिना, कु–नृपतिना इव नक्षत्र–पथ–गामिना, कलिंगेन इव कृत–धूम्यारुचिना, राजसेन इव व्यवहित–सत्त्वेन, अविनीतेन इव समुद्धतेन, असज्जनेन इव पिहित–सत्पथेन, रणजेन रजः जातेन विजजृम्भे।

अनुवाद– तत्पश्चात् युद्धस्थल पर, परिहास करने वाले के समान, नेत्रों को बन्द करने वाली, दूसरों की निन्दा को सुनने में भीरु के समान कानों की सुनने की शक्ति को रोकने वाली, वायु के प्रकोप से उन्माद के रोगी के समान, वायु के वेग से उड़ने वाली, अप्सराओं के केशों को शुभ्रवर्ण बनाने वाली, योद्धाओं को अन्धा बनाने वाली, युद्धरूपी रात्रि के अन्धकार के समान, वंशपरम्परा का परित्याग करने वाले पतित व्यक्ति के समान भूमि को छोड़ देने वाली,

जैन दर्शन को तिरस्कृत करने वाले मीमांसा दर्शन के समान, दिशाओं तथा आकाश के दर्शन को तिरस्कृत करने वाली, विष्णु के

चरणों का आश्रय लेने वाले श्रेष्ठ पुरुष के समान, आकाश का अवलम्ब लेने वाली, क्षत्रिय मार्ग का अवलम्बन न करने वाले दुष्ट राजा के समान, आकाश में गमन करने वाली, कलिंग नामक पक्षी विशेष के समान धूम–मण्डल से युक्त, सत्त्वगुण से रहित रजोगुण के समान प्राणियों को ढ़क देने वाली, उद्दण्ड, विनयरहित व्यक्ति के समान उड़ने वाली, सन्मार्ग का त्याग करने वाले दुष्ट व्यक्ति के समान, आकाश को ढ़कने वाली युद्धभूमि से उत्पन्न धूल चारों ओर व्याप्त हो रही थी।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) युद्धभूमि में धूल का उड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है, यहाँ उसी धूल का कवि ने सुन्दर एवं आलंकारिक वर्णन किया है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **गोत्र**–वंश, भूमि। **दिगम्बर**–दिशा और आकाश, जैन दर्शन। **विष्णु**–आकाश, विष्णु। **नक्षत्रपथ**– क्षत्रिय मार्ग नहीं, आकाश। **सत्त्व**–प्राणी, सत्त्वगुण। **सत्पथ**–आकाश, सन्मार्ग।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि युद्धभूमि में की जाने वाली मारकाट का मनमोहक दृश्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(145) अनन्तरं च नारायण इव कश्चिन्नर–कच्छेदमकार्षीत्। कश्चिद् बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुति–वचनदर्शनोऽभवत्। कश्चित् क्षपणक इव कटावृतविग्रहो–ऽभवत्। कश्चिदाशंकितोरुभंगः सुयोधन इव पयसि विवेशः। कश्चित्सुरापद्विज इव पपात। कश्चित् शरतल्पगतो भीष्म इव गतांयुश्चिरं श्वसन्नासीत्। कश्चित् कर्ण इव विक्लवी–कृतसर्वांगः शक्तिमोक्षमकरोत्। कश्चिद्राघव इव रावण–वधमकरोत्।

पदच्छेद– अनन्तरम् च नारायणः इव कश्चित् नरक–छेदम् अकार्षीत्। कश्चिद् बौद्ध–सिद्धान्तः इव क्षपित–श्रुति–वचन–दर्शनः अभवत्। कश्चित् क्षपणकः इव कटावृत–विग्रहः अभवत्। कश्चित् आशंकित– उरुभंगः सुयोधनः इव पयसि विवेशः। कश्चित् सुराप–द्विजः

इव पपात। कश्चित् शर–तल्प–गतः भीष्मः इव गतांयुः चिरम् श्वसन् आसीत्। कश्चित् कर्णः इव विक्लवी–कृत–सर्वांगः शक्ति–मोक्षम् अकरोत्। कश्चित् राघवः इव रावण–वधम् अकरोत्।

अनुवाद– इसके पश्चात् किसी ने नरकासुर का वध करने वाले नारायण के समान, मनुष्य के सिर का विच्छेद कर डाला, कोई वेदों के वचनों तथा वैदिक सिद्धान्तों का खण्डन करने वाले बौद्ध सिद्धान्त के समान, कान एवं नेत्रों से विहीन हो गया, कोई व्यास आदि की रस्सी के घिरे हुए बौद्धभिक्षु के समान, मुर्दे में छिपे हुए शरीर वाला हो गया, कोई जंघा टूटने की आशंका से युक्त दुर्योधन के समान, महान् पराजय की इच्छा लिए हुए, जल में ही घुस गया,

कोई मदिरापान करने वाले ब्राह्मण के समान, पृथ्वी पर ही गिर पड़ा, कोई शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह के समान, क्षीण आयु वाला होकर बहुत देर तक श्वास लेता रहा, कोई सभी अंगों के क्षत–विक्षत हो जाने पर शक्ति को छोड़ने वाले कर्ण के समान, क्षतविक्षत अंगों वाला होकर उत्साह का परित्याग कर चुका, किसी ने रावण का वध करने वाले राम के समान, रुलाने वाले शत्रु का ही वध कर दिया था।

'चन्द्रिका'– इसके बाद कवि युद्ध भूमि का उपमा एवं श्लेष के माध्यम से बीभत्स दृश्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

यहाँ पर किसी का सिर काट दिया गया, तो कोई कान, मुख तथा आँखों से विहीन हो गया, किसी की जँघा ही तोड़ दी गयी, कोई मूर्छित होकर गिर पड़ा, कोई भीष्म के समान युद्ध भूमि में गिर कर देर तक श्वास लेता रहा तो कोई भयंकर रूप से घायल हो गया। यहाँ तक कि किसी का तो वध ही कर दिया गया।

विशेष–(i) उपुर्यक्त अंश में कवि द्वारा युद्धभूमि का स्वाभाविक चित्रण करने के कारण उनका युद्धभूमि का स्वयं का अनुभव भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) **द्व्यर्थक** पद– **नरक**–नरकासुर, व्यक्ति का सिर। **श्रुति–वचनदर्शन**–कान, मुख तथा नेत्र, वेदवचन। **कटावृत**–व्यासादि की रस्सी, शवों से घिरा। **उरुभंग**–जंघा का टूटना, महान् पराजय। **शक्ति**–उत्साह, सामर्थ्य। **रावण**–व्यक्ति विशेष, रूलाने वाला शत्रु।

अवतरणिका– इसप्रकार दोनों की किरात सेनाएँ युद्धभूमि में सर्वथा विनाश को प्राप्त हुई, इसका कथन करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

(146) ततो विध्वस्तध्वजपटं पतत्पताकं च्युतचाप–चामरापीडं स्खलत्खड्गं तत्समस्तमुभयं मिथो जगाम हननं सैन्यम्।

पदच्छेद–ततः विध्वस्त–ध्वज–पटम् पतत् पताकम् च्युत–चाप–चामर–आपीडम् स्खलत् खड्गम् तत् समस्तम् उभयम् मिथः जगाम हननम् सैन्यम्।

अनुवाद– तत्पश्चात् नष्ट हुए ध्वजवस्त्र से युक्त, गिरी हुई पताकाओं वाली, गिरे हुए धनुष, चामर, कवच वाली एवं स्खलित होती हुई तलवार वाली, वे दोनों सेनाएँ आपस में लड़कर ही विनाश को प्राप्त हो गयीं।

'चन्द्रिका'– इसप्रकार उन दोनों सेनाओं की पताकाएँ, तलवार, धनुष, चामर, कवच आदि सभी युद्धक्षेत्र में गिर गए और वे सेनाएँ आपस में लड़ते हुए पूर्णरूप से विनाष्ट हो गयी।

विशेष–(i) युद्ध विनाश का ही कारण है, इस तथ्य की पुष्टि की गयी है, इसलिए जहाँ तक सम्भव हो युद्ध से बचना ही चाहिए।

(वासवदत्ता–शापवर्णनम्)

अवतरणिका– दोनों किरात सेनाओं के विनष्ट होने के बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(147) ततश्च यस्याश्रमः, तेन मुनिना पुष्पादि–कमादायागतेन योगदृशा प्रतिपन्नवृत्तान्तेन 'त्वत्कृते ममा–

यमाश्रमो भग्न' इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ताऽस्म्यहम्। ततः क्षणेनैवेयं वराकी बहुदुःखमनुभव–तीत्यनुग्रहादार्यपुत्रकरुणया च स मुनिर्याच्यमान आर्यपुत्र–हस्तस्पर्शावधिकं शापमकरोत्।

पदच्छेद– ततः च यस्य आश्रमः, तेन मुनिना पुष्प–आदिकम् आदाय आगतेन योगदृशाः प्रतिपन्न–वृत्तान्तेन 'त्वत्कृते मम अयम् आश्रमः भग्नः', इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ता अस्मि अहम्। ततः क्षणेन एव इयम् वराकी बहु–दुःखम् अनुभवति, इति अनुग्रहात् आर्यपुत्र–करुणया च सः मुनिः याच्यमानः आर्यपुत्र–हस्त–स्पर्शो अधिकम् शापम् अकरोत्।

अनुवाद– इसके बाद जिनका वह आश्रम था, पुष्पादि लेकर आए हुए योग–दृष्टि से ज्ञात किए हुए सम्पूर्ण घटनाक्रम वाले, उन मुनि द्वारा तुम्हारे लिए ही मेरा यह आश्रम विनष्ट हो गया है, इसलिए क्रोधवश मैं 'तुम पत्थर की मूर्ति (पुत्तलिका) हो जाओ' इसप्रकार शापित कर दी गयी।

तत्पश्चात् उसी क्षण से यह बेचारी यहाँ दुःखों को भोग रही है, इसी अनुग्रह से तथा आपकी कृपा से 'प्रार्थना किए जाने पर' उन्होंने उस शाप को आपश्री आर्यपुत्र के हाथ के स्पर्श के समय तक सीमित कर दिया था।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) मुनि का क्रोधी तथा उदार दोनों ही प्रकार का व्यक्तित्व प्रदर्शित हुआ है।

(कन्दर्पकेतोः नगरप्रत्यावर्तनम्)

अवतरणिका– इसप्रकार वासवदत्ता द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाने के बाद, काव्य को सुखान्त बनाते हुए महाकवि सुबन्धु कहते हैं कि–

(148) **ततः कन्दर्पकेतुः श्रुतवृत्तान्तेन समागतेन मकरन्देन तया वासवदत्तया च समं स्वपुरं गत्वा**

हृदयाभिलषितानि सुरलोकदुर्लभानि सुखानि ताभ्यां सहानुभवन् कालमनेकं निनाय।

पदच्छेद– ततः कन्दर्पकेतुः श्रुत–वृत्तान्तेन समागतेन मकरन्देन तया वासवदत्तया च समम् स्व–पुरम् गत्वा, हृदय–अभिलषितानि सुर–लोक–दुर्लभानि सुखानि ताभ्याम् सह अनुभवन् कालम् अनेकम् निनाय।

अनुवाद– उसके पश्चात् सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनने के बाद, तभी आए हुए मकरन्द तथा वासवदत्ता के साथ अपने नगर में जाकर, कन्दर्पकेतु ने स्वर्गलोक में भी दुर्लभ, मनोवांछित सुखों को भोगते हुए बहुत समय व्यतीत किया।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) वासवदत्ता द्वारा कही गयी कथा के तुरन्त बाद मकरन्द के आने तथा उसके बाद उन सभी के अपने नगर में जाने के वर्णन से कवि ने काव्य को सुखान्त कर दिया है, जो उनकी कवित्व शक्ति एवं उत्कृष्ट मेधा का ही परिचायक है।

।। इति महाकविसुबन्धुविरचिता वासवदत्ता समाप्ता।।

।। इसप्रकार महाकवि सुबन्धु विरचित वासवदत्ता कृति पूर्ण हुई।।

।। इसप्रकार डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाडा निवासी द्वारा महाकवि सुबन्धु की वासवदत्ता की 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

•••

परिशिष्ट–1

1. वासवदत्ता में प्रयुक्त पशुओं के नाम– चमरीमृग–(33),(125) शम्बर मृग–(34), रुरु मृग–(73), (125) रंक मृग–(125), हरिण–(132), केसरी सिंह–(श्लोक–14, 15, 16), (33), कुमुद तथा पनस नामक वानर–(33), (34), (35), भालू (ऋक्ष)– (34), (81), नीलगाय (गवय)–(34),शरभ–(आठ पैर का जीव विशेष) (34), हाथी–(72), (117), (120), (127) खरगोश–(125), खरगोश के शिशु–(125) शूकर के शावक–(125), बिडाल समूह–(125), कुवलयापीड हाथी–(7) मदजल युक्त हाथी–(13), (34), (33), (30), (46), (51), (52), (62), (76), (77), (109), (120), (125) (141), गाय–(30), (45), (73), (124) साँड–(30), (51) गीदड़ (सियार)–(30), (34), (130), (140) भैंसा–(40), ऐरावत हाथी–(48) अश्व–(62), (78), (120) स्वर्णमृग–(63) वानर–(73), सिंह–(76), दिग्गज–(78), मनोजव अश्व–(115), गैंडा–(115), सियारिनी–(116), (140) कुत्ते–(116), गजराज–(120) हाथियों का समूह–(125), (130), वानर शावक–(125), ऊदबिलाव–(130), सुअर–(135)।

2.वासवदत्ता में प्रयुक्त पक्षियों के नाम– जीवंजीवक–(110), उल्लू–(श्लोक–7), (73), (76),(117),कौआ–(30), (73), (73), हंस–(45), (117), (135) जलकाक–(125), कोयल–(10), (37), (56), (63), (117), (125) कुक्कुट–(37), (119), (125) कुक्कुटी–(125), गरुड़–(7), (126), शुक–(18), (42), (134) सारिका–(39), (42), (43), खंजन–(37), दार्वाघाट–(37), कंक– (116), मल्लिकाक्ष हंस– (142), कलिंग– (144), राजहंस– (7), (37), (48), (82), (105), (130) (135), चक्रवाक– (19),

(22), (72) (79), (81), (105), (123), मयूर– (20), (34), (106), (132), (132), (135), कलहंस– (37), सारस– (37), (135), बगुले– (130), (135), बगुली– (37), (134), कोक पक्षी विशेष– (48) मुर्गा–(72), (74) चिड़िया–(73), शकुनि– (76), चक्रवाकी– (103), सफेद कबूतर– (105) राजहंस के शिशु–(111) क्रीड़ा शुक– (112), कंक पक्षी विशेष– (116), गौरय्या– (125), चकोर (चक्रवाक)–(125) (130), शकुल पक्षी विशेष– (126), खंजरीट पक्षी विशेष– (135) भरद्वाज पक्षी– (135), तोतों का समूह–(135), मत्स्य पुत्रिका पक्षी–(135), क्रोंच पक्षी–(135), टिटिहरी– (135), कलिंग पक्षी– (144)

3. वासवदत्ता में प्रयुक्त सरीसृप व अन्य जीव– सर्प– (10), (49), (116), (127), (130), अजगर– (35), राजिल सर्प– (37), (26), (82), मकर–(1), (36), (127), (131) नक्र–(126), (127), (131) तिमि– (126), तिमिंगिल–(126), नेवला–(श्लोक–6),(117), नेवलों का समूह– (125), नकुली–(74), मधुमक्खी–(125), भ्रमर–(15), (17), (25), (46), (48), (54), (56), (59), (60), (61), (74), (79), (117), (118), (123), (125), (130), कछुए–(13), (131),सुरसुन्दरी मछली– (13), (36) मक्खी–(29), (116), केकड़े– (36), (127), (130), मछली–(37), (59), (127), (131), (135), बाल नामक मछली– (37), जोक–(46) राजीव मछली–(57), उत्पल मछली– (57), साल मछली–(57), भ्रमर समूह– (103), शेषनाग–(113), (117), (126), (127) जलमानुष–(126), (130) गोह शावक–(125), जलवानर–(130), जल–हस्ति–(131), मेढ़क– (134), (135)।

4. वासवदत्ता में प्रयुक्त वृक्षों के नाम– कटहल (पनस)– (34), (117), (125) सप्तपर्ण–(34), तिनिश–(स्यन्दन) (34), खिरनी– (34), कुरबक–(125), सरल–(1), (117), पीतदारु–(117), नागकेसर– (117), (125) नरकुल–(117), (125) उशीर–(125), बेंत–(125), सई–

(125), वकुल–(125), करंज–(125), बेल–(125), गिरिमल्लिका–(125), सुन्दरी–(125), वरुण–(125), नारियल–(49), (125), अशोक–(125), क्रमुक–(125),तमाल–(76), (77), (125), हिन्ताल–(125), सुपारी–(125), (126), केसर–(125), बकुल–(58), जामुन–(39), (41), (42), (125), बीजपूर–(125), जम्बीर–(125), लौंग–(125), (126), मधूक–(125), मुचुकन्द–(125), कुटज–(125), पाटली–(125), ताल–(33), ढाक–(117), अर्जुन–(117), (117),सिन्धुवार–(125), श्रीवर्ण–(125), कर्णिकार–(125), हरीतकी–(117), पिप्पली–(117), बाँस–(25), (35), (38), (117), पलाश–(57), चन्दन–(66), (30), (117),वरुण–(125), इलायची– (126), विजौरा–(126), निम्बू–(126), ताड–(126), पारिजात–(7), हरिचन्दन–(33), (48) केला–(35), (68), कल्पवृक्ष–(सन्तानक) (49), बहेड़ा–(49), कृतमाल–(49), फेनिल (अरिष्ट)–(49), मदन–(49), (55), चित्रक वृक्ष विशेष–(54) साल वृक्ष–(57), पलाश–(57), (117) अशोक– (58), आम्र–(63), मन्दार वृक्ष–(72), (133), पीपल–(115) श्रीफल– (117), लाल अशोक–(125) नाग केसर– (125), शेफालिका– (125), आम्र के वन–(125)।

5.वासवदत्ता में प्रयुक्त <u>लताओं के नाम–</u> सोमलता– (34), प्रियंगुश्यामा–(58), घुँघची–(117), ताम्बूल–(28), वेतस्–(37), (125), नल लता–(37), नवमालिका लता–(54) महासहा–(57), विचकिल लता विशेष–(58), तिक्त लौकी–(117), घुँघुची की झाड़ियाँ–(125), लवली लता विशेष–(126), विद्रुम–(126) ।

6. वासवदत्ता में <u>प्रयुक्त पुष्प–</u> कुमुद–(5), (19), (15) (13), (48), (62), (78), (81), (117), (118) कुमुदिनी–(8), (34), (14), (79) मालती–(135), दमन–(10), चम्पा–(10), कुन्द–(18), (24), कमल–(22), (24), (37), (47), (48), (50), (56), (57), (58), (74), (82), (93) (98), (107), (141) केतकी–(24), (35), (37), (109), (110), (125), (134),

हरीतकी–(35), नीलकमल– (24), (25), (77), (105), (133) कमलिनी–(37), (57), (66), (68), (77), (118) लाल कमल–(48), (68), (118), सफेद कमल–(48), (82), जपा–(49), केसर–(49), (74), (125), (135) मालती (जाति)–(52), (57), आम्रमंजरी–(56), (58), (110), (125) दमनक–(57), अशोक पुष्प–(59), विचिकिल पुष्प–(59) नागकेसर–(59), पाटिल–(59), कुमकुम–(60), (74), द्रोण पुष्प–(62), शैवाल घास–(66), (126) दूब घास–(73), बन्धूक पुष्प–(80), जटामासी पुष्प–(80), कुमुद वन–(103), (121) कमलदण्ड–(111) जपा पुष्प–(120), घनसार–(125), मल्लिका– (125), जम्बीर–(125), कचनार–(125), मन्दार–(125), लाल अशोक–(125), सिन्धुवार की मंजरी–(125), लौंग–(125), चम्पक–(125),मधूक–(125),तमाल–(125),लोध्र–(125), कर्णिकार–(125), बकुल–(127), सरकण्डे–(132) वीर वधूटी–(134), जूही–(135), शैवाल–(126),

7. वासवदत्ता में प्रयुक्त ओषधि विशेष– सिन्धुवार ओषधि–(57), (117), कामवर्धक ओषधि–(39) बालों को काला करने वाली ओषधि–(76) विष दूर करने वाले वैद्य–(116), वायु के प्रकोप का उन्मादी रोगी–(144)।

8. वासवदत्ता में प्रयुक्त नदियों के नाम– मालिनी–(49), (63), (48), तुंगभद्रा–(63), शोणनद–(63), नर्मदा–(63), गोदावरी–(63), गंगा–(48), (63), (78), तमसा–(127), करतोया–(127), मर्यादा–(127), यमुना–(48), कालिन्दी–(82), आकाश गंगा–(82) रेवा (क्षिप्रा)–(112)।

9. वासवदत्ता में प्रयुक्त पर्वतों के नाम– विन्ध्याचल– (55), (112), (132), सुमेरु–(1), (5), (55), (62), मन्दर–(7), (44), (68), (127) उदयाचल–(80), (80), (120), (121), (122)।

10. वासवदत्ता में प्रयुक्त प्रदेशों के नाम– लाट प्रदेश की युवति–(60), कर्णाटक की युवति–(60), पश्चिमी घाट (अपरान्त देश) की युवति–(60), केरल प्रदेश की युवति–(60), आन्ध्रप्रदेश की युवति

(60), **मालव प्रदेश** की युवति–(109), (60), **मालव प्रदेश** की युवति की दन्त–कान्ति–(112) **मालव प्रदेश** की युवति की कपोल–कान्ति–(109)।

11. संगीत विषयक रागादि के नाम– **विभास** राग–(15) **गान्धार** स्वर–(52), **मूर्च्छा** स्वर–(52), **रागों के विकार**–(52), **चर्चरी ताल** विशेष–(56), **वीणा की तुम्बी**–(81), **मृदंग वाद्य** (106), सुन्दर एवं गम्भीर **काकली गायन**–(132)।

12. **ज्योतिष विषयक बिन्दुओं** का उल्लेख– **शनि** ग्रह–(26), (48), **सूर्य** ग्रह–(26), (48), **चन्द्र** ग्रह–(26), (48), **बुध** ग्रह–(26), **मंगल** ग्रह–(26), **शुक्र** ग्रह– (26), **गुरु** ग्रह– (26), (50), **राहु** ग्रह– (26), **केतु** ग्रह–(26), **मीन** राशि– (36), (127), **वृश्चिक** राशि–(127), **मकर** राशि–(36), **कुम्भ** राशि–(36), **वृष** राशि–(45) **कन्या** राशि–(51), **तुला** राशि–(51), **तिथि**–(45), **शूल** योग–(51), **व्याघात** योग–(51), **फल ज्योतिषियों द्वारा बताया गया**–(62), **हस्त** नक्षत्र–(112), **श्रवण** नक्षत्र (112), **अरुन्धती** नक्षत्र विशेष (112), ज्योतिष की गणना विषयक **कारिका के प्रथम निर्माता शूलपाल**–(116)।

13.. **छन्दविषयक बिन्दु**– **कुसुमविचित्र** छन्द –(36), **वंशस्थ पतित** छन्द–(36), **पुष्पिताग्रा** छन्द–(36), **सुकुमारा** छन्द–(36), **प्रहर्षिणी** छन्द–(36), **शिखरिणी** छन्द–(36),**माणवक क्रीडित** छन्द–(44), **तनुमध्या** छन्द–(112) **छन्दोविचिति ग्रन्थ**–(48), (112) **मुरजबन्ध**–(51)।

14. वासवदत्ता में प्रयुक्त व्याकरण विषयक उल्लेख– **नदी,** स्त्री, कृत संज्ञा (127), **क्विप्** प्रत्यय सम्पूर्ण लोप (51)।

15. वासवदत्ता में प्रयुक्त मांगलिक वस्तुएँ – **लाजा** (78), (134), यात्रा कलश, **स्वर्णिम** कलश (80) **दूब की पत्तियों से व्याप्त** चाँदी का कलश (82)

16. वासवदत्ता में प्रयुक्त धातुएँ – पिघला हुआ काला **अभ्रक** (79), **चुम्बक** (85), रसायनज्ञ का **पारद पिण्ड** (82) तप्त **लोहे** का कलश (121)

17. वासवदत्ता में प्रयुक्त मणि, रत्न– **मोती**–(127), (130), (134),**मूँगा**–(127), **नीलमणि**–(126), **पद्मराग मणि**–(104), (126), (120) (130), **मुक्तामणि** (106) **सूर्यकान्त मणि** (123), **विद्रुम**–(126), (130) **कौस्तुभ मणि**–(142),

18. वासवदत्ता में प्रयुक्त सुगन्धित पदार्थ– **कर्पूर, केसर, चन्दन, इलायची, लौंग** (105) **काला अगरु** (106), (109) **कस्तूरी** रस (111), **चन्दन** रस(111), **केसर** रस (111) **तमाल वृक्ष की** सुगन्ध (111), **शिलाजीत** (126)

19. वासवदत्ता में प्रयुक्त श्रेष्ठ घोड़ों की पहचान– **मल्लिकाक्ष** नामक शुभ्र **नेत्र**, गल प्रदेश में **आवर्त** विशेष, **इन्द्रधनुष** नामक काले **नेत्र** तथा **भँवरी** से युक्त (142)।

20. वासवदत्ता के रथ का नाम **'कर्णी'** (62)

21.वासवदत्ता में रामेश्वर सेतु **का उल्लेख**– (127)

22.वासवदत्ता में कालकूट विष **का उल्लेख**– (127)

•••

परिशिष्ट–2

वासवदत्ता में प्रयुक्त रामायण, महाभारत आदि में आए पौराणिक नामों आदि का संक्षिप्त परिचय–

1.**अगस्त ऋषि**– अत्यधिक तेजस्वी ऋषि। ऋग्वेद के अनुसार इनकी उत्पत्ति उर्वशी तथा मित्रावरुण से हुई थी। इसीलिए इनका अन्य नाम 'मैत्रावरुणि' भी है। पुराणों के अनुसार– इन्होंने आकाश की ओर बढ़ते हुए विन्ध्यपर्वत को रोक दिया था। (33), (35)

पौराणिक आख्यान के अनुसार– देवों के कहने पर महर्षि अगस्त्य विन्ध्य पर्वत के पास गए, उसने उन्हें श्रद्धा के साथ नमन किया तो उन्होंने उनके वापस आने तक अपने शिखरों के विस्तार को रोकने के लिए कहा, जिसे उसने अगस्त्य के प्रभाव को देखते हुए तथा अगस्त्य के अपना गुरु होने के कारण स्वीकार भी कर लिया, क्योंकि महर्षि अगस्त्य को विन्ध्य का गुरु भी कहा गया है, उनके आज तक वापस न आने से वह मानो इसप्रकार उन्हें लौटने के लिए कह रहा है। 'अग' अर्थात् पर्वत और उनका स्तम्भन करने वाले को 'अगस्त्य' कहा गया है। (प्राचीन चरित्रकोश– पृष्ठ, 3–4)

दक्षिण दिशा में निकलने वाला तारा विशेष, ऐसी मान्यता है कि इसके दर्शन से लोगों की मनोकामना पूर्ण हो जाती है। (1)

2. **अदिति**– देवताओं की माता का नाम, ये दिति, अदिति दो बहने थीं, दिति से दैत्यों की उत्पत्ति हुई तथा अदिति ने देवों को जन्म दिया। इनमें भी दिति, अदिति से अत्यधिक द्वेष करती थी और

अनेक प्रकार की कुटिलताओं का प्रयोग करके वह उसे अपने दासत्व में लेना चाहती थी, जिसमें एक बार वह सफल भी हो गयी थी। (49)

3. **अनन्त शेषनाग–** इन्हें भगवान् नारायण का अवतार माना गया है। इसीलिए ये उनके लिए शय्यारूप में विराजमान हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार यह पृथिवी शेषनाग के फण पर ही टिकी हुई है।(1)

4. **अनिरुद्ध–** यह रुक्मवती व प्रद्युम्न का पुत्र तथा कृष्ण का पौत्र था। राजा बलि के बड़े पुत्र बाणासुर की पुत्री उषा ने इसे स्वप्न में देखकर अपनी सखी चित्रलेखा के माध्यम से अपने महल में बुला लिया, जिसे बाद में पता चलने पर बाणासुर ने इसे बन्दी बना लिया, इसकी सूचना नारद से पाकर कृष्ण का उसके साथ भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें बाणासुर का वध हुआ और अनिरुद्ध तथा उषा का विवाह हो गया। (1), (9), (26), (श्लोक–14)

5. **अन्धकासुर दैत्य–** इसकी उत्पत्ति पार्वती के धर्म बिन्दुओं से हुई थी हिरण्याक्ष के तप के परिणाम स्वरूप शंकर ने इसे यह पुत्र दिया था। पार्वती का हरण करने के कारण इसका शंकर के साथ घोर युद्ध हुआ। बाद में विष्णु की सहायता से भगवान् शंकर ने इसे शूली पर चढाया। प्राचीन चरित्र कोष–पृष्ठ–23। (46)

6. **अन्धतामिस्र नरक–** मार्कण्डेय, गरुड़ आदि पुराणों में नरकों का विस्तार से वर्णन हुआ है, जिसमें इसका भी वर्णन किया गया है। पौराणिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी पर बुरे काम करने वाले व्यक्ति को नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। मार्कण्डेय महापुराण (26/13–14) (48)

7. **अमरावती–** इन्द्र की नगरी का नाम। यह अपने सौन्दर्य के लिए प्रख्यात है। संस्कृत साहित्य में इसका अनेकशः उल्लेख किया गया है। (104)

8. **अरुण–** सूर्य के सारथि का नाम। विनता एवं कश्यप का पुत्र, जन्म से ही इसके पैर नहीं थे। इसने अपने योगबल से सूर्य के तेज को निगल लिया था। तभी इसने देवों के कहने पर उसका सारथि होना स्वीकार किया। प्राचीन चरित्र कोष–पृष्ठ–33। (49)

9. **अरुन्धती–** नक्षत्र विशेष, वसिष्ठ की पत्नी, इसने वसिष्ठ को प्राप्त करने के लिए गौरी व्रत किया। यह अत्यन्त तपस्वी तथा पति–सेवा परायण थी। इसकी कठोर तपस्या के परिणामस्वरूप महर्षि वसिष्ठ ने आकाश में सप्तर्षियों में अपने पास ही इसे रहने का वरदान भी प्रदान किया। प्राचीन चरित्र कोष–पृष्ठ–33–34। (112)

10. **अर्जुन–** दुर्वासा द्वारा दिए गए प्रभाव से उत्पन्न पुत्र कुन्ती का पुत्र, यह कुन्ती का तीसरा पुत्र था। इसके दो बड़े भाइयों में धर्मराज युधिष्ठिर तथा भीम थे और यदि कुन्ती के कौमार्यावस्था में उत्पन्न कर्ण को भी गिने तो यह चतुर्थ पुत्र था। यह परम पराक्रमी एवं धनुर्विद्या में निपुण था। सम्पूर्ण महाभारत में कौरव युद्ध में यह प्रमुख पात्ररूप में प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन चरित्र कोष–पृष्ठ–35–40। (7), (38), (117)

11. **अवीचि नरक–** पुराणों में इक्कीस प्रकार के नरकों का उल्लेख किया गया है, उन्हीं में यह भी एक है। (48)

12. **अष्टवसु–** देवों का एक समूह। इनकी संख्या आठ होने के कारण इन्हें यह संज्ञा दी गयी है। ऐश्वर्य–प्राप्ति के लिए इनकी उपासना की जाती है। पुराणों में इनके नाम इसप्रकार दिए गए हैं– अनल, अनिल, अप्, धर, ध्रुव, प्रत्यूष, प्रभास तथा सोम। प्राचीन चरित्र कोष–पृष्ठ–811। (1)

13. **अष्टमूर्ति शंकर–** इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋती, वरुण, वायु, कुबेर एवं शंकर इन आठ देवों की शक्तियों से सम्पन्न शिव का स्वरूप। महाकवि कालिदास ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के

मंगलाचरण में अष्टमूर्ति के रूप में अन्य देवों जल, अग्नि, वायु, यजमान, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी का उल्लेख किया है। (50)

14. **आनकदुन्दुभि–** बड़े नगाड़े को आनकदुन्दुभि कहते हैं। कृष्ण के पिता और अनु के पुत्र वसुदेव के जन्म के अवसर पर देवताओं ने नगाड़े बजाए थे, इसीलिए वसुदेव का नाम 'आनकदुन्दुभि' पड़ा। इस कथा का उल्लेख विष्णु तथा वायु पुराण में किया गया है।

15. **अंगद–** सुग्रीव की सेना का एक वीर जो किष्किन्धा के राजा बालि का पुत्र था, किन्तु अपने पिता के विरोध के कारण यह नाराजगी वश अपने चाचा सुग्रीव के साथ रहकर राम–रावण युद्ध में राम का सहयोगी हुआ। (26)

16. **आकाश गंगा–** आकाश में प्रवाहित होने वाली दिव्य गंगा। वैज्ञानिक दृष्टि से इसप्रकार अनेक गंगा ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। एक आकाश गंगा में करोड़ों तारे होते हैं। (82)

17. **अश्वतर–** नागलोक का राजा, इसकी औरस कन्या का नाम मदालसा था, क्योंकि इन्होंने मृत मदालसा को अपने तपोबल से जीवित किया था, जिससे कुवलयाश्व ने बाद में पुनः विवाह किया था। मार्कण्डेय पुराण में मदालसा आख्यान (18–41 अध्याय) का विस्तार से उल्लेख हुआ है। (129)

18. **इन्द्र–** वेदों में विशेषरूप से ऋग्वेद में इसकी अत्यधिक महत्ता रही है। ये देवताओं का राजा थे। इनके शस्त्र का नाम वज्र तथा वाहन ऐरावत हाथी है तथा उपवन का नाम नन्दन है। इसकी सभा में अप्सराएँ नृत्य करती थीं, जिनमें रम्भा, उर्वशी, मेनका आदि प्रमुख रही हैं। मनुष्यों के कठोर तप से डरकर यह उनके तप को भंग करने के लिए इन अप्सराओं का प्रयोग अस्त्र के रूप में करता था। (32), (श्लोक–17), (50), (57), (63), (64), (76), (117), (129),

19. **इन्द्राणी–** इन्द्र की पत्नी का नाम, जो पुलोमन् राजा की कन्या थी। इसके पुत्र का नाम जयन्त था। इन्द्र तथा नहुष संघर्ष में

इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी, क्योंकि इसकी योजना के अनुसार ही नहुष को अजगर रूप में बनकर पृथ्वी पर सैंकड़ों वर्षों तक पड़े रहना पड़ा था। द्रष्टव्य–नहुष। (26), (46), (57),

इसके अतिरिक्त इन्द्राणी सुरत–क्रिया में एक आसन विशेष भी होता है।

20. **उत्तर**– यह विराट के राजा का अत्यन्त डरपोक पुत्र था। अज्ञातवास के अवसर पर बृहन्नला के रूप में जब अर्जुन विराट के राजा की पुत्री उत्तरा को संगीत की शिक्षा प्रदान कर रहा था, तभी त्रिगर्तनरेश ने विराट की गायों का अपहरण कर लिया, तब बृहन्नला वेषधारी अर्जुन ने अपनी पहचान छिपाए रखने के लिए उत्तर को रथ में आगे बाँध कर, उसके पीछे छिपकर युद्ध करते हुए उन गायों को छुड़ाया था। (38)

21. **उमा**– महाराज हिमालय की मेना से उत्पन्न पुत्री तथा भगवान् शंकर की पत्नी का नाम। काव्यकार कालिदास ने कुमार सम्भव पंचम सर्ग में इनके कठोर तप का सुन्दर वर्णन किया है। (4)

22. **उद्योतकर– तर्कशास्त्र में निपुण न्यायवार्तिककार** (112)

23. **उलूक**– गान्धार देश के राजा तथा दुर्योधन के मामा शकुनि का पुत्र था।

इसके अतिरिक्त विश्वामित्र के पुत्र का भी नाम उलूक ही था। (प्राचीन चरित्रकोष– पृष्ठ, 931–933) (117)

24. **ऋद्धि**– गन्धर्वराज कुबेर की पत्नी का नाम। (64)

25. **ऐरावत**– इन्द्र के प्रसिद्ध हाथी का नाम। (48)

26. **कर्ण**– यह कुन्ती का सूर्य के वरदान से प्राप्त पुत्र था। कौमार्यावस्था में उत्पन्न होने के कारण उसने इसे एक सन्दूक में रखकर अश्व नामक नदी में बहा दिया था। महाभारत युद्ध में यह दुर्योधन का सहयोगी था। इसे जन्म से ही कवच, कुण्डल प्राप्त थे, जिनके रहते कोई भी इसका वध नहीं कर सकता था। इसीलिए इन्द्र

ने याचक बनकर इससे उन्हें दान में ले लिया था। पुराणों में इसकी दानवीरता के अनेक आख्यानों का उल्लेख हुआ है। (प्राचीन चरित्रकोष– पृष्ठ,117) (145)

27. **कंस–** मथुरा के महाराजा उग्रसेन का पुत्र तथा कृष्ण की माता देवकी का भाई था। पूर्व जन्म में यह कालनेमि नामक असुर था। आकाशवाणी के अनुसार कृष्ण को इसका वध करने वाला बताया गया था। इसीलिए यह श्रीकृष्ण का द्वेषी था। बाद में उन्होंने ही इसका वध किया था। (प्राचीन चरित्र कोष– पृष्ठ–106–107) (7), (63),

28. **कात्यायनी–** माँ दुर्गा का ही अन्य नाम, महाकवि सुबन्धु ने वासवदत्ता के नगर कुसुमपुर नगर में इनके मन्दिर का प्रमुखता से वर्णन किया है, जिससे उनके इनका भक्त होने की पुष्टि होती है। इन्हीं का अन्य नाम पार्वती, चण्डिका आदि भी है। (47)

29. **कार्तवीर्य–** यह कृतवीर्य तथा राकावती का पुत्र था। मधु नामक राक्षस ही वस्तुतः शिव के शाप के कारण बाद में कार्तवीर्य हुआ। यह अत्यधिक बलशाली और अहंकारी था। माहिष्मती इसकी राजधानी थी। एक बार यह जमदग्नि के आश्रम में गया, जहाँ पर इसने माँगने पर सुरभि को न दिए जाने पर इसने उसका बलपूर्वक अपहरण करने का प्रयास किया और जमदग्नि ऋषि का वध कर दिया। बाद में जमदग्निपुत्र परशुराम ने तप से लौटने पर सम्पूर्ण घटनाक्रम को योगबल से जानकर इसे मारकर अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया। (प्राचीन चरित्र कोष– पृष्ठ–135–137)

30. **कार्तिकेय–** शिव और पार्वती का मानस पुत्र इसकी उत्पत्ति सरकण्डों से मानी गयी है, क्योंकि गंगा ने शिव के वीर्य को सरकण्डों में फैंक दिया था। इसीलिए इन्हें 'शरजन्मा' भी कहा जाता है। जन्म के बाद इसका पालन–पोषण छः कृत्तिकाओं द्वारा किए जाने से इन्हें इस नाम की प्राप्ति हुई। इन्हीं का अन्य नाम 'स्कन्द' भी है। जन्म के समय इनके छः सिर तथा बारह हाथ थे। तारकासुर के

विरुद्ध युद्ध में देवों ने इसे अपना सेनापति बनाया था। आप्टेकोश– पृष्ठ, 269–270। (1), (106), (122), (132)

31. **कामदेव–** ब्रह्मदेव का मानसपुत्र। इसकी पत्नी का नाम रति था। देवताओं की योजना के अनुसार हिमालय पुत्री पार्वती के प्रति महादेव को आकृष्ट करने के प्रयास में इसे भगवान् शंकर ने क्रोधवश अपने तृतीय नेत्र से इसे भस्म कर दिया था, किन्तु बाद में रुक्मिणी के गर्भ से इसका प्रद्युम्न के नाम से पुनर्जन्म हुआ। इसकी प्रसिद्धि सौन्दर्य के लिए मानी गयी है। कामवासना के रूप में यह सम्पूर्ण संसार के सभी जीवों में विद्यमान रहता है। इसप्रकार सृष्टि का उत्स यही है। (प्राचीन चरित्र कोष– पृष्ठ–133–134)

कवि सुबन्धु को यह अत्यधिक प्रिय रहा है, क्योंकि उपमानरूप में इसका यहाँ अनेकशः प्रयोग किया गया है। (1), (9), (18), (22), (28), (31), (53), (56), (59), (65), (73), (78), (80), (82), (107), (133)

32. **कालकूट विष–** देवों तथा दानवों द्वारा समुद्र मन्थन से इसकी प्राप्ति हुई। इसके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण सृष्टि संतप्त होने लगी तो इसका पान शिव ने कर किया तथा अपने कण्ठ में ही इसे रोक लिया, जिससे वे नीलकण्ठ कहलाए, क्योंकि इसके पान से उनका कण्ठ नीला पड़ गया था। इसी का दूसरा नाम 'हलाहल' भी है। (127)

33. **कीचक–** यह मत्स्य देश के राजा का साला था। पाण्डवों के अज्ञातवास के अवसर पर वे मत्स्य नरेश की राजधानी विराटनगर में छिपकर रहे थे। उसी समय दौपदी पर कुदृष्टि डालने के कारण भीम ने इसका वध कर दिया था। (35), (38)

34. **कुबेर–** इसकी पत्नी का नाम ऋद्धि था। (45), (64)

35. **कुम्भीनसी–** सुमाली नामक राक्षस की केतुमती से उत्पन्न चार कन्याओं में सबसे छोटी पुत्री। यह रावण की माता की माता

कैकसी की बहन थी। रावण की अनुपस्थिति में 'मधु' नाम के राक्षस ने इसका अपहरण कर लिया था। इसी से लवणासुर की उत्पत्ति हुई। (प्राचीन चरित्र कोष, पृष्ठ–151) (127)

36. **कुवलयाश्व**– इसकी कथा विस्तार के साथ मार्कण्डेय महापुराण में प्रयुक्त हुई है, इसने नागराज अश्वतर की तप से जीवित की गयी कन्या मदालसा से अभिसार किया था, जो पूर्व में मर गयी थी, जिसके कारण कुवलयाश्व अत्यधिक दुःखी रहता था। द्रष्टव्य– अश्वतर (129)

37. **कुवलयापीड़ हाथी**– हाथी का नाम, यह अत्यन्त शक्ति शाली था, किन्तु कंस ने इसकी सूँड पकड़कर पहले जमीन पर पटक दिया और बाद में हवा में घुमाकर इसे आकाश में फैंक दिया था। (प्राचीन चरित्र कोष, पृष्ठ–107) (7),

38. **कुश**– राम के दो जुड़वाँ पुत्रों में से बड़े पुत्र का नाम। यह धनुर्विद्या में अत्यन्त कुशल था। इसने अपने भाई लव के साथ अपने पिता श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को रोक लिया था। बाद में राम ने इसे कृशावती नगरी का राजा बनाया। (6)

39. **कृष्ण**– वसुदेव तथा कंस की बहन देवकी से उत्पन्न आठ सन्ततियों में सबसे छोटा पुत्र। इनका जन्म कंस के कारागृह में हुआ। इनकी बाललीलाओं से अधिकांश पौराणिक साहित्य भरा पड़ा है। इनकी यों तो नरकासुर के कारागृह में स्थित सोलह हजार रानियाँ पत्नी कही गयी हैं, जिनके साथ इन्होंने नरकासुर को मारने के बाद विवाह किया था, किन्तु उन सभी में भी भीष्मक राजा की कन्या रुक्मिणी तथा यादव राजा सत्राजित् की कन्या सत्यभामा दो प्रमुख महारानियाँ थीं। (प्राचीन चरित्र कोष, पृष्ठ–160) (36), (50), (62), (63)

40. **कौरव**– कुरुवंश के जन्म से अन्धे धृतराष्ट्र को अपनी पत्नी गान्धारी से दुर्योधन आदि सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई, जो बाद में कौरव कहलाए। (62), (117)

41. **क्षीरसागर**– इसे दुग्ध का समुद्र होने से इस नाम की प्राप्ति हुई। भगवान् विष्णु इसी में शेषनाग की शय्या पर विराजमान रहते हैं। पुराणों में इसका विशेषरूप से उल्लेख किया गया है। (68)

42. **गरुड़**– विष्णु का वाहन शक्तिशाली पक्षी विशेष। वेदों में यह 'श्येन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पुराणों में इसकी माता विनता को बताया गया है। यह स्वर्ग से अमृत लाया था। (7), (126),

43. **गवाक्ष**– राम–रावण युद्ध में राम के सहयोगी सुग्रीव के सेनापति का नाम । (44)

44. **गुणाढ्य**– 'बृहत्कथा' नामक प्रसिद्ध कथाग्रन्थ के रचयिता का नाम। महाकवि सुबन्ध इससे अत्यधिक प्रभावित थे। (62)।

45. **चन्द्रमा**– अत्रि तथा अनसूया का पुत्र, यह 'सोम' नाम से भी प्रसिद्ध है। कुछ स्थलों पर इन्हें सूर्य तथा भद्रा का पुत्र कहा गया है। दक्ष प्रजापति की 27 कन्याएँ इनकी सत्ताईस रानियाँ थीं, जिनमें 'रोहिणी' इन्हें अत्यधिक प्रिय थी। अपने श्वसुर दक्ष के शाप से इसे क्षयरोग हुआ, किन्तु बाद में उन्होंने ही इसे पन्द्रह दिन क्षय तथा वृद्धि प्राप्त करने का वरदान प्रदान किया । पृष्ठ–202।[1] (21), (78), (126), (129),

46. **छन्दोविचिति**– छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ का नाम जो वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं है। (48), (112)

47. **छाया**– सूर्य की दूसरी पत्नी का नाम, जिसे सूर्य का तेज सहन करने में असमर्थ उनकी विश्वकर्मा की पुत्री 'संज्ञा' नामक पत्नी ने अपने प्रतिरूप में स्वयं बनाया था तथा बच्चों के लालन पालन का दायित्व सौंपकर स्वयं वन में घोड़ी के रूप में रहने लगी। बाद में इसे तीन पुत्रों की उत्पत्ति हुई। बाद में संज्ञा के पुत्रों के साथ भेदभाव

---

[1]. आगे भी सर्वत्र यह पृष्ठ संख्या प्राचीन चरित्र कोष के अनुसार दी गयी है। कोष्ठक में दी गयी संख्या से अभिप्राय वासवदत्ता में प्रयुक्त गद्यखण्ड संख्या से ग्रहण करना चाहिए।

करने पर यम ने इसे लात मार दी, जिसके परिणामस्वरूप इसने उसे शाप दे दिया था। मार्कण्डेय महापुराण में इसकी कथा का विस्तार से उल्लेख किया गया है। (39)

48. **जनक–** इन्हें विदेह तथा मिथिल नामों से भी जाना जाता है। ये ब्रह्मज्ञानी थे। अनेक वर्षों तक पुत्र सन्तान न होने के कारण इसने पुत्रकामेष्टि यज्ञ का आयोजन किया, तब इन्हें दो पुत्र तथा सीता नाम की कन्या पृथ्वी से प्राप्त हुईं। पृष्ठ–220। (106)

49. **जरा राक्षसी–** एक राक्षसी तथा जरासन्ध की उपमाता। बृहद्रथ नामक राजा की एक ही पत्नी को दो टुकड़ों के रूप में एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसे उसने चौराहे पर फिंकवा दिया। बाद में, इन दोनों टुकड़ों को 'जरा' नामक राक्षसी ने मन्त्रों के प्रयोग से जोड़ दिया। यही बालक आगे चलकर जरासन्ध राक्षस के नाम से जाना गया। (6),

50. **जरासन्ध–** बृहद्रथ नामक राजा की पत्नी का दो टुकड़ों के रूप में उत्पन्न एक बालक, जिसे बाद में जरा द्वारा जोड़ दिया गया। (6),

51. **जलमानुष–** सम्भवतः दो पैरों पर चलने वाला विशालकाय जलीय प्राणी। इसकी कल्पना वर्तमान में पंग्विन नामक जलीय प्राणी के रूप में की जा सकती है। इस विषय में कोषों में उल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु महाकवि ने इसका समुद्र वर्णन में उल्लेख किया है। (126)

52. **जाम्बवान्–** भालुओं का प्रसिद्ध राजा राम–रावण युद्ध में इसने सुग्रीव की सेना में सम्मिलित होकर युद्ध किया था। (81)

53. **तपती–** सूर्य की 'छाया' नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्री का नाम, यह अत्यधिक रूपमती थी। इसकी सावित्री नामक दूसरी बहन का भी उल्लेख मिलता है। पृष्ठ–241। (129)

54. **तारा–** यह बृहस्पति की पत्नी थी, जो स्वेच्छा से चन्द्रमा के पास चली गयी। बृहस्पति द्वारा माँगे जाने पर चन्द्रमा ने इसे वापस

देने से मना कर दिया। परिणामस्वरूप इन दोनों में भयंकर युद्ध हुआ, बाद में ब्रह्मा द्वारा मध्यस्थता करने पर तारा बृहस्पति को प्राप्त हो गयी, किन्तु उस समय वह गर्भवती होने से यह पुत्र चन्द्रमा को ही प्राप्त हुआ, जिसका बाद में 'बुध' नाम रखा गया। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र में बुध, अपने पिता चन्द्रमा के साथ शत्रुता का भाव रखता है। (129)

55. **तारा–** भगवान् बुद्ध की पत्नी का नाम, जिसे यहाँ लाल वस्त्रों को धारण करने वाली भिक्षुकी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (74) सुग्रीव की पत्नी का नाम भी तारा था, जिसे बालि ने बलपूर्वक हरण कर लिया था। (81)

56. **तारकासुर–** अत्याचारी एक असुर। वज्रांग तथा वरांगी को ब्रह्मदेव की अनुकम्पा से इसकी प्राप्ति हुई थी, इसने पारियात्र पर्वत पर दस हजार वर्षों तक तपस्या की। बाद में वरदान प्राप्त करके इसने इन्द्र को परास्त भी कर दिया। इसका संहार शिव के पुत्र, देवों के सेनापति कार्तिकेय ने किया था। द्रष्टव्य–कार्तिकेय। (122)

57. **तार्क्ष्य–** कश्यप और विनता का पुत्र, इसके भाई का नाम गरुड़ था। शतपथ ब्राह्मण (13/4/3/13) में इसका शक्तिशाली और पराक्रमी पक्षी के रूप में उल्लेख किया गया है। सोम लाने के लिए देवों ने इसका उपयोग किया था। पृष्ठ–244 ।

58. **त्रिशंकु–** वाल्मीकि रामायण के अनुसार–ये सूर्यवंशी राजा थे। इन्होंने यज्ञ करके सशरीर स्वर्ग में जाने का विचार किया। इसके लिए ये वशिष्ठ ऋषि के पास गए तथा अपना पुरोहित बनने का निवेदन किया, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया, तब ये विश्वामित्र के पास गए तथा यज्ञ के माध्यम से इन्हें शरीर के साथ स्वर्ग भेजना प्रारम्भ कर दिया। इससे इन्द्र ने क्रुद्ध होकर त्रिशंकु को नीचे गिरा दिया। क्रुद्ध विश्वामित्र अपने तपोबल से नए स्वर्ग के निर्माण के लिए उद्यत हुए, किन्तु बाद में देवों के निवेदन से इस कर्म से ये विरत हो गए।

पौराणिक मान्यता के अनुसार तब से लेकर आज तक त्रिशंकु आकाश में ही लटके हुए हैं और सभी नक्षत्र इनकी परिक्रमा करते हैं।(6),

59. **दमयन्ती–** विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या अद्वितीय सुन्दरी तथा निषध देश के राजा की पत्नी। इसी का अन्य नाम 'भैमी' भी है। सुवर्ण नामक हंस से राजा नल के गुणों को सुनकर तथा उससे प्रभावित होकर स्वयंवर के अवसर पर इन्द्रादि देवताओं को छोड़कर इसने नल का ही वरण किया। बाद में नल द्वारा जुए में अपना सभी कुछ हारने के कारण इन्हें वनों में लम्बे समय तक रहना पड़ा। पृष्ठ–265 । (3), (64),

60. **दशरथ–** राम के पिता अयोध्या नगरी के राजा इन्हें श्रवण के माता–पिता के शाप के कारण अपने पुत्र राम के वनवास में जाने के कारण उत्पन्न हुए वियोग में अपने प्राणों का त्याग करना पडा। पृष्ठ–267 । (6),

61. **दिति–** प्राचेतस् दक्ष प्रजापति तथा असिक्नी की कन्या महर्षि कश्यप की पत्नी, दैत्यों की माता। इसका अपनी बहन तथा देवों की माता अदिति से घोर विरोध था। इसीलिए दैत्यों तथा देवों में आगे चलकर विरोध ही बना रहा। पृष्ठ–271। (32)

62. **दिलीप–** यह अयोध्या के प्रसिद्ध राजा रघु के पिता का नाम। इनकी पत्नी सुदक्षिणा थी। पुत्र न होने के कारण इन्होंने वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में रहते हुए लम्बे समय तक कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा समर्पित भाव से की थी, जिसके परिणामस्वरूप इन्हें रघु की प्राप्ति हुई। बाद में इसी के नाम से यह कुल रघुवंश रूप में प्रसिद्ध हुआ। (6), .

63. **दुष्यन्त–** सूर्यवंशी प्रसिद्ध राजा, इनकी इन्द्र से मित्रता थी, इनकी पत्नी का नाम शकुन्तला था। इनकी कथा को आधार बनाकर नाटककार कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् की संरचना की, जिसमें

महाभारतकार के कुटिल दुष्यन्त को अत्यन्त उच्च धरातल पर चित्रित किया है। (64)

64. **दिति–** यह दक्ष प्रजापति की पुत्री, महर्षि कश्यप की पत्नी तथा दैत्यों की माता थी। इन्द्र द्वारा अपने सभी पुत्रों का वध किए जाने पर इसने अपने पति से ऐसे पुत्र की कामना की, जो इन्द्र का वध कर सके। पति के निर्देशानुसार इसने 99 वर्षों तक कठोर तप का आचरण किया, किन्तु अन्तिम सौवें वर्ष में व्रत भंग होने से इन्द्र ने इसके गर्भ में प्रवेश करके उसके जरायु के सात टुकड़े कर दिए, तब उस बालक के जोर से रोने पर फिर से उनमें से प्रत्येक को सात–सात भागों में विभाजित कर दिया। इसप्रकार ये कुल उनचास खण्ड किए, जो बाद में उनचास की संख्या वाले 'मरुत्' हुए।

65. **दुःशासन–** यह धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में द्वितीय था। इसने पाण्डवों के द्यूत में हारने के बाद भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण किया था। भीम ने इसी समय इसका वध करके इसका रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी। पाण्डवों के अज्ञातवास के अवसर पर इसी ने मत्स्य देश के राजा विराट की गायों का अपहरण करने में सहयोग किया था। पृष्ठ– 276। (2)

66. **दुर्योधन–** काव्यों में इसके लिए सुयोधन नाम का प्रयोग हुआ है, धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के सौ पुत्रों में यह सबसे बड़ा तथा पाण्डवों का परम शत्रु था। यही महाभारत युद्ध का सबसे बड़ा कारण भी बना। यह गदा युद्ध में अत्यधिक निपुण था। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद भीम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इसकी जंघा तोड़ी थी, क्योंकि द्यूत के अवसर पर इसने द्रौपदी को अपनी जंघा पर बैठने के लिए कहा था। पृष्ठ–280 । (26)

67. **द्रोणाचार्य–** आंगिरस गोत्र के भरद्वाज ऋषि के पुत्र ये कौरव, पाण्डव दोनों के ही शस्त्र–विद्या के गुरु थे, इनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा था, जिससे ये असीम प्रेम करते थे। पाण्डवों ने श्रीकृष्ण की

योजना के अनुसार अश्वत्थामा नामक हाथी का वध करके इन्हें अपने पुत्र अश्वत्थामा के मरने की वक्रोक्ति से सूचना दी, जिससे इन्होंने शोकवश अपने शस्त्र त्याग दिए, तब योजना के अनुसार द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने अपने खड्ग से इनका वध कर दिया। (62), (76), (117)

68. **द्रौपदी**– पाँचों पाण्डवों की पत्नी, राजा द्रुपद की पुत्री थी। पुत्र की कामना से द्रुपद ने यज्ञ किया, जिससे धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी की उत्पत्ति हुई। पांचाल नरेश द्रुपद की पुत्री होने से इसी को पांचाली भी कहते हैं। यही बाद में महाभारत युद्ध का कारण बनी, क्योंकि एक बार इसने व्यंग्य में दुर्योधन को कहा था कि– 'अन्धों के तो अन्धे ही पैदा होते हैं।' इसने पाण्डवों का विकट स्थिति में भी हमेशा साथ दिया। पृष्ठ– 310–312। (62)

69. **धर्मराज**–मृत्यु के देवता के 'यम' के लिए धर्मराज विशेषण का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि यह सम्पूर्ण सृष्टि को कर्मफल के अनुसार धर्मपूर्वक न्याय प्रदान करने वाला है। वेदों के अनुसार इनके पिता वैवस्वत् तथा माता सरण्यु थी, किन्तु पुराणों में इन्हें विवस्वत् (सूर्य) तथा संज्ञा का पुत्र कहा गया है। इसकी पत्नी का नाम धूमोर्णा था। मरणशील मनुष्यों में इसे प्रथम माना गया है। कठोपनिषद् में नचिकेता यम अर्थात् धर्मराज का संवाद प्रसिद्ध है। पृष्ठ– 674–675। (64)

70. **धर्मकीर्ति**– बौद्धसंगति नामक प्रसिद्ध बौद्धशास्त्रीय ग्रन्थ के रचयिता का नाम। (112)।

71. **धृतराष्ट्र**– यह कुरुवंश के विख्यात राजा विचित्रवीर्य का क्षेत्रज पुत्र था, जो जन्म से ही अन्धा था। इसकी उत्पत्ति सत्यवती की आज्ञा से विचित्रवीर्य की पत्नी अम्बिका में व्यास द्वारा नियोग के माध्यम से हुई थी। गर्भाधान के प्रसंग में व्यास के तेज को सहन न करने से अम्बिका ने अपनी आँखें मूँद ली थीं। इसीलिए यह अन्धा उत्पन्न हुआ था। पृष्ठ– 325। (1), (62), (117).

72. **धृष्टद्युम्न–** पांचालराज द्रुपद का अग्निकुण्ड से उत्पन्न अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र, इसकी उत्पत्ति द्रोणाचार्य का वध करने के लिए ही द्रुपद की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ के माध्यम से हुई थी। पृष्ठ– 331। (76)

73. **धूमोर्णा–** सूर्य तथा संज्ञा के पुत्र यमराज अर्थात् धर्मराज की पत्नी का नाम। पृष्ठ– 324 । (64)

74. **नन्द–** यशोदा के पति कृष्ण के पालिता पिता, नन्द गाँव के मुखिया। पौराणिक मान्यता के अनुसार–इनकी उत्पत्ति द्रोण नामक वसु के अंश से हुई थी।

75. **नन्दन वन–** स्वर्ग में स्थित इन्द्र के उपवन का नाम, जो सौन्दर्य के लिए सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। (76)

76. **नरवाहनदत्त–** कुबेर का ही दूसरा नाम एवं उपलब्ध बृहत्कथा काव्य का नायक उदयन का पुत्र। इसके मित्र का नाम गोमुख था, जिसके साथ वन में जाने पर एक बार इसका विवाह विद्याधर राजकुमारी मदनमंजुका के साथ हुआ, जिसे बाद में मानसवेग नामक अन्य विद्याधर अपहरण करके ले गया। मानसवेग की बहन वेगवती ने मदनमंजुका का पता लगाने में नरवाहनदत्त का सहयोग किया था। (34)

77. **नरकासुर–** कश्यप तथा दनु का पुत्र एक राक्षस। यह अत्यधिक आततायी था। इसीलिए इसका वध स्वयं नारायण ने अपने सुदर्शन चक्र से किया था। इसकी कथा पद्म महापुराण में विस्तार से प्रयुक्त हुई है। पृष्ठ– 346 । (145)

78. **नल–** अत्यधिक सुन्दर ये निषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम दमयन्ती था, जो विदर्भ देश के राजा की पुत्री थी। कलि के रुष्ट होने पर जुए में अपना राज्य खोने के बाद इन्हें वन में जाना पड़ा। इनके घनिष्ठ प्रेम की कथा पुराणों में विस्तार

से मिलती है। कलि द्वारा पीछा छोड़ देने पर इन्हें अपने राज्य की जुए के माध्यम से ही प्राप्ति हो गयी थी। (6), (64), (129)

79. **नलकूबर–** यह धनों के स्वामी कुबेर तथा ऋद्धि के दो पुत्रों में एक था, इसने अपनी प्रिया रम्भा के बलात्कार करने पर रावण को स्त्री की अनिच्छा से उसका स्पर्श करने पर मारे जाने का शाप दिया था। ऐसी कथा महाभारत में मिलती है, किन्तु रामायण के अनुसार– दिग्विजय करके लौटते हुए रावण ने नलकूबर के पास रमण के लिए जाती हुई रम्भा को पकड़ लिया, तो उस रम्भा ने ही रावण को किसी स्त्री के साथ जोर जबरदस्ती करने पर मारे जाने का शाप दे दिया था। (38)

80. **नारायण–** भगवान् विष्णु का ही अन्य नाम। इन्होंने ही आततायियों से सृष्टि के उद्धार के लिए वाराह तथा वामन आदि अवतारों को समय–समय पर ग्रहण किया। इन्हें सृष्टि का पालन करने वाला माना गया है। (117), (145)

81. **नृग–** यह इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में एक परम दानी था, इसने पयोष्णी नदी के किनारे वाराहतीर्थ में विशाल यज्ञ का आयोजन किया तथा करोड़ों गायों का दान किया। भूलवश दान में दी गयी एक गौ फिर से दान करने से इसे ब्राह्मणों के शाप की प्राप्ति हुई, जिससे यह गिरगिट बना। इसका उद्धार बाद में श्रीकृष्ण द्वारा द्वापर युग में किया गया । (129)

82. **नृसिंह अवतार–** ये विष्णु के आधे मनुष्य तथा आधे सिंह के रूप में चौथे अवतार थे। इस कथा का नृसिंह पुराण में विस्तार से उल्लेख किया गया है। सत्युग में हिरण्यकशिपु नाम दैत्य ने घोर तपस्या करके वरदान माँग लिया कि उसकी मृत्यु किसी भी व्यक्ति तथा अस्त्र द्वारा किसी भी स्थान तथा दिन में घर के बाहर या घर के भीतर न हो। इसे प्राप्त करके वह स्वयं को भगवान् मानकर पृथ्वी पर अत्याचार करने लगा, तब भगवान् विष्णु ने नृसिंह का रूप धारण

करके घर की देहरी पर बैठकर अपनी जंघाओं पर रखकर अपने नाखूनों से इसका पेट चीर कर वध किया था। उस समय न दिन था न रात अपितु सन्ध्या का समय था। (1)

83. **नहुष**– आयु नामक राजा तथा स्वर्भानु की पुत्री प्रभा का पुत्र, यह अनेक विद्याओं में निपुण था तथा बहुत से यज्ञों को करने वाला कुलीन तथा पराक्रमी था। नहुष नाम इसे वसिष्ठ ने प्रदान किया था। इसने अपने पराक्रम तथा तपोबल से तीनों लोकों पर आधिपत्य कर लिया, किन्तु बाद में मदोन्मत्त होकर इन्द्र की पत्नी को प्राप्त करने की इच्छा की, तब इन्द्राणी द्वारा सात ऋषियों की पालकी में बैठकर आने की शर्त रखी गयी। इन्द्राणी से मिलने की तीव्र इच्छा से इसने ऋषियों को जल्दी चलने के लिए 'सर्प, सर्प' कहकर प्रेरित किया तो उनमें से अगस्त्य ऋषि ने इसे सर्प योनि में जाने का शाप दे दिया और यह अजगर बना। बाद में पाण्डुपुत्र आत्मज्ञान वेत्ता युधिष्ठिर की कृपा से इसकी शाप से मुक्ति हुई। (129)

84. **निषध**– देश का नाम।

85. **निशुम्भ**– शुम्भ, निशुम्भ दो अत्याचारी भाई, इसका वध चण्डिका देवी द्वारा किया गया। मार्कण्डेय महापुराण में प्रयुक्त दुर्गा सप्तशती के अन्तर्गत इनके वध की कथा का विस्तार से उल्लेख किया गया है। द्रष्टव्य शुम्भ। (47)

86. **नरवाहनदत्त**– इसकी पत्नी का नाम मदनमंजरी, या प्रियंगुश्यामा था, इसकी सखी का नाम प्रियदर्शना था। महाकवि ने इनका विशेषरूप से उल्लेख किया है। (64) (112)

87. **नलकूबर**– यह धन के देवता कुबेर का पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम रम्भा था, जो सुन्दरी अप्सरा थी। एक बार वह इससे मिलने के लिए जा रही थी, तब रावण ने इसके साथ बल का प्रयोग किया, तो इसने रावण को शाप दिया कि न चाहने वाली किसी भी स्त्री का तुम स्पर्श नहीं कर सकोगे, यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारी मृत्यु

हो जाएगी। इसीलिए रावण बलपूर्वक अपहरण की गयी सीता को, उसकी इच्छा के विपरीत छूने का दुःसाहस नहीं कर सका था। पृष्ठ– 354। (64)

88. **पृथु–** ये राजा वेन के पुत्र थे, ब्राह्मणों ने जब इसका मन्थन किया, तो अर्चि नामक स्त्री तथा एक पुरुष की उत्पत्ति हुई। यह पुरुष ही बाद में पृथु राजा हुआ और यही स्त्री उसकी पत्नी हुई। इन्होंने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक पृथ्वी को समतल करके कृषि का आविष्कार किया। इन्हीं के नाम के आधार पर धरती को 'पृथ्वी' भी कहा जाता है। पृष्ठ– 449। (3)

89. **पाण्डव–** कुरुवंश के पाण्डु नामक राजा के पाँच पुत्रों का सामूहिक नाम, जिनमें युधिष्ठिर सबसे बड़े थे। शेष चार भाइयों में भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव थे। पृष्ठ– 410। (62)

90. **पारिजात–** देवताओं का वृक्ष। (7), (126)

91. **पार्थ–** अर्जुन का ही अन्य नाम, क्योंकि कुन्ती का एक अन्य नाम 'पृथा' भी था, जिसके कारण इसका नाम 'पार्थ' पड़ा। इसीलिए महाभारत में एक स्थल पर कर्ण के लिए भी इसी नाम का प्रयोग किया गया है। पृष्ठ– 415। (50)

92. **पार्वती–** हिमालय राज तथा उनकी पत्नी मैना की पुत्री इसी का अन्य नाम 'उमा' भी है। काव्यकार कालिदास के अनुसार हिमालय ने इसे शंकर को पति रूप में प्राप्त करने के लिए तप करने से रोका था। (उ+मा–मा गा, मत जाओ) द्रष्टव्य–उमा (54)

93. **प्रियंवद–** गन्धर्व का नाम, अत्यन्त प्रिय बोलने के कारण इसका नाम प्रियंवद हुआ। कवि ने इसका उल्लेख इसी रूप में किया है। (45)

94. **प्रियंगुश्यामा–** नरवाहन दत्त की पत्नी का नाम। महाकवि सुबन्धु ने इसकी अत्यधिक प्रियसखी प्रियदर्शना के नाम का विशेषरूप

से उल्लेख किया है, जो अत्यन्त प्रिय दर्शनों वाली अत्यधिक सुन्दर थी। द्रष्टव्य– नरवाहनदत्त। (34), (112)

95. **पुरुकुत्स–** पुरु देश का इक्ष्वाकुवंशीय राजा, पुराणों में इसका अनेकशः उल्लेख हुआ है। राजा मान्धाता इसके पिता तथा बिन्दुमती माता और नागकन्या नर्मदा पत्नी थी। नागों से शत्रुता रखने वाले गन्धर्वों का इसने विनाश किया था, जिसके कारण नागों ने इसे वरदान दिया कि– 'तुम्हारा नाम लेने मात्र से ही सर्पदंश के भय से व्यक्ति को छुटकारा प्राप्त हो जाएगा।' इसका अन्य नाम पुरुकृत् भी मिलता है। पृष्ठ– 421–432। (129)

96. **पुरुरवा–** प्रतिष्ठान देश का अत्यन्त प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा। इसने सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान पुरी थी। इसकी पत्नी का नाम उर्वशी था जो इन्द्र की सभा की प्रसिद्ध नर्तकी तथा अत्यधिक सुन्दर अप्सरा थी, जिससे इसे 'आयु' नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। (129)

97. **पुलोम–** इनकी पुत्री का नाम शची था । इसीलिए उसे पुलोमी भी कहते हैं। (64), (117)

98. **पुष्पकेतु–** चक्रवर्ती राजा विजयकेतु का पुत्र इसी के साथ वासवदत्ता के पिता श्रृंगारशेखर ने उसका पाणिग्रहण संस्कार करना तय किया था, जो वासवदत्ता के कन्दर्पकेतु के साथ भाग जाने से सम्भव नहीं हो सका। (114)

99. **पूतना–** एक राक्षसी, कंस की बहन, जो घटोदर नामक राक्षस की पत्नी थी। कंस ने इसे श्रीकृष्ण का वध करने के लिए गोकुल भेजा था और इसने उन्हें अपना विषैला दूध पिलाकर मारने का प्रयास किया, किन्तु बालरूप श्रीकृष्ण ने पहचान कर स्तनों के माध्यम से ही इसके प्राणों को चूस कर इसका वध कर दिया।

100. **बकासुर–** एक राक्षस जिसका एकचक्रा नगरी के पास में यमुना के तट के आसपास के जनपदों पर शासन था। यहाँ के

निवासी इसे भोजन प्रदान करते थे, इसका वध पाण्डुपुत्र भीम ने किया था। महाभारत में इसकी कथा का उल्लेख हुआ है। (29)

101. **बलराम–** श्रीकृष्ण के बड़े भाई, इनका शस्त्र खेत जोतने वाला 'हल' होने के कारण अन्य नाम 'हलधर' भी है। ये मदिरापान अत्यधिक करते थे। इनकी पत्नी का नाम रेवती था। श्री कृष्ण इन्हें दाऊ कहकर पुकारते थे। (50), (72), (132)

102. **बलि राजा**–यह विरोचन तथा सुरुचि का पुत्र एक महान् पराक्रमी असुर था। यह अत्यधिक दानी था। एक बार नर्मदा के उत्तरी तट पर भृगुकच्छ में अश्वमेध यज्ञ करने के अवसर पर विष्णु वामनरूप धारण करके इसके पास आए और तीन पग भूमि की याचना की। इसके द्वारा दिए जाने पर उन्होंने अपना विराटरूप धारण करके दो पगों में पृथ्वी तथा आकाश दोनों का ही माप लिया और तीसरे पग को रखने के लिए स्थान देने के लिए कहा, तब राजा बलि ने अपना मस्तक ही आगे कर दिया, जिसपर पग रखकर भगवान् विष्णु ने इसे पाताललोक में भेज दिया और वहाँ का राजा दिया। (26)

103. **बुद्ध–** बौद्धधर्म के प्रवर्तक इनकी पत्नी का नाम तारा था, जिसने इनके साथ ही बौद्धधर्म को स्वीकार कर लिया था। (74)

104. **बृहत्कथा–** महाकवि गुणाढ्य विरचित प्रसिद्ध कथा ग्रन्थ, जिसे लम्बकों में विभाजित किया गया है।(44)

105. **बृहन्नला–** पाण्डवों के अज्ञातवास के अवसर पर राजा विराट के राज्य में पाण्डवों को अपनी पहचान छिपाकर रहना पड़ा था। उसी अवसर पर पाण्डुपत्र अर्जुन विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य, संगीत की शिक्षा प्रदान करने वाला 'बृहन्नला' बना था। लम्बी नाल वाले कमल को भी 'बृहन्नला' कहते हैं। (1)

106. **बृहस्पति–** देवों के गुरु तथा ज्योतिष शास्त्र में एक शुभ ग्रह। (श्लोक–17), (129)

107. **ब्रह्मा**– सम्पूर्ण सृष्टि के निर्माता के कारण इन्हें प्रजापति भी कहा जाता है। मान्यता है कि इन्होंने ने ही वेदों का निर्माण भी किया। इनका जन्म भगवान् विष्णु के नाभिकमल से माना गया है। ये कमण्डलु धारण करते हैं, कहते हैं कि इससे धर्म की धारा प्रवाहित होती है। सम्पूर्ण सृष्टि का पूरा लेखाजोखा इन्हीं के पास रहता है। (21),(22),(48), (63), (78),

108. **बालि**– सुग्रीव के भाई का नाम, इसने बलपूर्वक किष्किन्धा का साम्राज्य तथा उसकी पत्नी तारा को भी सुग्रीव से छीन लिया था। प्रस्तुत काव्य में कवि ने तारा को इसी की पत्नी बताया है। (81)

109. **भरत**–सुविख्यात पुरुवंशीय सम्राट, दुष्यन्त तथा शकुन्तला का पुत्र। मान्यता है कि इसके नाम के कारण ही हमारे देश का नाम 'भारत वर्ष' पड़ा। पृष्ठ– 540। (3), (45)

110. **भार्गव**– जमदग्नि के पुत्र परशुराम का अन्य नाम, इस कुल में उत्पन्न सभी लोगों के लिए 'भार्गव' नाम का प्रयोग किया जाता है। इन्होंने ही भीष्म को शस्त्र–विद्या प्रदान की थी तथा अपने पिता के कहने से अपनी माता रेणुका का वध कर दिया था। पृष्ठ–388–394

111. **भीम**– कुन्ती का दूसरा पुत्र, किन्तु यदि कौमार्यावस्था में उत्पन्न कर्ण को प्रथम पुत्र माना जाए, तो इसे तृतीय स्थान पर रख सकते हैं। इसका जन्म वायु देवता के आशीर्वाद के फलस्वरूप हुआ था, इसके जन्म के समय आकाशवाणी ने इसे संसार के बलिष्ठ लोगों में श्रेष्ठ होने की बात कही थी। पृष्ठ– 561। (35), (50)

112. **भीष्म पितामह**– महाभारत के युद्ध में भीष्म की बहुत बड़ी भूमिका रही। इन्होंने युवावस्था में ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने तथा हस्तिनापुर की रक्षा के प्रति कृत्संकल्प रहने की प्रतिज्ञा की थी, जिसका इन्होंने अपने जीवन पर्यन्त निर्वहण किया। यही कारण है कि

आज भी किसी के द्वारा दृढ़प्रतिज्ञा करते समय उसे भीष्मप्रतिज्ञा के रूप में ही देखा जाता है। वसिष्ठ ऋषि के शाप तथा इन्द्र की आज्ञा से अष्ट वसुओं ने गंगा के उदर से जन्म लिया। उनमें पहले सात पुत्रों को गंगा ने जल में डुबो कर मार दिया। आठवाँ पुत्र 'द्यु' नामक वसु का अंश था, जिसे शन्तनु ने गंगा का विरोध करके बचा लिया। यही बालक बाद में भीष्मपितामह हुआ। पृष्ठ– 572। (7), (34), (145)

113. **मण्डल–** विश्वामित्र के एक सौ एक पुत्र थे, उनमें एक पुत्र का नाम मण्डल था। पृष्ठ– 874। (127)

114. **मदनमंजरी–**प्रसिद्ध व्यक्ति नरवाहन दत्त की पत्नी। (64)

115. **मदालसा–** नागराज अश्वतर की तप से जीवित की गयी पुत्री (112)

116. **महिषासुर–** माया नामक असुर तथा रम्भा का पुत्र। इसने कठोर तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया तथा बाद में तीनों लोकों को कष्ट देने लगा। तब देवी ने अट्ठारह भुजाओं वाले रूप को धारण करके इसका वध किया था। पृष्ठ– 632। (47)

117. **माल्यवान्–** राक्षस का नाम, यह सुकेश राक्षस का बड़ा पुत्र था तथा सुग्रीव के सेनापति का नाम भी माल्यवान् था। (55)

118. **मूलदेव–** चौरशास्त्र के प्रवर्तक का नाम। (62)

119. **मेनका–** अद्भुत सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध स्वर्ग की अप्सरा, जिसे इन्द्र ने विश्वामित्र की तपस्या को भंग करने के लिए भेजा था, इसके संयोग से शकुन्तला नामक अत्यन्त सुन्दरी पुत्री की प्राप्ति हुई, जिसका बाद में दुष्यन्त ने वरण किया। यह कश्यप तथा प्राधा की कन्याओं में एक थी। कुछ स्थलों पर इसे ऊर्णायु गन्धर्व की पत्नी भी कहा गया है। पृष्ठ– 663। (14)

120. **मेघनाद–** रावण का पुत्र इसने इन्द्र पर विजय प्राप्त की थी, इसलिए इसका अन्य नाम इन्द्रजित् भी हुआ। राम–रावण युद्ध के अवसर पर इसने लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार करके उसे गहन निद्रा

में सुला दिया था, जिसे बाद में सुषेण नामक वैद्य से मार्गदर्शन में हनुमान के संजीवनी लाने पर पुनर्जीवित किया गया। (132)

121. **यमराज**– मृत्यु के देवता इन्हीं का अन्य नाम धर्मराज भी है। द्रष्टव्य– धर्मराज। (50)

122. **ययाति**– नहुष का पुत्र प्रतिष्ठान देश का राजा, इसकी देवयानी तथा शर्मिष्ठा दो पत्नियाँ थीं। शुक्राचार्य से शापित होकर यह जरावस्था को प्राप्त हुआ। बाद में इसने अपने पुत्रों से यौवन की याचना की, तो केवल 'पूरु' नामक पुत्र ने ही इसे अपना यौवन प्रदान किया तथा दूसरे पुत्रों द्वारा मना करने पर इसने उन्हें जराग्रस्त होने का शाप दे दिया। बाद में यौवनावस्था के अनेक सांसारिक भोगों को भोगकर अपने पुत्र को उसका यौवन लौटा दिया तथा उसका राज्याभिषेक भी किया और स्वयं ने वानप्रस्थ की दीक्षा ली। (129)

123. **यशोदा**– कृष्ण की पालिता माता का नाम, गोकुल के मुखिया नन्द की पत्नी। (6),

124. **युधिष्ठिर**– पाण्डवों में सबसे बड़े भाई, ये सत्य एवं धर्म के लिए प्रसिद्ध थे। वास्तव में तो इन्हें धर्म का अवतार ही माना गया, इसीलिए इन्हें धर्मराज युधिष्ठिर भी कहते हैं। (129)

125. **रति**– कामदेव की पत्नी का नाम (78)

126. **रम्भा**– कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक सुविख्यात अप्सरा, जो कुबेर की सभा में रहती थी। अर्जुन के जन्म के उत्सव में इसने नृत्य किया था। विश्वामित्र के तप को भंग करने के लिए इसे इन्द्र ने भेजा था, इसे पहचान कर उन्होंने शिला बन जाने का शाप दे दिया। वाल्मीकि रामायण में इससे सम्बन्ध रखने के कारण 'तुम्बरु' को विराध राक्षस का रूप प्राप्त होने की कथा भी मिलती है। (38)

127. **राधेय**– अधिरथ नामक सूत की पत्नी 'राधा' ने कुन्ती पुत्र कर्ण को पालपोस कर बड़ा किया, क्योंकि कौमार्यावस्था में उत्पन्न

होने के कारण उसने इसे सन्दूक में रखकर नदी में बहा दिया था। इसलिए इसका अन्य नाम 'राधेय' भी हुआ।(26)

128. **राम**– राजा दशरथ के बड़े पुत्र। सीता इनकी पत्नी थी। इन्होंने पिता के वचन का पालन करने के लिए चौदह वर्षों तक वनवास को स्वीकार किया तथा वहाँ रहकर अनेक आततायी राक्षसों के वध के साथ–साथ सुग्रीव की सहायता से रावण का विनाश करके विभीषण का राज्याभिषेक किया। (3), (117), (145)

129. **रावण**– लंका का प्रसिद्ध सम्राट्, जो पुलस्त्य के पुत्र विश्वस् नामक राक्षस का पुत्र था। दाशरथि राम की पत्नी सीता का हरण करने के कारण इसे राम ने किष्किन्धा के राजा सुग्रीव के सहयोग से लम्बे संघर्ष के बाद मार डाला था, जिसकी कथा वाल्मीकि रामायण में विस्तार से कही गयी है। (55), (57), (132), (145)

130. **राहु**– नौ ग्रहों में एक, यह सिंहिकासुत तथा विप्रचित्तिका के पुत्र है। समुद्र मन्थन के अवसर पर इसने देवों की पंक्ति में बैठकर धोखे से अमृतपान कर लिया था, जिसकी सूचना सूर्य, चन्द्र ने विष्णु को दी, तो उन्होंने अपने सुदर्शन से इसका सिर काट दिया, किन्तु अमृत के कण्ठ से नीचे उतरने के कारण यह दो भागों में विभक्त होकर भी जीवित है। इसका मस्तक राहु तथा नीचे का भाग केतु कहा जाता है और तभी से यह सूर्य और चन्द्र दोनों को ही ग्रसता है, जिसे सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण कहा जाता है।

131. **रेवती**– कृष्ण के बड़े भाई बलराम की पत्नी। (132)

132. **लव**– राम तथा सीता के छोटे पुत्र का नाम, (6)

133. **लक्ष्मण**– राम के छोटे भाई का नाम, जो परम भ्रातृभक्त था, राम के वनवास के अवसर पर यह भी उनके साथ ही गया था तथा कठिन परिस्थितियों में भी प्रत्येक पल उनका साथ दिया। (45)

134. **लक्ष्मी**– ऐश्वर्य की प्रतीक देवी, विष्णु की पत्नी का नाम इसकी उत्पत्ति समुद्र मन्थन से हुई थी। (63), (107), (122)

135. **लवणासुर**–मधुवन में निवास करने वाला यह 'मधु' नामक राक्षस तथा कुम्भीनसी का पुत्र था। रुद्र की कृपा से इसे शूल की प्राप्ति हुई, जिससे यह अजेय हो गया, किन्तु इसके अभाव में ही राम की आज्ञा से शत्रुघ्न ने इसका वध कर दिया था। पृष्ठ– 785। (127)

136. **वडवानल**– समुद्र में रहने वाली आग, जिसके कारण बादलों का निर्माण होता है, जो सर्वत्र वृष्टि करते हैं। पितरों के आदेश से और्व ऋषि ने अपनी क्रोधाग्नि को समुद्र में डाल दिया था, जो आज भी अश्व की मुखाकृति बनाकर समुद्र का जल पीती रहती है। इसीलिए इसे वडवा अर्थात् घोड़ी के मुख की अनल अर्थात् आग कहा जाता है। (126)

137. **वज्र**– इन्द्र के शस्त्र का नाम, इसका निर्माण महर्षि दधीचि की अस्थियों से देवों के शिल्पी विश्वकर्मा ने किया था। श्लोक–17 ।

138. **वरुण**– जल के देवता का नाम। (45), (126)

139. **वसुदेव**– कृष्ण के पिता तथा देवकी के पति का नाम।

140. **वात्स्यायन**– कामसूत्र के प्रणेता। (34)

141. **वासुदेव**– वसुदेव का पुत्र होने से कृष्ण का ही अपने पिता के नाम के आधार पर नाम (1) वसुदेवस्य अपत्यं पुमान्।

142. **वामन अवतार**– विष्णु का पाँचवाँ अवतार, जो इन्होंने इन्द्र के संरक्षण तथा बलि वैरोचन नामक दैत्य के बन्धन के लिए ग्रहण किया गया। वामन ने बलि से तीन पग भूमि की याचना की, जिसे देने के बाद इन्होंने दो पदों में पृथ्वी तथा स्वर्ग को माप लिया, तीसरे पद को बलि के मस्तक पर रखकर उसे सुतल नामक पाताललोक में स्थापित किया। पृष्ठ–825–826। (26)

143. **वाराह अवतार**– हिरण्याक्ष नामक असुर के वध के लिए धारण किया गया, यह विष्णु तीसरा अवतार माना गया है। पुराणों के अनुसार हिरण्याक्ष पृथ्वी का हरण करके पाताल में ले गया, जिसे

वाराह का रूप धारण करके विष्णु ने ऊपर उठाकर समुद्र से बाहर निकाला तथा उसकी स्थापना शेषनाग के मस्तक पर की और उसके बाद हिरण्याक्ष का वध भी किया। पृष्ठ– 798 । (1)

144. **विजयकेतु–** विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा इसी के पुत्र पुष्पकेतु के साथ वासवदत्ता के पिता शृंगारशेखर ने उसका विवाह तय किया था, जो बाद में नहीं हो सका। (114)

145. **विनता–** कश्यप की पत्नी, गरुड़ तथा अरुण इनके पुत्र थे। अरुण ने सूर्य का सारथि बनना स्वीकार किया तथा शक्तिशाली गरुड़, भगवान् विष्णु का वाहन बना। सर्पों की माता कद्रू ने धोखे से इसे दासत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था, जिसे बाद में गरुड़ के प्रयासों से मुक्ति मिली थी। (7),

146. **विराट–** मत्स्य देश का राजा, विराट नगरी इसकी राजधानी थी। पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास को इसी की नगरी में छिपकर विभिन्न कार्य करते हुए व्यतीत किया था। (38)

147. **विष्णु–** ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश त्रिमूर्ति में एक। इन्हें सृष्टि का पालक माना गया है। ये अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ क्षीरसागर में शेषनाग पर शयन करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर देवता भी इनसे सहायता की प्रार्थना करते रहे हैं। (1), (26), (29), (45), (74), (107), (122)

148. **विश्वकर्मा–**शिल्पशास्त्र के मर्मज्ञ देवों के शिल्पी। धृतराष्ट्र के लिए इन्द्रप्रस्थ तथा कृष्ण के लिए द्वारका नगरी का निर्माण इन्होंने ही किया था। अस्त्र–शस्त्र निर्माण में भी इन्हें महारथ हासिल थी। विष्णु का सुदर्शन, शिव का त्रिशूल, महर्षि दधीचि की अस्थियों से वज्र का निर्माण भी इन्होंने ही किया। इनकी 'संज्ञा' नामक कन्या का विवाह सूर्य से हुआ, जिसके कहने पर इन्होंने सूर्य की सहमति से शाण पर चढ़ाकर उनके तेज को कम किया था। द्रष्टव्य– मार्कण्डेय महापुराण (1)

149. **विश्वामित्र**– वैदिक तथा पौराणिक साहित्य के प्रसिद्ध ऋषि, इनके एक सौ एक पुत्र थे, जिनमें एक पुत्र का नाम मण्डल था। (127)

150. **शकुनि**– महाभारत का एक पात्र, दुर्योधन का मामा, इसके पुत्र का नाम उलूक था। (76)

151. **शन्तनु**– एक कुरुवंशीय प्रसिद्ध राजा, इन्हीं को शान्तनु भी कहते हैं। ये प्रतीप नामक राजा के तीन पुत्रों में दूसरे थे। इनकी माता का नाम सुनन्दा पत्नी का नाम गंगा था तथा ये 'द्यु' नामक वसु के अंश भीष्म के पिता थे। अपने शान्त स्वभाव के कारण ये शन्तनु या शान्तनु के नाम से जाने गए। द्रष्टव्य– भीष्म। (129)

152. **शकुन्तला**– विश्वामित्र तथा मेनका से उत्पन्न, राजा दुष्यन्त की पत्नी, महर्षि कण्व की पालिता पुत्री। नाटककार कालिदास ने इसी के चरित्र को आधार बनाकर अभिज्ञान शाकुन्तलम् नामक प्रसिद्ध नाटक की संरचना की। (64)

153. **शंकर**– ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इन तीन देवताओं (त्रिदेव) में प्रमुख स्थान, संस्कृत काव्यों में इनके ताण्डव नृत्य, जटाजूट, श्मशान–निवास, भस्म एवं सर्पों का विशेषरूप से उल्लेख हुआ है। (1), (72), (76), (78) (126)

154. **शम्बर दैत्य**– इन्द्र का शत्रु असुर। इसका उल्लेख ऋग्वेद में भी हुआ है। कुलितर का पुत्र होने के कारण इसका अन्य नाम 'कौलितर' भी था, पुराणों में इसे कश्यप तथा दनु का पुत्र कहा गया है। वृत्रासुर के अनुयायी इसका इन्द्र ने वध किया था। (34)

155. **शची**– इन्द्र की सतीसाध्वी पत्नी तथा जयन्त की माता थी। इन्द्र तथा नहुष संघर्ष में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, इसी के विवेक से नहुष को अजगर बनना पड़ा। (55), (117)

156. **शालभंजिका**– यह एक विद्याधरी थी। महाकवि ने इसका विशेषरूप से उल्लेख किया है।

157. **शिखण्डी–** पांचाल नरेश द्रुपद का पुत्र पहले शिखण्डिनी नामक कन्यारूप में उत्पन्न हुआ, किन्तु बाद में स्थूणाकर्ण नामक यक्ष की कृपा से यह पुरुष बन गया। भीष्मवध में इसका प्रमुखरूप से योगदान रहा, क्योंकि उन्होंने इसे स्त्री मानते हुए इसके ऊपर बाण न चलाने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया था और तभी अर्जुन ने बाणों के प्रहार से उनका शरीर छलनी कर दिया। (34)

158. **शुक्राचार्य–** दैत्यों के गुरु, इन्हें मृत–संजीवनी विद्या सिद्ध थी, जिसके कारण दैत्यों को मरने पर भी ये जीवित कर देते थे। इनकी कन्या का नाम देवयानी था। ययाति ने इसके साथ विवाह किया और वह पतित हो गया। (129)

159. **शुम्भ–** अत्याचारी दैत्य, ये दो भाई थे, दूसने भाई का नाम निशुम्भ था, इनकी कथा का उल्लेख मार्कण्डेय महापुराण में विस्तार से हुआ है, इनका वध माँ दुर्गा द्वारा किया गया। (47)

160. **शूलपाल–** ज्योतिष शास्त्र के उद्भट विद्वान् गणना सम्बन्धी कारिका के सृजनकर्ता ज्योतिषी । (117)

161. **शृगाल –** एक राक्षस जिसका नामोल्लेख महाकवि सुबन्धु ने किया है। कोषों में इसके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। (6),

162. **सगर–** प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशीय राजा। और्व ऋषि के आश्रम में तपस्या करने पर इनकी पत्नी प्रभा को एक तुम्बी उत्पन्न हुई। आकाशवाणी के निर्देशानुसार इससे एक–एक बीज को निकालकर घी से भरे हुए, साठ हजार कलशों में रखने के बाद, इन्हें इतने ही पुत्रों की प्राप्ति हुई। बाद में जब ये अश्वमेध यज्ञ को घोड़े को ढूँढ रहे थे तो इन्द्र ने उस घोड़े को महर्षि कपिल के आश्रम में छिपा दिया था, जहाँ पर महर्षि का अपमान करने से उनके शाप से ये सभी वहीं पर भस्म हो गए थे। बाद में इसी वंश में उत्पन्न राजा भगीरथ के कठोर तप रूप प्रयासों से गंगा को कपिल के आश्रम तक लाने पर इनका उद्धार हुआ था। (48)

163. **सत्यभामा**– श्रीकृष्ण की प्रमुख रानियों में एक। यह यादव राजा सत्राजित् की ज्येष्ठ पुत्री थी। स्यमंतक मणि की चोरी का झूठा आरोप कृष्ण के ऊपर लगाने के कारण, बाद में इसने श्रीकृष्ण से क्षमा माँगी तथा अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ कर दिया। (50)

164. **सन्तानक**– कल्पवृक्ष का ही अन्य नाम। (49)

165. **सप्तर्षि**– पुराणों में सात ऋषियों के समुदाय को ही सप्तर्षि संज्ञा प्रदान की गयी है, किन्तु इनकी नामावलि में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। महाभारत में ही दो भिन्न सूचियाँ मिलती हैं। एक सूची के अनुसार– सात ऋषियों में कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ, आदि आते हैं, जबकि दूसरी सूची में मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, की गणना की गयी है। मान्यता है कि आज भी ये सभी ऋषि आकाश में तारों के रूप में विद्यमान हैं। (48)

166. **सरस्वती**– विद्या की देवी। ब्रह्मा की औरस पुत्री। पुराणों में इसके शतरूपा, ज्ञान–शक्ति, सावित्री, गायत्री आदि नामों का उल्लेख किया गया है। पृष्ठ– 1024। (63)

167. **संज्ञा**– विश्वकर्मा की पुत्री, विवस्वान् अर्थात् सूर्य की प्रथम पत्नी, दूसरी पत्नी का नाम छाया था। द्रष्टव्य–छाया। (72)

168. **संवरण**– अयोध्या का प्रसिद्ध राजा, अजमीढ़ राजा का पौत्र तथा ऋक्ष राजा का पुत्र। एक बार अकाल के समय पांचाल राजा ने आक्रमण करके इसके राज्य पर अधिकार कर लिया और यह सिन्धु नद के किनारे स्थित एक दुर्ग में छिपकर रहने लगा। बाद में इसे वसिष्ठ की कृपा से अपने राज्य की पुनः प्राप्ति हुई। पृष्ठ–999। (129)

169. **सहस्रबाहु**– राजा कार्तवीर्य का विशेषण। यह गायों तथा ब्राह्मणों को अत्यधिक सताता था, बाद में यह काल का ग्रास बना दिया गया। द्रष्टव्य–कार्तवीर्य। (129)

170. **सार्वभौम दिग्गज**– उत्तर दिशा कुबेर की मानी गयी है। यह हाथी इसी दिशा की रक्षा करता है। चक्रवर्ती राजा के लिए भी सार्वभौम विशेषण का प्रयोग किया जाता है। (2), (48),

171. **सालभंजिका**– विद्याधरी का नाम । (44)

172. **सीता**– पतिव्रता नारी, राम की पत्नी, राजा जनक की पुत्री इसकी उत्पत्ति पृथ्वी से हुई थी। (3), (106), (117)

173. **सुकेश दैत्य**– एक राक्षस, इसकी माता का नाम साल–कटंकटा था। इसने शिव–पार्वती की घोर तपस्या की, जिसके कारण इसे रुद्रगणों में स्थान प्राप्त हुआ। पृष्ठ–1048। (55)

174. **सुग्रीव**– किष्किन्धा नगरी का एक सुविख्यात वानर राजा। इसने राम–रावण युद्ध में राम की ओर से युद्ध किया था। यह महेन्द्र तथा ऋक्षकन्या का पुत्र था। इसके बड़े भाई का नाम बालि तथा पत्नी तारा थी, थोड़ी सी गलतफहमी से यह अपने छोटे भाई का शत्रु हो गया था, जिससे उसने इसे मारकर राज्य से भगा दिया था तथा इसकी पत्नी तारा का भी हरण कर लिया। बाद में राम के सहयोग से बालि को मारने के बाद इसे अपने राज्य की प्राप्ति हुई। (26), (34)

175. **सुतल**– भूमि के नीचे स्थित सात पातालों में एक। (44)

176. **सुदक्षिणा**– सूर्यवंशी राजा दिलीप की पत्नी, इन्होंने पुत्र–प्राप्ति के लिए महर्षि वसिष्ठ के निर्देशानुसार नन्दिनी की समर्पित भाव से सेवा की थी, जिसके परिणामस्वरूप इन्हें रघु नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। काव्यकार कालिदास ने इसका विस्तृत वर्णन रघुवंश काव्य में किया है। (6),

177. **सुद्युम्न**– एक राजा, जिसकी पत्नी का नाम सुदर्शना था। राजस्थल नामक तीर्थ में स्नान करने के कारण इन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई। पृष्ठ–1058। (129)

178. **सुप्रतीक हाथी**– पश्चिमोत्तर दिशा की रक्षा करने वाला दिग्गज। यह ऐरावत के पुत्रों में एक था। हरितवर्ण वाला यह वरुण को प्रिय होने से उसका वाहन था। पृष्ठ–1064। (45)

179. **सुबाहु दैत्य**– ताटका राक्षस का पुत्र तथा मारीच राक्षस का भाई था। इसके पिता का नाम सुन्द था। विश्वामित्र के यज्ञ का विध्वंस करने के प्रयास के कारण दाशरथि राम ने इसका वध किया। पृष्ठ–1065। (7).

180. **सुभद्रा**– वसुदेव तथा देवकी की कन्या कृष्ण एवं बलराम की छोटी बहन। श्रीकृष्ण के सघन प्रयासों से सर्वसम्मति के साथ इसका विवाह अर्जुन से हुआ, क्योंकि बलराम इसका विवाह दुर्योधन के साथ कराना चाहता था। पृष्ठ–1066। (50)

181. **सुमन्त्र**– राजा दशरथ के आठ अमात्यों में एक। राम के वनवास के अवसर पर ये ही उन्हें भागीरथी नदी तक छोड़ने के लिए गए थे। बाद में राम के शासनकाल में भी ये उनके अमात्य रहे।(6)

182. **सुमित्रा**– मगध देश के राजा शूर की पुत्री, जो दशरथ की तीन पत्नियों में एक थी। लक्ष्मण इन्हीं के पुत्र थे (6)

183. **सुधर्मा**– यह इन्द्र के सारथि मातलि की पत्नी थी, इसकी कन्या का नाम गुणकेशी तथा पुत्र गोमुख था। पृष्ठ–637।

184. **सुमुख**– कुछ स्थलों पर इसे विनता पुत्र भी कहा गया है, किन्तु अधिकांश स्थलों पर विनता के दो अरुण तथा गरुड़ दो पुत्रों का ही उल्लेख हुआ है। द्रष्टव्य–विनता (7).

185. **सुयोधन**– द्रष्टव्य दुर्योधन। (26)

186. **सुशर्मा**– यह पाण्डवों से द्वेष करने वाला त्रिगर्त देश का राजा एवं वृद्धक्षेम का पुत्र था। इसने पाण्डवों के अज्ञातवास में दुर्योधन के लिए विराट की गायों के हरण का प्रयास किया था। पृष्ठ– 1077। (7).

187. **सूर्य–** महाभारत में इसके बारह नामों का उल्लेख किया गया है। ये ही बारह आदित्यों के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसकी संज्ञा तथा छाया दो पत्नियाँ थीं। द्रष्टव्य–छाया, संज्ञा। (39), (40)

188. **सोम–** चन्द्रमा का ही दूसरा नाम। यह अत्रि ऋषि का पुत्र था। दक्ष प्रजापति की सत्ताईस पुत्री इसकी सत्ताईस पत्नियाँ थीं।

189. **सोमक–** पांचाल देश का राजा, इसके पिता का नाम सहदेव था। इसने अधिक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से अपने एकमात्र पुत्र का नरमेध किया, जिसके धुएँ से इसे 'पृषत्' आदि सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई तथा अन्त में स्वर्गलोक भी प्राप्त हुआ, जबकि इस यज्ञ का परामर्श देने वाले तथा पौरोहित्य कर्म करने वाले व्यक्ति को नरक भोगना पड़ा। (129)

190. **हिमालय–** एक पर्वत। पुराणों में इसे देवता माना गया है। इसकी पत्नी का नाम मैना था और क्रौंच तथा मेनाक नामक इसके दो पुत्र थे। इनकी एक कन्या 'अपर्णा' अथवा उमा या पार्वती का विवाह इन्होंने महादेव से किया था। पृष्ठ– 1110 । (7)

191. **हिरण्यकशिपु–** दैत्य कुल का आदिपुरुष। इसने ब्रह्मा की कठोर तपस्या से वरदान प्राप्त किया कि यह घर के बाहर, घर में, दिन में, रात में, मनुष्य या पशु, अस्त्रादि किसी से भी न मारा जाए, वर पाकर यह अत्याचारी बन गया, तो भगवान् विष्णु ने नृसिंह अवतार ग्रहण करके अपनी जंघा पर रखकर अपने तीक्ष्ण नाखूनों से इसका वध किया। द्रष्टव्य– नृसिंह अवतार। पृष्ठ– 1110 । (1), (34)

192. **हरिवंश पुराण–** अट्ठारह महापुराणों तथा अट्ठारह उपपुराणों से भिन्न महाभारत का ही एक अंश। (36)

•••

सहायक ग्रन्थ–सूची

1. वासवदत्ता, पं. शंकर देव शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2001 ।
2. वासवदत्ता, डॉ. जमुना पाठक, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, तृतीय संस्करण।
3. वासवदत्ता, डॉ. वेदप्रकाश डिंडोरिया, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण।
4. वासवदत्ता, पं. शिवराम त्रिपाठी कृत 'दर्पण' संस्कृत टीका।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी। दशम संस्करण।
6. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशकः संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर ऋषि, प्रकाशकः चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 2004।
8. संस्कृत कवि दर्शन, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1994 ।
9. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ. सूर्यकान्त, प्रकाशकः ओरियन्ट लोंगमैन, 1972 ।
10. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पं. चन्द्रशेखर पाण्डेय, 1967 ।
11. संस्कृत सुकवि समीक्षा, डॉ. बलदेव उपाध्याय, 1963 ।
12. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1931।
13. संस्कृत आलोचना, पं. बलदेव उपाध्याय।

187. **सूर्य–** महाभारत में इसके बारह नामों का उल्लेख किया गया है। ये ही बारह आदित्यों के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसकी संज्ञा तथा छाया दो पत्नियाँ थीं। द्रष्टव्य--छाया, संज्ञा। (39), (40)

188. **सोम–** चन्द्रमा का ही दूसरा नाम। यह अत्रि ऋषि का पुत्र था। दक्ष प्रजापति की सत्ताईस पुत्री इसकी सत्ताईस पत्नियाँ थीं।

189. **सोमक–** पांचाल देश का राजा, इसके पिता का नाम सहदेव था। इसने अधिक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से अपने एकमात्र पुत्र का नरमेध किया, जिसके धुएँ से इसे 'पृषत्' आदि सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई तथा अन्त में स्वर्गलोक भी प्राप्त हुआ, जबकि इस यज्ञ का परामर्श देने वाले तथा पौरोहित्य कर्म करने वाले व्यक्ति को नरक भोगना पड़ा। (129)

190. **हिमालय–** एक पर्वत। पुराणों में इसे देवता माना गया है। इसकी पत्नी का नाम मैना था और क्रौंच तथा मेनाक नामक इसके दो पुत्र थे। इनकी एक कन्या 'अपर्णा' अथवा उमा या पार्वती का विवाह इन्होंने महादेव से किया था। पृष्ठ– 1110 । (7)

191. **हिरण्यकशिपु–** दैत्य कुल का आदिपुरुष। इसने ब्रह्मा की कठोर तपस्या से वरदान प्राप्त किया कि यह घर के बाहर, घर में, दिन नें, रात में, मनुष्य या पशु, अस्त्रादि किसी से भी न मारा जाए, वर पाकर यह अत्याचारी बन गया, तो भगवान् विष्णु ने नृसिंह अवतार ग्रहण करके अपनी जंघा पर रखकर अपने तीक्ष्ण नाखूनों से इसका वध किया। द्रष्टव्य– नृसिंह अवतार। पृष्ठ– 1110 । (1), (34)

192. **हरिवंश पुराण–** अट्ठारह महापुराणों तथा अट्ठारह उपपुराणों से भिन्न महाभारत का ही एक अंश। (36)

•••

सहायक ग्रन्थ–सूची

1. वासवदत्ता, पं. शंकर देव शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2001 ।
2. वासवदत्ता, डॉ. जमुना पाठक, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, तृतीय संस्करण।
3. वासवदत्ता, डॉ. वेदप्रकाश डिंडोरिया, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण।
4. वासवदत्ता, पं. शिवराम त्रिपाठी कृत 'दर्पण' संस्कृत टीका।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी। दशम संस्करण।
6. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशकः संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर ऋषि, प्रकाशकः चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 2004।
8. संस्कृत कवि दर्शन, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1994 ।
9. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ. सूर्यकान्त, प्रकाशकः ओरियन्ट लोंगमैन, 1972 ।
10. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पं. चन्द्रशेखर पाण्डेय, 1967 ।
11. संस्कृत सुकवि समीक्षा, डॉ. बलदेव उपाध्याय, 1963 ।
12. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1931।
13. संस्कृत आलोचना, पं. बलदेव उपाध्याय।

14. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, अनु. आचार्य विश्वेश्वर, 1962 ।
15. काव्यादर्श, दण्डी ।
16. भावप्रकाशन, शारदातनय, व्याख्याकार–डॉ. मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी, 2012।
17. सरस्वती कण्ठाभरण, भोज, व्याख्याकार– डॉ. कामेश्वर नाथ मिश्र चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली। 1976।
18. अलंकार साहित्य का इतिहास, डॉ. कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार मेरठ, 2002।
19. शुकनासोपदेश, डॉ. राकेश शास्त्री व डॉ. प्रतिमा शास्त्री, धर्म–नीराजना प्रकाशन, दिल्ली। 1998।
20. काव्यप्रकाश, मम्मट, डॉ. राकेश शास्त्री, (दो खण्डों में) प्रकाशकः चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली–2021 ।
21. मनुस्मृति, डॉ. राकेश शास्त्री, विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद, (दो खण्डों में) प्रकाशकः विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली–2005 ।
22. प्राचीन चरित्र कोश, पं. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्र कोश मण्डल पूना। 1964 ।
23. पौराणिक कोश, राणा प्रसाद शर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2013।
24. अमरकोश, अमर सिंह राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2013।
25. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवाराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली– 1973 तृतीय संस्करण।
26. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पं. तारिणीश झा, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 1971।
27. मार्कण्डेय महापुराण, अनुवादक– डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री व डॉ. राकेश शास्त्री, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ, 1983।

•••

लेखक परिचय

नाम : डॉ. राकेश शास्त्री

शिक्षा : हाईस्कूल (1971), इण्टरमीडिएट (1973) प्रथम श्रेणी (यू. पी. बोर्ड), बी.ए. (ऑनर्स संस्कृत) (1975) मेरठ विश्वविद्यालय की योग्यता सूची में छठवाँ स्थान, महाविद्यालय स्वर्णपदक, एम.ए. (संस्कृत-साहित्य वैशिष्ट्य), (1977), प्रथम श्रेणी, पी-एच.डी. (1981) वेद, पुराणेतिहासाचार्य (1984) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, वि.वि. योग्यता सूची में प्रथम स्थान, विश्वविद्यालय स्वर्णपदक, साहित्याचार्य (प्रथम श्रेणी), डी.लिट् (2013), (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।)

अनुभव : सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँसवाड़ा (राज.) लगभग 29 वर्ष राजस्थान सरकार की उच्चशिक्षा सेवा, एम. फिल्, पी-एच.डी के छात्रों को निर्देशन। गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के संस्कृत-विभाग में लगभग 5 वर्ष अध्यापन, वैदिक एवं पौराणिक रिसर्च इन्सटीट्यूट नैमिषारण्य (सीतापुर) उ.प्र. में शोध-सहायक 2 वर्ष।

ग्रन्थ लेखन : ऋग्वेद के निपात, मार्कण्डेय महापुराण (हिन्दी अनुवाद), मनुस्मृति (सम्पूर्ण दो खण्डों में), वेदान्तसार, सांख्यकारिका, तर्कसंग्रह, तर्कभाषा, अर्थसंग्रह, योगसूत्र, भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाएँ, स्नातक संस्कृत सरला, सुगम संस्कृत व्याकरण आदि दर्शन एवं व्याकरण ग्रन्थों की डायग्रामिक सरल हिन्दी व्याख्या, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, स्वप्नवासवदत्तम्, मुद्राराक्षसम्, नागानन्दम्, प्रतिमा नाटकम्, रत्नावली नाटिका आदि नाटकों का सरल हिन्दी अनुवाद एवं 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, बृहद्दृक्सूक्त चन्द्रिका, ऋक्सूक्त चन्द्रिका, बृहदारण्यकोपनिषद्, कठोपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद और कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्, शांखायन ब्राह्मण (1-2 भाग) आदि वैदिक ग्रन्थों की सरल प्रस्तुति, ज्योतिष विग्दर्शिका, पंचस्वराः, मनुष्यालय चन्द्रिका, भुवन दीपक, आदि ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों की डायग्रामिक सरल प्रस्तुति। महाभारतकार एवं कालिदास की काव्यकला, नाटककार कालिदास, कालिदास की काव्यचेतना, कालिदास की वैज्ञानिक दृष्टि, कालिदास की उपमा-योजना आदि उच्च कोटि के संदर्भ शोध ग्रन्थों के प्रणेता, संस्कृत निबन्ध चन्द्रिका, संस्कृत बोध-कथा मंजरी, संस्कृत नाट्य निकुंजम्, संस्कृत कविता मंजरी, संस्कृत कथा मंजरी आदि 77 से भी अधिक मौलिक एवं व्याख्या ग्रन्थों के लेखक।

शोध पत्र : प्रसिद्ध शोध पत्र-पत्रिकाओं एवं अभिनन्दन ग्रन्थों में 65 से अधिक शोध निबन्ध प्रकाशित, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठियों में 50 से अधिक शोधलेख पठित, सत्रों की अध्यक्षता एवं मुख्यवक्ता।

पुरस्कार व संदर्भ ग्रन्थों में नामोल्लेख : आदिवासी जनजाति क्षेत्र बाँसवाडा में पूर्णतया समर्पित संस्कृत प्रचार-प्रसार के लिए राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय तथा स्थानीय स्तर पर लगभग 25 से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित तथा राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ ग्रन्थों में नामोल्लेख।